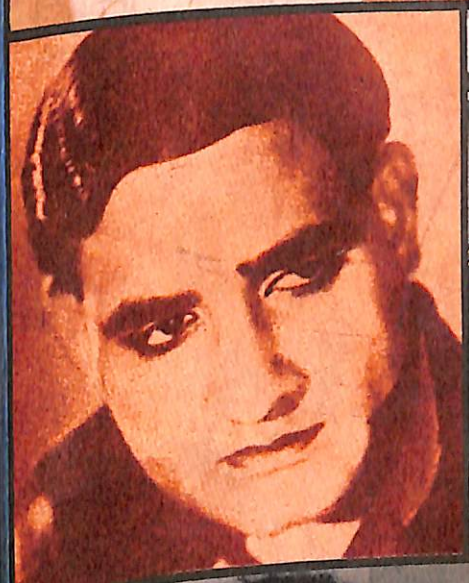

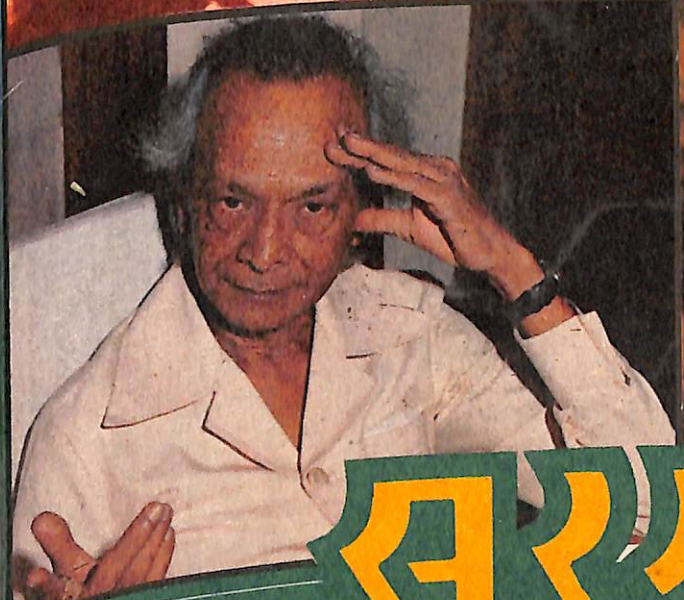

सरगम का सफर

जून : १९८९

मूल्य : सोलह रुपए

नईदुनिया

फिल्म विशेषांक

Khat-Mit
खट-मिठ
मुँह में गाए
खट-मिठ
पेट में गुनगुनाए
आयुर्वेदिक
हाजमे की गोलियाँ
मार्केटेड बाय : सिटिजन मार्केटिंग प्रा. लि. ६०८, चेतक सेन्टर, आर.एन. टी. मार्ग, इन्दौर

सरगम का सफर

•••

प्रधान संपादक
अभय छजलानी

सहयोगी संपादक
सुरेश गावड़े
श्रीराम ताम्रकर
महेन्द्र सेठिया

साज-सज्जा
दिलीप चिंचालकर

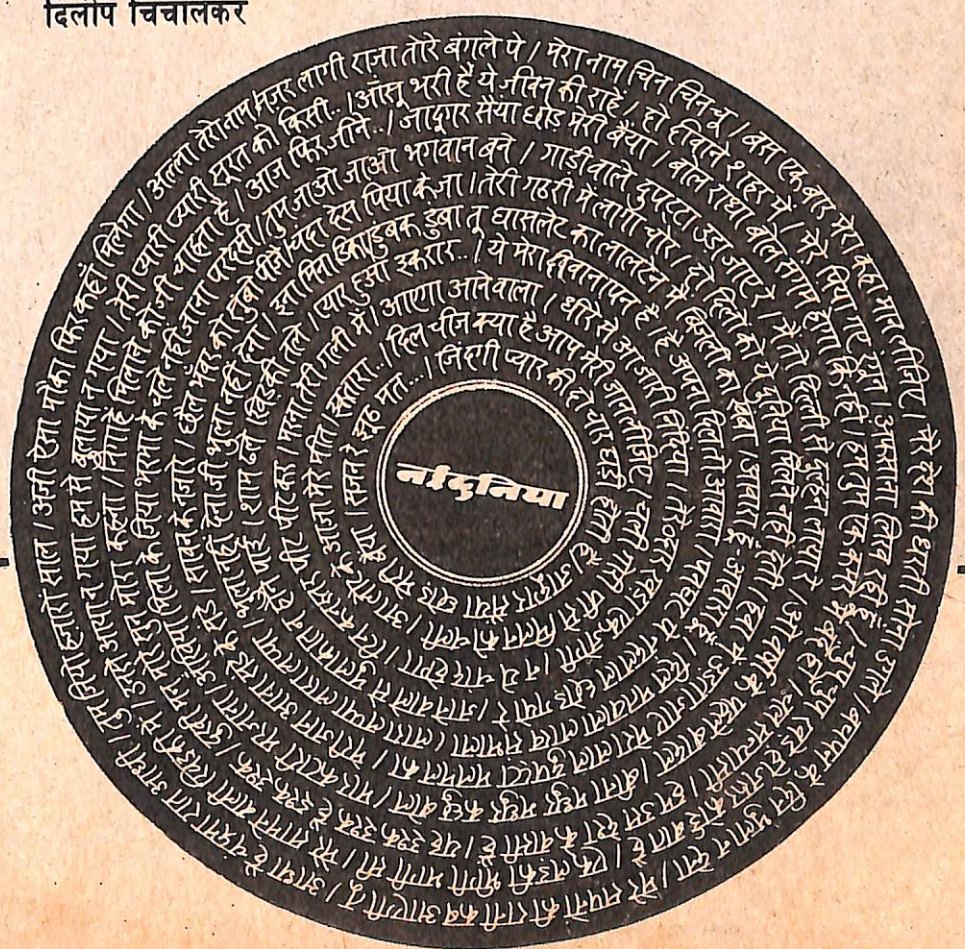

नईदुनिया प्रकाशन

सरगम के सफर के हमसफर

○ **साक्षात्कार**

◇ आशा भोसले (श्रीराम ताम्रकर) ◇ अनिल विश्वास (शंभूनाथ मिश्र) ◇ नौशाद अली (खालिद समी) ◇ माधुलाल मास्टर (हरमन्दिर सिंह हमराज) ◇ रणजीत बारोट (रिंकी भट्टाचार्य)।

○ **विशिष्ट सामग्री**

◇ बेजोड़ लता (कुमार गंधर्व) ◇ लता के साम्राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता (पु.ल.देशपांडे) ◇ कैसा हो संगीत फिल्मों में (सत्यजीत राय) ◇ फिल्मों में ध्वनि (ऋत्विक घटक) ◇ संगीत से ज्यादा महत्वपूर्ण ध्वनि (ब.व.कारंत) ◇ बीसवीं सदी की आहट और प्रदर्शनकारी कलाएँ (मुल्कराज आनंद) ◇ ग्रामोफोन की कहानी (जी.एन.जोशी) ◇ सुगम संगीत का इतिहास-विकास (भास्कर चंदावरकर) ◇ भारतीय शास्त्रीय संगीत की समृद्ध विरासत (शंभूनाथ मिश्र) ◇ मराठी चित्रपट संगीत (शशिकांत किणीकर) ◇ कितना दुश्वार है गजल कहना (मनमोहन सरल) ◇ गूँगा और गुड़ का स्वाद (बच्चन श्रीवास्तव)।

○ **विशेष आलेख सुर एवं स्वर**

◇ किशोर कुमार (विनोद तिवारी) ◇ मोहम्मद रफी (सुरेश ताम्रकर) ◇ मुकेश (प्रकाश जैन) ◇ तलत महमूद, मदन मोहन (सुरेश गावड़े) ◇ एस.एन. त्रिपाठी (आर.एस.यादव) ◇ सचिन दा एवं शंकर जयकिशन (हेमचंद्र पहारे) ◇ भप्पी लाहिरी, लक्ष्मीकांत प्यारेलाल, कल्याणजी-आनंदजी (जयप्रकाश चौकसे) ◇ रवीन्द्र जैन (रणधीर कपूर) ◇ राहुल देव बर्मन (रमेश बहल) ◇ सुरैया (बद्रीप्रसाद जोशी) ◇ गीता दत्त (भूपेंद्र चतुर्वेदी) ◇ ओ.पी.नय्यर (स्वरूप बाजपेयी) ◇ जयदेव एवं खय्याम (स्वतंत्र कुमार ओझा)।

○ **हास्य व्यंग्य**

◇ झुमरी तलैया (शरद जोशी) ◇ खेल, खिलाड़ी और सा रे ग म पा (वसंत नाईक) ◇ बैजू बावरा की आत्मा... (यशवंत व्यास) ◇ मोर बनो या चोर... (शिरीष कणेकर)।

○ **गीत विश्लेषण**

◇ हैं सबसे मधुर वे गीत... (फिरोज रंगूनवाला) ◇ झूमकर चली हवा (श्रीकांत प्रभु) ◇ वो सुबह कभी तो आएगी (राजू भारतन) ◇ आठ आने से सवा लाख तक।

○ **खास जानकारी**

◇ रंगाराव की २६००० रिकॉर्ड ◇ ५२ वाद्य बजाने वाला संगीतकार ◇ सरगम के सारथी अरेंजर्स ◇ मालदार मुलाणी ◇ शास्त्रीय राग पर आधारित फिल्मी गीत ◇ स्वर गंगा के सुरीले पंछी ◇ आवाज की दुनिया के जादूगर ◇ पार्श्व-संगीत के गोदाम ◇ फिल्म गीतकोश

○ **गीतकार**

◇ साहिर लुधियानवी ◇ पं.नरेंद्र शर्मा ◇ प्रदीप ◇ शकील बदायूँनी ◇ मजरूह सुल्तानपुरी ◇ आनंद बक्षी ◇ इंदीवर ◇ शैलेंद्र ◇ हसरत जयपुरी ◇ वर्मा मलिक ◇ राजेंद्र कृष्ण ◇ अनजान ◇ डी.एन. मधोक ◇ नीरज ◇ ब्रजेंद्र गौड़ ◇ नेपाली ◇ भरत व्यास।

◆◆◆◆◆

● ***विशेष***

सरगम का सफर विशेषांक में प्रकाशित लेखकों के विचार निजी अभिव्यक्ति है। उनसे संपादक अथवा प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है।

प्रधान संपादक

● ***सौजन्य-आभार***

**सिनेमा विजन *फिल्म दर्शन (यासीन दलाल की गुजराती पुस्तक)) *हिंदी फिल्म सिंगर्स (योगेश यादव की हिंदी पुस्तक) *इंडिया मेगजीन *स्क्रीन *माधुरी *वीकली *फिल्म फेअर *चंदेरी (मराठी) *रूपेरी (गुजराती) *फिरोज रंगूनवाला *नेशनल फिल्म आर्काइव ऑव इंडिया *सिनेमा इन इंडिया।*

लताजी के आशीष

श्रीकृष्ण:

नई दुनिया की सालगिरह पर
बहुत बहुत बधाई॥
नई दुनिया का 'सरगम का सफ़र'
सुरीला, सुमधुर, और सबको प्रिय हो
यही ईश्वर से प्रार्थना है॥
अनेक शुभ कामनाओं।

लता मंगेशकर

5, जून 89

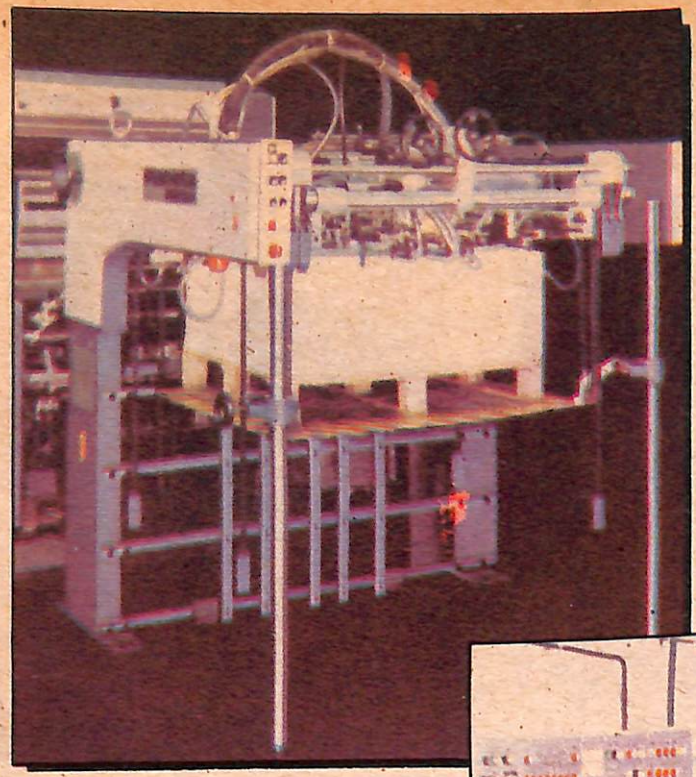

excel *v.t. & i.* से बढ़कर होना, से उत्कृष्ट होना; बढ़ जाना, आगे निकल जाना; अग्रगण्य होना; विशिष्ट होना; उत्कृष्ट कार्य करना; उत्कृष्ट होना; *ns.* excellence उत्कर्ष, श्रेष्ठता, विशिष्टता; excellency उत्कृष्ट कार्य; कोई महत्वपूर्ण गुण; योग्यता; महत्ता; परमश्रेष्ठ, महामान्य, महामहिम, श्रीमान्

अखबार की छपाई को ही लें...

साप्ताहिक दिनों की श्वेत-श्याम छपाई से रविवारीय पृष्ठों की रंगीनी तक यह कुछ भी हो सकती है।

प्रगत उपकरणों और उन्नत तकनीकों को में सदा आगे रहते हुए, प्रदेश की श्वेत-श्याम छपाई की पहली रोटरी वेब ऑफसेट भी सर्वप्रथम इसी संस्थान में आई थी, और अब चतुरंगी छपाई करनी वाली शीट-फेड ऑफसेट भी।

एक कॉलम के साधारण निजी विज्ञापन से लेकर पूरे पृष्ठ की बहुरंगी छपाई सुंदरता के साथ कर पाना बहुमुखी उत्कृष्टता का ही एक पहलू है।

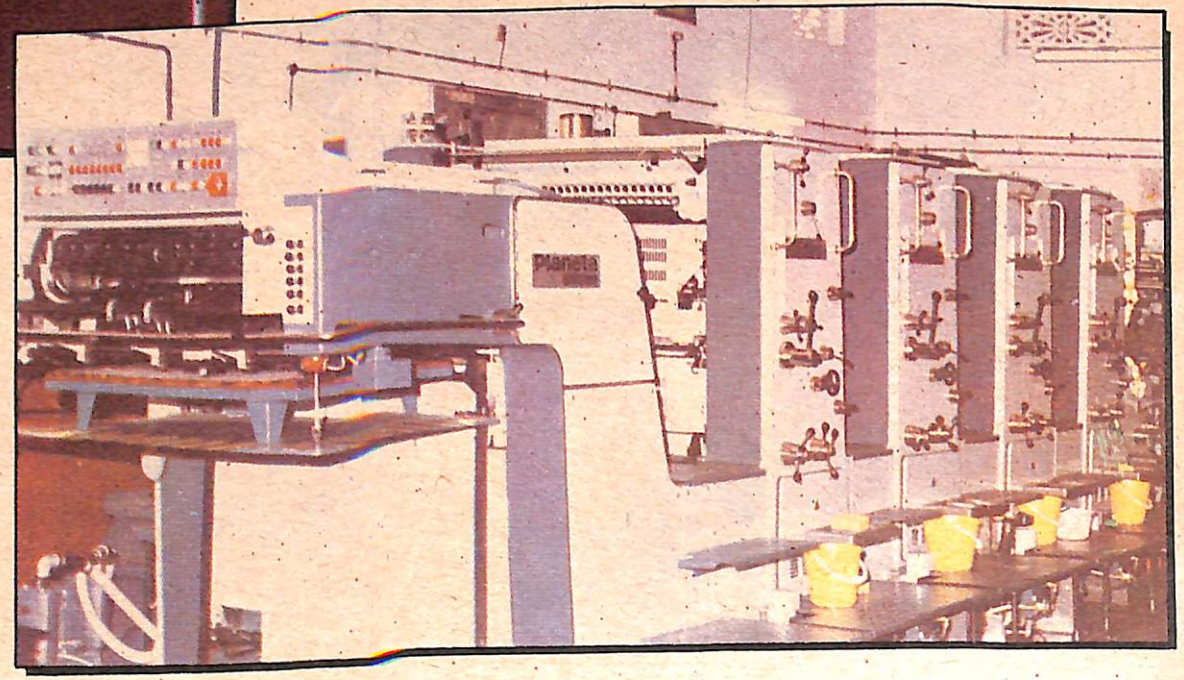

उत्कृष्ट छपाई के उत्कट प्रयास में...

प्रदेश में एक नई पहल

नईदुनिया

बाबू लाभचन्द छजलानी मार्ग, इंदौर (म.प्र.)

इंडो-यूरोपियन मशीनरी कंपनी प्रा.लि., दिल्ली के सहयोग से प्राप्त

पड़ावों के आसपास

हमारे यहाँ संगीत को बहुत महत्व दिया गया है। आदमी के जनम से लेकर मृत्यु तक संगीत की धुनें पारम्परिक रूप से गाई- बजाई जाती हैं। यह भारतीय संस्कृति की ही दृष्टि है, जो स्वर को अनादि मानती है तथा ॐ को इसलिए सर्वव्यापी स्वर कहा गया है।

संगीत ने सभ्यता के यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते एक विराट यात्रा पूरी की। वह लोकसंगीत से चलकर शास्त्रीयता को समेटता हुआ, सुगम और सिने संगीत तक आ गया। इस यात्रा के बीच उसने कई पड़ाव देखे-ये सभी पड़ाव सामान्य-श्रोता की रुचि के आधार बने, बदले और बिगड़े।

हम मानकर चलते हैं कि अभी भी संगीत की जनप्रियता का आधार भी यही वर्ग बनाता है। लेकिन इसे उस सुगम संगीत के जो उसकी रुचि को झनझनाता है, लयबद्ध करता है, विभिन्न पड़ावों की महत्वपूर्ण सामग्री एक जगह एकत्र नहीं मिलती। मिलती भी है तो वह मोटी-मोटी जिल्दों में कैद होती है। नईदुनिया के चिंता के केन्द्र में हमेशा यह वर्ग रहा है। इस वर्ग में सभी 'कला के मर्मज्ञ' चाहे न हों, लेकिन वे एक परिष्कृत रुचि के मालिक होते हैं। और कलाओं को पनपाने में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष उनकी अहम् भूमिका होती है।

यहाँ हमने अपनी परम्परा के अनुसार ऐसे ही पाठकों को ध्यान में रखकर, 'सरगम का सफर' नामक इस अंक को संजोया है, सँवारा है। इसलिए हम इसमें शास्त्रीय का दावा नहीं कर रहे हैं, बल्कि ऐसी सामग्री जुटाने का यह प्रयत्न है कि जो संगीत के विभिन्न पड़ावों को जानने की उत्सुकता को संतुष्ट करने में सहायक हो सके। यही हमारा ध्येय है और यही अंतिम उद्देश्य।

कहने की जरूरत नहीं कि लता मंगेशकर और आशा भोसले सिने संगीत की रिद्धि- सिद्धि हैं। पिछले विशेषांक में हमने लताजी का एक पहला लम्बा टेपांकित साक्षात्कार छापा था। और अब इस अंक की अनुपम भेंट है-आशाजी के आवास पर बंबई में ली गई एक मुलाकात। लताजी की परोक्ष उपस्थिति के रूप में हम उन पर संगीत और साहित्य के दो महारथी-कुमार गंधर्व और पु.ल. देशपांडे के दो लेख दे रहे हैं। साथ ही लताजी ने खुद अपने हस्ताक्षरित छायाचित्र के साथ नईदुनिया के पाठकों के लिए दी है, शुभकामनाएँ।

बहरहाल 'सरगम के सफर' के साक्षी के रूप में आपके हाथों में है यह अंक।

इसके पहले कि आप इसके अगले पृष्ठ पलटें एक निवेदन और-ऐसा कोई भी प्रयास अपने इतने पूर्ण होने का दावा नहीं कर सकता, जिसके बाद कहने व लिखने को कुछ शेष नहीं हो। हमारा भी यह दावा नहीं है। किन्तु अति विनम्रता के साथ हम इतना जरूर कहना चाहेंगे कि इस विषय पर अब तक हुए प्रयासों में आप इसे अनूठा पाएँगे, अधिक रुचिकर व संग्रहणीय यह आपको लगेगा।

भारतीय सुगम और सिने-संगीत की आपकी विभिन्न जिज्ञासाओं को संतुष्ट करने में 'सरगम का सफर' अगर अहम् भूमिका निभा सके- आपके एकांत की गुनगुनाहट को इतना बढ़ा दे कि आप इसे अपने सिरहाने रखना पसंद करें, आपके जहन में भूली-बिसरी स्वरलहरियों को फिर से जीवित कर दे, तो हम सोचेंगे कि 'नईदुनिया' की यह कोशिश सार्थक हुई है।

जिंदगी एक सफर है सुहाना...

■ संयोजनः अभय छजलानी
■ साक्षात्कारः श्रीराम ताम्रकर

चार दशकों में भारतीय फिल्म-संगीत में आई गायिकाओं की कतार में आशा भोसले निर्विवाद रूप से कदाचित् एकमात्र ऐसी गायिका हैं, जिनकी आवाज में औरत की शताब्दियों से अनसुलझी 'मिस्ट्री' छुपी हुई है। यही वजह है कि उनके द्वारा गाए हुए गीतों में हमें एक अजब-सी चौंकाने वाली विभिन्नता बरामद होती है—जैसे, हम समकालीन भारतीय औरत के नितान्त नए रूप से परिचित हो रहे हों। ऐसे नए और हतप्रभ करने वाले रूप से, जो हमारे आसपास ही था—लेकिन, हमारा उससे अभी तक परिचय नहीं हो पाया था। हमारे खयाल से, उनके स्वर में निश्चय ही कोई एक अपरिभाषित अनुगूँज है, जो हर दफा हमें अपरिचय के 'प्रीतिकर' इलाके में ले जाकर छोड़ देती है।

कहने की जरूरत नहीं कि एक ही आवाज में, एक साथ भारतीय स्त्री के इतने सारे रूपों की उपस्थिति, हमें एक सुखद-विस्मय से भर देती है। *मसलन, घर को 'घर' बनाने के सपने में खोई और खटती हुई स्त्री/बच्चों के भूरे बालों में अँगुलियाँ फिराकर लोरी सुनाती स्त्री/अपनी आत्मा और शरीर के हिस्सेदार हुए आदमी के लिए रोती-गाती स्त्री/टूटते विश्वासों को बटोरने में हाथों को लहू-लुहान करती स्त्री/...* कहना न होगा कि आशा भोसले के बाद सिर्फ आशा भोसले की ही आवाज में वह सामर्थ्य है, जिसमें अपने सुख-दुःखों को गाती गँवई औरत जितने भरोसे से बाहर आती है—ठीक उतने ही भरोसे के साथ आती है रेस्त्राओं और क्लबों में भूखी निगाहों के सामने देह को थिरकाती औरत।...

आशा भोसले को सुनते हुए हमें बार-बार यह लगता है, गालिबन, उनकी आवाज के दो छोर हैं। एक छोर तो वह, जिसे सुनते हुए महसूस होता है, जैसे यह आशा भोसले नहीं कोई एक ऐसी प्रतिनिधि भारतीय स्त्री गा रही है, जिसकी आवाज की पर्तों में एक 'उजाड़-अतीत' तार में उलझी चिड़िया की तरह लगातार फड़फड़ा रहा है। जबकि दूसरा छोर वह है, जिसे सुनकर लगता है कि यह एक ऐसी 'दुनियादार और केलकुलेटिव' स्त्री की आवाज है, जिसका ऐसा कुछ भी नहीं है, जो इसके हाथ से फिसलकर पीछे छूट गया हो। जो कुछ भी उसके पास है, वह सब कुछ सुरक्षित और उसके साथ है। यहीं और बिलकुल यहीं। यहाँ तक कि आने वाले समय के भरोसे भी उसने कुछ नहीं छोड़ रखा है।

निस्संदेह लोगों ने, खासकर संगीतकारों ने आशा भोसले के स्वर के इस छोर को अधिक पहचाना और परिचित कराया। कुछ और आगे बढ़कर कहें कि इसे ही उन्होंने आशा भोसले के स्वर की स्थाई 'पहचान' बना डाला—जबकि आशा भोसले के पास दारुण दुखों में डबडबाती एक मर्मान्तक आवाज का भी अटूट खजाना था। उस खजाने को वह तार सप्तक से उतरकर, मन्द्र सप्तक की सतहों पर बिखेर सकती थी। लेकिन, संयोगों ने ऐसा सब होने नहीं दिया। वजहें बिलकुल साफ थीं—क्योंकि, मानवीय पीड़ा में लथपथाया यह स्वर औरत को उसकी 'आत्मा' और 'स्मृतियों' में बिखेरता हुआ उसे 'अमूर्त' कर देता, जबकि 'फिल्म संसार' को तो एक ऐसी आवाज चाहिए थी, जो अपनी अनुगूँज में स्त्री को 'देह' में रिड्यूस कर दे। एक ऐसी ठोस और उत्तेजक देह में, जिससे आदमी का एक ही किस्म का रिश्ता बनता है। बहरहाल बिना किसी बहस के हमें स्वीकारना होगा कि आशा भोसले की आवाज ने स्त्री की 'दैहिकता' को ऐसे अद्भुत कौशल के साथ रखा कि भारतीय फिल्म संगीत से संबद्ध लोग अचम्भित रह गए। देखते-देखते ही उनके बीच होड़ लग गई कि आवाज के इस मानचित्र को अपने कैनवस पर कैसे उतारें।

तुलनाएँ कभी-कभी गलतफहमियाँ भी पैदा करती हैं, लेकिन हिम्मत संभालते हुए हम कहना चाहेंगे कि लता की आवाज यदि 'आत्मा' है तो आशा की आवाज 'देह'। इसलिए भी आशा की आवाज में रोजमर्रा की जिन्दगी में आँखों के सामने पड़ने वाली भारतीय स्त्री की इतनी विभिन्न छवियाँ झिलमिलाती हैं। बेशक यह सिर्फ आशा की आवाज की ही कूबत है कि उसे सुनते हुए तमाम लोगों की अलग-अलग उम्रें अपनी सीढ़ियों की ऊँचाइयों को छोड़कर नीचे उतर आती हैं—और, नीचे की सीढ़ियों वाली उम्रें एक कदम उठाकर अपेक्षाकृत वयस्क सीढ़ी पर आ जाती हैं। यथार्थ में देखा जाए तो आशाजी से मिलकर हरेक को लगता है कि जैसे वे आगे निकल गई हैं, लेकिन अपनी आवाज की उम्र को उस सीढ़ी पर छोड़कर, जहाँ खड़े होकर आँखें सपने देखना शुरू करती

हैं। हमारी शुभकामनाएँ कि उनकी उम्र सौ बरस की हो, लेकिन उनकी आवाज की उम्र यही बनी रहे। सपने देखने और दिखाने वाली। आज जो सारी दुनिया का स्वप्न बनी हुई है, उस औरत का नाम है-मेडोना। और आशाजी सचमुच ही स्वर के संसार की मेडोना हैं, लेकिन साड़ी में।

यह बहुत सहज और संभव भी है कि उनकी आवाज की खूबी और खुसूसियत पर ढेरों लेख लिखे जाएँगे। तुलनाएँ भी की जाएँगी। फिर भी यदि आशा भोसले के स्वर की तुलना करने की विवशता ही आ खड़ी हो तो हम उनकी तुलना किसी 'गायक' से करने के बजाए एक 'चित्रकार' से करना चाहेंगे। वह चित्रकार है, दुनिया का महान चितेरा-टिशियन। टिशियन अपने सैकड़ों ब्रशों और ढेरों रंगों के साथ कई हफ्तों तक मशगूल रहने के बाद दर्शकों की आँखों के आगे एक भरपूर औरत को उसके 'देहपन' के साथ रच पाता था—लेकिन, आशा भोसले के कण्ठ की यह अद्‌भुत विशेषता है कि उससे निकली एक 'उच्छ्वास' 'निःश्वास' या एक 'कराह' ही क्षणभर में श्रोताओं को वहाँ लिए जाती है—जहाँ अंधेरे में धीरे-धीरे खुलती देह का 'वैभव' जगमगाता है।

पिछली बार जब उन्होंने एक फिल्म में 'शहरयार' की गजलें गाईं तो यक-ब-यक लगा, जैसे उन्होंने 'आवाज के उस वैभव' को 'अतीत के उजाड़' से पीठ टिकाकर खड़ा कर दिया है। निश्चय ही आशा के कला-कौशल की इस घटना ने फिल्म संगीत के संसार को एक बार फिर से हक्का-बक्का कर दिया। बहरहाल मुहावरे की पर्तें खोलते हुए हम आखिर में यह कह दें कि 'आशा से आकाश टिका है' तो अतिशयोक्ति नहीं होगी—क्योंकि आकाश की तो कई-कई किस्में हैं, लेकिन आशा की किस्म सिर्फ एक ही है।

हमारे जहनों में उनसे मिलने के पहले, पत्र-पत्रिकाओं में देखी गई उनकी ढेरों तस्वीरों के धुँधले अक्स थे। लेकिन, जब वे घर के दरवाजे से निकलकर बाहर आईं तो लगा उनका चेहरा खामोश है-खामोश और एक ठण्डी उदासी से घिरा हुआ भी। पहली दफा उनके चेहरे की ओर गौर से देखते हुए लगा; जैसे अपनी तमाम हँसियाँ पत्र-पत्रिकाओं में छपी तस्वीरों को सौंपकर वे कुछ समय के लिए चुप हो गई हैं। जब कभी आदमी अपने लिए चुप होता है तो ठीक इसी तरह का लगता है।

हकीकतन वे चुप थीं। भीतर तक। लेकिन बाहर की वजह से। और इन क्षणों में भी वे बाहर जाने की उतावली में थीं। सारी उतावली के बीच भी उनके चेहरे की संजीदगी को भेदती हुई एक उदासी बाहर आ जाती थी-जिसे औपचारिकता में फैलते होठों से उठती मुस्कराहट भी दबा नहीं पा रही थी। कम-ज-कम हमें तो यही लग रहा था।

पूछने पर पता चला कि घर का एक बड़ा सदस्य बीमार है व अस्पताल में है। और इसीलिए वे अपने तमाम जरूरी कामों को स्थगित करके उसकी तीमारदारी में लगी हुई हैं। सहसा हमें तकलीफों से घिरे उनके अतीत को याद करते हुए लगा जैसे आशाजी को दुःखी करने और रखने में ईश्वर का भी 'वेस्टेड-इन्टरेस्ट' है, ताकि उनके भीतर की कलाकार दुःख को झेलकर दुनिया के लोगों के बीच और ज्यादा सुख बाँटे। दुःख के बदले में एक कलाकार दुनिया को अपनी कला से सुख ही तो देता है। और कोई चालीस साल से आशाजी यही तो करती आ रही हैं।

बहरहाल, हमने एक जरूरी संकोच के साथ उनके समक्ष अपने आने का आशय प्रकट किया। वे ठिठक गईं/घर की दहलीज पर ही। घर में एक छोटी-सी पूछताछ के बाद उन्होंने निर्णय लेने में ज्यादा देर नहीं की।

'आइए, अंदर आ जाइए।'

उनकी आवाज की पर्तों में दबी उदासी बरबस ही बाहर आ रही थी/हमने मन ही मन सोचा, ऐसे संवेदनशील क्षणों में भी मुलाकात के लिए समय देना, विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य के साथ काम करते रहने की उनकी आदत का ही यह कोई हिस्सा है। अब हम अपेक्षाकृत एक बड़े-से कमरे में रखी गोल टेबिल को घेरकर बैठ गए थे। शायद यह उनका लिविंग रूम था- सादा लेकिन व्यवस्थित। करीने से रखी चीजों के बीच से एक खामोशी उठ रही थी, जो बार-बार पैडर रोड से गुजरते ट्रैफिक के शोर के नीचे दब जाती थी। बहरहाल, बातचीत का एक धीमा लेकिन आत्मीय सिरा खोजते हुए हमने पूछा- 'आशाजी, प्लीज डोण्ट माइण्ड-आपकी जिन्दगी में आती रहने वाली तकलीफों को याद करते हुए हमें लिण्डा कोमेक और आइसाडोरा डंकन की जिन्दगियों का खयाल हो आता है। मसलन 'घर' के सपने को सुरक्षित रखते हुए वे जिस तरह कला के एक 'चुनौतियों से भरे' संसार में दाखिल हुईं, वह भारतीय फिल्म संगीत के परिदृश्य में सिर्फ आपकी ही याद दिलाता है; क्योंकि कमोबेश आपकी भी स्थिति ऐसी ही रही है। बताइए कि...

उन्होंने सवाल पूरा होने की प्रतीक्षा नहीं की। जैसे कहीं कोई एक उतावली है, उनकी आवाज से अधिक उनके दुःख में जो जल्दी ही जुबान से बाहर आना चाहता है। उन्होंने बोलना शुरू किया।

देखिए, जिन लोगों का 'एम' ही चलना और चलते रहने होता है, उन्हें रास्ता नहीं बनाना पड़ता। रास्ता अपने आप बनता जाता है या आप कह लीजिए, कि संघर्ष खुद आपका रास्ता बना देता है। इस सबके बीच आपको सिर्फ यह ध्यान में होना चाहिए कि आप संघर्ष किस तरह करते हैं। यदि संघर्ष का तरीका गलत हुआ तो आप भी टूट जाएँगे और आपके सपने भी। मेरा जहाँ तक सवाल है, मैं तो तकलीफों के बीच ही पैदा हुई और उन्हीं के साथ पली और बड़ी हुई। और अभी भी तकलीफों से संघर्ष कर रही हूँ। जिन्दगी में और 'कला' में भी।

'आपमें एक अद्‌भुत गुण है-वह यह कि आप 'रिस्क' लेने से कतई नहीं डरतीं। जैसे फीमेल-वाइस 'मन्द्रसप्तक' से शुरू होने वाले गीत नहीं लेतीं। और आपने बिना किसी हिचक के ऐसा ही एक गाना स्वीकार लिया था। आपकी टिप्पणी?'

'मन्द्रसप्तक में गाना, बिना खराश के खरज लगाना और सुगमता के साथ तारसप्तक में चले जाना-यह सब इसलिए 'पासिबल' हो पाया कि मुझमें एक जिद है। जिन्दगी में मुझे उन तमाम कामों को करने की इच्छा होती है, जो चुनौती देते हैं। यदि मुझे अपनी ही कोई इमेज चुनौती दे, तो मैं उससे भी भिड़ जाती हूँ। तो इसके पीछे एक जिद थी। बर्मन साहब ने कहा कि ये गाना एक ऐसे यंग व्यक्ति के लिए है कि तुम इसे नहीं गा पाओगी। बस मुझमें जिद पैदा हो गई कि मैं ही गाऊँगी और गाकर रहूँगी। वैसे आपको बता दूँ कि यह 'गाना' पहले बंगाली में बना था। एच.एम.वी. का रिकॉर्ड है। 'तुम्ही कोथाय/जाने ना कोथाय।' हिन्दी में किशोर दा और मैंने गाया है-'तू कहाँ... मैं कहाँ...।' तो यह सब मेरे क्लासिकल बेस के कारण ही संभव हो पाया।

इतना सारा वे धीमे-धीमे लेकिन एक ही बार में कह गईं। फिर ठिठक गईं। पहले लगा कि खिड़कियों से आते बाहर के शोर ने उन्हें रोक दिया है। वार्डन रोड के चढ़ाव को पार करती गाड़ियों का शोर कुछ ज्यादा ही बढ़ गया था। लेकिन पल भर बाद ही लगा कि ऐसा नहीं था। वे अपने भीतर ही कहीं दूर चली गई थीं। सवाल के दूसरे सिरे को टटोलकर उन्होंने फिर बोलना शुरू किया। लेकिन बोलते हुए लग रहा था, वे अपने भीतर जितनी दूर चली गई थीं-वहाँ से लौटी नहीं। कहना चाहिए वहीं से बोल रही हैं।

'आपने जो कहा कि 'रिस्क' ...तो मेरा तो सारा जीवन ही 'रिस्क' रहा है। फिर फिल्म लाइन में तो यह बात और ज्यादा लागू होती है। कहाँ बच पाता है, इंसान इससे। क्या था कि मेरी जब सारी दुनिया खत्म हो चुकी थी, तब मैं केवल सत्ताइस साल की थी। दो मासूम से बच्चे पास में। एक बच्चा पेट में। एक टूटती- बिखरती दुनिया और सपनों को बचाना था मुझे। तो मेरे लिए तो सब तरफ 'रिस्क' ही थी। सहारा कोई नहीं। अपना दुःख भी किसे बताओ।'

उन्होंने आखिरी वाक्य कहकर विराम सा लगा दिया। एक उदास और विलम्बित लय थी, जो सहसा रुक गई। वे मुस्कराईं। लेकिन यह एक विचित्र मुस्कान थी, जिसमें उनके होंठ फैले। तीखी नाक के सिरे तक मुस्कान का दायरा गया और वहीं रुक गया। आँखें उसी तरह थीं। उदास और खोई हुईं, जैसे आँखों को होठों पर फैली हँसी का पता ही नहीं चला हो।

'तो मैं कह रही थी कि जीवन जो है, दुःख है। बड़ा अच्छा कलाकार होना चाहिए इंसान को जीने के लिए कि पता भी न चले कि उसके मन में क्या है-और बस हँसता रहे। यह एक बड़ी कला है। जीवन जीने की बड़ी कला। इसमें गहरा उतरना पड़ता है।'

गाने वाली आवाज से अलग उनकी 'स्पोकन आवाज' को हम सुन रहे थे। हमें लग रहा था, उनकी आवाज में अनकहे अतीत का एक बोझ समाया हुआ है। हमारे दिमाग से कुछ देर के लिए तमाम वे सवाल जो उनके 'फिल्मी करियर' की जानकारियों से भरे थे-धूमिल पड़ गए। हमने कहा- 'आशाजी आपकी आवाज में एक 'रोमेंटिक-सेडनेस' है, जो कई बार हँसते-हँसाते गीतों के बीच भी एकाएक बाहर सिर निकाल लेती है। आप कितना ही खुशनुमा गीत गाएँ कभी-कभी लगता है, आवाज की इन थरथराती पर्तों के दरमियान एक उजाड़-अतीत की उदासी छुपी हुई है। हम कई उदाहरण दे सकते हैं। जैसे, 'किसने मुझे चौंका दिया भूले हुए-से इस नाम से।'

'सच है-आपने जो समझा वो किसी ने आज तक समझा ही नहीं। सब

जलरंग- चित्रांकनः प्रभु जोशी

लोग मेरे गाने से ऐसा ही सोचते हैं कि मैं बड़ी बेधड़क औरत हूँ। ऐसी ही होऊँगी। लोग मेरी आवाज के बारे में 'मादकता', 'नशीली' ऐसी बातें भर कहते रहते हैं। वे सोचते हैं, आशा ऐसी ही है। फिर मेरे मुँहफट होने से और थोड़ा कड़क चलने से ऐसा लगता भी है। पर इससे मेरे लिए आसानी हो गई। लोग थोड़ा दूर रहने लगे। ये पर्दा मुझे अच्छा भी लगता है। यदि ऐसा न करती तो मेरी जिन्दगी में और भी तकलीफें और संघर्ष आ जाते। आपका दुःख सुनकर लोग बाँटते नहीं, सुनकर मजा लेते हैं। दुःख भी बँटता कहाँ है-बस हम झेलते हैं और उस 'झेलने' में कोई हमारी बगल में आकर खड़ा हो जाता है। इससे रास्ता थोड़ा-ठीक हो जाता है।'

इतना सुना कर जब वे रुकीं तो हमें लगा कि कोई नया सवाल करना अटपटा और प्रसंग से बाहर हो जाएगा। उनके बोले गए शब्द उनकी आवाज में छुपी अनुगूँज की तरह हमारे जहनों में बार- बार भटक रहे थे। हमने दूर देखा, जहाँ खिड़की से बाहर मल्टी स्टोरी बिल्डिंग के बीच से बंबई का वह मटमैला आसमान दिखाई दे रहा था, जिसके नीचे एक विख्यात गायिका ने जिंदगी की आधी शताब्दी काट दी थी।

'जूझने की ऐसी स्थिति में आप 'क्रूर' भी हो सकती थीं?'

'हाँ ठीक कहा आपने। क्रूरता लाई जा सकती थी। पर मैंने वह क्रूरता नहीं लाई, जो बदला लेती है। मेरा ख़याल है, हरेक औरत की जिन्दगी में एक ऐसा वक्त आता है, और उस वक्त यदि औरत ढीली पड़ जाए तो लोग उसका ज्यादा से ज्यादा फायदा उठाना चाहते हैं। आपको मालूम है, दुनिया की रीत है। उस वक्त जो मुझे रुख लेना पड़ा, वह बिलकुल **'कालिका'** का था। मतलबपरस्त लोगों को बड़ा अजीब लगा। वे मुझसे चिढ़ गए। मुझसे अलग हो गए। मगर, उससे कुछ नहीं। मुझे उससे कोई परवाह नहीं रही। उल्टे उससे आसानी ही हो गई। सच में अकेले जिंदा रहना बड़ा मुश्किल है- लेकिन ये सब तो जिंदगी में होता ही है।

'कई दफा सबसे टूटकर अकेला हो जाना भी साहस देता है। मसलन कि हम उन लोगों के बगैर भी रह सकते हैं। और जिन्दा रह सकते हैं।' हमने टिप्पणी की तो उन्होंने जो कुछ कहा उसका कुल जमा निष्कर्ष यह था कि 'कई दफा उन्होंने खुद को अकेला पाया, लेकिन यह 'अकेलापन' जूझने की एक स्थिति थी-यह जिन्दगी में अकेला हो जाना नहीं, केवल अकेला पड़ जाना था।'

स्वर संगम: उषा, आशा, हृदयनाथ, श्रीमती माई, लता और मीना मंगेशकर

'ऐसे में आप उदास नहीं होतीं?'

'मैं उदास होती हूँ और खूब होती हूँ। खासकर तब जब याद आ जाती है कि लोगों ने मुझ पर क्या-क्या न बिताई। क्या-क्या कहने की कसर न छोड़ी। लेकिन, अब मैं ऐसी ऊँचाई पर आ गई हूँ कि वह सब बौने लगते हैं। पहले लगता था कि इनको मुँह पर कह दूँ। लेकिन इस उम्र में इस सबकी जरूरत नहीं। मैं अब एकदम चेंज्ड हूँ। और उन सबसे भी बड़े प्यार से बातें करती हूँ। बात कर लेने की मेरी आदत भी है। लेकिन पहले जो गुस्सा झलकता था न हमेशा-वो अब नहीं। उसकी अब जरूरत भी नहीं रही। हाँ कभी-कभी पुरानी बीती हुई बातें याद आ जाती हैं तो मन में दुःख-जैसा हो जाता है।

'आप कभी रोती हैं, अकेले में?' सवाल थोड़ा असहजता में ले जाने वाला था। लेकिन, वे बिलकुल उसी तरह बनी रहीं। अलबत्ता एक शालीन-सी मुस्कराहट के साथ बोलीं- 'आपको बताऊँ कि मैं बहुत इम्मोशनल हूँ। मुझे बड़ा जल्दी रोना आ जाता है। घर में काम करने वाली नौकरानी भी जब जाती है तो रोना आ जाता है। बात यह है कि मैं निर्मोही होकर नहीं रह सकती। वैसे कई बार सोचती भी हूँ कि मैं ऐसी क्यों हूँ। लोग तो परवाह नहीं करते-लेकिन मैं ऐसा बन नहीं सकती। उम्र चाहे पचास बरस की हो जाए, मन तो वही रहता है न, बचपन वाला। जरा सी बात पर दुःखी हो जाने वाला। कभी-कभी सोचती हूँ कि आखिरकार इंसान इतना अहसान- फरामोश क्यों है? ये कैसे हो जाता है? कैसे कोई भूल जाता है, कि मैं पहले क्या था? अब कौन हूँ कहाँ पर हूँ और किसकी बदौलत हूँ-कैसे भूल जाता है कि मुझे किसने क्या दिया? मेरे साथ कितना अच्छा या बुरा किया? यह सब देखकर मन बहुत उदास हो जाता है।

अपनी उदासी को तोड़ने के लिए कई बार हम अपना ही कोई हिस्सा चुन लेते हैं-उसे एक हथियार की तरह इस्तेमाल करते हैं, उदासी से निबटने के लिए। आप क्या करती हैं?

सवाल बड़ा कठिन है। उत्तर और भी मुश्किल। क्योंकि यह तो अलग-अलग वक्त की बात होती है। कई बार घर के लोगों के बीच पहुँचकर सब भुला देती हूँ।

'उदासी में अपने गाए हुए गीत नहीं सुनतीं?'

नहीं सुनती। टाइम ही नहीं मिलता। जिन्दगी ने ही इतनी मोहलत या कि फुरसत कह लें दी ही नहीं कि अपने गाने सुन-सुनकर उदास होऊँ-या उदासी दूर कर लूँ। पर हाँ मुझे एक गीत खुद का ही गाया हुआ है, वह बहुत अच्छा

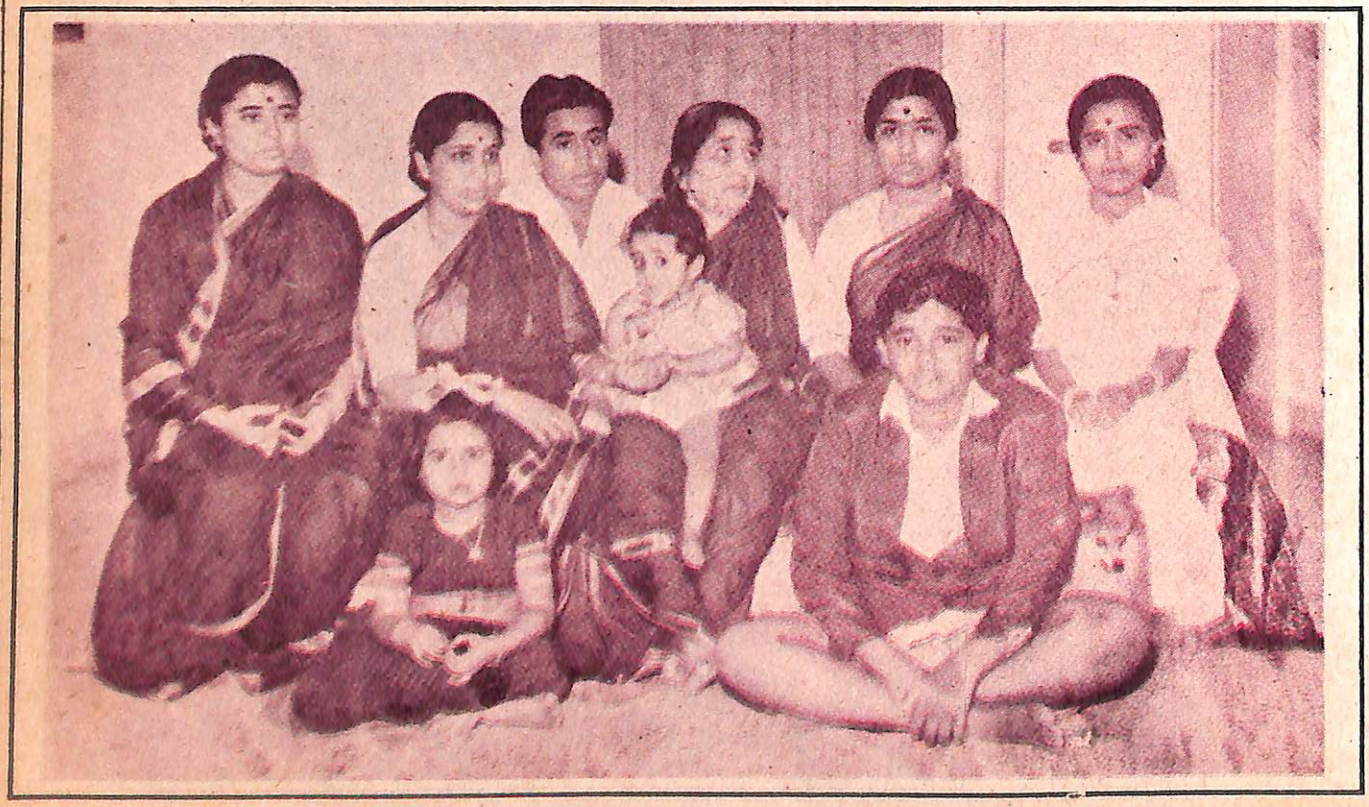

आदर्श सासू बई

सासों की क्रूरता के जमाने में ऐसी सास हो सकती है, आप सोच भी नहीं सकते। मेरी सास कुछ समय पहले ही गईं। उनके प्राण मेरी ही गोद में सिर रखे हुए गए। वे कहा करती थीं, मेरे चौदह बेटों में केवल एक ही बेटा हुआ और वो है ये मेरी आशा। वे कई बार अपने बेटे को कहती थी, तेरे को ऐसी बहू मिली है कि अन्न तेरे आगे-आगे दौड़ेगा और तू पीछे-पीछे। कभी-कभी वे कहा करती थीं ये कैसी ब्राह्मण घर की लड़की आई, सिर पर पल्लू वगैरह नहीं लेती। पर मैंने कभी जवाब नहीं दिया। कभी कुछ बोल भी देती तो बाद में दुःख मनाती। क्योंकि उनको ये आहिस्ता-आहिस्ता अहसास हो गया था कि ये कमाने भी जाती है। पैसा लाती है और घर का सारा कामकाज भी करती है। लेकिन पलटकर एक जवाब इसके मुँह से नहीं निकलता। मुझे उनसे बहुत दुआएँ मिलीं। आपको एक बात बताऊँ कि एक बार मेरे लड़के ने उनको कह दिया, 'तुम्हारे बेटे ने मेरी माँ को बहुत दुःख दिया।' मुझे बहुत दुःख हुआ। गुस्सा भी आ गया। मैंने उसके गाल पर एक तमाचा मार दिया। मेरी कुछ न हो तेरी तो दादी है-तूने ऐसा बोला कैसे। तेरे मुँह से उनके लिए कटाक्ष कैसे निकला? जब मैंने उनके मुँह में आखिरी टाइम में गंगा जल डाला, तो वो बोलीः 'मेरे देवर और सभी आए थे, मेरी आशा को संभाल कर रखना।' मैं कभी-कभी मजाक में कहती सासू बई मैं तो शादी कर रही हूँ तो हँसकर कहती कर ले। कोई बात नहीं मैं तेरे ससुराल चली चलूँगी।

ऐसे मुलाकात हुई पंचम से

काफी पुरानी बात है। एक फिल्म बन रही थी। नाम था 'अरमान'। तभी वहाँ एक जवान लड़का आया। दादा ने कहा, 'आशा ये मेरा लड़का है।' मैंने कहा नमस्तेजी। आप कैसे हैं? तो उस लड़के ने ज्यादा बात नहीं की। सिर्फ घूर के देखा। फिर एक नोट बुक निकाली और कहा 'जरा इस पर अपने आटोग्राफ दीजिए।' मैंने दे दिए। उसके बड़े दिनों बाद दादा के यहाँ हम फिर रिहर्सल करने गए तो दादा ने कहा, 'पंचम, जरा आशा को गाना सिखाओ।' मैंने कहा, 'दादा, मैं इस लड़के से गाना नहीं सीखूँगी। आप ही सिखाइए।' तब मुझे क्या पता था, यह लड़का एक दिन बड़ा म्यूजिक डाइरेक्टर बन जाएगा-आर.डी. बर्मन नाम का। और सच में तब यह भी नहीं पता था कि मुझे न केवल उससे गाना बल्कि जीना भी सीखना पड़ेगा। उसके लिए न केवल गाना बल्कि खाना भी पकाना पड़ेगा। और साथ में घर भी संभालना पड़ेगा।

लगता है। गीत कितने गा चुकी हूँ इस दुःखी जग के लिए... पच्चीस साल पहले गाया था। नहीं भूलती यह गीत। स्टेज पर गाती हूँ तो खुद ही रो देती हूँ। क्योंकि इसमें एक खास बात है। वजन है। दुःख है। मेलोडी है। दर्द से भरी धुन है। दर्द से भरे शब्द हैं।

'आपके कुछ गीतों को सुनकर लगता है, जैसे आप भारतीय स्त्री का दुःख गा रही हैं। आपकी गाढ़ी आवाज में वह दुःख और भी गाढ़ा हो जाता है...। जैसे एक वो गीत है- 'मेरी बेरुखी तुमने देखी है, लेकिन नहीं देखा तुमने...।

हाँ। अच्छा कम्पोजिशन था। शब्द भीअच्छे थे। लेकिन, अब कहाँ से गाएँ। दस्तूर ही बदल गया है। अच्छे-अच्छे गीतकार हैं, लेकिन वे भी वही लिखते हैं, जिसकी फिल्म लाइन में माँग है। फिर फिल्में भी वैसी पुराने समय जैसीकहाँ रहीं। फिल्म में भी सब कुछ अब इतना जल्दी-जल्दी घटता है कि मेलोडी के लिए सिचुएशन कहाँ रह जाती है। सब दूर धूम-धड़ाका है। आप चाहे तो मुझे पुराने खयालात की कह लें। हूँ भी। मैंने संगीत और संगीतकार भी पुराने देखे हैं। गाने वाले भी। किशोर दा बहुत अच्छे थे। किशोर दा नहीं, तो लगता है, जैसे डुएट अधूरा है। ये सब साथी चले गए। अब हम अकेले रह गए हैं। एक-एक करके चले गए। जयदेवजी जिनका कम्पोज किया गाना गाकर वाकई मज़ा आता था। वे भी चले गए। तो यह सारा देख के उदासी भी आ जाती है, कभी-कभी। क्योंकि ये लोग समझते थे कि ये चीज असली है। यह दूर तक जाएगा।

'कहते हैं, पहले आपकी आवाज बिलकुल लताजी जैसी थी। लेकिन बाद में आपने अपनी गायिकी में सब कुछ बदला और एक नई 'पहचान' कायम कर ली। यह क्यों और कैसे किया?

दीदी की तरह गाना गाने के लिए मुझे संघर्ष की जरूरत नहीं पड़ती। आवाज भी एक विरासत होती है। परिवार की तरफ से भी मिल सकती है। भगवान की तरफ से भी। लेकिन क्या था कि जब मैं गाती थी तो लोग आगे आकर तारीफ करते थे। कहते आशाजी आपका गाना बहुत अच्छा लगा। ऐसा लगा कि बस जैसे लता दीदी ही गा रही हों। तो मैं सुनकर उदास हो जाती। मुझे बड़ा दुःख होता।

'दुनिया एक साथ न तो दो पिकासो बर्दाश्त कर सकती है और न ही एक साथ भारतीय फिल्म संसार दो लता मंगेशकर।' हमने बातचीत के बीच अपनी टिप्पणी जड़ी।

आपने बिलकुल ठीक कहा। तो मुझे बहुत संघर्ष करने पड़े, इसके लिए। मैंने सोचा कि जब तक असल चीज दुनिया में है, नकल को कोई अपनाएगा ही नहीं। नकल तो असल का भ्रम देने के लिए जरूरी होती है। तो मेरे लिए वह अपनी 'सेपरेट आइडिएन्टी' (पृथक पहचान) के लिए संघर्ष का दौर था। संयोग था कि कुछ ऐसा हुआ कि मेरी आवाज में थोड़ा फर्क आ गया। मैंने उसको पहचाना और धीरे-धीरे उसे 'डेवलप' किया। यहीं से मेरी आवाज 'आशा भोसले' की आवाज बनी। बाद का रास्ता मैंने कैसे तय

जीवन साथी राहुल देव बर्मन के साथ आशा

किया, यह आप सब जानते हैं।

'परन्तु अब तो जमाना ही नकल का हो गया है।'

'आजकल की तो दुनिया ही अलग है। नकल ही चलती है। वैसे नकल तो मुझे भगवान की भी हो तो पसंद नहीं। मैं तो असल में ही विश्वास रखती हूँ। मैं तो कहती हूँ कि मैं असल हूँ असल रहूँ और असल ही दिखूँ-जैसी हूँ। काली हूँ। मोटी हूँ-जैसी भी हूँ वैसी ही हूँ। और मुझे पसंद भी यही है कि मैं जो हूँ, वही रहूँ- वही दिखूँ।'

आपने जो नकल की बात कही तो याद आया कि कवरवर्शन के नाम पर तो सरासर नकल बनाई और बेची जा रही है... आपकी प्रतिक्रिया?

यह तो पैसा कमाने के लिए किसी भी हद तक चले जाने वाले लोगों का काम है, जो अच्छे म्यूजिक का सत्यानाश कर रहे हैं। मैं तो कहूँगी कि ये तो असल म्यूजिक के दुश्मन हैं। आज ये जो गाने बनाकर दे रहे हैं, आम पब्लिक को तो पता ही नहीं चलता कि वे असल लता मंगेशकर या रफी का है। हालाँकि वो जानते हैं लता-रफी के नाम पर जो सामने है, वो उसे नहीं जानते। तो एक भ्रम पैदा कर दिया गया है। ये जो नई सीरिज निकली है, निकल रही है, कुछ सालों बाद ये होगा कि असल आवाज ही डूब जाएगी। लोग नकल को ही असल मान लेंगे। अब तो सिर्फ एक रेडियो और टी.वी. भर ऐसी जगह है, जो इन असल आवाजों को जिन्दा रखेगी। बाकी आने वाली पीढ़ियों को जनरेशन को बताना मुश्किल रहेगा कि 'असल' आवाज क्या है। वे नकल से असल तक जा भी पाएँगे या नहीं। ये बहुत बुरी चीज हुई है।

'कशिश' के नाम से बाजार में आपका एक कैसेट आया है। उसमें आपने नूरजहाँ की गजलें गाई हैं-यह 'नकल' है, या एक पुराने कलाकार को सुनकर जो चुनौती अनुभव होती है, उसका कोई रूप है?

ये जो मैंने इस कैसेट में गाने गाए हैं, वो किसी फिल्म के नहीं हैं। इन गानों का कोई रिकॉर्ड भी नहीं बना है। ये यहीं पर है-कहीं बाहर भी नहीं गई हैं। बात ये थी कि वास्तव में उसकी तर्ज और लिखी हुई गजलें बहुत अच्छी थीं। म्यूजिक बहुत अच्छा था। मेरी लड़की ने पाँच-छः साल पहले सुना और कहा देखो मम्मी ये सब कितनी अच्छी हैं। मेरी लड़की-वर्षा, इस काम में मेरी बहुत मदद करती है। उसने कहा कि मैं इसकी रिकॉर्डिंग करूँ। ...देखिए तब मेरे मन में विचार आया कि मैं ये करूँ कि न करूँ? मैंने कहा कि मैं गाऊँगी तो लोग 'कम्पेरिजन' में जाए बिना रुकेंगे नहीं। फिर एक नया मसाला मिलेगा लोगों को। अच्छी-बुरी बातें होंगी। तो उसने कहा, चाहे कम्पेरिजन में जाएँ, कोई बात नहीं। तुम्हें सुख मिलेगा कि तुमने बहुत अच्छी तर्ज गाईं। मुझे भी लगा कि इसमें कोई हर्ज नहीं। दीदी भी एक रिकॉर्ड बना रही हैं-मेरी नजर में सहगल साहब या मुकेश को वह एक तरह की ट्रिब्यूट होगी। तो मुझे लगा कि हर्ज ही क्या इसमें कि किसी बड़े आदमी के लिए अगर अच्छा काम किया जाए। यहाँ जो वर्शन बनते हैं न, वे तो बड़े फालतू होते हैं। उन्हें वे लोग पैसे के लिए बेचने के लिए करते हैं। फॉरेन में एक आर्टिस्ट का गाना दूसरा आर्टिस्ट गाता है-और मजे की बात ये कि ये भी चलता है और वो भी चलता है। इसमें एक बड़ा मान मान्यता और दोस्ती होती है। तो मेरी लड़की ने कहा कि तुम यहाँ का छोड़ दो। मुझे मालूम है कि फॉरेन में क्या होता है और तुम ये गाओ। फिर भी मैंने दो-तीन साल लगा दिए। और जब मैंने करना शुरू किया तो ऐसा आनंद आया कि चलो मैं एक बड़ी सिंगर के गाने गा रही हूँ।

'यह तो एक जीनियस का दूसरे जीनियस को क्रिएटिव चैलेंज हो गया-नकल नहीं।'

बिटिया वर्षा के साथ

'वैसे नकल तो मैं कर सकती हूँ। किसी की भी कर सकती हूँ। जैसे दीदी गाएँ उनकी हू-ब-हू नकल कर सकती हूँ- मिमिक्री जैसी। पर मुझे वो सब नहीं करना था, बल्कि सोचा मैं बहुत अच्छा गाऊँ, उनसे हट कर गाऊँ कि नकल न लगे। उनसे बचके गाना था। नई चीजें नई हरकत डालना और ऐसा ही कर-करके मैंने किया-और इसका मुझे कई लोगों से रिस्पान्स भी बड़ा अच्छा मिला। कई लोग जो पुराने ढंग के हैं, उन्हें लगा, यह सब क्यूँ। तो अलग-अलग लोगों का अलग- अलग रिस्पान्स... आप जानते हैं।

'पुराने लोगों को नूरजहाँ की गाई उन गजलों में जो नास्टेल्जिया लगा करता होगा, वह आपके गाने से वे हासिल नहीं कर पाते होंगे...

सही बात है-ऐसा होगा, लेकिन मैंने गाया तो अपने क्रिएटिव सेटिस्फेक्शन के लिए। अपने संतोष की बात थी। इसमें किसी को कमतर या नीचा दिखाना ऐसा कुछ नहीं था। बस कहिए कि एक तर्ज गाई। यह म्यूजिक की तारीफ है कि एक कलाकार उन तर्जों की ओर खिंचा। सिर्फ यह कि हर आर्टिस्ट की अपनी-अपनी अदायगी होती है।

'लेकिन कई बार सामान्य संगीत अच्छे कलाकार के कारण जनप्रिय हो जाता है, जबकि बढ़िया संगीत अचर्चित- सा रह जाता है। इसमें किसकी अक्षमताएँ मानना चाहिए। संगीत की या कलाकार की। उदाहरण के लिए सी. रामचन्द्र को लें, जब तक लताजी ने उनके लिए गाया-वे 'ए' श्रेणी के संगीतकार बने रहे, लेकिन जब लताजी ने उनके लिए गाना बंद कर दिया तो वे कहीं के नहीं रहे। जबकि उनके साथ वे ही साज साजिन्दे थे। वही समझ। वे ही लोग वही शहर... यानी सब कुछ वही था।

ठहरिए मैं इसकी वजह बताती हूँ। इसको थोड़ायों देखिए। दरअसल ऐसा है कि हर क्रिएटिव आर्टिस्ट जो होता है न, उसकी एक उम्र होती है-उम्र यानी उनकी 'उम्र' नहीं, उनकी कला की उम्र होती है।

'स्पान ऑफ क्रिएटिविटी'

'हाँ, उसकी प्रतिभा का 'समय' होता है। किसी-किसी के साथ वह दूर तक, देर तक रहता है। जिन्दगी भर रहता है। जैसे बर्मन दादा। बुढ़ापे तक उनके संगीत का दर्जा नहीं घटा। उनकी पहचान न ही कम हुई। उसका कारण था, वे बहुत अच्छा और छोटे बच्चे की-सी लगन से काम करते थे। संगीत में तो आपको हरदम यह मानकर चलना पड़ता है कि आपने बस शुरू ही किया है-तो ऐसा सोचने से लगन बनी रहती है। वह अपने को रोज-रोज बनाता और बदलता है। सी. रामचंद्र के साथ हुआ ये कि टाइम बदला। वे वहीं बने रहे। और कुछ नहीं।

'अब एक और संदर्भ। हृदयनाथ मंगेशकर बहुत अच्छा संगीत देते हैं। उनके साथ उनकी आशा-लता जैसी दो महान कलाकार बहिनें हैं, फिर भी वे उतनी ख्याति और लोकप्रियता अर्जित नहीं कर पाए-आपका क्या कहना है?'

सुनिए उसके साथ बात बिलकुल अलग है। उसने जो बीस-पच्चीस साल पहले गाने बनाए थे-वे तब चले नहीं, लेकिन अब वे हिट हो रहे हैं। वास्तव में उसका संगीत अहेड था-उसने जो संगीत दिया वह बीस-पच्चीस साल आगे का संगीत था। आपको बताऊँ कि मैंने उसके गीत का कार्यक्रम किया। चीफ मिनिस्टर भी आए। करीब पचास हजार लोगों के बीच तीन घंटे कार्यक्रम चला। जब खत्म हुआ तो लोगों ने कहा यह क्या किया आपने। रोक दिया-अभी तो और होना था। मेरा खयाल है कि लोग 'क्लासिकल' की तरफ फिर मुड़ने लगे हैं। मेरे पिताजी के ड्रामा-साँग और जो

आई, तू जरूर गा

मेरे साथ कई बार ऐसा होता है कि मुझे कई बार बड़े-बड़े काम एकदम से करना पड़े। एक दिन मुझसे कहा गया कि आपको रिकॉर्ड करना है, पाकिस्तान के एक मशहूर आर्टिस्ट के साथ। मैंने कहा कौन है-उन्होंने बताया, 'गुलाम अली।' मैंने सोचा कैसे हो पाएगा। पन्द्रह दिन में और आठ गाने। मेरा मन हुआ ना बोल दूँ लेकिन मेरी लड़की ने कहा-'आई तू जरूर गा। ना मत कर।' जब गाई तो मुझे लगा यह भी एक रिस्क थी। भगवान की कृपा से वो गजलें मैंने अच्छे से कर दीं।

सबसे सुखद क्षण

किसी भी माँ के लिए सुख का सबसे बड़ा क्षण होता है कि उसका बेटा उसके सामने बड़ा होकर वह कर दिखाए जो वह जानती हो। एक दिन बेटे ने बोला, 'माँ तुझे गाना है।' बच्चे माँ के लिए हमेशा ही बच्चे रहते हैं। मुझे हँसी आ गई। इस हँसी में एक सुख भी था। जिसेआपने गोदी में खिलाया हो, वह बड़ा होकर आपके सामने खड़ा हो और आपको डाइरेक्शन दे रहा हो-इससे बड़ा भला और कौनसा सुख होता है। मैं गई और मैंने उसके संगीत निर्देशन में गाया, मुझे जिन्दगी का सबसे सुखद क्षण लगा।

आत्मकथा लिखूँगी

मैं अपनी आटोबायोग्राफी जरूर लिखूँगी। मैंने जिन्दगी में इतना देखा, इतना झेला कि मुझे उस सबके बारे में लिखना चाहिए। लोगों को मालूम हो कि जो आशा हँसती रहती थी, उसके पीछे भी कुछ था। पहले हिन्दी में फिर उसका ट्रांसलेशन अँगरेजी और मराठी में होगा। मैं लिखूँ तो लोगों को पता चले कि मेरे जीवन में क्या हुआ? कौनसी चीज थी, जिसने आशा को आशा बनाया? कैसे- कैसे लोग थे, मेरे समय के। बेशक थोड़ा कटाक्ष होगा, लेकिन सच होगा।

संगीतकार जयदेव और पं. नरेंद्र शर्मा के साथ आशा भोसले

लाइट-क्लासिकल है, लोग बहुत पसंद करते हैं। तो यह धूम- धड़ाका तो कम होगा ही। थोड़ा हमें भी कम करना पड़ेगा। अपने आप भी होगा।

आप लोगों ने तो अब अपने गाने भी कम कर दिए हैं। लिमिटेशंस कर दी हैं- एक या दो रिकॉर्डिंग्स। बस ज्यादा नहीं गाना। पहले मंगेशकर बहिनों पर आरोप भी था, मोनोपोली का-लेकिन, अब तो आपने रास्ता खोल दिया है।'

मोनोपोली जैसा कुछ नहीं था। इसलिए आरोप गलत था। इसका जवाब देना भी जरूरी नहीं था। अब ये कि बयालीस इयर्स मुझे और पैंतालीस साल दीदी को हो गए गाते गाते। तो मन में सवाल आने लगा कि क्या जरूरी है कि गंदे गाने गाए जाएँ। गंदे यानी बोल। ऐसे ऐसे वल्गर बोल आने लगे कि 'मेरी चोली का टाँका खोल दे...' वगैरह वगैरह। तो ऐसे गाने गाना जरूरी नहीं है, अब। हो सकता है, जब बच्चे छोटे थे तो नाक पर हाथ रखकर ऐसे गाने गा लेते थे। क्योंकि बच्चों को बड़ा करना था। वैसा संकट अब कुछ नहीं है। अब मैं जो गाना गाती हूँ, टाइम बिताने के लिए। प्रोग्राम भी करती हूँ-लेकिन पैसे के लिए नहीं। पब्लिक से सीधा डायरेक्ट संबंध जोड़ने के लिए। तो अच्छे गाने गाने की कोशिश करती हूँ। जैसे मैंने नूरजहाँ वाला किया-बहुत अच्छा लगा। पंडित जितेन्द्र अभिषेकी के क्लासिकल गाने, पिताजी के ड्रामा वाले गाने। मेरी इच्छा यह है कि जो चीज अब आए वह ऐसी हो कि नकल न हो। मैं बताती हूँ आपको कि इसकी कोई नकल नहीं कर सकेगा। फिल्म के गानों की नकल तो कोई भी कर लेगा।

'लताजी ने हृदयनाथ मंगेशकर के लिए जो मीरा के गीत गाए-'चाला वाही देस', आप ऐसा कोई रिकॉर्ड क्यों नहीं बनातीं?'

'हिन्दी का ऐसा मेरा नहीं निकला। पर मराठी में मैंने गाया है। क्लासिकल बेस का।

'केवल तानपुरे पर मराठी में कुछ भावगीत गाए हैं आपने!'

हाँ। लेकिन काफी पहले। अब मैं भी मीरा को गा रही हूँ। तैयारी चल रही है। सब दिमाग में है।

संगीत पर आपके परिवार का इतना वर्चस्व रहा है कि वह एक किस्म से मंगेशकर 'घराना' कहा जा सकता है। क्या ऐसा संभव नहीं कि मंगेशकर परिवार मिलकर संगीत का कोई स्कूल शुरू कर दे।

नहीं, फिलहाल तो ऐसा कोई प्लान नहीं है। हम लोग जब तक हैं, तब तक तो काफी सोच-विचार कर सकते हैं। यूँ भी ये बहुत जिम्मेदारी की बात है।

लताजी ने एक जिम्मेवारी या संकल्प लिया है। वे शायद पूना में अस्पताल बनवा रही हैं।

'हाँ, दीदी बनवा रही हैं। काफी बड़ा काम है।'

अस्पताल शब्द ने बीच में आते ही उन्हें सहसा स्मरण करा दिया कि उन्हें अस्पताल जाना है। फिर उन्हें लगने भी लगा हो कि बातचीत, उस धरातल पर आ गई है, जहाँ सवालों के जवाब किसी 'मंथन' की माँग नहीं करते। उन्हें दूसरे कामों में मशगूल रहते हुए भी दिया जा सकता है। बहरहाल वे उठ गईं। हम भी खड़े हो गए।

मरीज के लिए खाने का डिब्बा और थोड़ा बहुत और जरूरी सामान रखकर वे शाइस्तगी से सीढ़ियाँ उतरती हुईं पोर्च में आ गईं। उनके चेहरे पर फिर से चिंता का वही मद्धिम अक्स उभर आया था। बंबई की उस दुपहरी में घर की बड़ी-सी इमारत के बाहर खड़ी उनकी आकृति बहुत अकेली लग रही थी। पोर्च से निकलकर जैसे ही वे बाहर आईं, धूप ने उनकी छाया को उनके साथ कर दिया था। वे छाया के साथ खड़ी थीं। हमने अपनी तरफ से सवाल नहीं, सिर्फ एक बात कही। 'आशाजी आपमें एक खासियत हमने यह देखी कि जिन्दगी के अहम् और महत्वपूर्ण फैसले आपने ऐसे समय में लिए, जबकि औसत आदमी उन परिस्थितियों में किसी भी तरह का फैसला नहीं लेता और राजनीतिज्ञ तो फैसलों को ही गोल-मोल कर देते है।' उन्होंने जवाब नहीं दिया जैसे वे कुछ और ही सोच रही हों। फिर हमने भी अपनी बात को सवाल की शक्ल में अख्तियार कर लेने से

बचा लिया था।

'आप लोग किधर जाएँगे?'

'ताड़देव।'

'आप कुछ दूर तक साथ चल सकते हैं।' उन्होंने प्रस्ताव रखा। हमारे लिए असहमति के लिए कोई हाशिया नहीं था। बहरहाल अब हम उनके साथ फिर से थे। गाड़ी में। गाड़ी के रंगीन शीशों ने बाहर फैली बंबई की दुपहरी को निर्धूप कर दिया था। बंद शीशों के कारण बंबई का शोर बाहर ही रह गया था। सिर्फ गाड़ी में लगे एयरकंडीशनर का एक धीमा शोर भर था, जो कभी-कभी दूर जोरों से होती बारिश का सा लगने लगता। सिलसिला फिर शुरू हो गया। 'हम कहना चाहते थे, जैसे बर्मन साहब के साथ शादी का निर्णय?'

हाँ, यह बहुत महत्वपूर्ण फैसला था। पर इसका कहीं कोई विरोध नहीं हुआ। बाकायदा लड़कों ने, लड़की ने कहा कि माँ तुम्हें भी जिन्दगी में साथ चाहिए। हम लोग बड़े हो गए हैं। सब संभाल सकते हैं। तुम कर लो। फिर बर्मन साहब के और तुम्हारे विचार मिलते हैं। तुम दोनों के बीच एक कामन चीज है, जो तुमको जोड़ती है-वह है, संगीत। तुम गाती हो, वे तुम्हें समझ भी सकते हैं। उसी लाइन में हैं। तुम शादी कर लो। ये नहीं कि बच्चों को दुःख हुआ। या उन्होंने कोई ड्रामा- वीमा किया हो।

'इसका मतलब बहुत ऑब्जेक्टिवली लिया उन्होंने।'

हाँ। फिर उन्हें भी इज्जत चाहिए थी। मुझे भी। इसलिए हमने उस 'पहचान' को विवाह में बदल लिया।

'बर्मन साहब तो प्रयोगधर्मी हैं?'

नूरजहाँ की प्रायवेट गजलों को आशा भोसले ने अपनी आवाज में गाकर श्रद्धा-सुमन अर्पित किए हैं। इन गजलों का कैसेट कशिश जारी करने के अवसर पर बी.के. दुबे, बी.आर.चोपड़ा, आशा भोसले और प्रकाश मेहरा।

खुशियों के जमाने: मीना मंगेशकर

मंगेशकर परिवार एवं परम्परा की मीठी आवाज और संगीत-प्रेम लेकर **मीना मंगेशकर** ने भी सैलोलाइड के संसार से अपना रिश्ता कायम रखा है। एक अरसा पहले दीदी लता के संगीत निर्देशन में बनी मराठी फिल्म 'राम-राम पाह्वण' के लिए पहली बार दो गीत गाए थे 'माएचा पाझर' और 'पाटलांच पोरा।' इसके बाद मराठी फिल्मों के लिए छिटपुट गाती रहीं। शौकिया तौर पर आपने लावणी भी गाई। हिन्दी फिल्मों के लिए पहली बार फिल्म फरमाइश के लिए गाया- आपने छीन लिया दिल मेरा। संगीतकार थे हुस्नलाल-भगतराम और साथी गायक मोहम्मद रफी थे। फिल्म झमेला (सी. रामचंद्र) तथा पंजाबी फिल्म 'कोडेशा' (शार्दूल क्वात्रा) के लिए भी उन्होंने पार्श्व गायन किया। मगर गंभीरता से कहीं नहीं लिया। १९६२-६३ में मराठी फिल्म 'माणसाला पंख असतात' के साथ मीनाजी ने पार्श्व गायन को एक प्रकार से तिलांजलि दे दी और सात फेरे लेकर मंगेशकर से मीना खड़ीकर बन गई। उनके दोनों बच्चे योगेश तथा रचना ने जब गायन में दिलचस्पी दिखाई तो प्रायवेट सांग के कई रिकॉर्ड बाजार में आए हैं। उनके कुछ लोकप्रिय गीत हैं- मसावा सुन्दर चाकलेट चा बंगला, भोलानाथ आदि।

कम से कम वादकों के साथ गीत गाने की मीनाजी कायल हैं। आठ-दस वादक उनके लिए भीड़ हैं। एक कैबरे गीत क्या हसीं शाम में उन्होंने इक्कीस वादकों का पहली तथा आखरी बार उपयोग किया था। पहली शादी (१९५३) पिलपिली साहेब (१९५४) आबरू (१९५६) अंजली, मदर इंडिया तथा गेट वे ऑव इंडिया, (१९५७) उनकी प्रमुख हिन्दी फिल्में हैं।

ओ अलबेले पंछी तेरा दूर ठिकाना है: उषा मंगेशकर

अपलम-चपलम चपलाई रे (सी. रामचंद्र), दगाबाज हो बांके पिया (सचिन दा), ओ अलबेले पंछी तेरा दूर ठिकाना (सचिन दा), खड़े-खड़े आँख का टकराना (चित्रगुप्त), दुनिया में हम आए हैं, तो जीना ही पड़ेगा (नौशाद), काहे तरसाए जियरा (रोशन), हमार कहा मानो हो राजाजी (मदन मोहन) और कई गीतों की जुड़वाँ आवाजों में लता तथा आशा की आवाज की मिठास से मिलती-जुलती एक आवाज पिछले चौंतीस सालों से गूँज रही है। उस आवाज का नाम है- उषा मंगेशकर।

जय संतोषी माता फिल्म की लोकप्रियता ने उषा मंगेशकर को नई ऊँचाइयाँ प्रदान की थी। फिल्म का हिट होना भी एक चमत्कार था और उषा मंगेशकर की आवाज के लिए भी वह एक चमत्कार साबित हुआ। उषा की आवाज से श्रोता फिल्म सुबह का तारा से परिचित हुए थे। एक बालिका को उन्होंने अपनी आवाज उधार देकर भाभी आई sss गाया था। इसके बाद शंकर-जयकिशन की धुनों पर उन्होंने फिल्म मैं नशे में हूँ के लिए यह गजल गाई थी- यह न थी हमारी किस्मत। इस गजल की बड़ी चर्चा हुई। शांताराम की फिल्म पिंजरा में संगीतकार राम कदम ने अलग ढंग से लावणी उनसे गवाई तो श्रोता उन्हें लावणी-विशेषज्ञ समझने लगे।

उषा मंगेशकर ने अपनी माँ से विरासत में तूलिका और पिता से तानपुरा पाया था। चित्रकार एम.आर. अचरेकर से उन्होंने बाकायदा चित्रकला का प्रशिक्षण लिया और रंगों से केनवास पर अपनी कल्पनाओं को आकार दिया। शास्त्रीय संगीत की शिक्षा उन्होंने बड़े गुलाम अली खाँ साहब तथा पंडित तुलसीदासजी शर्मा से प्राप्त की। मराठी फिल्म आई मी कुठे जाऊ का संगीत निर्देशन भी उन्होंने किया है। पवना काठचा धोंडी (१९७१) नामक मराठी फिल्म का निर्माण किया है। संगीतकार जयदेव के संगीत निर्देशन में सँवरी नेपाली फिल्म माइती घर के लिए वह नेपाली गीत भी गा चुकी हैं। अपनी वट-वृक्ष जैसी दीदियों की शीतल छाया तले उषा ने उषा की लालिमा फैलाकर अपने जीवन को सुनहरा किया है।

हाँ वे बहुत अच्छा संगीत देते हैं और मुश्किल भी।

'प्रेस वालों का रवैया कैसा रहा इस सब पर। या कहें हमेशा से आपके लिए?'

प्रेस ने पहले मुझे थोड़ी चोट पहुँचाई। लेकिन वह असल प्रेस नहीं थी। क्योंकि वह जो कुछ नहीं है, उसको जाने क्या-क्या बनाके छापती है। गासिप। मर्यादा का ध्यान नहीं। और जिस पर लिखा जाना चाहिए, उस पर चुप लगा लेती। वह मेरा बुरा वक्त था। आशाताई- ताई माने बड़ी बहन। मराठी में ऐसा ही कहके बुलाते हैं-तो कहा कि हम आप पर और भी कुछ लिख सकते हैं, लेकिन हम लिखकर आपको परेशानियों में नहीं डालेंगे। तब फिर प्रेस वाले मेरे भाई-बहन जैसे हो गए। पहले वो सब छपा देखकर बुरा लगता था। दुःख होता था। चिढ़ आती थी। पर अब लगता है, उनका तो ये धंधा था। उनको माफ कर दो। कई बार ऐसा भी होता है। संगीत की समझ नहीं और संगीत पर लिखते हैं। कई बार कण्ट्रोवर्सी खड़ी करने के लिए। विवाद बढ़ाने के लिए। मैं आपको बताती हूँ, एक समय था, जब लोग सोचते थे कि यदि दीदी के साथ अच्छा रखना है तो आशा की बुराई करो-ऐसा वे सोचते हैं। जबकि ये कोई जरूरी थोड़े ही है कि शिव की पूजा करें वह विष्णु को गाली दे और जो विष्णु की पूजा करे वह शिव को गाली दे। बिला वजह की बातें हैं। दीदी भी सोचती है कि ये लोग ऐसा क्यों कर रहे हैं और हँसती है और मुझे भी हँसी आती है। अब हमें इससे फर्क नहीं पड़ता। हम तो सगी बहनें हैं। लाठी मारने से पानी दो तो नहीं हो जाता। हमें फर्क नहीं पड़ता- फर्क उन्हें ही पड़ता है। कई बार ऐसे लोग दोनों की मौजूदगी में सामने पड़ जाते हैं तो मुँह छुपाते हैं। अरे जिसको लेना हो लो। एक-दूसरे के पीछे एक-दूसरे की बुराई क्यों करते हो।

'हमें लगता है कि मदन मोहन की एकाध गजल आपने गाई होती तो.....

कार रुक गई। क्रासिंग था। सामने लाल बत्तियाँ थीं। कारों का एक काफिला हमारे पीछे था, जैसे आशाजी का कोई पेरा फर्नेलिया हो। धैर्य से लोग बत्ती का रंग हरा हो जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

देखिए फिल्म लाइन ने मुझे शोहरत दी। लोग मेरे पीछे भी भागे। नाम खूब हुआ। लेकिन जिन्दगी के बड़े कठोर अन्याय भी इसी फिल्म की दुनिया में मेरे साथ हुए। अन्याय ऐसे हुए कि मुझे कभी किसी ने अपनी बेहतर या सर्वश्रेष्ठ कंपोजिंग गाने को नहीं दी। जो गाने दिए वे संयोग से चल गए। मेरे नसीब से। मेरे बच्चों के नसीब से। जो अच्छी कम्पोजिंग गाने को मिली, वह बस ऐसे ही मिल गई। बात हुई, कोई बड़ा आर्टिस्ट उस समय नहीं मिला तो बोला कि चलो ये आशा से गवा लेते हैं। ऐसा नहीं हुआ कि यह आशा के लिए ही है। आशा को बुलाओ। बाद में ऐसा हुआ जब नय्यर साहब थे। उन्होंने बेशक मुझसे बड़े अच्छे गाने गवाए। और बर्मन साहब ने गवाए वे एकदम नई और अलग स्टाइल से। कठिन और अच्छे।'

'बर्मन साहब ने काश एकाध गीत 'आँधी' को गवाया होता।'

कोई रंज नहीं। मुझे जो मिला मैंने उसे अच्छे से गाया। पब्लिक ने उसे सुनकर मुझे प्यार दिया। ठीक है, फिल्म लाइन में आकर जो मिलना चाहिए था, वह नहीं मिला, लेकिन मुझे जो मान मिलना था-मेरा अवार्ड या सम्मान जो कुछ भी कहिए यह मेरी पब्लिक ही है। मेरा तो भगवान भी वही है।

'कई दफा ऐसा भी होता है कि जिस पर आप विश्वास करते हैं, वही आपके साथ विश्वासघात कर बैठता है। आपकी जिन्दगी में ऐसे लोगों की एक लम्बी फेहरिस्त है-आप...'

जिसे सजा देनी हो, उसे भगवान दे रहा है। मैंने अपनी आँखों से ऐसे लोगों को उनके किए का फल भुगतते देखा है। इसलिए जिसने मेरे साथ धोखा किया, बुरा किया उसे भी मैं सजा देना नहीं चाहती। हाँ अच्छा कर सकूँ तो करती हूँ। कर भी रही हूँ। भगवान सबसे बड़ी चीज है। किसी को नाम की हवस थी-उसने उल्टा सीधा किया-उससे उसका नाम ही छिन गया। पैसे की हवस थी-उल्टा सीधा किया, पैसा ही छिन गया। मेरी इच्छा गाने की है तो मैं ईमानदारी से अपना गाऊँ।

'गाने का सबसे बड़ा इनाम गाना और अच्छा गाते चले जाना है।' 'अपने पर एक कलाकार को यही लागू कर लेना चाहिए।' 'बताइए कि आप गाती कैसे हैं, इतनी सारी विभिन्नताओं को सुरक्षित रखते हुए?'

'गाते समय गाने वाले को सोचना चाहिए कि मैं किसके लिए गा रही हूँ। आर्टिस्ट कौन है? किरदार कैसा है? वह कैसे कपड़े पहने हुए है? वह किस क्लास से है? उसके बाल कटे हैं तो कितने कटे हैं? ये सबको ध्यान में

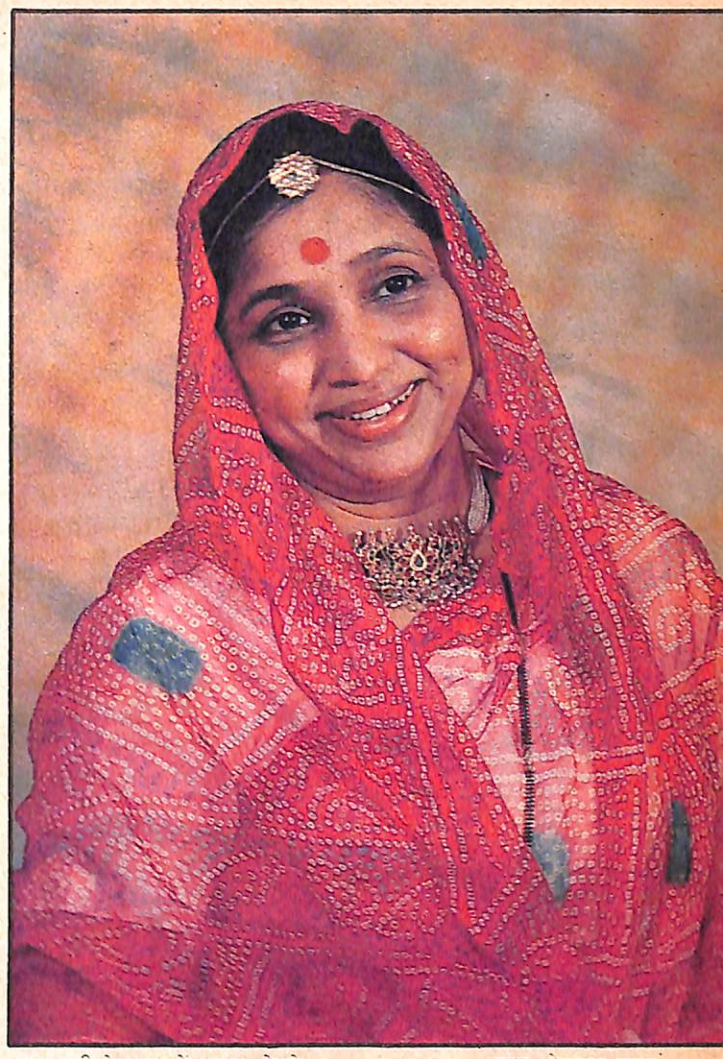

राजस्थानी वेशभूषा में आशा भोसले *छाया: देवदास कुसुम*

रखकर भीतर मन में मैं एक्टिंग करती हूँ। उसके हाव-भाव, लिबास सब-कुछ मन में उतार लेती हूँ- साथ ही यह भी वह कहाँ गा रही है। घर में। घर के बाहर। खुले में। अकेले या कि किसी के साथ।

'आप तो फिल्म भी बना सकती हैं, क्योंकि कितनी-कितनी बारीकियों पर ध्यान देती हैं, आप!'

नहीं, फिल्म बनाने का कोई विचार नहीं। हाँ टी.वी. के लिए एक सीरियल जरूर बना रही हूँ। पचास साल का जो फिल्म म्यूजिक है न, उसको लेकर। इसमें मेहनत तो है ही-रिस्क भी है।

'परिवार और गायन-दोनों नावों की एक साथ सवारी। यह रिस्क आपने कैसे निभाई?' बात हलके से हास्य से उठकर यक-ब-यक गंभीरता की ओर मुड़ गई। इस बीच हम गाड़ी में जाने कितने-कितने मोड़ों से गुजर चुके थे। उसी बंबई में, जहाँ आशाजी काम पाने के लिए स्टूडियो-दर-स्टूडियो पैदल भटकती रही थीं। लेकिन, वह सब यात्रा और पाँवों के छाले पगथलियों से हटकर उनकी स्मृतियों में चले गए थे। जहाँ चलते हुए वे सतर्क और थोड़ी उदास लगने लगती हैं।

जीवन चलाने के लिए पैसा चाहिए। पैसा सब कुछ चाहे न हो, लेकिन बहुत कुछ होता है। मुझे पता था, मेरे बच्चों का पेट मेरा गाना सुनकर नहीं भरेगा। उन्हें रोटी चाहिए। इसलिए गाना मेरा जीवन होते हुए भी मैंने उसे पेट के लिए की जा रही मेहनत की तरह लिया। क्योंकि मेरे लिए मुझसे बढ़कर मेरे बच्चे थे। वे भूखे रहें और मैं गाना गाने बैठ जाऊँ, यह अशक्य है। इसलिए मैंने एक दिन में छः-छः तक रिकार्डिंग्स कीं। क्योंकि सबसे बड़ी पूँजी मेरे वास्ते मेरे बच्चे ही थे। और अब भी हैं। मैं सात बजे बच्चों को स्कूल भेजती। दुपहर में उनको खाना देती। फिर रिकॉर्डिंग करती। इस समय मेरे

दीदी का सम्मोहन

दीदी की आवाज की क्या तारीफ की जाए। उसकी आवाज तो खुद ही तारीफ बटोर लेती है। दीदी की सुरीली आवाज सुनकर मेरा दिल एक क्षण के लिए थम सा जाता है। दीदी स्टूडियो में गाने के लिए आती है तो वहाँ भी यही हाल रहता है। कुछ मिनट के लिए एकदम सन्नाटे जैसा छा जाता है। सब खड़े हो जाते हैं, सम्मान में। मुझे याद है दीदी के साथ मैं 'उत्सव' का गाना कर रही थी। डुएट था। स्टूडियो में सब तैयार हो गया। सिग्नल मिला और दीदी ने आलाप लेना शुरू किया तो मैं तो अपना गाना ही भूल गई। दीदी की आवाज में ऐसा ही सम्मोहन है।

नारी स्वतंत्रता के सोपान

मैं महिलाओं की स्वतंत्रता की पक्षधर हूँ। लेकिन थोड़े दूसरे सैंस में। क्योंकि हमारे यहाँ स्वतंत्रता का दुरुपयोग होता है। हम स्वतंत्रता में अधिकार की तो बात करते हैं। बढ़-चढ़कर। लेकिन, कर्तव्य की बात भुला देते हैं। कर्तव्य को दूर रख देते हैं। यह अच्छा नहीं स्वतंत्रता की सीमा यह कि बोलने का हक हो, काम करने की आजादी हो-बस ये कि औरत अपना औरतपन न खो दे। क्योंकि, वह तो भगवान की सबसे कोमल रचना है। कोमल भी और कठिन भी। इस बात को औरत को समझ लेना चाहिए, तो सब समस्या हल हो जाती है कि मर्द का स्वाभिमान थोड़ा-सा एक कड़ी ऊपर रहने दें। दोनों खुश रहेंगे, दोनों सुखी। क्योंकि दुनिया के सारे झगड़े मैं बड़ा हूँ, तू छोटा है के ही तो हैं। औरत का एक घरेलूपन भी बचा रख लेने का है। घर में चाहे कोई भी और काम करे। नौकरानी किचन में पकाए। लेकिन, एक चीज तो हर औरत को पकाकर अपने पति और बच्चों को खिलाना चाहिए। 'माँ' का अहसास वह नौकरों में खोजने लगा तो 'ममता' कैसे रहेगी। औरत में से औरतपन निकल जाएगा तो 'घरपना' भी उससे निकल जाएगा। फिर योरप और यहाँ के बीच कोई फर्क नहीं रहेगा-'ऐ मधु इधर आ', 'वो सुन' ये कर। ऐसा पति को बोलकर आवाज देंगे तो मर्यादा नहीं रहेगी। फीलिंग खत्म हो जाएगी।

एक इच्छा अधूरी

मेरी एक इच्छा अभी अधूरी है। वह यह कि मैं जो गा रही हूँ, उससे भी अच्छा गाऊँ। क्लासिकल गाना चाहती हूँ, लाइट बहुत हो गया। साथ में मैं ज्यादा से ज्यादा जुबानों में गाऊँ। अपने देश की और बाहर की जुबानों। दुनिया की हर खूबसूरत भाषा में। इसलिए लगता है, आधा जीवन निकल गया और निकलता जा रहा है। मैं बुड्ढी हो जाऊँगी। वैसे मैंने रशियन में गाया है। अँगरेजी में गाया है। हमारी वेस्टइंडिया कम्पनी है लंदन में। मैं अभी भी प्रोग्राम करने जाने वाली थी- लेकिन अब बाद में जाऊँगी। वहाँ एशियन माइग्रेण्ट्स बहुत प्यार करते हैं। उनका रिस्पान्स देखकर लगता है, जैसे सारी दुनिया अपनी है।

जीवन में जो उलझनें थीं, उसमें लोगों ने ज्यादा रुचि ली। प्रकाश में लाने की कोशिश की। आज भी मैं अपने बच्चों को अपनी आँखों से दूर नहीं होने देती। मैं उनके बिना नहीं रह पाती। मुझे हमेशा लगता रहता कि मैं यदि नहीं हूँ तो उन्हें कहीं कुछ हो न जाए। बाहर रहकर भी बच्चों की फिक्र दिमाग में हमेशा बनी रहती है। आज अभी तक लगता है कि वे तो छोटे-छोटे हैं। उनसे ज्यादा प्यार मैंने किसी को नहीं किया-माफ करिएगा संगीत को भी नहीं। बच्चे और घर-यही मेरी दुनिया है, मेरा संसार।'

वे चुप हो गई थीं। चुप होकर चली गई थीं। बच्चों के पास। अपने सपने और अपने संसार में। उनके चेहरे को मार्क करके लगा, जैसे पैडर रोड से चालीस मील दूर कार में हमारे सामने बैठी हुई वह हिन्दुस्तान की एक बड़ी गायिका नहीं, सिर्फ एक भरपूर भारतीय स्त्री है, जो शताब्दियों से अपने बच्चों और घर- संसार के लिए भागती-दौड़ती रही है।

आशाजी ने चालीस साल पहले भी गायन नहीं 'घर' का ही सपना देखा था। लेकिन एक शिकस्ता घर में उसे पूरा न होते देख उन्होंने सपने को ही घर बना लिया। और यहाँ तक आते-आते आखिरकार उन्होंने अपने उस 'घर' को ही 'संसार' में बदल लिया। इसीलिए, प्राथमिकताओं की सूची में उनके लिए 'घर' पहले नम्बर और 'गायन' ठहरता है-दूसरे पर।

बहरहाल बातचीत की समाप्ति पर हमें लग रहा था कि हम आशाजी से बात नहीं कर रहे थे, बल्कि उनसे सुन रहे थे- चालीस साल लम्बा एक शोकगीत, जो अभी लिखा ही नहीं गया। यदि उनकी 'आत्मकथा' आई तो निश्चय ही वह एक गद्य गीत होगा।.....।

■

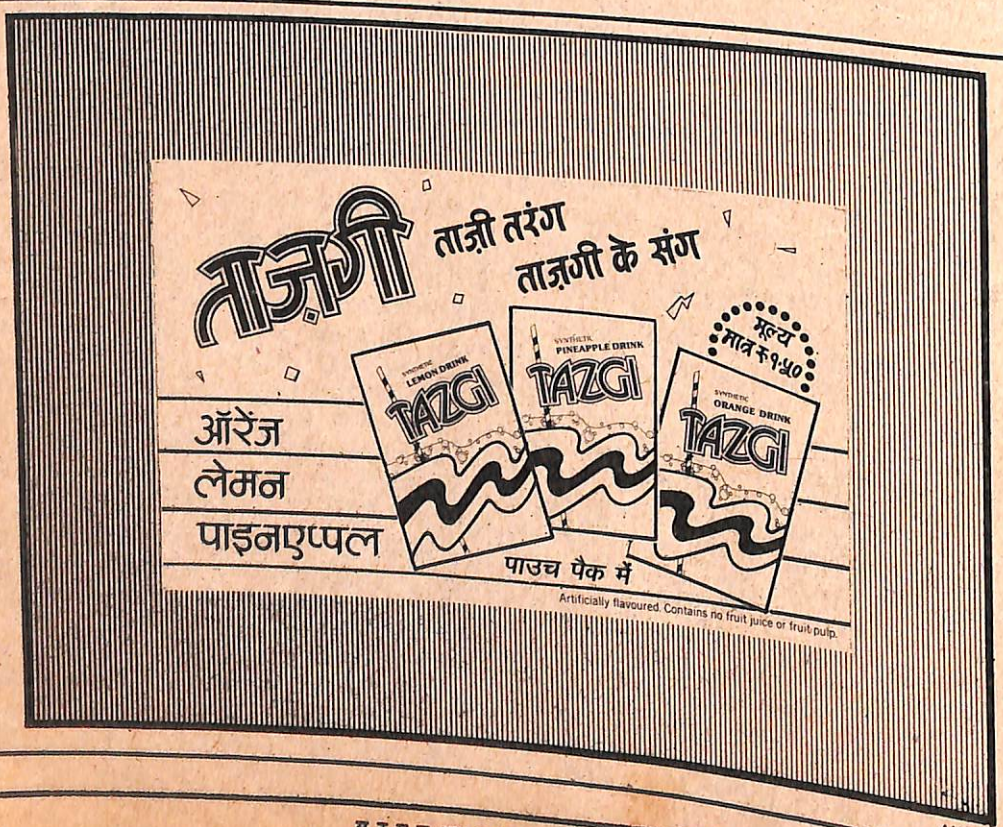

Ad-Libitum

भारतीय गायिकाओं में बेजोड़ : लता मंगेशकर

कुमार गंधर्व

बरसों पहले की बात है। मैं बीमार था। उस बीमारी में एक दिन मैंने सहज ही रेडियो लगाया और अचानक एक अद्वितीय स्वर मेरे कानों में पड़ा। स्वर सुनते ही मैंने अनुभव किया कि यह स्वर कुछ विशेष है, रोज का नहीं। यह स्वर सीधे मेरे कलेजे से जा भिड़ा। मैं तो हैरान हो गया। मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि यह स्वर किसका है। मैं तन्मयता से सुनता ही रहा। गाना समाप्त होते ही गायिका का नाम घोषित किया गया–**लता मंगेशकर।** नाम सुनते ही मैं चकित हो गया। मन-ही-मन एक संगति पाने का भी अनुभव हुआ। सुप्रसिद्ध गायक दीनानाथ मंगेशकर की अजब गायकी एक दूसरा स्वरूप लिए उन्हीं की बेटी की कोमल आवाज में सुनने का अनुभव हुआ।

मुझे लगता है 'बरसात' के भी पहले के किसी चित्रपट का वह कोई गाना था। तब से लता निरंतर गाती चली आ रही है और मैं भी उसका गाना सुनता आ रहा हूँ। लता के पहले प्रसिद्ध गायिका नूरजहाँ का चित्रपट संगीत में अपना जमाना था। परंतु उसी क्षेत्र में बाद में आई हुई लता उससे कहीं आगे निकल गई। कला के क्षेत्र में ऐसे चमत्कार कभी-कभी दीख पड़ते हैं। जैसे प्रसिद्ध सितारिये विलायत खाँ अपने सितारवादक पिता की तुलना में बहुत ही आगे चले गए।

मेरा स्पष्ट मत है कि भारतीय गायिकाओं में लता के जोड़ की गायिका हुई ही नहीं। लता के कारण चित्रपट संगीत को विलक्षण लोकप्रियता प्राप्त हुई है, यही नहीं, लोगों का शास्त्रीय संगीत की ओर देखने का दृष्टिकोण भी एकदम बदला है। छोटी बात कहूँगा। पहले भी घर-घर छोटे बच्चे गाया करते थे। पर उस गाने में और आजकल घरों में सुनाई देने वाले बच्चों के गाने में बड़ा अंतर हो गया है। आजकल के नन्हे-मुन्ने भी स्वर में गुनगुनाते हैं। क्या लता इस जादू का कारण नहीं है? कोकिला का निरंतर स्वर कानों में पड़ने लगे तो कोई भी सुनने वाला उसका अनुकरण करने का प्रयत्न करेगा। यह स्वाभाविक ही है। चित्रपट संगीत के कारण सुंदर स्वर मालिकाएँ लोगों के कानों पर पड़ रही हैं। संगीत के विविध प्रकारों से उनका परिचय हो रहा है। उनको स्वर-ज्ञान बढ़ रहा है। सुरीलापन क्या है, इसकी समझ भी उन्हें होती जा रही है। तरह-तरह की लय के भी प्रकार उन्हें सुनाई पड़ने लगे हैं और आकारयुक्त लय के साथ उनकी जान-पहचान होती जा रही है। साधारण प्रकार के लोगों को भी उसकी सूक्ष्मता समझ में आने लगी है। इन सबका श्रेय लता को ही है। इस प्रकार उसने नई पीढ़ी के संगीत को संस्कारित किया है और सामान्य मनुष्य में संगीत विषयक अभिरुचि पैदा करने में बड़ा हाथ बँटाया है। संगीत की लोकप्रियता, उसका प्रसार और अभिरुचि के विकास का श्रेय लता को ही देना पड़ेगा।

सामान्य श्रोता को अगर आज लता की ध्वनिमुद्रिका और शास्त्रीय गायकी की ध्वनिमुद्रिका सुनाई जाए तो वह लता की ध्वनिमुद्रिका ही पसंद करेगा। गाना कौन से राग में गाया गया और ताल कौन-सा था यह शास्त्रीय ब्यौरा इस आदमी को सहसा मालूम नहीं रहता। उसे इससे कोई मतलब नहीं कि राग मालकोस था और ताल त्रिताल। उसे तो चाहिए वह मिठास, जो उसे मस्त कर दे, जिसका वह अनुभव कर सके। और यह स्वाभाविक ही है। क्योंकि जिस प्रकार मनुष्यता हो तो वह मनुष्य है, वैसे ही 'गानपन' हो तो वह संगीत है। और लता का कोई भी गाना लीजिए, तो उसमें शत-प्रतिशत यह 'गानपन' मौजूद मिलेगा।

लता की लोकप्रियता का मुख्य मर्म यह 'गानपन' ही है। लता के गाने की एक और विशेषता है, उसके स्वरों की निर्मलता। उसके पहले की पार्श्व गायिका नूरजहाँ भी एक अच्छी गायिका थी, इसमें संदेह नहीं, तथापि उसके गाने में एक मादक उत्तान दीखता था। लता के स्वरों में कोमलता और मुग्धता है। ऐसा दीखता है कि लता का जीवन की ओर देखने का जो दृष्टिकोण है वही उसके गायन की निर्मलता में झलक रहा है। हाँ, संगीत दिग्दर्शकों ने उसके स्वर की इस निर्मलता का जितना उपयोग कर लेना चाहिए था, उतना नहीं किया। मैं स्वयं संगीत दिग्दर्शक होता तो लता को बहुत जटिल काम देता, ऐसा

कहे बिना रहा नहीं जाता।

लता के गाने की एक और विशेषता है, उसका नादमय उच्चार। उसके गीत के किन्हीं दो शब्दों का अंतर स्वरों की आस द्वारा बड़ी सुंदर रीति से भरा रहता है और ऐसा प्रतीत होता है कि वे दोनों शब्द विलीन होते-होते एक-दूसरे में मिल जाते हैं। यह बात पैदा करना बड़ा कठिन है, परंतु लता के साथ यह बात अत्यंत सहज और स्वाभाविक हो बैठी है।

ऐसा माना जाता है कि लता के गाने में करुण रस विशेष प्रभावशाली रीति से व्यक्त होता है, पर मुझे खुद यह बात नहीं पटती। मेरा अपना मत है कि लता ने करुण रस के साथ उतना न्याय नहीं किया है। बजाए इसके, मुग्ध शृंगार की अभिव्यक्ति करने वाले मध्य या द्रुतलय के गाने लता ने बड़ी उत्कटता से गाए हैं। मेरी दृष्टि से उसके गायन में एक और कमी है तथापि यह कहना कठिन होगा कि इसमें लता का दोष कितना है और संगीत दिग्दर्शकों का दोष कितना। लता का गाना सामान्यतः ऊँची पट्टी में रहता है। गाने में संगीत दिग्दर्शक उसे अधिकाधिक ऊँची पट्टी में गवाते हैं और उसे अकारण ही चिलवाते हैं।

एक प्रश्न उपस्थित किया जाता है कि शास्त्रीय संगीत में लता का स्थान कौन-सा है। मेरे मत से यह प्रश्न खुद ही प्रयोजनहीन है। उसका कारण यह है कि शास्त्रीय संगीत और चित्रपट संगीत में तुलना हो ही नहीं सकती। जहाँ गंभीरता शास्त्रीय संगीत का स्थायीभाव है, जलद लय, चपलता चित्रपट संगीत का मुख्य गुणधर्म है। चित्रपट संगीत का ताल प्राथमिक अवस्था का ताल होता है, जबकि शास्त्रीय संगीत में ताल अपने परिष्कृत रूप में पाया जाता है। चित्रपट संगीत में आधे तालों का उपयोग किया जाता है। उसकी लयकारी बिलकुल अलग होती है, आसान होती है। यहाँ गीत और आघात को ज्यादा महत्व दिया जाता है। सुलभता और लोच को अग्र स्थान दिया जाता है तथापि चित्रपट संगीत गाने वाले को शास्त्रीय संगीत की उत्तम जानकारी होना आवश्यक है और वह लता के पास निःसंशय है।

तीन-साढ़े तीन मिनट के गाए हुए चित्रपट के किसी गाने का और एकाध खानदानी शास्त्रीय गायक की तीन-साढ़े तीन घंटे की महफिल इन दोनों का कलात्मक और आनंदात्मक मूल्य एक ही है, ऐसा मैं मानता हूँ। किसी उत्तम लेखक का कोई विस्तृत लेख जीवन के रहस्य का विशद् रूप में वर्णन करता है तो वही रहस्य छोटे से सुभाषित का या नन्ही-सी कहावत में सुंदरता और परिपूर्णता से प्रकट हुआ भी दृष्टिगोचर होता है। उसी प्रकार तीन घंटों की रंगदार महफिल का सारा रस लता की तीन मिनट की ध्वनिमुद्रिका में आस्वादित किया जा सकता है। उसका एक-एक गाना एक संपूर्ण कलाकृति होती है। स्वर, लय, शब्दार्थ का वहाँ त्रिवेणी संगम होता है। और महफिल की बेहोशी उसमें समाई रहती है। वैसे देखा जाए तो शास्त्रीय संगीत क्या और चित्रपट संगीत क्या, अंत में रसिक को आनंद देने का सामर्थ्य किस गाने में कितना है, इस पर उसका महत्व ठहराना उचित है। मैं तो कहूँगा कि शास्त्रीय संगीत भी रंजक न हो, तो बिलकुल ही नीरस ठहरेगा। अनाकर्षक प्रतीत होगा और उसमें कुछ कमी-सी प्रतीत होगी। गाने में जो गानपन प्राप्त होता है, वह केवल शास्त्रीय बैठक के पक्केपन की वजह से ताल सुर के निर्दोष ज्ञान के कारण नहीं। गाने की सारी मिठास, सारी ताकत उसकी रंजकता पर मुख्यतः अवलंबित रहती है। और रंजकता का मर्म रसिक वर्ग के समक्ष कैसे प्रस्तुत किया जाए, किस रीति से उसकी बैठक बिठाई जाए और श्रोताओं से कैसे सुसंवाद साधा जाए, इसमें समाविष्ट है। किसी मनुष्य का अस्थिपंजर और एक प्रतिभाशाली कलाकार द्वारा उसी मनुष्य का तैलचित्र, इन दोनों में जो अंतर होगा वही गायन के शास्त्रीय ज्ञान और उसकी स्वरों द्वारा की गई सुसंगत अभिव्यक्ति में होगा।

संगीत के क्षेत्र में लता का स्थान अव्वल दर्जे के खानदानी गायक के समान ही मानना पड़ेगा। क्या लता तीन घंटों की महफिल जमा सकती है, ऐसा संशय व्यक्त करने वालों से मुझे भी एक प्रश्न पूछना है, क्या कोई पहली श्रेणी का गायक तीन मिनट की अवधि में चित्रपट का कोई गाना उसकी इतनी कुशलता और रसोत्कटता से गा सकेगा? नहीं, यही उस प्रश्न का उत्तर उन्हें देना पड़ेगा। खानदानी गवैयों का ऐसा भी दावा है कि चित्रपट संगीत के कारण लोगों की अभिरुचि बिगड़ गई है। चित्रपट संगीत ने लोगों के 'कान बिगाड़ दिए', ऐसा आरोप लगाया जाता है। पर मैं समझता हूँ कि चित्रपट संगीत ने लोगों के कान खराब नहीं किए हैं, उलटे सुधार दिए हैं। ये विचार पहले ही व्यक्त किए हैं और उनकी पुनरुक्ति नहीं करूँगा।

सच बात तो यह है कि हमारे शास्त्रीय गायक बड़ी आत्मसंतुष्ट वृत्ति के हैं। संगीत के क्षेत्र में उन्होंने अपनी हुकुमशाही स्थापित कर रखी है। शास्त्र-शुद्धता के कर्मकांड को उन्होंने आवश्यकता से अधिक महत्व दे रखा है। मगर चित्रपट संगीत द्वारा लोगों की अभिजात्य संगीत से जान-पहचान होने लगी है। उनकी चिकित्सक और चौकस वृत्ति अब बढ़ती जा रही है। केवल शास्त्र-शुद्ध और नीरस गाना उन्हें नहीं चाहिए, उन्हें तो सुरीला और भावपूर्ण गाना चाहिए। और यह क्रांति चित्रपट संगीत ही लाया है। चित्रपट संगीत समाज

की संगीत विषयक अभिरुचि में प्रभावशाली मोड़ लाया है।

चित्रपट संगीत की लचकदारी उसका एक और सामर्थ्य है, ऐसा मुझे लगता है। उस संगीत की मान्यताएँ, मर्यादा, झंझटें सब कुछ निराली हैं। चित्रपट संगीत का तंत्र ही अलग है। यहाँ नवनिर्मिति की बहुत गुंजाइश है। जैसा शास्त्रीय रागदारी का चित्रपट संगीत दिग्दर्शकों ने उपयोग किया, उसी प्रकार राजस्थानी, पंजाबी, बंगाली प्रदेश के लोकगीतों के भंडार को भी उन्होंने खूब लूटा है,यह हमारे ध्यान में रहना चाहिए। धूप का

कौतुक करने वाले पंजाबी लोकगीत, रूक्ष और निर्जल राजस्थान में पर्जन्य की याद दिलाने वाले गीत, पहाड़ों की घाटियों, खोरों में प्रतिध्वनित होने वाले पहाड़ी गीत, ऋतुचक्र समझाने वाले और खेती के विविध कामों का हिसाब लेने वाले कृषिगीत और ब्रजभूमि में समाविष्ट सहज मधुर गीतों का अतिशय मार्मिक व रसानुकूल उपयोग चित्रपट क्षेत्र के प्रभावी संगीत दिग्दर्शकों ने किया है और आगे भी करते रहेंगे। थोड़े में कहूँ तो संगीत का क्षेत्र ही विस्तीर्ण है। वहाँ अब तक अलक्षित, असंशोधित और अदृष्टिपूर्व ऐसा खूब बड़ा प्रांत है तथापि · जोश से इसकी खोज और उपयोग चित्रपट के लोग करते चले आ रहे हैं। फलस्वरूप चित्रपट संगीत दिनोंदिन अधिकाधिक विकसित होता जा रहा है।

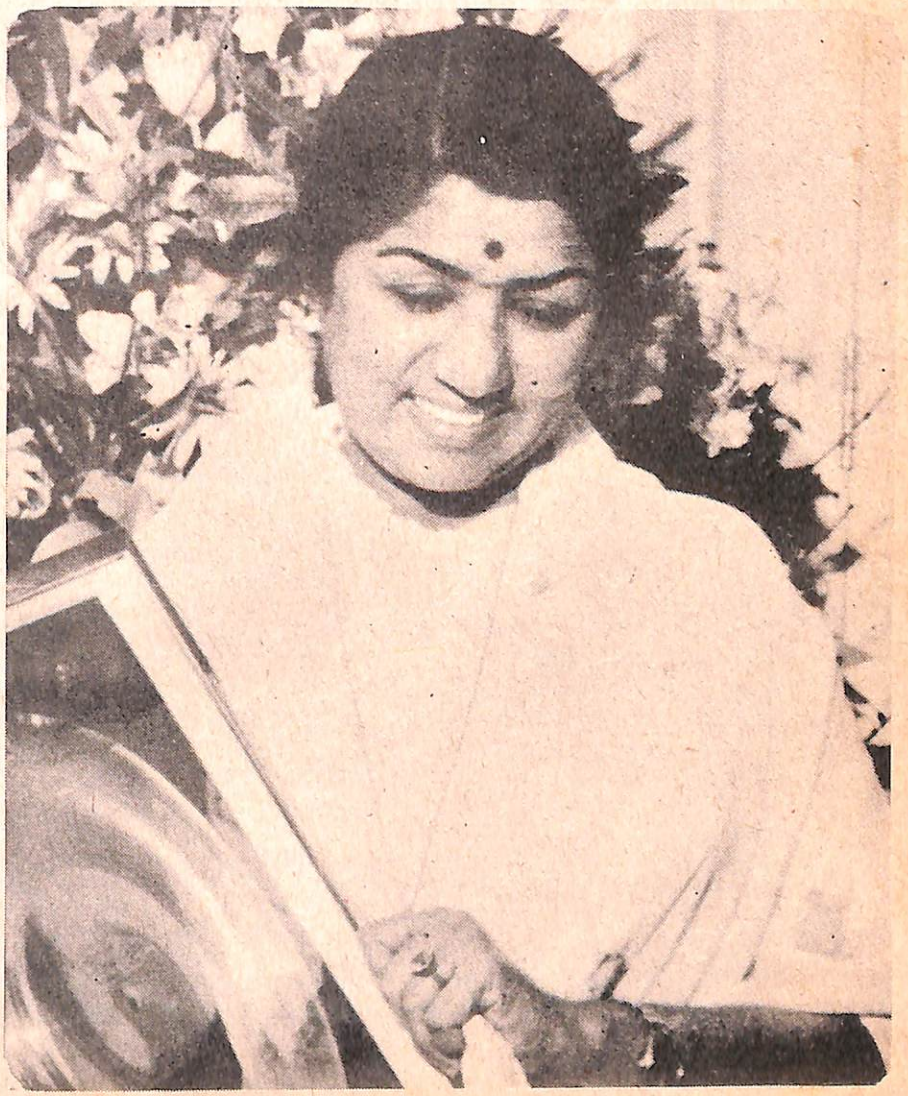

ऐसे इस चित्रपट संगीत क्षेत्र की लता अनभिषिक्त साम्राज्ञी है। और भी कई पार्श्व गायक-गायिकाएँ हैं, पर लता की लोकप्रियता इन सबों से कहीं अधिक है। उसकी लोकप्रियता के शिखर का स्थान अचल है। बीते अनेक वर्षों से वह गाती आ रही है और फिर भी उसकी लोकप्रियता अबाधित है। लगभग आधी शताब्दी तक जनमन पर सतत प्रभुत्व रखना आसान नहीं है। ज्यादा क्या कहूँ, एक राग भी हमेशा टिका नहीं रहता। भारत के कोने-कोने में लता का गाना जा पहुँचे, यही नहीं परदेस में भी उसका गाना सुनकर लोग पागल हो उठें, यह क्या चमत्कार नहीं है? और यह चमत्कार हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

ऐसा कलाकार शताब्दियों में शायद एक ही पैदा होता है। ऐसा कलाकार आज हम सबों के बीच है, उसे अपनी आँखों के सामने घूमता-फिरता देख पा रहे हैं। कितना बड़ा है हमारा भाग्य!!

(धर्मयुग में प्रकाशित एक लंबे आलेख के अंश)

लता के साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता

● पु. ल. देशपाण्डे

'राज्य सुखी या साधुमुले-शूरा मी वंदिले' गीत में राज्य या साधुमुले के बाद 'शूरा' का दूसरा अक्षर 'रा' पर विद्युत जैसी चपलता के साथ उस अबोध कंठ से तान थिरक उठी और भवन में बैठे अपार जन- समुदाय को आहत कर गई। क्षण भर को लगा जैसे कोई तीर सनसनाता हुआ हर व्यक्ति को घायल कर गया। सात-आठ वर्ष की उस नन्हीं लड़की को शायद यह अहसास भी न हो पाया होगा कि उसने क्या कर डाला है। सारा सभा भवन अचरज और आह्लाद से हक्का-बक्का था। बाबालाल तबलिए उसके साथ ठेका यों लगा रहे थे मानो किसी उस्ताद का साथ दे रहे हों और वह बच्ची है कि गीत की अस्थाई गाकर पहले सम पर आते ही संपूर्ण सप्तक लाँघकर लय और स्वर का विकट बोझ संभालती हुई सम पर अचूक आ पहुँचती है। कोल्हापुर के जिस पैलेस थिएटर को अनेक दिग्गज संगीतज्ञों ने अपने स्वरों की वर्षा में भिगोया था, उसमें एक छोटी-सी बालिका अपने अनोखे चमत्कार भरे स्वर में सबको रसविभोर कर देती है। पहली सम पड़ते ही सारा हाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा।

इस घटना से पूर्व बंबई के जिन्ना हॉल में नौ वर्ष की उम्र में कुमार गंधर्व ने रंगमंच पर अपने अद्भुत स्वर से इसी तरह श्रोताओं को मुग्ध कर लिया था। बाल गंधर्व, कुमार गंधर्व और लता मंगेशकर तीनों ने विपरीत दिशाएँ पकड़ी और अपनी असमानता के कारण अपनी- अपनी दिशाओं में नक्षत्र की तरह जगमगाते रहे। कुछ तो अपने

सबके लिए बिजली अब सस्ती

- मध्यप्रदेश सरकार ने पहली अप्रैल १९८९ से बिजली की दरों में कई रियायतें दी हैं।
- बिजली का घरेलू इस्तेमाल करने वालों को अब ७५ के वजाय १०० यूनिट की खपत तक न्यूनतम दरें ही देनी होंगी।
- इतना ही नहीं १०० यूनिट से ज्यादा भी यदि आप बिजली खर्च करते हैं तो भी पहले की दरों के मुकाबले अब हर यूनिट १० पैसे सस्ती होगी।
- इसका सीधा फायदा लाखों परिवारों को होगा जो अब अपनी सुविधा के लिये रोशनी का ज्यादा इस्तेमाल कम दरों पर कर सकेंगे।
- छोटे व्यावसायियों और दूकानदारों को भी अब प्रति यूनिट २० पैसे की रियायत मिलेगी।

मध्यप्रदेश में पहली बार बिजली की दरों में बड़े पैमाने ऐसी रियायतें दी गयी हैं जिनका फायदा हर तबके को होगा।

सबके लिये सस्ती बिजली

मध्यप्रदेश सरकार

म प्र माध्यम/८९

घराने के बड़प्पन पर ही इठलाते रह जाते हैं। मगर स्वर और लय को ही शिव और पार्वती मान कर कला का विस्तार करने वाले कलाकार मैंने बहुत कम देखे हैं। लता का 'शूरा' मी वंदिले' गाए हुए आज कई वर्ष गुजर गए। उस समय तक दीनानाथ द्वारा गाया गया यही गीत लोगों में स्मृति-पटल पर स्पष्ट रूप से मौजूद था। धैर्यधरा की भूमिका में गाए इस गीत की सजीली तान लोगों के कान में बसी हुई थी इसलिए लता के मुख से 'शूरा मी वंदिले' सुनकर हठात लोगों के मुख से निकल पड़ा "वाह, हूबहू दीनानाथ!" और उसके बाद उनकी इस दुलारी कन्या ने पिता का ही व्रत आगे बढ़ाने का बीड़ा उठा लिया। मगर इस स्वाभिमानी लड़की ने उनका अनुकरण नहीं किया क्योंकि अनुकरण पिता की प्रवृत्ति भी नहीं थी। पिता ने रंगमंच पर अनूठे ढंग की गायकी प्रस्तुत की थी। दीनानाथराव, दीनानाथराव की तरह ही गाते थे और उनकी तनुजा लता भी बराबर लता की तरह ही गाती रही।

फिल्म में गाए गए तीन साढ़े तीन मिनट के गीतों में भी उच्च खयाल गायकी की-सी लयकारी का ज्ञान आवश्यक है। लता के स्वर के कायल सभी हैं किन्तु निश्छल मन से जो व्यक्ति संगीत का स्वाद ग्रहण करते हैं, उन्हें लता के स्वरों में एक जो अतिरिक्त आकर्षण सम्मोहित करता है, वह है उसके शब्दों के उच्चारण के वक्त गीतों में लयकारी का विलक्षण संतुलन और जानकारी जो उसके स्वरों के समान ही सूक्ष्म होती हैं। भारी-भरकम लयकारी नहीं वरन बिजली-सी एक कण से दूसरे पर चुपके से उड़कर पहुँच जाने वाली। कुमार, बाल गंधर्व और लता को लयसारी के इसी अलौकिक ज्ञान को वरदान मिला हुआ है।

स्वरों के वर्तुल का मध्य बिन्दु एवं लयकारी में प्रवाहित काल के निमिष निमिषांत का लक्षांश पकड़ लेना लता के कंठ की विशेषता है और यही वजह है कि उसके गीतों में केवल शब्द ही नहीं, व्यंजनयुक्त स्वर भी कितने अधिक अर्थमय लगते हैं। लता का गाया हुआ एक सामान्य-सा लोरी गीत है, 'धीरे से आजा', मगर उसमें भी 'आजा' के बाद जो स्वरों की हल्की-सी फुहार उठती है, वह ऐसे बिन्दु से उठती है कि लगता है उसने परातत्व को स्पर्श कर लिया है। ये उठानें बहुत मुश्किल हैं।

कवि माडगुलकर ने अपनी कविता 'जोगिया' में गायिका के कंठ से स्वरों के निकलने का वर्णन किया है–"स्वर बेल थरथराई खिल गए फूल होठों पर..." लता का कोई गीत सुनता हूँ तो यह पंक्ति अक्सर स्मरण हो आती है। उसके द्वारा गाए गए हर गीत स्वर-बेल पर खिले हुए फूल ही तो हैं। इस तरह के न जाने कितने फूल विगत वर्षों में खिले हैं और न जाने कितने यों ही अपने आप खिल उठे हैं।

चीनी आक्रमण के समय हिमालय के शिखर पर स्थित एक छावनी में एक छोटे तम्बू में देखा हुआ एक दृश्य। लद्दाख की यात्रा के दौरान हम वहाँ जा पहुँचे थे। वहाँ की जानलेवा सर्दी से भी अधिक ठिठुराने वाले वहाँ के भयानक सन्नाटे उन आठ-दस व्यक्तियों की छोटी टुकड़ी का एकमात्र सहारा लता के गीत थे जो ट्रांजिस्टर में आ रहे थे। 'जो शहीद हुए हैं उनकी जरा याद करो कुर्बानी.....' लता के कंठ से निकली यह आर्त पुकार देश के बच्चे-बच्चे की आँख भिगो गई थी मगर देश के उस कोने में लता के स्वर में खोए हुए उन जवानों को देखकर मुझे लगा कि इन जवानों की कुर्बानी जितनी ही अलौकिक है, उतनी ही अलौकिक है लता की आवाज। सारे संसार पर इस आवाज के कितने अहसान हैं। इंडोनेशिया में रहने वाले वे ग्रामवासी या हिमालय पर रहने वाले जवान, सीधे-साधारण श्रोता हैं। संगीत-शास्त्र के बारे में वह कुछ नहीं जानते, मगर अल्लादिया खाँ साहब के सुपुत्र खाँ साहब भुर्जी खाँ तो संगीत- शास्त्र के महापंडित हैं। उनसे मिलने भी एक बार जब मैं गया था तब वह लता का रिकॉर्ड लगाए हुए विभोर बैठे थे। एक बार ऐसे ही 'आएगा आने वाला' गीत सुनकर कुमार गंधर्व बोले–'तानपुरे से निकलने वाला गंधार शुद्ध रूप में सुनना चाहो तो लता का गीत सुनो।' देहाती जन-समुदाय से लेकर मलबार हिल के बंगलों में रहने वाले संपन्न तबके तक, और स्कूल जाने वाले बच्चों से लेकर जर्जर बूढ़ों तक, सबको अपने गीतों के जादू में बाँधने वाली लता-लता ही क्यों यह तो फिल्मी संसार को बड़े सौभाग्य से मिली हुई कल्पलता है।

लता ईश्वर-प्रदत्त एक ऐसा अनोखा कम्प्यूटर है जो संगीत के अनेक सवाल सेकंडों में सुलझा लेता है। जिस कण या मुरकी को कंठ से निकालने में अन्य गायक और गायिकाएँ आकाश-पाताल एक कर देते हैं उस कण, मुरकी, तान या लयकारी का सूक्ष्म भेद वह सहज ही करके फेंक देती हैं।

संगीत-निर्देशक नया हो या पुराना, लता एक बार माइक्रोफोन के सामने पहुँची कि स्वरों में और गीतों के बोलों में प्राण फूँक देती हैं और उसके बाद ही उस माहौल से कट कर अलग हो जाती है। वर्षों से यह लता बस गाए जा रही है।

लता के स्वर द्वारा फतह किया गया, संगीत का यह कितना बड़ा साम्राज्य है। इस साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता। सुबह होती है, घर-घर रेडियो बज उठते हैं। कहीं न्यूज आती है युद्ध की, तबाही की, राजनीतिक कुठाओं की, दुर्घटनाओं की और मन को बार-बार क्षुब्ध कर जाती है। लेकिन तभी अंधकार में उजाले की आहट-सी लता की आवाज कहीं से आकर मन के भीतर कहीं बहुत गहरे बैठ जाती है और मन का सारा अंधकार हर लेती है। चाहे जो कुछ भी प्रभाव उसका होता हो, कम से कम उस आवाज के लिए ज्यादा दिन जीवित रहने की ललक मन में जरूर उठती है।

समय से आगे : हृदयनाथ

हृदयनाथ मंगेशकर का नाम हिन्दी फिल्मों के शीर्षस्थ संगीतकारों की श्रेणी में फिलहाल नहीं है किंतु गैर फिल्मी संगीत रचनाओं के मामले में वे अपनी बड़ी बहन लताजी के साथ ही इतिहास में प्रतिष्ठा के साथ याद किए जाते हैं। गैर फिल्मी संगीत में उनका योगदान स्थाई सांस्कृतिक धरोहर बन चुका है। लताजी के लगभग सभी गैर फिल्मी एल.पी. रिकॉर्ड्स में धुनें हृदयनाथ की है। ध्यानेश्वरी और 'भगवत गीता', 'मीरा के भजन', 'गालिब की गजलें' आदि उनके विख्यात एल.पी. हैं। इसके अतिरिक्त 'कोली लोक गीत', 'वीर सावरकर के देशभक्ति के गीत', 'गणेश महिमा' आदि कई रिकॉर्ड पर प्रस्तुत हुए हैं।

संगीत निर्देशक के गुण हृदयनाथ को विरासत में मिले थे मगर पिता का साया बचपन में ही उठ गया। अपनी गायिका दीदियों के प्यार में परवरिश पाते हुए हृदयनाथ स्वयं को शास्त्रीय संगीत की दुनिया में डुबोने लगे। विख्यात रिकॉर्डिंग कंपनी एच.एम.वी. ने १९५४ में लता का गीत 'निशदिन बरसत नैन हमारे' सिंगल रिकॉर्ड पर जारी किया। इस गीत की धुन शास्त्रीय राग पर आधारित कर हृदयनाथ ने बेहद खूबसूरती से तैयार की थी। इस रचना की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने वाले पारखियों में विख्यात सितारवादक पंडित रविशंकर भी शामिल थे। रविशंकरजी ने ही उन्हें संगीत निर्देशक के रूप में संगमित काम करने की सलाह दी।

हृदयनाथ ने इस सुझाव पर अमल किया और मराठी फिल्मों का संगीत निर्देशन करने लगे। संगीत निर्देशक के रूप में 'आकाश गंगा' उनकी पहली फिल्म थी। १९५७ में बनी इस फिल्म के गीत हिट रहे। इसके बाद उन्होंने फिल्म निर्माण के क्षेत्र में प्रवेश किया और १९५९ में 'अन्तरिचा दिवा' नामक फिल्म का निर्माण किया। 'निर्मल चित्र' बैनर की इस फिल्म को मराठी के विख्यात उपन्यासकार वी.एस. खाडिलकर ने लिखा था। इसके बाद की कहानी संगीत निर्देशक के रूप में प्राप्त सफलताओं की कहानी रही। संगीत निर्देशक के रूप में वे डेढ़ दर्जन मराठी फिल्मों से जुड़े और उनमें से चार को विभिन्न प्रतिष्ठित अवार्ड मिले।

हिन्दी फिल्मों में संगीत देने का पहला अवसर उन्हें १९७० में मिला। आदर्श लोक की 'हरिशचन्द्र तारामती' एवं बसंत जोगलेकर की 'प्रार्थना' उनकी दो पहली हिन्दी फिल्में थी। इनको अपेक्षित सफलता नहीं मिली। और अगले एक दशक तक हृदयनाथ हिन्दी फिल्मों से दूर रहे। दस वर्ष के बाद फिर एक साथ दो हिन्दी फिल्मों में वे संगीत निर्देशक के रूप में आए। 'चक्र' नई लहर की कलात्मक फिल्म थी और 'धनवान' कमर्शियल फिल्म। दोनों ही फिल्में सफल रही। 'धनवान' का होली गीत 'मारो भरकर पिचकारी' पीलू राग पर आधारित था। पंजाबी लोकगीत पर आधारित 'बल्ले बल्ले भाई' और नृत्यगीत 'इधर आ भी जा' बेहद सफल रहे।

एक संगीत निर्देशक के रूप में हृदयनाथ को शास्त्रीय संगीत की व्यापकता और बहुमुखी संभावनाओं पर अपार विश्वास रहा है। उनका कहना है कि शास्त्रीय संगीत पर आधारित फिल्मी गीत 'सदाबहार' होते हैं। उनकी दोनों दीदियाँ—लताजी एवं आशाजी अपने साक्षात्कारों में खुल कर इस बात को स्वीकार करती हैं कि हृदयनाथ की संगीत रचना समय से आगे है, इसलिए कालातीत की श्रेणी में आती हैं। चाला वाही देस, मीरा के भजनों के इस एल.पी. रिकॉर्ड की अद्‌भुत कल्पना हृदयनाथ को शिखर सम्मान प्रदान करती है।

जहाँ नहीं चैना वहाँ नहीं रहना : किशोर कुमार

● विनोद तिवारी

'बार-बार लगाए जाने वाले इन अभियोगों से हम तंग आ चुके हैं कि फिल्म संगीत में मेलोडी नहीं रही और आज के संगीतकारों ने उसमें शोर ही शोर भर दिया है। कुछ सच्चाई हो सकती है इन अभियोगों में लेकिन कोई हमें जरा यह तो बताए कि सचमुच मेलोडी वाले, शास्त्रीय संगीत की मधुरता वाले गाने हम बनाएँ भी तो उन्हें गवाएँ किससे? मुश्किल से दो-तीन गायक-गायिकाएँ हैं, उनसे कितना काम पूरा होगा?'

यह थी तीव्र प्रतिक्रिया आज के दो व्यस्ततम संगीतकारों की जो पार्श्व संगीत की दुर्दशा के जिक्र पर प्रकट हुई। चर्चा जब पुरुष गायकों तक पहुँची तो स्व. किशोरकुमार पर आकर अटक गई। 'किस में है उन जैसी खनक, उन जैसी विविधता और सबसे बढ़ कर उन जैसी लगन? वे गुस्सा होते थे इस बात पर कि उन्हें रिहर्सल करने का मौका नहीं दिया जाता, बार-बार बताया और सिखाया नहीं जाता। और आज के गायक इस बात पर नाराज हो जाते हैं कि उन्हें सिखाने बताने की कोशिश की जा रही है। इस फर्क की ओर ध्यान है किसी का?' यह था उनका तीखा सवाल।

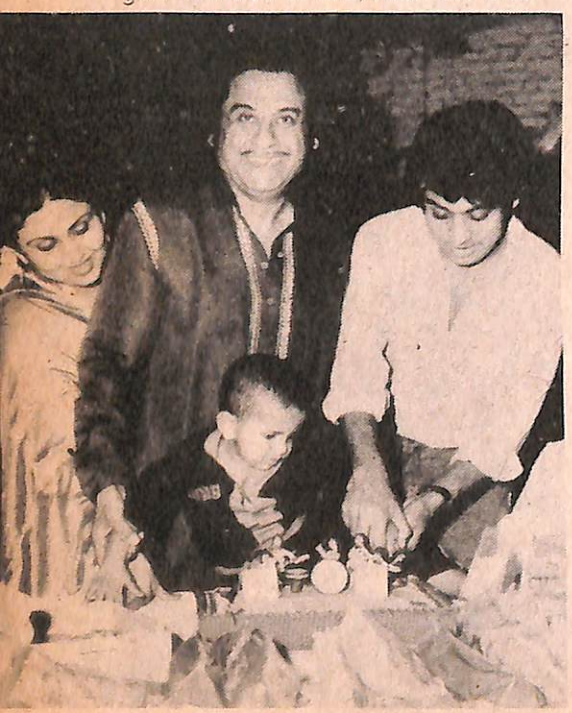

सुमीत के जन्मदिन पर लीना, किशोर और अमित

फिर, इसके बाद, बात किसी और पर गई ही नहीं—किशोरकुमार की खूबियों, उनके विविध मूडों और गाने की बारीकियों को पकड़ सकने की उनकी अद्‌भुत कला पर ही इतना कुछ कहने सुनने को था कि समय कब कहाँ से कहाँ चला गया, किसी को भान ही न रहा। तो ये हैं किशोरकुमार। पुरुष पार्श्वगायन के क्षेत्र की कितनी कमियों को उन्होंने अकेले पूरा कर रखा था इसका आभास आज होता है सबको। जब अच्छा गाना बन जाने के बाद भी उसे गा सकने को भरोसे वाला कलाकार नहीं मिलता। जब गायन में सिर्फ स्वर रह गया है आत्मा नदारद है। जब सुख और दुख के गीत एक सपाट आवाज में अदा हो जाते हैं। और तभी याद आती है उनकी बातें, गाना पेट से नहीं, दिल से गाया जाता है। दिल से गाने से ज्यादा खतरनाक खेल कोई और नहीं। कलाकार को दिल का रोग यही लगाता है। आप देख लीजिए, तलत साहब दिल के मरीज हैं, रफी साहब को इसीने असमय उठा लिया, मुकेश इसी के शिकार हुए... खुद किशोरकुमार? गाने से दिल लगाने की सजा ही तो मिली उन्हें भी!

कब से किशोरकुमार की संगीत यात्रा शुरू हुई, कोई नहीं जानता। किसी को याद है वह नौजवान जो इंदौर के क्रिश्चियन कॉलेज में अपनी पढ़ाई के दिनों में के. एल. सहगल के गीत गाकर समां बाँध दिया करता था, तो कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें उस बालक का भी स्मरण है जो स्कूल के जमाने में एक साथ सात-सात गोल्ड मैडल जीत कर शरमाता-शरमाता घर लौटता था। आगे चलकर कितनी फिल्मों के लिए कितनी गोल्ड डिस्कें इसी किशोरकुमार के बंगले की शोभा बनीं, बहुत कम लोगों को मालूम है। क्योंकि किशोर के मन में अपनी किशोरावस्था का वही मासूम किशोर सदा जमा बैठा रहा जो हर सफलता को विनम्रता और झिझक के साथ स्वीकार करने के बाद, प्रचार से दूर, अपनी साधना में पुनः लगन से लग जाने को ही श्रेष्ठ समझता था।

कहते हैं हीरे की परख जोहरी ही कर सकता है। इस हीरे को पहचानने वाले जौहरी थे संगीतकार खेमचंद प्रकाश। सर्वप्रथम उन्होंने ही बॉबे टॉकीज की फिल्म 'जिद्दी' के लिए किशोरकुमार का चुनाव करके उनसे दो गीत गवाए थे। उनका पहला गाना लता मंगेशकर के साथ युगलगान के रूप में था, जिसके बोल थे, 'ये कौन आया...' इसी फिल्म में उन्होंने जो गीत अकेले गाया था वह आज भी संगीत प्रेमियों के जबान से नहीं उतरता 'मरने की दुआएँ क्यों माँगू, जीने की तमन्ना कौन करे...।'

यह गाना देव आनंद पर फिल्माया गया था और तब सुर, लय, ताल की जो गंगा बहनी शुरू हुई थी उसकी शीतल सुमधुर धार में न जाने कितने संगीतकार, कितने निर्देशक, कितने अभिनेता तृप्त होते चले गए। आश्चर्य होता है यह देखकर कि किस प्रकार किशोरकुमार अपने से कहीं कम उम्र के नायकों के लिए भी इतना जीवंत पार्श्वगायन प्रस्तुत करने में सदा सफल रहे जो दर्शक को फिल्म देखने के बाद भी उस कलाकार के ही स्वर में उभरता मालूम होता था और अभिनीत चरित्र की सारी संवेदनाओं को साकार करता रहा। लेकिन संवेदनाओं की यह तीव्रता किशोरकुमार में अचानक किसी एक दिन में नहीं जाग गई। अत्यंत कोमल मन था उनका, जिस पर जरा-सी ठेस से आँच आ जाए। लेकिन दुनिया अपनी रफ्तार, अपने ढंग से चलती है। किसी की भावनाओं से उसका कुछ लेना-देना नही होता। बहुत जल्दी ठोकरों ने यह सबक किशोर को सिखा दिया था और तभी उन्होंने तय कर लिया था कि अगर फिल्म उद्योग में सफलता के संघर्ष में टिके रहना है, तो कोमल भावनाओं को एक आवरण में सुरक्षित रखना होगा। तभी से उन्होंने मन पर मस्ती का मुखौटा चढ़ाया और दर्द को समेटे हुए आजन्म जिंदादिली बाँटते रहे।

इस मुखौटे के पीछे झाँकने और दर्द को सबल

'यूडलिंग' किशोर कुमार के गायन की निजी विशेषता थी, जिसकी नकल आज तक कोई नहीं कर पाया है। वे कहा करते थे—'बात सिर्फ सुर पकड़ने की है। बड़े-बड़े कलाकार जो बहुत कुछ कर गए हैं, उन्हें सुनिए। आपकी लगन सच्ची होगी, तो स्वयं प्रेरणा मिल जाएगी। लेकिन सिर्फ नकल करने पर जोर दिया, तो अलग पहचान बना पाना नामुमकिन होगा।' किशोर कुमार को पुरस्कार तो अनेक मिले हैं। लेकिन वे हिन्दुस्तान के सबसे गरीब आदमी के उस 'पुरस्कार' को महान मानते थे, जो अपनी बेचैनी या पीड़ा के क्षणों में उनके किसी गीत को गुनगुना कर चेहरे पर खुशी और मुस्कान से खिल उठता था।

◆◆◆

अभिव्यक्ति दे सकने वाले कलाकार को पहचानने की कोशिश जिन निर्देशकों ने की, उन्होंने किशोरकुमार के साथ सुंदर सशक्त फिल्में बनाई। सन् १९५२ से लेकर १९७० तक के साल फिल्म इतिहास में इस बात के गवाह बन कर खड़े हैं कि अभिनय के स्कूल या एक नियत छवि जैसे दायरों में बंद चलन को तोड़ कर उन्मुक्त अभिनय का जो प्रदर्शन उन्होंने किया था, उसने उनके सभी समकालीनों को धूमिल कर रखा था, जिनमें अभिनय-सम्राट कहे जाने वाले दिलीपकुमार भी शामिल थे। किशोर के बड़े भाई, प्यार से दादा मुनि और आदर से अभिनय का स्कूल कहे जाने वाले अशोककुमार को टक्कर दे सकना बड़े-बड़े कलाकारों के लिए संभव नहीं हुआ, लेकिन जिन्होंने सत्येन बोस द्वारा निर्देशित फिल्म बंदी देखी है, वे जानते हैं कि फिल्म के अंतिम दृश्यों में किशोर के प्रबल, हृदयस्पर्शी अभिनय ने एक-बारगी अशोकुमार के अभिनय को पीछे छोड़ जो नई ऊँचाइयाँ स्थापित कर दी थी, वहाँ तक कम कलाकार पहुँच पाए हैं। यह फिल्म १९५७ में बनी थी और इसमें नायिका थीं बीना राय। मध्यांतर तक फिल्म में किशोर का एक रूप था, उछलकूद और मस्तीभरा, लेकिन मध्यांतर के बाद की गंभीरता ने दिल हिला दिए थे। दर्द को अभिव्यक्ति दे सकने की उनकी सामर्थ्य सन् ५७ में भी उतनी ही सशक्त थी, जब उन्होंने रात को रोती गरीब बच्ची को बहलाते हुए जमाने की सच्चाई उजागर करते गाने का दर्द साकार कर दिखाया था—'चुप हो जा, अमीरों की ये सोने की घड़ी है, तेरे लिए रोने को तो उम्र पड़ी है...। ऐसे कोमल क्षणों से भरपूर उनकी अभिनय यात्रा के पड़ावों की सूची लंबी है। यहाँ सिर्फ स्वर्ण जयंती फिल्मों न्यू दिल्ली (निर्देशक: मोहन सहगल १९५६), भाई भाई (निर्देशक: एम.वी. रामन १९५६) को गिनाना पर्याप्त है। रजत जयंती मनाने वाली फिल्में थीं—अधिकार (मोहन सहगल), चलती का नाम गाड़ी (सत्येन बोस), लड़की (एम. वी. रामन), पहली झलक (एम. वी. रामन), प्यार किए जा (श्रीधर), दिल्ली का ठग (एस. डी. नारंग), इल्जाम (आर. सी. तलवार), चंदन (एम.वी.रामन), बेवकूफ (आई. एस. जौहर) तथा शरारत (एच. एस. रवेल)।

यूडलिंग किशोरकुमार की वह विशेषता थी जिसे उनकी नकल करने वालों में से कोई पकड़ नहीं पाया, इसके लिए किशोर स्वयं को कोई माहिर उस्ताद नहीं मानते थे। 'बात सिर्फ सुर पकड़ने की है,' वे कहते थे—"बड़े-बड़े कलाकार हैं जो बहुत कुछ कर गए हैं। उन्हें सुनिए। आपकी लगन सच्ची है तो स्वयं आपको प्रेरणा मिलेगी, स्वयं राह सूझने लगेगी। लेकिन जब तक सिर्फ नकल करने पर जोर रहेगा तब तक अपनी पहचान अलग बना पाना नामुमकिन ही होगा।"

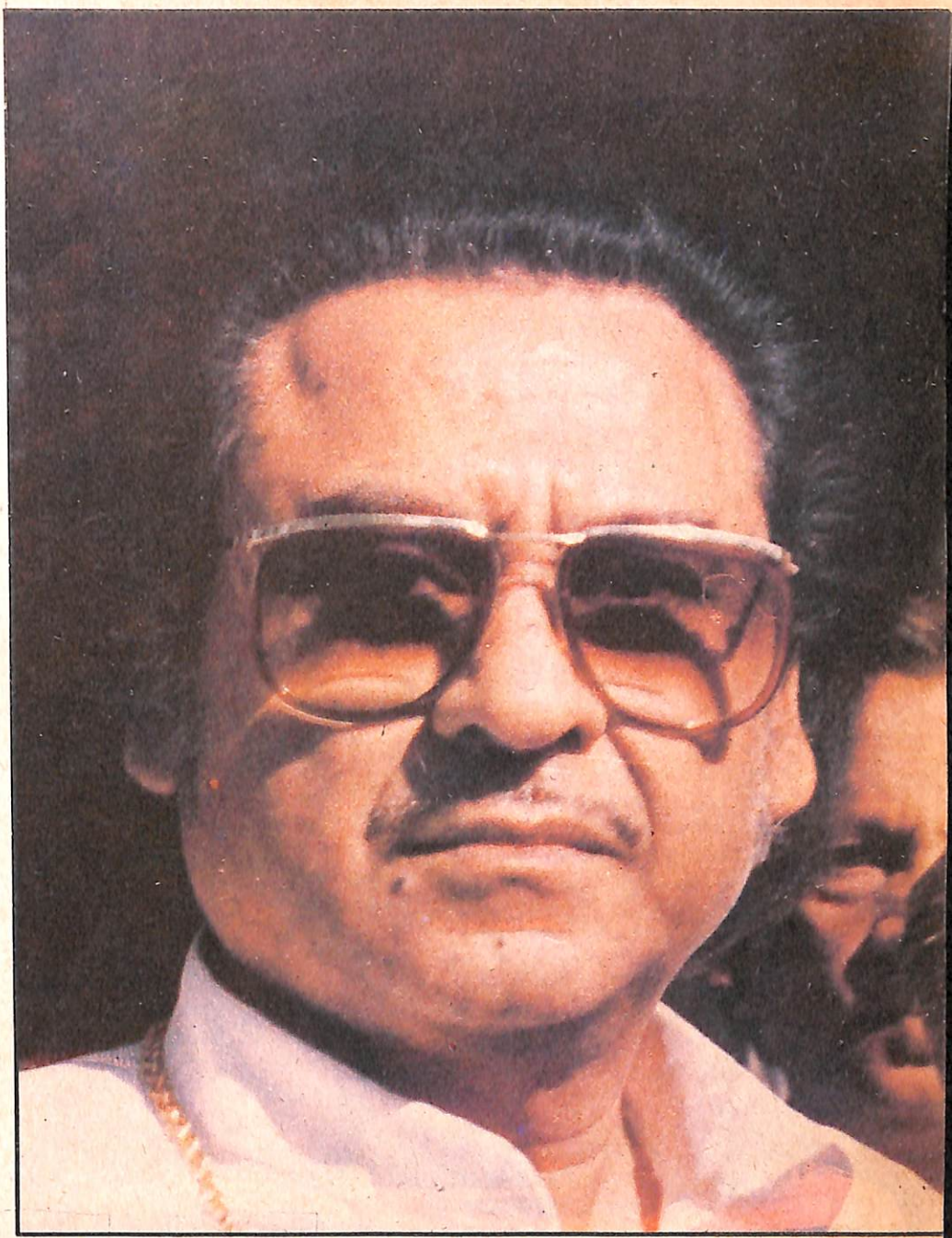

छाया: मधुकांत मौर्य

एक ओर यूडलिंग तो दूसरी ओर रवींद्र संगीत, किशोरकुमार के स्वर की विविधता का विस्तार विलक्षण रहा। सभी जानते हैं कि रवींद्र संगीत में नोट काफी कठिन होते हैं। इसके साथ ही बंगाली इसके प्रति अत्यधिक भावुक भी हैं। गायक जब तक उन्हें तपा सघा नहीं लगता, तब तक न तो संगीतकार उसे गवाएगा न जनता उसे सुनेगी। पाश्चात्य रंग से रंगे गीतों को रवानी देने वाले किशोरकुमार रवींद्र संगीत भी इस खूबी से गा चुके हैं कि उनका रिकॉर्ड हाथों हाथ बिका, अत्यधिक लोकप्रिय हुआ।

स्व. खेमचंद प्रकाश से लेकर आज के नवीनतम संगीतकारों तक में से, हर किसी के साथ किशोर ने अलबेले गीतों की लड़ियाँ पिरोई हैं। संगीतकारों में इसका एकमात्र अपवाद हैं नौशाद। न जाने किशोर की कला का लाभ उठाने से वे कैसे चूक गए। बहुत कम लोगों का ध्यान इस तथ्य की ओर जाता है। ऐसी ही एक और जानकारी कम लोगों को है कि गायक किशोरकुमार अपनी फिल्मों के अलावा, बाहर की एक बड़ी फिल्म के लिए संगीत निर्देशन भी कर चुके हैं। यह फिल्म थी मद्रास के निर्माता निर्देशक वीरप्पन की

दादा मुनि के साथ किशोर कुमार

जमीन-आसमान । जिसके प्रमुख सितारे अशोककुमार, सुनील दत्त और रेखा थे।

जीवन के अंतिम वर्षों में उनमें एक तरह का विरक्ति भाव जागने लगा था। फिल्म संगीत की स्थितियों से तो वे नाखुश थे ही, जीवन की निस्सारिता और मौत के सामने मनुष्य की मजबूरी को बार-बार दोहराया जाता देख भी उन्हें कुछ वैराग्य सा होने लगा था। भाभी यानी श्रीमती अशोककुमार की मृत्यु ने इस भाव को और भी गहरा कर दिया था। इसीलिए वे बार-बार बंबई छोड़ खंडवा भाग जाने और वहाँ एकांत जीवन बिताने की कल्पनाओं में डूब जाया करते थे। जिस एक घटना ने उन्हें और बहुत विचलित किया था, वह उन्होंने शुरू ही मुझे सुनाई थी। श्रीमती अशोककुमार की मृत्यु के बाद तीसरा दिन था वह। दादामुनि यानी अशोककुमार ने किशोर को बुलाया और खाली आँखें देखते हुए बहुत धीमे स्वर में कहा, "जरा वह गाना तो सुना, 'जिदगी का सफर एक ऐसा सफर...'।

"मैंने गाना शुरू किया। लगा कि दादामुनि काँप रहे हैं। फिर उन्होंने मेरा हाथ कस कर पकड़ लिया। वे जाने कहाँ थे, क्या सोच रहे थे। मैं चुप हो गया। 'गाता रह,' उन्होंने जैसे आदेश दिया। गाना खत्म हुआ तो उन्होंने हाथ छोड़ कर कहा, 'यह गाना इसी तरह टेप करके मुझे दे देना,' और तुरंत दूसरे कमरे में चले गए। मैं समझ गया, वे मेरे सामने रो नहीं सके होंगे...।"

और यह घटना सुनाने के बाद ही उन्होंने कहा था, "मुझे कई पुरस्कार मिले है लेकिन वह पुरस्कार मुझे कोई नहीं दे सका जो कभी हिंदुस्तान का सबसे गरीब आदमी देता है तो कभी सबसे परेशान। यह इनाम है—खुशियों भरी एक मुस्कान। संगीत एक ऐसी ताकत है जो इन्सान के सब भेदभावों को भुला कर उन्हें एक कर देती है। सुख-दुख तो अमीर-गरीब, छोटे-बड़े सभी पर एक समान आते है। बेचैनी के क्षणों में जब कोई अपने दिल की भावनाओं की छाया मेरे गाए किसी गाने में पा जाता है और सुख या दुख किसी भी मौके पर उसे गुनगुना कर, अपना जी हल्का करके भावनाओं में बहता मुस्करा उठता है तो मुझे लगता है कि दुनिया की हर नियामत मिल गई। वही क्षण मेरे जीवन में सबसे बड़ी खुशी के क्षण होते हैं जो मुझे लगातार गाने की हिम्मत दिए जाते हैं। लेकिन फिल्म उद्योग में काम की दशाएँ तथा फिल्मी गीत जिस स्तर पर आ गए हैं उनसे मैं बहुत दुखी हूँ। फिल्मों में गाना गाने का सबसे पहला मौका मुझे दिया था स्व. खेमचंद प्रकाश जी ने। वे एक गाने की एक-एक हफ्ते रिहर्सल कराते थे। एक-एक बोल, एक-एक मुरकी, स्वर के एक-एक उतार चढ़ाव पर घंटों मेहनत करनी पड़ती थी, तब जाकर गाने में वह जादू उभरता था जो सुनने वालों के सिर चढ़ कर बोलता था। उनके बाद के उन सभी संगीतकारों के साथ भी मैंने इसी तरह का काम किया जिनका नाम आज सभी आदर के साथ लेते हैं। स्व. सचिनदेव बर्मन जी, मदनमोहन जी, रोशन जी, खेमचंद प्रकाश साहब आदि। वे लोग खुद भी बेहद मेहनत करते थे, हम से भी करवाते थे। लेकिन आज होता यह है कि सुबह फोन आता है कि कल रिकॉर्डिंग के लिए आ जाइए। शाम तक उस गाने का टेप आता है जो सुबह गाना है। तब भला किस वक्त रिहर्सल करें, कब शब्दों की बारीकियाँ समझें, उतार चढ़ाव सम्हालें?? इस तेज रफ्तार और भागमभागी के कारण ही वैसे गीत नहीं बनते जिन्हें गाने में कोई कला दिखानी पड़े, कोई परिश्रम होता हो। मैं यह समझ नहीं पाता कि जिस गीत को गाने में मैं खुद संतुष्ट नहीं हो पा रहा उसके जरिए मैं दूसरों को कैसे संतुष्टि दे सकूँगा? बस, इसी असंतोष के कारण मैंने फैसला किया है कि मुझे अब रिटायर हो जाना चाहिए।"

सफलता, असफलता, पैसा, प्यार, जिदगी, मौत सभी कुछ बहुत देखा किशोरकुमार ने। इसीलिए एक बार मैंने उनसे पूछा था, 'इतना सब देख लेने के बाद भगवान पर आपकी आस्था बढ़ी है या कम हुई है?" उन्होंने जो जवाब दिया था उसमें उनका पूरा दृष्टिकोण उभर आया था, उन्होंने कहा था, "भगवान शब्द तो इन्सान का गढ़ा हुआ है, किसी कल्पित भगवान पर मेरी श्रद्धा नहीं होती, जो मुझे दिखता नहीं, उसे मैं मानू कैसे? हाँ, उस पर मेरा विश्वास जमता है जिसे मैं खुद देखता हूँ—यह धरती, यह आसमान, यह सूरज, यह चाँद सितारे।"

"आपको सबसे प्रिय क्या है?"

"यह जिदगी," किशोरकुमार को जवाब सोचना नहीं पड़ा था। "इस जिदगी से खूबसूरत और कोई चीज नहीं। मैं यह नहीं मानता कि मरने के बाद कहीं स्वर्ग या नरक मिलेगा। जो कुछ है, यहीं है। अच्छे-बुरे हर कर्म का फल यहीं मिल जाता है। मेरा कर्म है मेरा संगीत। मैं उसे ईमानदारी से निभाए जाता हूँ। इसी से खुश रहता हूँ और यह कोशिश करता हूँ कि इसके जरिए दीन-दुखियों की जितनी सेवा हो सके करूँ। इसके अलावा जिदगी में कोई चाह बाकी नहीं है।"

***विनोद तिवारी, टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन समूह के हिंदी फिल्मफेअर के संपादक हैं।**

चंदा देश पिया के जा: अमीरबाई कर्नाटकी

जुलाहा परिवार में १९ फरवरी १९१२ को कर्नाटक के बीजापुर जिले में बिलगी गाँव में अमीरबाई का जन्म हुआ था। उनकी बहन गौहर बाई ने भी अभिनय के क्षेत्र में काफी नाम कमाया था। पंद्रह साल की उम्र में बंबई आकर एक कव्वाली गाई, जिसे एच.एम.वी. ने काफी पसंद किया। बड़ी बहन गौहर के हीरोइन होने के कारण अमीरबाई को विष्णु भक्ति फिल्म में काम मिल गया। लेकिन उनकी किस्मत बॉम्बे टॉकिज की फिल्म किस्मत से चमकी। संगीतकार अनिल विश्वास को इस बात का श्रेय है कि उन्होंने अमीरबाई की आवाज को घर-घर में पहुँचा दिया। आरंभ में अमीरबाई ने अभिनय किया और अपने गाने खुद गाए। बाद में आवाज उधार देने लगी। भर्तृहरि, कारवाँ, आम्रपाली, शिकारी, आठ दिन, लीला और सिंदूर उनकी लोकप्रिय फिल्में हैं। हिंदी के अलावा उन्होंने गुजराती एवं मारवाड़ी गाने भी गाए हैं। गाँधीजी को उनका गीत वैष्णव जन तो तेने कहिए बहुत पसंद था। लता मंगेशकर तक उनके गानों की प्रशंसा करती हैं। उनके प्रमुख गीत हैं- *ओ दुनिया बनाने वाले (सिंदूर) *चंदा देश पिया के जा (भरथरी) *धीरे-धीरे आ रे बादल (किस्मत) *अब तेरे सिवा कौन मेरा कृष्ण कन्हैया *मार कटारी मर जाना (शहनाई) *झुलना झुलाओ (नरसी भक्त)।

बस्ती-बस्ती पर्वत-पर्वत गाता जाए बंजारा : रफी

● सुरेश ताम्रकर

दिलीप कुमार, देवआनंद और राजकपूर तीनों समकालीन थे। मगर जो यश स्वर्गीय राजकपूर ने अर्जित किया, वह शेष दोनों नहीं कमा सके। उसी प्रकार फिल्म गायकी के क्षेत्र में मुकेश, मन्नाडे और मोहम्मद रफी का प्रवेश लगभग साथ-साथ हुआ। लेकिन रफी की ख्याति इन दोनों से ऊपर रही। इसकी वजह थी रफी का बहु-आयामी स्वर। प्रसिद्ध गीतकार साहिर ने उनके बारे में एक बार कहा था, "रफी आवाज से अभिनय करते हैं।"

◆◆◆

जानीवाकर को स्वर देना हो, तो उनके कंठ से 'ऐ दिल है मुश्किल जीना यहाँ' सुन कर लगता है कि मानों जानीवाकर अपना गीत खुद ही गा रहे हैं। 'मान मेरा एहसान' में साक्षात दिलीप कुमार उनकी आवाज में उतर आते हैं। शम्मीकपूर के लिए रफी चाहे कोई मुझे जंगली कहे भी गा लेते थे और देव आनंद के लिए 'मैं जिंदगी का साथ निभाता चला गया भी।' रफी की यह जो खासियत थी वह मन्नाडे में तो कुछ हद तक है मगर मुकेश में नहीं मिलती। संगीतकार नौशाद के अनुसार रफी की आवाज में गजब की रेंज थी। उन्होंने अपनी 'म्युजिकल हिट' बैजूबावरा में रफी की आवाज का भरपूर इस्तेमाल किया। रफी का प्रवेश हालाँकि फिल्मों में १९४४ से हो चुका था पर उनके डंके बजे बैजूबावरा (१९५२) से। 'बैजूबावरा से पहले नौशाद 'दीदार' (१९५१) में भी रफी की रेंज को परख चुके थे। इस फिल्म का गीत 'मेरी कहानी भूलने वाले, तेरा जहाँ आबाद रहे' में रफी के स्वर का आरोह-अवरोह सुनते ही बनता है। आवाज की इस जादूगरी का ही कमाल है कि रफी ने अपने समकालीन लगभग सभी प्रमुख अभिनेताओं को आवाज दी। अशोक कुमार, दिलीप कुमार, देवआनंद, राजकपूर, राजेंद्र कुमार, मनोज कुमार यहाँ तक कि गायक अभिनेता किशोर कुमार भी 'शरारत' और 'रागिनी' में रफी की आवाज पर 'शरारत' करते नजर आए। अगर रफी ने पिता राजकपूर के लिए गाया,तो बेटे ऋषि को भी नहीं बख्शा। सहगल के बाद फिल्म स्वर-संसार में जो सूनापन आया था, उसे रफी ने महसूस नहीं होने दिया। आज रफी की नकल उतारने वाले पचासों गायक खड़े हो गए हैं लेकिन रफी जैसा गाने वाला एक भी नहीं जन्मा। लताजी ने कहा था रफी-'रफी' थे। उनकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती। कोई नया गायक रफी से उन्नीस हो सकता है इक्कीस हो सकता है। मगर रफी जैसा बीस नहीं हो सकता।

मगर फर्ज कीजिए रफी अगर दस-बीस साल बाद वैसा ही कंठ लेकर पैदा होते तो क्या इतनी बुलंदी पर आज पहुँच पाते? दरअसल १९५० से १९७० तक के दो दशक हिन्दी फिल्म संगीत का स्वर्णकाल थे। इस दौरान गायक-गायिकाएँ अगर अच्छे थे, तो उनके लिए श्रेष्ठ बोलों के रचियता हसरत, साहिर, शकील, शैलेन्द्र, राजेंद्र कृष्ण और तनवीर नकवी जैसे गीतकार भी थे और इन्हें संगीत के सुरों में ढालने वाले हुस्नलाल भगतराम, नौशाद, गुलाम मोहम्मद, सी. रामचंद्र, मदन मोहन, एस. डी. बर्मन, शंकर-जयकिशन, सलिल चौधरी जैसे संगीतकार भी थे। तिपाई के तीन पायों की तरह किसी गीत की सफलता के लिए भी गायक, गीतकार और संगीतकार की श्रेष्ठ तिकड़ी जरूरी है। यही वजह है कि जो लता

मोहम्मद रफी

* जन्म : २४ दिसंबर १९२४
* अवसान : ३१ जुलाई १९८०
* जन्मस्थली : सुल्तानसिंह (लाहौर)
* पहली फिल्म : 'गुलबलोच' (पंजाबी) १९४४
* नूरजहाँ के साथ पहली फिल्म : 'जीनत' (१९४५)
* लता के साथ पहली फिल्म : 'शादी से पहले' (१९४७)
* सहगल के साथ पहली बार : 'शाहजहाँ' (१९४६)
* कुल गीतों की संख्या लगभग २० हजार
* ६ बार फिल्म फेअर अवार्ड
* १९६७ में पद्मश्री

१९७० के पूर्व गाती थीं आज आवाज अच्छी होने पर भी उन दिनों जैसा सदाबहार गीत क्यों नहीं दे पातीं।

रफी का प्रवेश जिस समय हुआ था, कुंदनलाल सहगल उतार पर थे, मुकेश मैदान में थे, मगर वे एक ही लय में गाते थे। मन्नाडे वीर रस के गाने और शास्त्रीय संगीत पर आधारित 'लपक झपक तू आ रे' तो खूब गा लेते थे, मगर शृंगार रस का लोच अपने स्वर में उतनी अच्छी तरह नही उतार पाते थे। फिर सभी कलाकारों पर उनकी आवाज फिट नहीं होती थी। तलत महमूद की आवाज मीठी थी मगर उनकी अपनी एक अलग शैली थी। वह गजल सम्राट हो सकते थे गीतों के बादशाह नहीं। इसीलिए रफी की बहुआयामी आवाज जो उस युग की जरूरत थी, खूब चली।

आरंभ में रफी भी मुकेश की तरह सहगल से प्रभावित थे। शुरू के दिनों के उनके पुराने रिकॉर्ड अगर सुनें तो सहगल को सुनने का भ्रम हो सकता है। मगर बाद में उन्होंने अपनी शैली अलग विकसित की। वैस रफी को आगे बढ़ाने का श्रेय कुंदनलाल सहगल को ही है। उन दिनों सहगल का सितारा बुलंदी पर था। रफी बचपन में सहगल के गीत गाया करते थे। एक बार सहगल ने उनका गाना सुना तो बड़े प्रभावित हुए और उनका परिचय लाहौर रेडियो से करवा दिया। कहते हैं बचपन में रफी का गाना सुन कर एक फकीर बाबा ने उन्हें आशीर्वाद दिया था कि आगे चलकर यह बालक खूब नाम कमाएगा। इस बात से प्रेरणा पाकर उनके वालिद उन्हें गाने के लिए प्रोत्साहित करते रहे। फिर बड़े भाई हामिद ने उन्हें बकायदा किराना घराना के उस्ताद अब्दुल वहीद खान, उस्ताद छोटे गुलाम अली खाँ तथा पं. जीवन लाल मट्टू जैसे नामी संगीतकारों से शास्त्रीय संगीत की शिक्षा दिलाई। शायद यही वजह है कि रफी ने शास्त्रीय संगीत पर आधारित गाने भी बखूबी गाए। मधुबन में राधिका नाचे रे (कोहिनूर), मन तड़पत हरि दर्शन को आज (बैजूबावरा), नाचे मन मोरा मगन धिग ता (मेरी सूरत तेरी आँखें) दुनिया न भाए मोहे अब तो बुला ले (बसंत बहार) इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

लाहौर रेडियो पर नाम कमाने के बाद रफी संगीतकार श्यामसुंदर के संपर्क में आए। उन्होंने रफी को अपनी पंजाबी फिल्म 'गुलबलोच' (१९४४) में मौका दिया। रफी के पार्श्व गायन की यही पहली फिल्म है। इसके बाद रफी संगीतकार नौशाद के पिता का सिफारिशी पत्र लेकर नौशाद से मिले। उन दिनों संगीतकार नौशाद का अच्छा नाम था। जब १९४६ में 'शाहजहाँ' बन रही थी तो नौशाद ने रफी को सहगल के साथ एक कोरस में मौका दिया। इस गीत का मुखड़ा था 'मेरे सपनों की रानी रुही रुही रुही'। इसके बाद नौशाद ने १९४६ में रफी की आवाज में अनमोल घड़ी का एक गीत रिकॉर्ड कराया 'तेरा खिलौना टूटा बालक तेरा खिलौना टूटा', इस फिल्म में सुरैया, सुरेन्द्र और नूरजहाँ तीनों ने अभिनय भी किया था तथा गाया भी था। यह अपने समय की सफलतम संगीतमय प्रेम कहानी थी। रफी की आवाज वाला गीत फिल्म में नेपथ्य गान की शैली में फिल्माया गया था। शुरू-शुरू में नौशाद रफी की आवाज हीरो के लिए इस्तेमाल करने में कतराते रहे। अनमोल घड़ी से पूर्व रफी जीनत (१९४५) में नूरजहाँ के साथ एक युगल गीत गा चुके थे। यह गाना उतना लोकप्रिय तो नहीं हुआ पर रफी की प्रतिभा को नूरजहाँ पहचान चुकी थीं। जब 'जुगनू' बनी तो नूरजहाँ ने संगीतकार फिरोज निजामी से कह कर रफी को फिर मौका दिलाया। इस फिल्म का युगल गीत 'यहाँ बदला वफा का बेवफाई के सिवा क्या है' खूब लोकप्रिय हुआ। फिर भी नौशाद रफी से हीरो के गाने गवाने का जोखिम उठाने से कतराते रहे। अनोखी अदा के सारे गीत उन्होंने मुकेश से गवाए, इसी तरह 'मेला' में भी सिर्फ 'ये जिंदगी के मेले' टाइटल सांग रफी को दिया गया। शेष गीत दिलीप के लिए मुकेश ने ही गाए।

इस बीच रफी संगीतकारों की पहली जोड़ी हुस्नलाल और भगतराम के संपर्क में आए। उन्होंने अपनी फिल्में प्यार की जीत, बड़ी बहन, मीना बाजार में रफी की आवाज का भरपूर इस्तेमाल किया। उस समय के प्रसिद्ध नायक श्याम पर रफी की आवाज भी खूब फिट बैठी। इसके बाद तो नौशाद को भी 'दिल्लगी' में हीरो श्याम के लिए रफी की आवाज का ही इस्तेमाल करना पड़ा। रफी की आवाज में इसके दो गीत 'तेरे कूचे में अरमानों की दुनिया ले के आया हूँ' तथा 'इस दुनिया में ऐ दिल वालों' दिल का लगाना खेल नही, की लोकप्रियता से प्रभावित नौशाद ने 'चाँदनी रात' में फिर रफी का इस्तेमाल किया। इस फिल्म में उभरती हुई गायिका लता ने उस समय के प्रसिद्ध जी.एम. दुर्रानी के साथ तथा श्याम कुमार ने अमीर बाई के साथ दोगाना गाया था। मगर रफी-शमशाद का

रफी का कौन सा गीत पहला ?

मोहम्मद रफी ने अपना सबसे पहला गीत पंजाबी फिल्म 'गुलबलोच' में गाया था ऐसी व्यापक मान्यता है। खुद रफी ने भी कई बार कुछ ऐसा ही उल्लेख किया है। लेकिन स्क्रीन में रंगाराव ने कहा है कि उन्होंने सबसे पहले 'गाँव की गोरी' फिल्म के एक समूह गीत में गाया था। १९४५ में आई इन दोनों फिल्मों के संगीतकार श्यामसुंदर थे। लेकिन डॉ. यासिन दलाल के पास १९४४ में रिलीज हुई कारदार की फिल्म 'पहले आप' का रिकॉर्ड है जिसमें रफी ने एक गीत शामकुमार के साथ गाया था। इस गीत बोल हैं–'एक बार फिर मिला दे'। नौशाद के संगीत वाली इस फिल्म में रफी ने जौहरा के साथ 'मोरे सैयाजी' और श्याम सुंदर के साथ 'बेखबर जाग' तथा और भी गीत गाए थे। इतना स्पष्ट प्रमाण होने के बाद भी रफी अपनी पहली फिल्म 'गुलबलोच' और 'गाँव की गोरी' बताते हैं। यह समझ में नहीं आता कि यदि 'पहले आप' रफी की पहली फिल्म है तो उनकी खोज का श्रेय नौशाद को मिलता है, वरना श्यामसुंदर को। यह भी संभव है कि 'गुलबलोच' के गाने पहले रिकॉर्ड हुए हों, मगर रिकॉर्ड 'पहले आप' के जारी हो गए हैं। बहरहाल अंतिम फैसला नौशाद ही कर सकते हैं।

अपने परिवार के साथ प्रसन्न मुद्रा में रफी

गाया युगल गीत 'कैसे बजाए दिल का सितार' तथा एकल गीत 'दिल हो उन्हें मुबारक जो दिल को ढूँढ़ते हैं' काफी लोकप्रिय रहे।

इसके बाद बनी 'बैजूबावरा' जिसने रफी को सफलता के शिखर पर बिठा दिया। इस फिल्म में कुल ग्यारह गीत थे जिनमें दो प्रसिद्ध शास्त्रीय गायक उस्ताद अमीर खाँ साहब ने और एक डी.वी. पलुस्कर ने गाया था। शेष सब गीत या तो रफी के गाए थे या रफी-लता के युगल स्वरों में थे। जब फिल्म रिलीज हुई, तो निर्देशक विजय भट्ट को रफी की योग्यता पर उतना भरोसा नहीं था। इसलिए फिल्म के पोस्टरों में अमीर खाँ साहब और पलुस्कर के नाम प्रचारित किए गए। लेकिन दर्शक तो गली-गली 'तू गंगा की मौज' और 'ओ दुनिया के रखवाले' ही गुनगुना रहे थे।

रफी ने फिल्मी गीतों के अलावा गैर फिल्मी गीत, गजलें, कव्वाली और नातें भी खूब गाई हैं। रफी के गाए ये गैर फिल्मी गीत भी उतने ही लोकप्रिय हुए हैं। खासकर मधुकर राजस्थानी के लिखे और रफी के गाए गीत। रफी की एक खासियत यह भी थी कि सिगरेट या शराब को वे छूते भी नहीं थे। मगर शराब व शबाब के गीत उन्होंने इस खूबी से गाए कि उनकी कोई सानी नहीं मिलती। सावन के महीने में, मुझे ले चलो (शराबी), हम बेखुदी में तुमको (काला बाजार), कोई सागर दिल को बहलाता नहीं (दिल दिया दर्द लिया) इसके अच्छे उदाहरण हैं। भाव प्रधान गीत भी रफी के गले से ऐसे फूटते थे कि श्रोता सुन कर आँसू बहाए बगैर नहीं रहता। चल उड़ जा रे पंछी (भाभी) और बाबुल की दुआएँ लेती जा, के अलावा भी ऐसे गीतों की लंबी फेहरिस्त है। अगर कोकिलकंठी लता ने 'ऐ मेरे वतन के लोगों' गाकर पंडित जवाहरलाल नेहरू को रुला दिया था तो रफी ने 'सुनो सुनो ऐ दुनिया वालों बापू की ये अमर कहानी' गाकर पंडितजी के नैन सजल किए थे। रफी ने अपने समय की लगभग सभी गायिकाओं के साथ युगल गीत गाए। लेकिन उनके सर्वाधिक और सबसे अच्छे युगल गीत लता के साथ ही मिलते हैं। बीच में लता से उनका मनमुटाव भी हुआ था और कुछ बरस तक लता ने रफी के साथ युगल गीत गाने से इंकार कर दिया था। बाद में यह विवाद सुलझ गया और इस हिट जोड़ी ने कई श्रेष्ठ गीत सुगम संगीत की इस दुनिया को दिए। रफी के गाए गीतों की सही-सही संख्या तो उपलब्ध नहीं है। मोटे तौर पर उन्होंने अपने ३५-३६ साल के सरगमी सफर में लगभग २० हजार गीत गाए हैं। गीतों की संख्या का विवाद हो सकता है मगर उनकी श्रेष्ठता निर्विवाद है। हिन्दी के अलावा रफी ने पंजाबी, मराठी, कोंकणी तथा अँगरेजी भाषा में भी गीत गाए हैं।

रफी एकमात्र ऐसे गायक हैं जो पृष्ठभूमि में जाने के बाद एक बार फिर उभर कर आए। सत्तर के पूर्वार्द्ध में जब 'आराधना' एवं 'कटी पतंग' जैसी फिल्में रिलीज हुई, तो किशोर के गाए गीत 'मेरे सपनों की रानी कब आएगी तू' और 'कोरा कागज था ये मन मेरा' आदि खूब लोकप्रिय हुए और रफी पृष्ठभूमि में चले गए। मगर 'हम किसी से कम नहीं' तथा 'लैला मजनू' रिलीज होने पर रफी एक बार फिल चल पड़े। यद्यपि वापसी के बाद रफी अपने अवसान ३१ जुलाई १९८० तक गाते रहे मगर पहले जैसे श्रेष्ठ गीत नहीं दे पाए। इसकी वजह यह भी हो सकती है कि नए संगीतकार रफी की प्रतिभा का वैसा इस्तेमाल नही कर सके जैसा नौशाद ने दीदार, आन, दीवाना, बैजूबावरा, उड़न खटोला या शबाब में किया था या शंकर-जयकिशन ने सीमा, चोरी-चोरी या बसंत बहार में किया था। संगीतकार एस. मोहिंदर ने भी रफी की आवाज का 'तेरा काम है जलना परवाने' (पापी १९५३), हजारों रंग बदलेगा जमाना (शीरी फरहाद १९५६) में अच्छा इस्तेमाल किया। बाबर, बरसात की रात, नई उमर की नई की फसल, चित्रलेखा और ताजमहल में रफी की आवाज और रोशन के सुरों का संगम भी भुलाया नहीं जा सकता। १९५९ में एक फिल्म बनी थी 'दो गुंडे' संगीतकार गुलाम मोहम्मद ने इस फिल्म में रफी से एक बहुत ही अच्छा गीत गवाया था 'अब वो करम कर के सितम मैं नशे में हूँ।'

१९५० से ७० के दो दशक रफी के जीवन का स्वर्णयुग कहा जा सकता है। इस दौरान उन्होंने एक से एक अच्छे गीत दिए और बदले में उन्हें पुरस्कार व शोहरत भी खूब मिली। छः बार फिल्म फेअर अवार्ड मिले। १९६७ में भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से अलंकृत किया। इसी दौरान उन्होंने २५ से अधिक बार विदेश यात्राएँ की और विदेशों में कार्यक्रम देकर वहाँ भी अपने झंडे गाड़े। ■

◆◆◆

रफी के १० श्रेष्ठ गीत

* ओ दुनिया के रखवाले (बैजूबावरा/१९५२/नौशाद)
* कहाँ जा रहा है तू ए जाने वाले (सीमा/१९५५/शंकर-जयकिशन)
* मैंने चाँद और सितारों की तमन्ना की थी (चंद्रकांता/१९५६/एन.दत्ता)
* ये महलों ये तख्तों ये ताजों की दुनिया (प्यासा/१९५७/सचिन दा)
* तुझे क्या सुनाऊँ मैं दिलरुबा (आखरी दाव/१९५८/मदनमोहन)
* टूटे हुए ख्वाबों ने (मधुमती/१९५८/सलिल चौधरी)
* खोया-खोया चाँद (काला बाजार/१९६०/सचिन दा)
* मधुबन में राधिका नाचे रे (कोहिनूर/१९६०/ नौशाद)
* जिन्दगी भर नही भूलेगी वो बरसात की रात (बरसात की रात/१९६०/रोशन)
* लगता नहीं है दिल मेरा (लालकिला/१९६०/एस.एन. त्रिपाठी)

क्यों याद आ रहे हैं गुजरे हुए जमाने

कहाँ है, आज भी सुनने पर जादू कर देता है। फिल्म अनोखी अदा में नौशाद के संगीत निर्देशन में उन्होंने शमशाद के साथ गाया था- क्यों उन्हें दिल दिया हाय ये क्या किया सुनने पर तबियत मस्त हो जाती है।

अपने नाम के साथ बी.ए. एल.एल.बी. लिखने वाले सुरेन्द्रनाथ दोस्तों की सलाह पर फिल्मों में काम करने बंबई आए थे। १९३६ में सागर मूवीटोन की फिल्म डेक्कन क्वीन में हीरो बनकर दो गाने भी गाए। देवदास फिल्म में सहगल ने गाया था- बालम आए बसो मोरे मन में।इसी तर्ज पर सुरेन्द्र ने बिरहा की आग लगी मोरे मन में गाकर अपने संगीत जीवन की शुरूआत की। नौशाद तथा अनिल विश्वास का सहारा पाकर सुरेन्द्र के गाने चल पड़े। मनमोहन, जागीरदार, जीवन साथी, औरत, गरीब, जवानी, भर्तृहरि, अनमोल घड़ी उनके जीवन की यादगार फिल्में हैं। १९५४ में 'गवैया' फिल्म में गाने के बाद उनका केरियर खत्म हो गया। मुगले आजम में सुरेन्द्र केवल तानपुरा लेकर खड़े रहे और पीछे से बड़े गुलाम अली खाँ साहब गाते रहे, ऐसे दिन भी उन्हें देखना पड़े। प्रमुख गीत: *क्यों याद आ रहे हैं (अनमोल घड़ी) *जले न क्यों परवाना (अनोखी अदा) *तेरी याद का दीपक (गवैया) *रे भँवरा मधुबन में (भृर्तहरि)।

ऊँची पूरी कद काठी के मालिक सुरेन्द्र का जन्म पंजाब के बटाला गाँव में हुआ था, ११ नवंबर १९१० को। उनकी आवाज में एक अजीब प्रकार का ठहराव था, उसी की वजह से उनके गीत अच्छे लगते थे। नूरजहाँ के साथ फिल्म अनमोल घड़ी में गाया गीत आवाज दे

गायिका कविता कृष्णमूर्ति दक्षिण भारतीय होते हुए भी उत्तर भारतीय हैं। चाचा-चाची ने गोद ले लिया, इसलिए परवरिश दिल्ली में हुई। हिन्दी-उर्दू सीखने के साथ ही हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की शिक्षा बलरामपुरी से प्राप्त की। अमृता प्रीतम के उपन्यास पर आधारित हिन्दी फिल्म 'कादम्बरी' (१९७७) में पहला गीत गाया। फिल्म संसार में अपने पैर मजबूती से जमाने के लिए आरम्भ में लताजी के गीतों का डबिंग किया। धीरे-धीरे मौलिक गीत मिलने लगे। माँग भरो सजना (१९८०) और प्यार झुकता नहीं (१९८३) इस क्रम में उल्लेखनीय फिल्में हैं। अब तक पचहत्तर फिल्मों में गीत गाए हैं। बंबई आकर किस्मत आजमाने का प्रोत्साहन हेमा मालिनी से मिला है। मन्ना डे के साथ देशभर में स्टेज कार्यक्रम देने से कविता कृष्णमूर्ति की अपनी पहचान बनी है।

छाया : ओम तिवारी

बाबुल मोरा नैहर छूटो जाए - सहगल

● रमेश वैद्य

न्यू थिएटर्स की फिल्म 'देवदास' के दो गीत 'दुख के दिन अब बीतत नाहीं' और 'बालम आय बसो मोरे मन में'—जो सहगल ने गाए थे उनमें दुःख के क्षणों में अभिव्यक्ति की गरिमा और स्वर में पवित्र मिठास सुनने को मिलती है।

सहगल आज एक किंवदंती बन चुके हैं। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को लेकर अनेक सच्ची झूठी कहानियाँ कही व सुनी जाती हैं। लेकिन उनके चाहने वालों का एक विशेष वर्ग है, जो अक्सर सहगल के गीत गुनगुनाते या सुनते रहते हैं। वे लोग केवल उनकी 'काली पाँच' का जिक्र करते हैं या फिर उनकी आवाज को ईश्वर का प्रसाद कहते हैं।

सहगल के जीवन की मुख्य धारा उनकी संगीत साधना थी। सफलता ने कभी भी सहगल के अहम को नहीं जगाया। वे सरल हृदय व सौम्य व्यक्ति थे। सहगल के गायन की सबसे बड़ी विशेषता थी उनकी सहजता और स्वर की स्वाभाविकता। उनके समकालीन गायकों में पंकज मलिक, के.सी. डे. या बाद में सचिन देव बर्मन को कोई स्वाभाविक गायक की संज्ञा नहीं देगा। सहगल के साथ ही स्वाभाविकता जोड़ी जाती हैं। गीत गाने

◆◆◆◆◆

मुझे काश सहगल कि आवाज मिलती

कोई चीज शायर की हमसाज मिलती
कोई शै मुसव्विर की दमसाज मिलती
ये कहता है कागज पै हर शेर आकर
मुझे काश सहगल की आवाज मिलती।

ऐसा कोई फनकार ए मुकम्मिल नहीं आया
नगमों का बरसता हुआ बादल नहीं आया
मौसीकी के माहिर तो बहुत आए हैं लेकिन
दुनिया में कोई दूसरा सहगल नहीं आया।

सदाएँ मिट गई सारी सदा ए साज बाकी है
अभी दुनिया ए मौसीकी का कुछ एजाज बाकी है
जो नेमत दे गया है तू वो नेमत कम नहीं सहगल
जहाँ में तू नहीं, लेकिन तेरी आवाज बाकी है।

नौशाद मेरे दिल को यकीं है ये मुकम्मिल
नगमों की कसम आज भी जिंदा है वो सहगल
हर दिल में धड़कता हुआ वह साज है बाकी
गो जिस्म नहीं है मगर आवाज है बाकी
सहगल को फरामोश कोई कर नहीं सकता
वो ऐसा अमर है कभी मर नहीं सकता।

● नौशाद अली

के लिए पूरी तैयारी और साधना के साथ प्रयास किया जाता है ऐसी सायास प्रक्रिया सहगल नहीं अपनाते थे। उनकी संगीत शिक्षा किसी प्रशिक्षण का अंग नहीं थी। उन्होंने संगीतज्ञ होने का दावा कभी नहीं किया। उस्ताद करीम खान साहब का एक कार्यक्रम मुरादाबाद में होना था। उनका सारंगीवादक किसी कारणवश नहीं आया। इसलिए एक स्थानीय अनजाने कलाकार इम्तियाज को करीम खान की संगत करने का अवसर मिला। इस प्रोग्राम में मुरादाबाद के अँगरेज स्टेशन मास्टर व उनकी पत्नी भी थी। सहगल को इसी महिला ने अँगरेजी सिखाई थी। मार्च के महीने में पतझड़ के दिनों में एक दोपहर, स्टेशन के किनारे इम्तियाज ने एक लड़के को ठुमरी गाते हुए सुना और सुनता ही रहा। इम्तियाज ने उस लड़के से पूछा 'तुमने गाना किससे सीखा? किसी से नहीं। यूँ ही नकल कर रहा था। इम्तियाज को लड़के की इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। बिना सीखे, समझे कोई कैसे इतने आत्मविश्वास और व्यक्तिगत गुणवत्ता से गा सकता था। यह लड़का **कुंदनलाल सहगल** ही था जो भारतीय सिनेमा संगीत का सिरमौर बना। सहगल की गायन प्रतिभा को सी.एच. आत्मा से लगाकर मुकेश तक अनेक गायकों ने अपनाया व उनके जैसा स्वर अपने गीतों में पैदा करने की कोशिश की। लता मंगेशकर और किशोर कुमार सहगल को ही अपना गुरु मानते हैं।

सहगल केवल एक सफल गायक ही नहीं थे उन्हें संगीत के हर पक्ष का पूरा ज्ञान भी था। जिस

सहगल-खुर्शीद : फिल्म तानसेन (१९४३)

तन्मयता से वे भजन गाते थे उसी अंदाज में वे गज़ल भी गाते थे। शास्त्रीय ठुमरी और दादरा गाने में तो उन्हें कमाल हासिल था। फिल्मों में युगल गीत और कोरस भी उन्होंने उसी अधिकार से गाए हैं। फिल्म तानसेन में उनका खुर्शीद के साथ गाया युगल गीत 'मोरे बालापन के साथी मोहे भूल जइयो ना' इतने बरसों बाद भी लोगों के मन को छू जाता है, फिल्म "स्ट्रीट सिंगर" में 'बाबुल मोरा नैहर छूटयो जाए' (ठुमरी) सहगल ने कुछ ऐसे अंदाज में गाई कि फिर कभी उन्हीं पंक्तियों में कोई अन्य गायक वैसा सोज व भाव नहीं भर पाया।

न्यू थिएटर्स की अनेक फिल्मों में गायन और अभिनय के कीर्तिमान स्थापित करने के बाद जब सहगल बंबई आए, तो उन्होंने रणजीत मूवीटोन के 'तानसेन' और 'भक्त सूरदास' में अपनी आवाज का ऐसा जादू पैदा किया जो उनके गले की परिपक्वता को रेखांकित करता है। 'दिया जलाओ' (तानसेन), 'पंछी काहे होत उदास' (भक्त सूरदास), 'करूँ क्या आस निरास भई' (दुश्मन), 'काहे को रार मचाई (लगन), 'एक बंगला बने न्यारा' (प्रेसिडेंट) और 'जब दिल ही टूट गया' (शाहजहाँ) उनकी गायकी की रेंज को सिद्ध करते हैं।

गायन और अभिनय के अलावा सहगल ने अपने स्वयं की गीत रचनाएँ भी की हैं। सहगल की धर्मपत्नी आशा रानी देवी अपने पति की संगीत रचना कौशल की याद करते हुए कहती हैं— 'गीत की रचना उन्होंने मेरी गोद में अपना सिर रखकर कलम से कागज पर की थी। आधुनिक फिल्मों में जो प्रभाव सौ साजिंदों के आर्केस्ट्रा के द्वारा पैदा नहीं किया जा सकता वह सहगल ने केवल हारमोनियम,तानपुरा और तबला, इन तीन वाद्यों के माध्यम से पैदा किया था। उनके गीतों में मन को छू लेने की जो शक्ति थी उसका मूल कारण था कि वे अपने गीत संगीत के साथ अपने आपको समाहित कर लेते थे।

प्रमथेश बरुआ, देवकी बोस, पृथ्वीराज कपूर, काननदेवी, पहाड़ी सान्याल, रायचंद बोराल, के. सी. डे, पंकज मलिक, नौशाद, केदार शर्मा और बी. एम. सरकार उनके समकालीन थे।

सहगल का जन्म जम्मू में सन् १९०४ की चार अप्रैल को हुआ। और सन् १९४७ की अठारह जनवरी को जालंधर में मृत्यु हुई। ■

तेरी गठरी में लागा चोर

तेरी गठरी में लागा चोर मुसाफिर जाग जरा और बाबा मन की आँखें खोल जैसे लोकप्रिय गीतों के गायक के.सी. डे बनाम कृष्ण चंद्र डे के बारे में दो बातें कही जाती है। कुछ उन्हें जन्मांध मानते हैं और कुछ कहते हैं कि लगातार पतंग उड़ाने के कारण सूरज की तेज रोशनी ने उनकी आँखों के आगे हमेशा के लिए अंधेरा कर दिया। दृष्टि खोकर भी के.सी. डे ने संगीत की साधना नहीं छोड़ी। कलकत्ता के करमतुल्ला खाँ, बादल खाँ और यावर खाँ से उन्होंने संगीत की शिक्षा ली। उनके गले की खास मिठास ने उन्हें लोकप्रिय बनाया। अपनी आवाज को उधार देकर उसे आजीविका बनाने की अनोखी मिसाल के.सी. डे हैं। गायन के अलावा उनकी रुचि अभिनय में भी थी। पूरन भगत के गीतों से उन्हें बेहद लोकप्रियता मिली। सहगल के साथ भी उन्होंने गीत गाए हैं। जाओ-जाओ ए मेरे साधु तथा क्या कारण है रोने का इन गीतों ने उन्हें बेहद लोकप्रिय बनाया। देवदास, धूप-छाँव, मंजिल, माया, विद्यापति, धरती माता, आँधी तथा मीनाक्षी फिल्में कलकत्ते में बनी और के.सी. डे की धूम मची। वे आजीवन अविवाहित रहे। उनके यादगार गीत हैं- * अंधे की लाठी (धूप छाँव) *पनघट पे कन्हैया (विद्यापति) * न आया मन का मीत (देवदास) * क्या कारण है (पूरन भगत)।

लूट लियो मन धीर
कानन बाला

कानन बाला या कानन देवी एक ऐसी अभिनेत्री-गायिका हुई हैं जिनको बंगाली-हिंदुस्तानी भाषा ने मोह लिया था। सहगल को उन दिनों न्यू थिएटर्स का आधार और कानन बाला को सौंदर्य समझा जाता था। न्यू थिएटर्स की फिल्म विद्यापति, मुक्ति, स्ट्रीट सिंगर, हास्पिटल और एम.पी. प्रोडक्शन की फिल्म जवाब में उनकी आवाज हमें भरमाती रही है। उन दिनों उच्चारण की कोई परवाह नहीं करता था, क्योंकि फिल्मों ने घुटनों के बल चलकर बोलना सीखा था। अप्रैल १९१६ में जन्मी कानन बाला के पिता रतनचंद्र दास कर्ज छोड़ कर चल बसे। दस साल की उम्र में उन्हें स्टुडियो में दाखिल होना पड़ा। 'जयदेव' नामक मूक फिल्म में छोटा-सा रोल मिला। १९३७ में विद्यापति फिल्म में अभिनय के साथ गाने भी गाए। १९४१ में जवाब फिल्म में गाया गाना ये दुनिया तूफान मेल सुपरहिट रहा। कुछ समय के लिए वे बंबई भी किस्मत आजमाने आई थीं। अशोक कुमार के साथ १९४८ में चंद्रशेखर फिल्म में काम कर वापस लौट गईं। 'साबारे आमि नमी' नाम से उन्होंने अपनी आत्मकथा भी लिखी है। १९७६ में उन्हें दादा फालके अवार्ड भी मिला है। उनके यादगार गीत हैं- * ऐ चाँद छुप ना जाना (ज़बाब) * सांवरिया मन भाया (मुक्ति) * मोरे आँगना में (विद्यापति)

शामे गम की कसम - तलत महमूद

● सुरेश गावड़े

तलत महमूद के शालीन व्यक्तित्व की एक पंक्ति में परिभाषा करते हुए शिरीष कणेकर ने लिखा है कि यह नेक इंसान सुगंधित धूप (अगरबत्ती) की तरह बुझ गया। भगवान ने आदमी को दिल दिया और इस दिल को रूलाने-तड़पाने के लिए तलत महमूद नामक मुलायम हथियार जमीन पर भेज दिया। दर्द तलत के गीतों की आत्मा है। परम सुख और दिली खुशियों से तलत महमूद का दूर तक रिश्ता नहीं है। अपार दुःख और व्यथा उनके गीतों का स्थायी भाव है। 'रो-रो बीता जीवन सारा' और 'ऐसे टूटे तार के मेरे गीत अधूरे रह गए' अथवा 'मितवा नहीं आए' गाने के लिए केवल एक ही आवाज होती है-तलत। 'दो-चार कदम जब मंजिल थी, किस्मत ने ठोकर खाई है' और 'शामे गम की कसम' की आर्त स्वर लहरियाँ तलत के गले से अपने आप झरने लगती हैं।

कुंदनलाल सहगल की तरह गायक- अभिनेता बनने की चाह तलत को हमेशा रही। शक्ल सूरत भी मालिक ने उन्हें दी। पर सफल अभिनेता वे कभी बन नहीं सके। दिले नादान, वारिस, डाक बाबू, एक गाँव की कहानी, सोने की चिड़िया आदि उनकी भूमिकाओं वाली फिल्में बुरी तरह से पिटीं। शायद वे सफल गायक के साथ-साथ सफल संगीतकार बन सकते थे। किंतु उस रास्ते को उन्होंने पता नहीं, क्यों नहीं अपनाया। उनकी कई गजलों की धुनें स्वयं उन्होंने बनाई। तुमने ये क्या सितम किया और गमे आशिकी से कह दो इन लाजवाब धुनों को उन्होंने मिनटों में ही तैयार किया। २० मई १९८८ को तलत महमूद इंदौर आए थे। घंटों उनके साथ बतियाने का मौका मिला। वे रुक- रुक कर बोलते हैं। उन्हें बोलते हुए सुनकर आप अंदाज ही नहीं लगा सकते कि ये वही लाजवाब गायक तलत महमूद हैं। उनकी श्रद्धा है कि है सबसे मधुर वो गीत जिन्हें हम दर्द के सुर में गाते हैं। तलत के तमाम गीतों को सुनने के बाद निचोड़ यह होता है कि फूल से भी घायल होने वाला मुलायम और आशिक दिल उनका है। बोलचाल, रहन-सहन और स्वभाव से भी तलत साहब वैसे ही हैं। ताज्जुब तो यह है कि उनके वालिद की आवाज बुलंद थी पर गाने बजाने से उन्हें नफरत थी। इधर तलत की आवाज इतनी मध्यम कि एक ही सोफे पर बैठने के बाद भी आसानी से आप उन्हें सुन नहीं सकते, सिर्फ अनुमान लगा सकते हैं।

कुंदनलाल सहगल बचपन से ही इस गायक के आराध्य थे। उनके घर में तो गाने बजाने पर बंदिश थी पर बुआ के यहाँ अक्सर महफिलें होती थीं बुआ के आग्रह से ही तलत के पिता ने उन्हें लखनऊ के मॉरिस म्युजिक कॉलेज में दाखिला कराया। संगीत विषय लेकर उन्होंने बी.ए. किया। कॉलेज में वे दाग, गालिब, मीर, इकबाल की गजलें गाते थे। उन्हीं दिनों कलकत्ता में न्यू थिएटर की शोहरत बढ़ रही थी। एच.एम. वी. ग्रामोफोन कंपनी को कुछ नए गायकों की आवश्यकता थी। जूथिका राय, जगमोहन, हेमंतकुमार ये सभी गायक बंगाली थे और उर्दू गजलों की अदायगी उनसे ठीक से नहीं हो पाती थी। एच. एम. वी. को किसी ने तलत के नाम की सिफारिश की। उनकी पहली दो रिकॉर्डें गजलों की नहीं; गीतों की थी-तुम लोक-लाज से डरती थी और सब दिन एक समान नहीं। उन्हीं दिनों तलत की पहचान एक और धुरंधर गायक पंकज मलिक से हुई। १९४४ में शिक्षा पूरी कर तलत कलकत्ता आ गए। उनके दोस्त एहसान मेरठी एक दिन उन्हें न्यू थिएटर ले गए जहाँ सेट पर कुंदनलाल सहगल मौजूद थे, तलत के अपने हीरो।

ए कातिबे तकदीर मुझे इतना बता दे, क्या मेरी खता है, क्या मैंने किया है, इस गाने की शूटिंग चल रही थी। मध्यांतर में तलत की मुलाकात सहगल से हुई। इसी साल कमल-दास गुप्ता के निर्देशन में उन्होंने 'तस्वीर तेरी दिल मेरा बहला न सकेगी' गाया। वे कहते भी हैं कि कमल ने हमारी जिंदगी बनाई। यह गीत तलत की जिंदगी में मील का पत्थर साबित हुआ। तपन कुमार नाम से तलत ने सौ डेढ़ सौ बंगाली गीत भी गाए और वे भी बेहद सफाई से।

१९४९ में न्यू थिएटर बंद हो गया। सहगल, पृथ्वीराज, हीरालाल आदि कलाकारों की तरह तलत भी कलकत्ता छोड़कर बंबई आ गए और संगीतकार अनिल विश्वास से मिले। तब तक तलत की ख्याति बंबई पहुँच चुकी थी। अनिल विश्वास ने आरजू फिल्म का गीत 'ए दिल मुझे ऐसी जगह ले चल जहाँ कोई न हो' उनसे गवाया। इसके बाद विनोद, गुलाम हैदर और फिर नौशाद ने भी तलत की आवाज का उपयोग किया।

तलत बंबई में ठीक-ठाक जमने लगे थे कि इरादतन अफवाह फैला दी गई कि गाते समय तलत नर्वस हो जाते हैं। तलत बताते हैं कि उनकी आवाज में एक तरह की 'लरजीश' है जो उनकी अपनी विशेषता है। पर उसे 'नर्वसनेस' कहा गया। मेरे व्यवसाय पर उस अफवाह का विपरीत परिणाम हुआ। उनके अनुबंध रद्द कर दिए गए। वे घबरा उठे। एक दिन आराम फिल्म में अनिल विश्वास के लिए कारदार स्टूडियो में तलत का रिकॉर्डिंग था। गाते हुए लरजिश नहीं आए यह सावधानी रखकर वे गा रहे थे। दो-तीन बार रिहर्सल हुई। पर अनिलदा संतुष्ट नहीं हुए। आखिरकार तलत से उन्होंने तलाश किया-क्या तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है? बेहतर है आज रिकॉर्डिंग ही नहीं करें। तलत ने अनिल विश्वास से अनुरोध किया कि रिकॉर्डिंग रद्द नहीं करें और बताएँ कि मुझसे क्या गलती हो रही है। अनिलदा ने पूछा तलत आज तुम्हारी आवाज की वह परिचित कम्पन (लरजिश) कहाँ गायब हो गई है।

लोग कहते हैं कि वह मेरे नर्वसनेस का परिणाम है। भले आदमी वही तो तुम्हारे गले की खासियत है और मुझे वही लरजीश चाहिए। यह सुनकर तलत का आत्मविश्वास लौट आया। आरजू की सफलता के बाद तलत के पार्श्वगायन की धूम मच गई। आराम, बाबूल, कामिनी, तराना, दो राहा, शबिस्तान, परछाई, पगले, दाग, कमल के फूल, राखी, रागरंगा, अदा, वफा, बेवफा, भाई-बहन, हमारी शान, संगदिल, अंबर, कवि, दायरा आदि फिल्मों में तलत का पार्श्वगायन था। इन्हीं दिनों तलत ने गैर फिल्मी गीत भी खूब गाए। पार्श्वगायन में जब उनका नाम चल निकला तभी अभिनेता बनने के उन्होंने असफल प्रयोग किए।

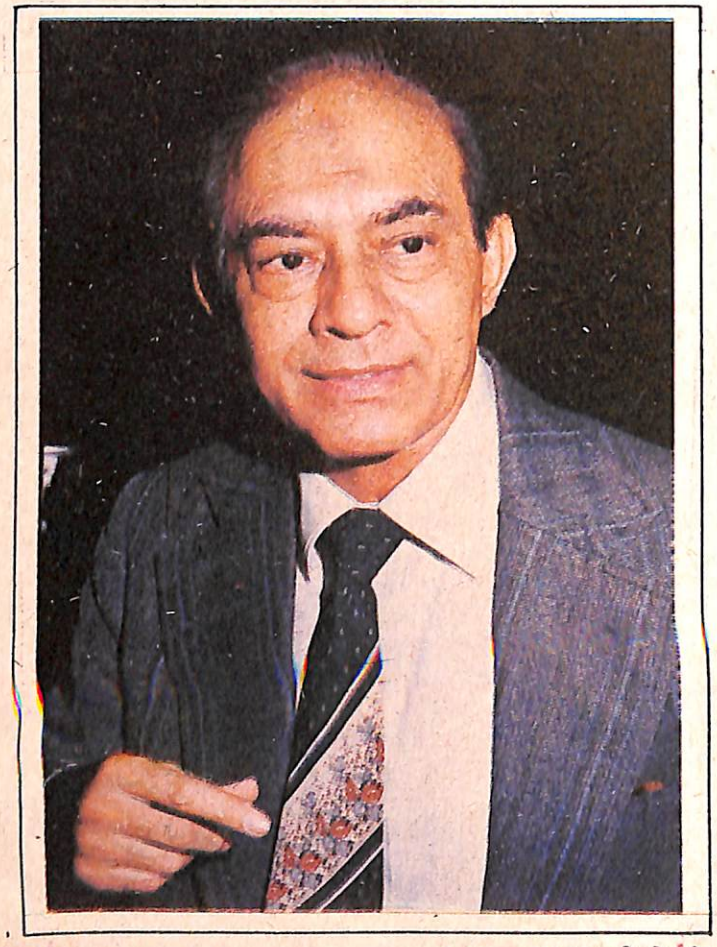

छाया : पी. के. जैन

तलत और मुकेश के कैरियर में गजब का साम्य है। दोनों ही एक ही वर्ष पैदा हुए। दोनों की पहली रिकॉर्ड एक ही वर्ष बनी। फिल्मों में पहला गीत दोनों ने अनिल विश्वास के निर्देशन में ही गाया।

दोनों ही दर्दभरे गीत गाने में विशेषज्ञ और तलत की तरह मुकेश ने भी फिल्मों में अभिनय करने का असफल प्रयोग किया था।

अनिल विश्वास के बाद तलत की आवाज की प्रतिभा का उपयोग मदन मोहन, एस. डी. बर्मन, सी. रामचंद्र और शंकर-जयकिशन ने खूब किया। किंतु समय के साथ अब तलत पार्श्वगायन से अदृश्य हो गए हैं। एक युवा संगीत निर्देशक के अनुसार आज के फिल्मी संगीत का 'ट्रेंड' तलत की आवाज के अनुकूल नहीं है किंतु सही बात तो यह है कि तलत की मदभरी आवाज के अनुकूल धुन बनाने की क्षमता आज के संगीतकारों में ही नहीं है। पार्श्वगायन से तलत महमूद लुप्त हो चुके हैं, किंतु उनकी पुरानी रचनाएँ आज भी उसी चाव से सुनी जाती हैं। प्रेमी युगलों को रोमान्स करने के लिए आज भी तलत की काव्य पंक्तियों का सहारा लेना पड़ता है। यही कारण है कि फिल्मों में आज नकारे गए तलत महमूद की संगीत जल्सों में बराबर माँग बनी हुई है।

◆◆◆

पार्श्व-संगीत का टेढ़ा-मेढ़ा सफर

फिल्मों में आजकल पार्श्व-संगीत देना दुकान से डबल रोटी खरीदने के समान है। लेकिन बरसों पहले संगीतकार को एड़ी-चोटी का जोर लगाना पड़ता था। कभी-कभी तो मुख्य संगीतकार पार्श्व संगीत देने से जी चुराकर खिसक लेता था। निर्माता को हारकर दूसरे संगीतकार की मदद लेना पड़ती थी। मसलन बी.आर. चोपड़ा ने गीत रहित फिल्म कानून तथा इत्तफाक के पार्श्व संगीत के लिए सलिल चौधरी की सेवाएँ लीं, जबकि इन फिल्मों में एन.दत्ता तथा रवि का संगीत था। पाकीजा के संगीतकार गुलाम मुहम्मद की अचानक मृत्यु के बाद पार्श्व-संगीत का काम नौशाद ने पूरा किया। यह बताने की जरूरत नहीं कि पाकीजा का पार्श्व संगीत लाजवाब था। 'यह रात फिर न आएगी' फिल्म का पार्श्व संगीत ओ.पी. नय्यर ने दिया था, और पूरे देश में उसकी प्रशंसा हुई थी। वी. शांताराम की संस्था राजकमल के स्थाई संगीतकार वसंत देसाई रहे हैं। लेकिन 'परछाई' फिल्म के पार्श्व संगीत के लिए शांताराम ने सी. रामचंद्र का सहयोग लिया था। अण्णा ने इसे अपना सम्मान समझा और राजकमल की गरिमा के अनुसार पार्श्व-संगीत दिया था।

रोऊँ मैं सागर के किनारे

गायक-अभिनेता कुन्दनलाल सहगल ने चालीस के दशक में गायकों, पार्श्वगायकों की एक पूरी पीढ़ी को प्रभावित किया था। चाहे वह मुकेश का 'पहली नजर' का गीत दिल जलता है हो या 'जिद्दी' में किशोर कुमार का 'जगमग-जगमग करता निकला चाँद पूनम का प्यारा' हो। सहगल की छाप उन सब पर दिखलाई देती थी। लेकिन सहगल की आवाज और शैली की हूबहू नकल करने वाले **सी.एच. आत्मा** के लिए जहाँ यह प्रारंभिक दिनों में बड़े गर्व और शायद लाभ की बात रही, वहीं आगे चलकर यह उनके लिए त्रासदी में बदल गई। अन्य गायकों ने तो बाद में अपनी- अपनी अलग शैलियाँ विकसित कर लीं, लेकिन सी.एच. को लोग उनके 'रोऊँ मैं सागर के किनारे' जैसे गीत के कारण सिर्फ याद करते हैं। फिल्म 'नगीना' का यह गीत वे अपने हर कार्यक्रम में गाकर सुनाते थे। वे जहाँ भी जाते पहले इसी गीत की फर्माइश की जाती थी। एक बार आखिर वे व्यंग्य और तल्ख मुस्कान के साथ बोल ही पड़े, 'बीस साल से सागर के किनारे वाले फ्लैट में रो ही रहा हूँ, लीजिए आप चाहते हैं तो यहाँ भी रो लेता हूँ।''

दस साल की उम्र में उन्होंने 'प्रेसिडेंट' में सहगल का गाया गीत 'ना कोई प्रेम का रोग लगाए' सुना और तभी से जैसे उन्हें यह रोग लग गया। वायरलैस की ट्रेनिंग पूरी करने के बाद जब वे बंबई आए तो रणजीत स्टूडियो में उन्हें सहगल के साक्षात् दर्शन करने का भी सौभाग्य मिला। लाहौर लौटने पर वहाँ उनकी ओ.पी. नैय्यर से मुलाकात हुई। नैयर ने उन दिनों किसी फिल्म के लिए एक लाजवाब धुन बनाकर रखी थी। उन्होंने ताबड़तोड़ उस धुन पर आत्मा की आवाज फिट कर दी। इसके बाद चार वर्ष तक तो यह रिकॉर्ड अंधेरी कोठरी में ही पड़ा रहा, मगर बाद में जो बजना शुरू हुआ, तो बजता ही रहा। 'प्रीतम आन मिलो, दुखिया जिया बुलाए' सी.एच. आत्मा की आवाज में गैर-फिल्मी गीत के रूप में ही इस कदर लोकप्रिय हुआ कि बाद में नैयर ने इसे गुरुदत्त की फिल्म 'मिस्टर एंड मिसेज फिफ्टी फाइव' में गीता दत्त की आवाज में दिया।

शंकर-जयकिशन की नगीना में शैलेन्द्र के लिए 'रोऊँ मैं सागर के किनारे' गीत की लोकप्रियता से ऐसा लगा कि शायद सहगल का युग फिर लौट कर आएगा। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। आत्मा ने एक बार नौशाद से भी उनसे एक गीत गँवाने का अनुरोध किया। उन्होंने वादा किया भी। लेकिन न्याय शर्मा ने 'राधाकृष्ण' की कथा को संगीतबद्ध करने की जो योजना नौशाद के साथ बनाई थी, वह पूरी नहीं हो सकी। नौशाद इसके लिए आत्मा की आवाज का उपयोग करना चाहते थे। सुरैया के साथ उन्होंने 'पूर्णिमा' और 'बिल्व मंगल' फिल्में कीं, लेकिन

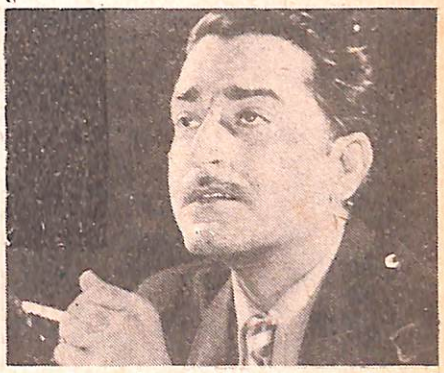

लता मंगेशकर के साथ कोई गीत गाने की उनकी हसरत पूरी न हो सकी। उनका अंतिम लोकप्रिय गीत वी. शांताराम की फिल्म 'गीत गाया पत्थरों ने' में 'मंडवे तले गरीब के दो फूल खिल रहे हैं' था। सहगल की आवाज की अनुकृति होने के बावजूद सी.एच. आत्मा की आवाज इन गीतों में अपनी विविधता के साथ खिली: दीया तो जला सारी रात रे बालम (ढाके की मलमल), 'चलो न गोरी मचल-मचल के अभी तो बालापन है, ओढ़ चुनरिया तारों की, 'नैनों में दो नैन समाए', 'हजारों ख्वाहिशें ऐसी' तथा 'एक सितारा है आकाश में, एक सितारा।'

मेरे पिया गए रंगून : शमशाद बेगम

गायिका शमशाद बेगम का गुरु और कोई न होकर एक ग्रामोफोन था। उसके भोंपू में से निकलती आवाज से चकित **शमशाद** ने गुनगुनाते हुए गाने का रियाज किया। स्कूल में उससे प्रार्थना गवाई जाती थी। उसकी सुरीली आवाज को मास्टर गुलाम हैदर ने सुना तो जैनाफोन रिकॉर्डिंग कंपनी में ले जाकर तेरह साल की कच्ची उम्र में पक्का पंजाबी गाना गवा दिया- हथ जोड़ा पंखियाँ दा...। यह गाना बेहद लोकप्रिय हुआ। कंपनी ने ३६५ दिनों में शमशाद से २०० गीत गवा लिए। उस समय एक गीत का पारिश्रमिक साढ़े बारह रुपए मिलता था। एक रुपए में ढाई मन गेहूँ या सवा सेर घी मिलता था। मास्टर गुलाम हैदर ने सारे गाने रिकॉर्ड कराए थे। बाद में संगीतकार श्यामसुंदर आए। इस समय तक शमशाद को फिल्मों के पार्श्व संगीत का ज्ञान नहीं था, क्योंकि उसने बहुत कम फिल्में देखी थीं। निर्माता पंचोली ने जैनाफोन से सुरीली गायिका माँगी तो बदले में शमशाद दे दी गई। पहली बार फिल्म 'यमला जट्ट' में शमशाद ने आठ गानों का पार्श्व गायन किया - कणकाँ दी फसलाँ पकियाँ। इसके बाद फिल्म 'चौधरी' के गाने भी हिट हुए। पंजाबी से हिन्दी फिल्मों में आकर शमशाद ने यहाँ भी धूम मचाई। फिल्मकार मेहबूब ने उन्हें बंबई बुलाकर तकदीर (१९४२) के लिए गवाया। इसके नायक मोतीलाल तथा नायिका नरगिस थीं। पन्ना फिल्म का गीत-संगीत इतना लोकप्रिय हुआ कि वह बावन हफ्ते चली। फिल्म मन की जीत में शायर जोश मलीहाबादी ने गीत लिखा था- मेरे जोबना का देखो उभार- शमशाद ने अश्लील बोल गाने से मना कर दिया था। काफी बहस के बाद गा तो दिया, मगर दूसरी बार जोश के सामने नहीं पड़ी।

इसके बाद बंबई में स्थाई रूप से बस कर सी. रामचंद्र के संगीत निर्देशन में धूमधड़ाकेदार गाने- मेरी जान संडे के संडे तथा मेरे पिया गए रंगून वहाँ से किया टेलीफून गाए। गोपालसिंह नेपाली का फिल्म नजराना में लिखा गीत गाया- एक रात को पकड़े गए दोनों साथ में जकड़े गए दोनों। सचिन दा के संगीत में सँवरी १६ गानों वाली फिल्म शबनम के सभी गाने हिट थे। शमशाद ने यह गाना- दुनिया रूप की चोर- पाँच भाषाओं में गाया था। शमशाद ने गुलाम हैदर, चित्रगुप्त, ओ.पी. नैय्यर, नौशाद, खेमचंद प्रकाश, मदन मोहन आदि तमाम नामी संगीतकारों की धुनों पर गाया है। **प्रमुख गीत:** * मोहन की मुरलिया बाजे रे (मेला) * कभी आर कभी पार (आरपार) * नहीं फरियाद करते (सावन आया रे) * न आँखों में आँसू (आग)।

प्रकृति की देन सबसे शुद्ध

आ गया स्नेह

मक्खन, घी और तुरंत घुलने वाला स्किम्ड मिल्क पाउडर

स्नेह, ताज़े ताज़े डेयरी पदार्थ. उगता सूरज जो ताज़गी लाए वही ताज़गी स्नेह में आए. भारत की सबसे नई और आधुनिक डेयरी में उत्पादित— स्नेह. उत्पादन के दौरान इसे हाथ से नहीं छुआ जाता— स्वच्छता के लिए। प्रकृति की शुद्धता, प्राकृतिक स्वाद स्नेह में आबाद.

स्नेह- प्रकृति के प्यार का उपहार

9840

Madhya Pradesh Dugdha Mahasangh (Sahakari) Maryadit

सा रे ग म प द नि स: सत्यजित राय

कैसा हो संगीत फिल्मों में

'संगीतकार' सत्यजित राय से धृतिमान चटर्जी की बातचीत

इस देश में किसी भी फिल्म-कर्मी की कला के विभिन्न पहलुओं में संगीत पर सबसे कम चर्चाएँ होती हैं। अतः सत्यजित राय जैसे निर्देशक, जो कि अपनी फिल्म के प्रत्येक पहलू पर सख्त नियंत्रण रखते हैं, से फिल्मों में संगीत के बारे में उनके नजरिए के बारे में बातचीत करना बहुत ही दिलचस्प और मूल्यवान अनुभव रहा।

◆◆◆

'संगीत से प्रेम मुझे बचपन ही से था। जब मैं तेरह-चौदह वर्ष का था, घर में एक खिलौना-ग्रामोफोन और कुछ रिकॉर्ड थे। कॉलेज में तथा शांति निकेतन में रहते हुए मेरी पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत में गहरी रुचि पैदा हुई। जब मैंने काम करना शुरू किया तो मैं बंबई की एस. रोज एंड कंपनी से पाश्चात्य संगीत की मुद्रित पुस्तिकाएँ खरीद कर एकत्रित करने लगा। रात को सोते समय मैं उनको पढ़ता था। तभी संगीत के 'स्टाफ नोटेशंस' (संकेत लिपि) से मेरा परिचय हुआ। हमारे परिवार में रवीन्द्र संगीत तथा शास्त्रीय संगीत का पहले से ही वातावरण था। अतः जब मैंने फिल्में बनानी शुरू की तो उनके संगीत के बारे में कोई विशेष तैयारी नहीं करनी पड़ी।'

धृतिमान चटर्जी: १९६६ में आपने कहीं कहा था कि फिल्म निर्माण के सारे चरणों में सबसे ज्यादा ध्यान आप फिल्म के संगीत-संयोजन पर देते हैं और उस वक्त वही सबसे मशक्कत भरा काम होता है। अब आप इसके बारे में क्या सोचते हैं?

राय: 'दरअसल संगीत-रचना का काम मैं वर्ष में सिर्फ एक ही बार करता हूँ। यदि मैं कोई पेशेवर संगीत रचयिता होता तो शायद मुझे उसमें कहीं ज्यादा आसानी होती। दूसरी बात यह कि मैंने सारा संगीत खुद अपने आप सीखा है। किसी भी फिल्म के संगीत के बारे में मन में उठनेवाले विचारों को मैं पहले शॉर्टहैंड में कागज पर उतार लेता था। बाद में उसे संगीत-लिपि में उतारना काफी कठिन लगता था। लेकिन अनुभव से अब यह प्रक्रिया काफी आसान हो गई है।

चटर्जी: क्या यही कारण था कि 'पाथेर पांचाली' में जो थोड़े से पेशेवर व्यक्ति आपने लिए थे, उनमें संगीत निर्देशक रविशंकर भी थे?

राय: मेरे संपादक और कला-निर्देशक को थोड़ा पेशेवर अनुभव था। मेरे केमरामैन सुब्रत मित्रा और मैं स्वयं, बिल्कुल नए थे। यही हाल अधिकांश अभिनेताओं का भी था। रविशंकर को लेने का कारण सिर्फ यही नहीं था कि वे मेरे आत्मीय थे। मुझे लगा कि एक ऐसे व्यक्ति के साथ काम करना एक अच्छा अनुभव होगा जो परंपरागत बंगाली-फिल्मी संगीत से भिन्न कुछ नयापन ला सकेगा।

चटर्जी: इतने प्रसिद्ध संगीतकार के साथ काम करने का अनुभव कैसा रहा?

राय: उन दिनों में भी रविशंकर अपनी विदेशयात्राओं में व्यस्त हो चुके थे। मैंने उन्हें बंबई (या दिल्ली) पत्र लिखा कि मैं 'पाथेर पांचाली' पर फिल्म बनाना चाहता हूँ और उसके लिए उनका संगीत चाहता हूँ। इसके बाद उनके कलकत्ता आने पर मैं उनसे मिलने गया। उन्होंने मुझे एक धुन; कुछ लोक-संगीत जैसी गुनगुना कर सुनाई और मुझे लगा कि वह बिल्कुल ठीक रहेगी। तो इस तरह 'पाथेर पांचाली' की 'थीम' तैयार हो गई। वह पूरी तरह से उन्हीं की थी। बाद में मैंने उसमें एक अंतरा और जोड़ने का सुझाव दिया। वास्तव में रविशंकर ने आधी से ज्यादा फिल्म सिर्फ एक ही बार देखी थी। हम लोग रिकॉर्डिंग रात में करते थे। मैं कहता था, "अब हम इस हिस्से के लिए संगीत तैयार करें।" इसके बाद वे और बाँसुरीवादक आलोक डे एक कोने में बैठ जाते और वहीं का वहीं संगीत तैयार कर डालते। कहीं-कहीं मुझे हस्तक्षेप भी करना पड़ा था।

जिस समय हरिहर लौटता है, सर्वजया फूट-फूट कर रो पड़ती है। मुझे लगा कि इस रुदन के प्रभाव

को संगीत के द्वारा बढ़ाना चाहिए। दक्षिणा रंजन टैगोर दिलरुबा बजा रहे थे। रविशंकर ने उसके लिए राग प्रदीप का सुझाव दिया। मैंने टैगोर से दिलरुबा के ऊँचे स्वर निकालने को कहा। बाद में, मगर, मेरा विचार बिल्कुल बदल गया और मैंने सिर्फ रोने की आवाज ही रहने दी।

"अपराजितो में कबूतरों की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण थी। मैं उनकी उड़ान के माध्यम से बनारस के घाटों को एक नए दृष्टिकोण से दिखलाना चाहता था। इसीलिए जैसे ही हरिहर की मृत्यु होती है, मैं कैमरा 'कट' करके कबूतरों की उड़ान का पीछा करने लगता हूँ। कबूतरों की इस उड़ान के साथ रविशंकर द्वारा राग जोग में रची हुई बहुत ही उपयुक्त धुन बजती है। मुझे याद है वेनिस में इस दृश्य के आने पर खूब तालियाँ बजी थीं। भिन्न वाद्य वृन्द के साथ यही धुन सर्वजया की मौत के समय भी बजती है। एक तरह से मृत्यु या उसके आगमन की प्रतीक यह धुन फिल्म की दूसरी 'थीम' धुन बन गई।"

चटर्जी: छठे दशक के बाद से हमने देखा है कि अब जोर स्वाभाविक 'साउंड ट्रेक' रखने पर दिया जाने लगा है। क्या आप मानते हैं कि पार्श्व-संगीत अब पुराना फैशन हो गया है?

राय: यह दुविधा तो मेरे भी मन में शुरू से ही रही है। मुझे हमेशा से यह महसूस होता रहा है कि संगीत फिल्म पर एक ऊपर से थोपी हुई चीज है। हमें उसके बिना ही अपने आपको अभिव्यक्त करना चाहिए। आखिर हम क्यों उसका उपयोग करते हैं? क्या हमें खुद पर भरोसा नहीं होता या हम प्रेक्षकों की कूवत को कम आँकते हैं? हमें अक्सर लगता है कि किसी 'मूड' को संगीत के द्वारा रेखांकित करना जरूरी नहीं है, क्योंकि पिछले तीस-चालीस वर्षों में प्रेक्षक की समझ बढ़ी है। लेकिन फिर जब आप अपने चारों तरफ देखते हैं कि लोग कैसा संगीत पसंद या नापसंद कर रहे हैं तो लगता है कि लोग वहीं हैं, जहाँ वे पचास के दशक में थे। सारा दारोमदार इसी बात पर निर्भर करता है कि किसी विशेष दृश्य का 'मूड' क्या है और वह संगीत से उभरेगी या ध्वनि प्रभाव से। जिस समय आप समय, यानी काल-अवधि को नियंत्रित करते हैं तो संगीत जितना कम हो उतना ही अच्छा होता है। जब काल टूटता चलता है तो संगीत उसका सुरेख-प्रवाह बनाए रखने में मदद करता है।

चटर्जी: आपकी प्रारंभिक फिल्मों में थीम को प्रभावी बनाने के लिए किस फिल्म में सबसे ज्यादा आर्केस्ट्रा का उपयोग हुआ?

राय: जलसाधर में। मुझे पता था कि उसमें खामोशी के सबसे ज्यादा दृश्य रहेंगे। अतः पार्श्व-संगीत का काफी प्रयोग करना होगा। इस फिल्म के अंतिम क्षणों में आतंक,अनिश्चितताबल्कि एक तरह की वीभत्सता का वातावरण पैदा करना था। महल की एक-एक रोशनी गुल होती जाती है। फिल्म में **विलायत खाँ** का संगीत था। उनके साथ उनके भाई **इमरत खाँ** भी थे। उक्त दृश्य के लिए विलायत और सिबेलियस एक साथ बजते हैं। यह विस्तार एडिटिंग रूम में किया गया था। इस संयोजन से जो ध्वनि-प्रभाव पैदा होता है, उसकी बुनावट को सिर्फ संगीत-पथ (म्यूजिक ट्रेक) कहना उचित नहीं होगा।

चटर्जी: आपने अपनी फिल्मों के लिए स्वयं कैमरा उठाया, उसके पूर्व ही १९६१ में 'तीन कन्या' से ही आपने संगीत रचना शुरू कर दी थी। यह काफी महत्वपूर्ण है।

राय: 'अपूर संसार' से ही अपनी फिल्मों के लिए संगीत-विचार तो मेरे दिमाग में उठने लगे थे। मगर मैं अपने विचार या सुझाव अपने साथियों को नाराज न करने के लिए बड़ी हिचकिचाहट के साथ देता था। करुण संगीत के लिए मुझे हॉलीवुड- शैली के वायलिन या हमारे यहाँ प्रचलित दिलरुबा या सारंगी का उपयोग पसंद नहीं था। यही बात तबले

तीन कन्या (बंगाली) : अर्पणा दासगुप्ता

के प्रयोग के बारे में थी। पार्श्व-संगीत के टुकड़ों में इनके एक साथ प्रयोग से वह बहुत ही औपचारिक लगने लगता था। उसे हम फिल्म-स्कोर नहीं कह सकते। यह समस्या मैंने रविशंकर और विलायत तथा 'देवी' में **अली अकबर** से किसी तरह सुलझा ली थी। 'देवी' संगीत के हिसाब से मेरे लिए बड़ी कठिन साबित हुई। संपादन के समय 'लूपों' की मदद से काफी 'इम्प्रोवाइज' करना पड़ा। अली अकबर ने मुख्य रूप से चंद्रनंदन राग का उपयोग किया था, जिसके ऊपर वे इन दिनों निजी रूप से भी काम कर रहे थे। मेरे हिसाब से 'देवी' के कथानक, जो कि एक सौ पचास वर्ष पुराना था, के लिए और भी पुराने राग का उपयोग किया जाना चाहिए था। दूसरी दिक्कत यह थी कि यदि आप किसी एक राग को ही विकसित करते चले जाते हैं तो फिल्म के बदलते 'मूडों' को ठीक से नहीं निभायां जा सकता। मेरे ख्याल से जटिल 'मूड-परिवर्तनों' को रेखांकित करने में पश्चिमी संगीत ज्यादा सहायक होता है। हर स्वर के साथ तीव्र से मध्यम, और मध्यम से तीव्र स्वर संयोजन हम पाश्चात्य शैली में बेहतर ढंग से कर सकते हैं। दयामयी के बदलते मनोभावों की जटिलता को उभारने के लिए अली अकबर ने पाँच मिनट का एक राग रचा। उसमें उन्होंने कई अप्रत्याशित चीजें कीं और ऐसा करते हुए वे मूल राग पर लौटते थे।

लेकिन इस सबके बावजूद मुझे यह साफ हो गया कि अन्य लोगों के साथ मिलकर काम करने में दिक्कतें खड़ी होती हैं। संगीत बिल्कुल ठीक 'नाप' का नहीं मिलता था, जिससे संपादन के समय बहुत मेहनत करनी पड़ती थी।

चटर्जी: पहली फिल्म होने के कारण 'तीन कन्या' में आपको आसानी तो नहीं रही होगी?

राय: मुझे याद है कि मैंने पहले 'पोस्टमास्टर' का पूरा संगीत तैयार कर लिया था। फिर अचानक एक दिन पूर्वी बंगाल से दो शरणार्थी युवा आ गए उन्होंने मुझे 'दोतारा' तथा 'सारिंदा' नामक वाद्य बजाकर सुनाए। मैंने उन्हें रिकॉर्ड कर लिया और बाद में फिल्म में उन्हीं का उपयोग किया। मेरे द्वारा रचित सिर्फ एक बाँसुरी का टुकड़ा मैंने फिल्म में रखा था।

चटर्जी: संगीतकार के रूप में कुछ फिल्मों का संगीत आपको ज्यादा प्रिय भी होगा?

राय: 'तीन कन्या' के मणिहार प्रकरण में कुछ दिलचस्प टुकड़े थे। मगर यदि पार्श्व स्वरलेख के हिसाब से देखा जाए तो मैं अपनी सबसे अच्छी फिल्म 'चारुलता' को मानता हूँ। उसमें हर चीज उसकी सही जगह पर है। बेशक 'गोपी गायन, बाघ बायन' तथा 'हीरक राजार देशे' भी अच्छे हैं 'शतरंज के खिलाड़ी' के लिए थोड़ा वक्त और मिल होता तो नतीजा ज्यादा संतोषजनक हुआ होता।

यहाँ मैं एक बुनियादी बात कहना चाहूँगा। ज भी मैं अपनी कोई पुरानी फिल्म देखता हूँ तो अप आप से कहता हूँ, "यदि मौका मिले तो मैं उसे फि से संपादित करूँ तथा उसका संगीत पूरा का पू फिर से लिखूँ। कारण, हमेशा ही यह काम हमें ब जल्दबाजी में करना पड़ता है। जैसे ही शूटिंग खत होती है, रिलीज की तारीख तय हो जाती विदेशों में ऐसा नहीं होता। वहाँ तो रिहर्सल तक लिए अलग से वक्त दिया जाता है। वे लोग परदे फिल्म साथ-साथ चलाते हैं और संगीत या 'साउ की किसी भी कमी को वहीं का वहीं दुरुस्त कर हैं।

बहरहाल अब तो हमने भी कुछ अपने तरीको सुधार किया है। मैं सारे संवादों को एक कैसेट बीच की खामोशियों के साथ रिकॉर्ड कर लेता फिर मैं इसका एक चार्ट बना लेता हूँ, जिस संगीत के टुकड़ों की बिल्कुल सही अवधि मि जाती है। मुझे पता चल जाता है कि मुझे कौन टुकड़ा कहाँ 'फिट' करना है। मैं कहना यह चाह हूँ कि मैं ऐसा इसलिए कर पाता हूँ कि फिल्म मैं बना रहा होता हूँ, इसलिए उसका हर सू विवरण मेरे दिमाग में रहता है। मगर यह स चीजें अनुभव से आती है और इनके कोई पहले निर्धारित नियम नहीं होते। हम अपने नियम बनाते चलते हैं।

(सिनेमाविजन

संगीत से ज्यादा महत्वपूर्ण होती है 'ध्वनि'

ब.व. कारंत से जे. एन. कौशल की बातचीत

ब. व. कारंत के पास न तो पेशेवर संगीतकार (गायक-वादक) थे न वक्त।गिरीश कर्नाड के साथ **गोधूलि** की शूटिंग बंगलौर से ५० किलोमीटर दूर एक गाँव में हो रही थी। निर्माता के पास इतना पैसा नहीं था कि वह पेशेवर संगीतकारों को पैसे दे सके या रिकॉर्डिंग स्टुडियो की व्यवस्था कर सके। अत: मैं रात में एक खटारा ऑटो रिक्शा से बंगलौर वापस लौट कर जैसे-तैसे काम चलाऊ उपकरणों से रिकॉर्डिंग करता था। हमारे पास 'बेनका' थिएटर ग्रुप के ही संगीतकार तथा वक्त-बेवक्त गा लेने वाले गायक थे। इसके बावजूद ब.व.कारंत को **ऋष्यश्रंग** के लिए सर्वश्रेष्ठ संगीतकार का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला।

कारंत कभी भी अधिक बड़े आर्केस्ट्रा का उपयोग नहीं करते। "निर्देशक से मैं पूछता हूँ मुझे कौन सा 'मूड' बनाना है। यह नहीं कि मुझे कौन से वाद्य बजाना है।" मुझे येहुदी मेन्युहिन पसंद है। लेकिन जब भी करुण वातावरण पैदा करना हो, तो विलाप करते वायलिनों के प्रयोग से मुझे

चोमना डूडी: कारंत के स्वर

नफरत है। कारंत चित्र-विचित्र वस्तुओं से संगीत पैदा करने में माहिर हैं। 'किसी कक्षा में दो सौ विद्यार्थियों द्वारा अपने कंपास, पेंसिल, स्केल, माचिसों तथा बातचीत द्वारा जो ध्वनियाँ पैदा होती हैं वे अद्‌भुत वातावरण का निर्माण करती हैं।' ऋष्यश्रृंग में सूखी बंजर धरती तथा क्षितिज पर गहराते अकाल के लिए उन्होंने चार तानपुरों के ढीले तारों से पैदा स्वरों का प्रयोग किया। मृणाल सेन के **परशुराम** के पार्श्वसंगीत के लिए उन्होंने राज-मिस्त्रियों तथा सिलावटों के औजारों का उपयोग किया था। "मैं जब संगीत-निर्देशक के रूप में कोई फिल्म स्वीकार करता हूँ, तो अपने-आप को सिर्फ गीतों तथा पार्श्व संगीत तक ही सीमित नहीं रखता। मैं पूरे साउंड ट्रेक (ध्वनि पथ) की योजना तैयार करता हूँ।"

कारंत का कहना है कि फिल्म की पटकथा के साथ-साथ विस्तृत ध्वनि लेख भी तैयार किया जाना चाहिए। "बोले गए शब्दों को सर्वोपरि रखते हुए, हमें अन्य ध्वनियों के उपयोग को भी पहले से तय कर लेना चाहिए। कुल ध्वनि-सिनेरियों में संगीत का स्थान दस प्रतिशत से ज्यादा नहीं होना चाहिए।"

सारी रूप-रेखा में विरामों तथा 'खामोशियों' का भी उतना ही महत्व होता है। चोमना डूडी की शूटिंग प्रारंभ करने के पूर्व ही उन्होंने पूरी 'ध्वनि योजना' तैयार कर ली थी। "आपने ध्यान दिया होगा कि फिल्म के विभिन्न पात्रों के लिए मैंने गौरेय्याओं की विभिन्न चह-चहाहटों का उपयोग किया था। झिंगुरों की आवाजों के बारे में आपने देखा होगा कि जब पात्र घरों के बाहर होते थे तथा जब भीतर होते थे, वे भिन्न होती थीं।" वातावरण बनाने वाली ध्वनियाँ एकत्र करने के लिए कारंत कई दिनों तक मैदानों में अपना टेपरिकॉर्डर लिए घूमते रहे, "मैंने मेंढकों के टर्राने की आवाज भी रिकॉर्ड की और वे मेरे निर्देशों का उसी तरह पालन करते थे जैसे मैं किसी वाद्यवृंद का संचालन कर रहा होऊँ।"

कारंत हमेशा जिस क्षेत्र की कहानी है, वहीं के मूल वाद्यों का प्रयोग करते हैं। चोमना की डुग्गी तो उन्हीं के गाँव का था, लेकिन ऋष्यश्रंग में उन्होंने मलनाड़ के वाद्य मद्दाले का उपयोग किया था। इलेक्ट्रॉनिक संगीत का वे बहुत कम उपयोग करते हैं। एक मानसिक रूप से अवरुद्ध बच्चे की कहानी 'अरिवू' (अहसास) में उन्होंने बच्चे की मन:स्थिति व्यक्त करने के लिए पियानो अकॉर्डियन का उपयोग किया है।

परंपरागत वाद्यों के अलावा कारंत उस इलाके की ध्वनियों का अधिकतम उपयोग करते हैं। मृणाल सेन की **एक दिन प्रतिदिन** में उन्होंने साइकल और दरवाजे की घंटियों तथा पुलिस की गाड़ी के सायरन का उपयोग किया।**घटश्राद्ध** (इसके लिए उन्हें दूसरी बार सर्वश्रेष्ठ संगीत का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला) में उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों द्वारा किए जाने वाले वैदिक मंत्रोच्चारों तथा अनुष्ठानात्मक ध्वनियों का उपयोग किया है। 'हंस गीते' के संगीत में उन्होंने हवाओं और समुद्र की आवाजों को एक दूसरे में गुँथ कर विशेष प्रभाव पैदा किया।

कारंत ने **पिया का घर** और **गमन** के पार्श्व-संगीत पर ध्यान दिया था कि कैसे उनमें गुजरती ट्रेनों, हवाई जहाजों तथा महानगरीय ध्वनियों, यहाँ तक कि रेडियो पर बजने वाले विज्ञापनों का, बड़ा ही कल्पनाशील उपयोग किया गया था। सत्यजित राय द्वारा 'नायक' में ध्वनियों के उपयोग से भी वे प्रभावित हुए थे। ट्रेन के भीतर आते-जाते यात्रियों द्वारा पैदा की गई ध्वनियों को उन्होंने बड़ी कुशलता से अंकित किया था। इसी तरह 'पाथेर पांचाली' में जब अंतिम दृश्यों में पिता लौटकर अपनी पुत्री की मौत के बारे में सुनता है तो उसकी व्यथा को दिलरुबा के तीव्र स्वरों द्वारा व्यक्त किया गया है। 'जलसाघर' में एक पुरातन कोठी पर नई सभ्यता के हमले को रेल के इंजन की छुक-छुक और लॉरियों की आवाजों द्वारा व्यक्त किया गया है।

वनराज भाटिया द्वारा 'भूमिका' में पुरानी फिल्मों के गीत और ध्वनियों का उपयोग प्रारंभिक बोलती फिल्मों की याद ताजा कर देता है।

कारंत अपनी फिल्मों के लिए दो बार संगीत निर्देशन का पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं लेकिन वे अपने काम को 'संगीत लिपि' कहने के बजाए 'ध्वनि लेख' कहा जाना ही पसंद करते हैं। वे मानते हैं कि फिल्म के प्रभाव को बढ़ाने के लिए हम भारत के विविध संगीत स्रोतों, जैसे लोक-गीत, परंपरागत कर्नाटक और हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत, आदिवासी-संगीत, कव्वाली, भजन, टप्पा, दादरा, नाट्य संगीत, लोक नाट्य संगीत तथा बेशक पहले से रिकॉर्ड किए हुए फिल्म-संगीत, का उपयोग कर सकते हैं। इस संगीत का उपयोग रिक्त स्थानों को भरने या अलंकरण के लिए भी किया जा सकता है। इनका उपयोग 'मूड म्यूजिक', 'एक्शन-म्यूजिक' तथा कथा-कथन आदि के लिए किया जा सकता है।

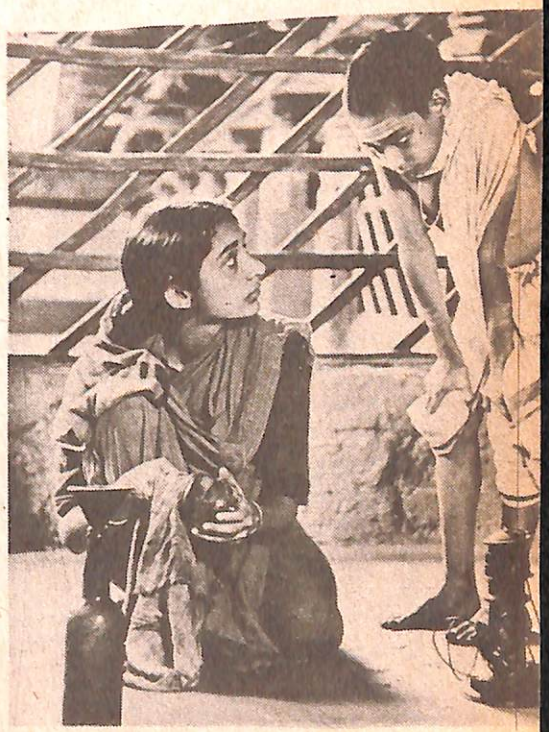

कन्नड़ फिल्म घटश्राद्ध

कार्यालय उज्जैन विकास प्राधिकरण, उज्जैन

उज्जैन नगर के चहुँमुखी विकास हेतु उज्जैन विकास प्राधिकरण की विभिन्न योजनाएँ

(१) बीस सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम के अंतर्गत वर्ष १९८८-८९ में आर्थिक दृष्टि से कमजोर आय वर्ग के लिए १३५ भवन एवं २५ भूखंड तथा निम्न आय वर्ग के लिए ६० भूखंड एवं भवन का आवंटन।
(२) नानाखेड़ा योजना के ६ फ्लेट्स एवं महानंदानगर के ८ फ्लेट्स हेतु पंजीयन चालू है।
(३) ६२ लाख की लागत से शासकीय विभागों की कार्यालय समस्या हल हेतु नवीन कार्यालय भवन का निर्माण।
(४) विकास प्राधिकरण द्वारा विकसित कॉलोनियों में बच्चों के खेल के मैदानों का विकास।
(५) ऋषिनगर में नवीन शॉपिंग काम्प्लेक्स में ६ दुकानें एवं ४ फ्लेट्स का निर्माण।
(६) ऋषि नगर शॉपिंग काम्प्लेक्स में बगीचे एवं फव्वारों का निर्माण।
(७) ऋषिनगर योजना में मुख्य मार्ग क्रमांक २ पर १२ बहुमंजिले आवासीय फ्लेट्स का निर्माण।
(८) ऋषिनगर में ८.५ लाख की लागत से कम्युनिटी हॉल का निर्माण।
(९) सांदीपनी आश्रम में अष्टकोणाकार हॉल का निर्माण।
१०) उज्जैन के धार्मिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण सप्त सागरों के संरक्षण का संकल्प।प्रथम चरण में गोवर्धन सागर क्षेत्र का विकास।
(११) रुद्रसागर क्षेत्र में सम्राट विक्रमादित्य की स्मृति में सिंहासन बत्तीसी का निर्माण।
(१२) महाकाल मंदिर परिसर में बगीचा, सायकल स्टेण्ड, बच्चों के खेल हेतु झूले, फिसल पट्टी एवं यूनिवर्सल क्लाइंबर का निर्माण।
(१३) नानाखेड़ा योजना में इंदौर रोड से लगकर १८ ड्युप्लेक्स शॉप कम रेसिडेंस भवन का निर्माण।
(१४) हुडको ऋण योजना के अंतर्गत ६०० भवनों के निर्माण की योजना।
(१५) चामुण्डा माता वाली रोड का चौड़ीकरण।
(१६) नगर के मुख्य चौराहों पर फव्वारों के नव निर्माण की योजना।
(१७) नगर के मध्य में एक कम्युनिटी हॉल के निर्माण की योजना।

जे. एन. महाडिक
मुख्य कार्यपालिक अधिकारी
उज्जैन विकास प्राधिकरण

राजूहजूर सिंह गौर
अध्यक्ष
उज्जैन विकास प्राधिकरण

* *

With
Best Compliments
From
The Mandsaur Textile Mills Pvt. Ltd.,
MANDSAUR (M.P.)
*Tel. No. 2210

* * * * * *

हवाबाण के उत्कृष्ट उत्पादन
स्वानुभूत आयुर्वेदिक औषधियाँ

कब्जी का महाकाल	पेट साफ करे, कब्ज दूर करे, पेट दर्द, अजीर्ण, बवासीर, नलों का भरना, रक्त विकार, कब्जी से सिरदर्द, कमर दर्द आदि में आरामदायक।
गैसोना पिल्स	पेट के बढ़े हुए गैस (उदर वायु) को आराम पहुँचाकर भूख बढ़ाती है।
पौष्टिक चूर्ण	वीर्यवर्धक एवं धातुओं को पुष्ट करके शरीर को बलवान बनाता है।
हवाबाण चूर्ण	खट्टी डकार, मुंह में कड़वा पानी आना, एसएडीटी बढना तथा घबराहट के लिए उपयोगी।
कफ सायरप	सर्दी, खाँसी एवं कफ मिटाकर गले का बलगम निकालकर, खरखराहट दूर करता है।
निम्बूड़ी पिल्स	सफर का साथी, खट्टी डकार, जी मचलाना, उल्टी (कै) एवं मुख शुद्धि के लिए उत्तम।
हवाबाण द्राक्षोल	मुंह तथा गले का सूखना, हिचकी आना आदि कष्टों का निवारण
अनारदाना चूर्ण	खटठा-मीठा स्वादिष्ट पाचक अरुचिनाशक।

Madhur

निर्माता :
हवाबाण हरडे डिपो
310, जवाहर मार्ग, इन्दौर

फिल्मों में ध्वनि

• ऋत्विक घटक

सिनेमा को एक दृश्य-माध्यम कहने की हमें इतनी ज्यादा आदत हो गई है कि मुझे डर है कि हम जल्द ही यह भूल जाएँगे कि ध्वनि की अपनी एक अलग दुनिया होती है। सच तो यह है कि दृश्यों की कलात्मकता में वृद्धि से ध्वनि के योगदान के महत्व को कम नहीं आँका जा सकता। एक और भी बात है। फिल्मों के बारे में बात करते हुए हम सवाक् और मूक फिल्मों को एक दूसरे से जोड़ देते हैं। यह ठीक नहीं है। मूक फिल्में कला की एक बिलकुल भिन्न विधा है। उसकी गति, व्याकरण तथा उसकी धारणाएँ बिलकुल अलग वर्ग में आती हैं। 'बेटलशिप पोटेमकिन' या पैशन और जोन ऑव् आर्क को "पाथेर पांचाली" के पूर्वाभास नहीं कहा जा सकता। उन्होंने ध्वनि युक्त फिल्मों को जन्म दिया वह मात्र उतना ही सही है कि स्थिर चित्रों से ही चलचित्र पैदा हुआ। मूक फिल्मों में ध्वनि के आते ही सारे सिद्धांत ही बदल गए।

कन्नड़ फिल्म गोधूलि और कारंत का ध्वनि संगीत

दृश्यों के साथ जोड़ी जानेवाली ध्वनि के फीते में क्या-क्या होता है? उसमें पाँच चीजें होती हैं वाणी या संवाद, संगीत, घटनाक्रम से जुड़ी आवाजें, ध्वनि-प्रभाव तथा नीरवता। संवादों के बारे में ज्यादा कुछ बतलाने की जरूरत नहीं है। वे स्पष्ट होते हैं तथा वे कहानी को चित्रों के साथ चलते हुए दिशा प्रदान करते हैं। यह बिल्कुल प्राथमिक चीज है।

संगीत किसी भी फिल्म का बड़ा महत्वपूर्ण उपकरण होता है। संगीत के माध्यम से हम फिल्म को एक भिन्न स्तर पर मुखर बनाते हैं। मसलन शुरू के कुछ स्वर रचने के पहले ही पूरा संगीत अपने दिमाग में तैयार कर लेते हैं। फिल्म के शीर्षकों के साथ ही फिल्म की विषय-वस्तु का आभास दे दिया जाता है और बाद की घटनाओं के लिए संबंधित संगीत रचनाएँ तैयार कर ली जाती हैं। मुख्य सिद्धांत यही होता है कि कोई खास धुन विषय प्रभाव को बढ़ाने में क्या योगदान करती है।

संगीत बहुत ही प्रतीकात्मक होता है। वह प्रतीक की तरह उपयोग किया जा सकता है। इसीलिए उसका उपयोग किया जाता है। उसके पीछे एक सुचिंतित उद्देश्य होता है। मसलन राग कलावती की एक बंदिश का उपयोग मैं एक प्रारंभिक प्रणय दृश्य में करता हूँ। मैं सिर्फ इसलिए यह बंदिश वहाँ नहीं रखता कि वह दृश्य के साथ अच्छी लगती है। मैं पूरे समय उसे फिल्म के अंतिम दृश्य विछोह के समय भी उपयोग करने के बारे में सोचता रहता हूँ। इसके बाद ही मेरी अभिव्यक्ति पूर्ण होती है।

'कोमल गांधार' का मुख्य विषय दो बंगालों का एकीकरण था। इसीलिए उसमें बार-बार पुराने विवाह-गीतों का प्रयोग किया जाता है, यहाँ तक कि दुःख और विछोह के समय भी विवाह के ही संगीत-संकेत दिए गए हैं। सत्यजित राय के 'अपराजितो' में भी यही हुआ है। 'पाथेर पांचाली' में एक ही धुन बार-बार दुहराई जाती है। वह उसका 'थीम' संगीत था। जब भी आप उसे सुनते हैं वह आपको बंगाल के गाँवों की हरीतिमा की याद दिलाता है। सत्यजित राय ने एक अद्‌भुत चीज की। 'अपराजितो' में सर्वजया और अपू बनारस से अपने गाँव रेल से लौट रहे हैं। ट्रेन की खिड़की में से बंगाल का धरातल नजर आता है और अचानक 'पाथेर पांचाली' का 'थीम' संगीत बज उठता है। पूरी फिल्म में ऐसा एक ही बार होता है मगर वह सटीक टिप्पणी करता है। एक ही क्षण में अतीत और वर्तमान के बीच सेतु बन जाता है और हमारे दिमाग में अपू और दुर्गा के गाँव निश्चिंतिपुर की स्मृतियाँ उभर आती हैं। कई बार हम इसी तरह की टिप्पणी किसी अन्य व्यक्ति या देश की फिल्म के संगीत द्वारा भी करते हैं। 'सुवर्ण रेखा' में 'बार' के एक दृश्य में मैंने फेलिनी के 'ल डोल्सा वीटा' के अंतिम आमोद-प्रमोद के दृश्यों में 'पेट्रिशिया' नामक जो धुन बजाई गई है, उसी को दुहराया है। इसका यह मतलब कतई नहीं था कि मैं फेलिनी से प्रभावित था। बात सिर्फ इतनी सी थी कि इस संगीत की मदद से मैं बहुत सी बातें कह सका! कई बार किसी एक पात्र के लिए कोई एक 'टुकड़ा' बार-बार बजाया जा सकता है।

गूँजती हुई आवाज की अपनी एक अलग दुनिया है। गूँज को दिखलाई देने वाली तथा अदृश्य दोनों चीजों के लिए प्रयोग किया जा सकता है। मसलन एक लड़की पलंग पर बैठी एक ऐसे व्यक्ति के आने का इंतजार कर रही है जिससे वह मिलना नहीं चाहती। अचानक उस व्यक्ति के आने की आवाज आती है। वह उठ खड़ी होती है। पलंग से चरमराहट की आवाज होती है। लड़की के दिल में मौजूद पीड़ा इस छोटी सी ध्वनि से ही बखूबी व्यक्त हो जाती है। कई बार ऐसी ध्वनियाँ भी प्रस्तुत की जाती हैं जिनका दिखलाए जा रहे दृश्य के साथ कोई संबंध नहीं होता। कमरे में एक स्त्री और पुरुष चुपचाप बैठे हैं। दूर कहीं से किसी पक्षी की पुकार तैरती हुई आती है। एक युवक सड़क पर आँखों में एक सपना लिए चल रहा है कि अचानक ट्रेन की एक लंबी थकी हुई सी सीटी सुनाई देती है।

ध्वनि का मात्र अलंकारात्मक उपयोग भी प्रभाव को बढ़ा सकता है। 'मेघे ढाका तारा' में कोड़े की आवाज के द्वारा यही असर डाला गया है। कई बार ध्वनि की 'डिजाइन बाय इन्फरेंस' (सायास निष्कर्ष) तकनीक का भी प्रयोग किया जाता है। एक बूढ़ा व्यक्ति बैठा है। उसके चेहरे का क्लोज-अप दिखलाया जाता है। बगैर कैमरा वहाँ से हटाए सिर्फ रेल्वे इंजिन की शंटिंग की आवाज से यह बतला दिया जाता है कि वह रेलवे स्टेशन के प्रतीक्षालय में बैठा है। एक और जगह एक युवती का चेहरा दिखलाया जाता है मगर पार्श्व में लोहे का फाटक खोलने-बंद करने की ध्वनि से पता चलता है कि उसे कैद करके रखा गया है।

और अंत में नीरवता... यह मेरे खयाल से सबसे ज्यादा प्रतीकात्मक होती है।

अपराजितो : सत्यजित राय का संसार।

* स्वर्गीय ऋत्विक घटक बंगला फिल्मों के अंतरराष्ट्रीय ख्याति के फिल्मकार माने जाते हैं। पुणे फिल्म संस्थान में उन्होंने वर्षों तक फिल्म व्याकरण एवं भाषा का अध्यापन किया है।

ग्रेसिम
इंडस्ट्रीज़
लिमिटेड
की इकाई

विक्रम सीमेंट

कांप्रेसिव मज़बूती जिसका जवाब नहीं

Sobhagya-B/VC/88 Hin.

संयंत्र- विक्रमनगर, पो.ऑ. खोर (जावाद), ज़िला मंदसौर, मध्य प्रदेश ४५८ ३३०
बंबई कार्यालय: ८०८, दालामल हाऊस, ८ वी मंज़िल, २०६, नरीमन प्वाइंट, बंबई ४०० ०२१
फोन-२४५०७८/२४३५०७ टेलेक्स/०११-५४५५/५३९२ तार- VIKCEMENT

इंदौर कार्यालय : २०२/२०५, चेतक सेंटर, आर.एन.टी. मार्ग, इंदौर, फोन : २३७८१

भोपाल कार्यालय : रामकुंज, शान्तीनगर, भोपाल, फोन : ७२४५८

कहीं भविष्य में कम्प्यूटर गीत न गाने लगे?

• रघुनाथ सेठ

हम किसी आवाज का वर्णन किस प्रकार करते हैं? खासतौर से हिंदी सिनेमा के लोकप्रिय गायन के संदर्भ में लोगों की प्रतिक्रियाएँ भिन्न-भिन्न होती है। कभी हम कहते हैं, यह आवाज सपाट या बेसुर है, तो कभी कहते हैं वह कोमल या मधुर है। कभी आवाज यकसाँ होती है तो कभी उसमें कंपन होती है। कोई आवाज भरवाँ होती है तो कोई बारीक। कोई पुरसुकून होती है, तो कोई कर्कश। हमारी इन व्यक्तिनिष्ट प्रतिक्रियाओं में किसी आवाज की भौतिक गुणवत्ताओं के अलावा उस गायक की कल्पना और प्रस्तुतिजनित वे विशेषताएँ भी शामिल होती है, जो वह जानबूझ कर अपनी आवाज में पैदा करता है। जिन गायकों में अपने माहौल से प्रभाव ग्रहण करने की कूवत होती है वे इन प्रभावों का उपयोग कर अपने गीत की प्रभावत्मकता में वृद्धि करते हैं। ऐसे गायक अपने गायन के लिए ऐसा 'पिच' (स्वर) या तान विकसित करते है, जो उनकी स्वाभाविक आवाज से भिन्न होता है। अतः स्वाभाविक और ग्रहण की गई विशेषताओं से मिली-जुली इस गायकी की आवाज का अपना अलग अस्तित्व होता है।

हिंदी फिल्मों में गीतों का आगमन **आलम आरा** (१९३१) से हुआ और तब से वे अब तक लोकप्रिय सिनेमा का अनिवार्य अंग बने हुए हैं। प्रारंभ में अभिनेताओं को अपने गीत खुद गाने पड़ते थे जो उसी समय रिकॉर्ड किए जाते थे। बाद में जब यह महसूस किया गया कि हर अभिनेता या अभिनेत्री अच्छा गायक भी हो यह जरूरी नहीं, तो पार्श्व गायन की प्रथा शुरू हुई और उससे गायन और भी परिष्कृत हुआ। इस बीच रिकॉर्डिंग की तकनीक में भी बहुत सुधार हुआ और उससे भी गायन की शैली में परिवर्तन हुआ। सिनेमा जैसे लोकप्रिय माध्यम में गीत के बोलों का महत्व ज्यादा होता है क्योंकि उन्हीं के माध्यम से किसी धुन का भावनात्मक प्रभाव पैदा होता है। हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत से यह ठीक उल्टी बात है। वहाँ वर्चस्व संगीत में निपुणता, रियाज और शैली का होता है। शास्त्रीय संगीत के विपरीत फिल्म संगीत में महत्व स्वाभाविक रूप से मधुर लगनेवाली कंठ का होता है।

फिल्म संगीत का उद्गम इस सदी के प्रारंभिक वर्षों में शास्त्रीय संगीत के अलावा, कव्वाली, भजन, कीर्तन तथा नाट्य-संगीत के वातावरण में हुआ। लोक-नाट्य तथा पेशेवर टूरिंग थिएटर कंपनियों का प्रभाव भी शुरू के फिल्मी गीतों पर था। चूँकि उन दिनों माइक्रोफोन तथा लाउडस्पीकर जैसी चीजें नहीं थी, खुली हुई ऊँची स्पष्ट आवाज में गाना सबसे बड़ा और अनिवार्य गुण होता था। गायक को दूर-दूर तक बैठी भीड़ तक अपनी आवाज पहुँचानी होती थी। चूँकि प्रारंभिक फिल्मों पर आगाहश्र काश्मीर के पारसी थिएटर का असर था, तथा बंगाली तथा मराठी थिएटर में भी इसी तरह के संगीत-नाट्य का बोल-बाला था, प्रारंभिक बोलती फिल्मों के लिए गायक भी वहीं से आए। यह थिएटर परम्परागत रूप से पुरुषों का था, जिसमें महिला पात्रों की भूमिकाएँ भी पुरुष ही करते थे। लेकिन सिनेमा चूँकि कहीं अधिक यथार्थवादी माध्यम है, उसमें यह चीज नहीं चल सकती थी। अतः जो गायिकाएँ फिल्मों के लिए आई वे स्वाभाविक ही भिन्न क्षेत्र की थीं। ये उस पेशेवर गायिकाओं के वर्ग से आई जो महफिलों में और शादियों या सालगिरहों पर मुजरे पेश करती थी। इस गायकी के बेहतर पहलुओं के कारण उसे अर्द्ध-शास्त्रीय गायन कहते थे लेकिन उसके विषय सस्ते, शृंगार रस के ही होते थे। इन गानेवालियों की शैली भड़कीली तथा ऊँची आवाज वाली होती थी, इसलिए इस युग के गीतों को सुनकर महफिल या 'कोठे' के वातावरण का अहसास होता है, हिंदी फिल्मों में इसी तरह के गीत कुछ समय तक चले और अक्सर वे परदे पर दिखलाए जानेवाले भावों को सही तौर पर प्रतिबिंबित नहीं कर पाते थे।

इस शैली को फिल्म संगीत का पहला चरण कहा जा सकता है। इस युग की प्रमुख गायिकाएँ थीं बिब्बो, कज्जन, अमीर बाई, मुन्नी बाई, खुर्शीद, गुलाब, जोहरा, बेगम अख्तर और एम.एस. सुब्बलक्ष्मी, जो गाने के अलावा अभिनय भी करती थी। पुरुषों में प्रमुख थे डब्ल्यू. एम. खान (आलम आरा) तथा मास्टर निसार, जो दोनों थिएटर से आए थे। पेशेवर गायिकाओं की पृष्ठभूमि से आई अधिकांश गायिकाएँ जरा नाक में, बैठी आवाज में गाती थीं। गीतों के बोल भी वे जरा बनावटी ढंग से चबा कर, अदा करती थी। हारमोनियम पर वे एक ही ऑक्टेव (सप्तक) में काली पाँच से काली पाँच तक गाती थी। इस विशेष शैली के गाने 'रतन' में जौहराबाई, 'सिंदूर' में अमीरबाई तथा 'रोटी' में बेगम अख्तर ने गाए थे। पुरुषों में मास्टर निसार सबसे ज्यादा लोकप्रिय थे और वे हारमोनियम की 'सफेद चाल' (पट्टी) पर गाते थे।

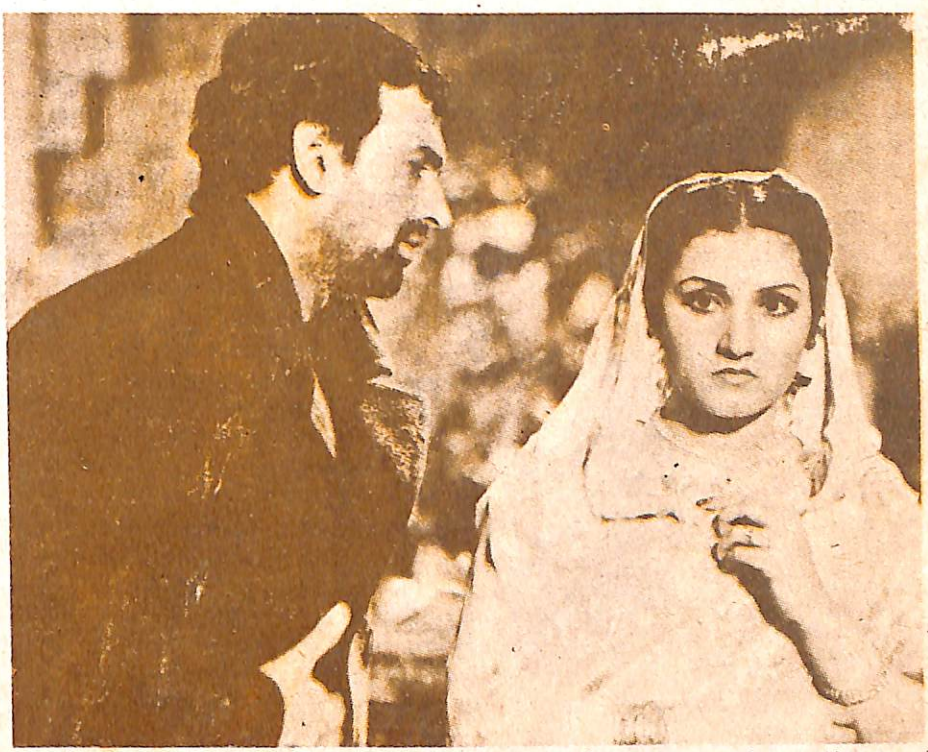

सोचा था क्या क्या हो गया: सुरेन्द्र-नूरजहाँ

जल्दी ही गायिकाओं ने महफिल शैली में गाना छोड़ कर फिल्म माध्यम के अनुकूल सुकून देने वाली शैली में गाना शुरू कर दिया। आज की पूरी तरह आरोह-अवरोहों के अनुकूल आवाजें तो वे तब भी नहीं थीं लेकिन उन्हें माइक्रोफोन के उपयुक्त उन्होंने बना लिया था। इस नई शैली का उदहारण काननबाला का गाया जवाब का गीत 'दुनिया, ये दुनिया तूफानमेल' था, उमादेवी (बसंत) तथा 'पुनर्मिलन' में स्नेहप्रभा प्रधान का गीत 'नाचो नाचो प्यारे मन के मोर' भी इसी शैली में थे। रवींद्र-संगीत से प्रभावित जूथिका रॉय पर भी यह बात सही बैठती है। पुरुषों में बंगाल-स्कूल के गायकों में प्रमुख थे के. सी. डे और पंकज मलिक। लाहौर के स्टेज से आए शिवदयाल बातिश (खामोश निगाहें ये सुनाती हैं कहानी: दासी) काफी क्लिष्ट धुनें भी बड़ी आसानी से गा लेते थे। इस युग में शैलीगत विविधता महिलाओं

के बजाए पुरुष गायकों में ज्यादा देखने में आई। गायिकाएँ आमतौर से एक ही शैली में गाती थीं।

फिल्मी गायन के इस दूसरे दौर में ऐसी बहुत प्रतिभाएँ सामने आई, जिन्होंने अपनी आवाज को माइक्रोफोन के अनुकूल स्वाभाविक पिच (सुर) पर ढालने में सफलता पाई। शमशाद बेगम, सुरैया, नूरजहाँ तथा कुंदनलाल सहगल भी इनमें शामिल थे। नूरजहाँ बहुत लोकप्रिय हुई तथा पाकिस्तान में अब भी गाती और अभिनय करती है। वे तीनों सप्तकों में सहजता से गाती थीं। वे सज्जाद द्वारा बनाई गई जटिल धुन 'आज की रात साज ए दिल पर दर्द न छेड़' के साथ-साथ नौशाद की 'अनमोल घड़ी' जैसी सहज धुनें भी एक सी महारत के साथ गा लेती थीं।

सुरैया की सीधी-सादी शैली में भी आकर्षण था। वे ज्यादा तान या मुरकियाँ नहीं लेती थी लेकिन उनका शास्त्रीय राग पर आधारित गीत 'मन मोर हुआ मतवारा' लोकप्रिय हुआ था। इसी युग की जो आवाज आज भी लोकप्रिय है तथा जिसने पहली बार स्टार का दर्जा पाया वह सहगल की थी। कहा जाता है कि आर. सी. बोराल चाहते थे कि वे भी प्रचलित खुली आवाज में गाए। मगर सहगल की आवाज ज्यादा ऊँचा सुर सह नहीं पाती थी और फट जाती थी। बाद में नितिन बोस ने उन्हें सलाह दी कि वे अपनी स्वाभाविक और कोमल आवाज में ही गाएँ। बाद में इसी शैली ने लोकप्रिय गायन की एक नई शैली

सरस्वती राणे

बुलो सी. रानी

स्थापित की। सहगल की निपुणता और नियंत्रण की मिसाल उनका गीत 'मैं क्या जानूँ ये क्या जादू है' हैं। वे पहले गायक थे जिन्होंने गीत के बोलों पर सही जगह वजन दिया। उनकी गालिब की शास्त्रीय शैली की गजलों के प्रशंसक अब भी बहुत हैं। चालू फैशन के मुताबिक वे भी थोड़ा नाक में गाते हुए शब्दों को चबाते थे। मगर वे अपने युग पर पूरी तरह हावी रहे और सी. एच. आत्मा जैसे कितने ही लोगों ने उनकी नकल की और असफल रहे।

सहगल के साथ ही फिल्मी गायन का दूसरा दौर समाप्त हुआ। माइक्रोफोन के उपयुक्त नई आवाजें आई। खास तौर से, पुरुष गायकों की संख्या अधिक थी। मोहम्मद रफी, मुकेश, हेमंत कुमार, मन्ना-डे, किशोर कुमार व तलत महमूद में से किशोर कुमार को छोड़कर जो अभिनेता भी थे, सभी मूलतः पार्श्व गायक थे। मोहम्मद रफी के आगमन से श्रोताओं को पहली बार पता चला कि यह एक ऐसा गायक है जो तीनों सप्तकों में बिना बेसुरा हुए गा सकता है। वे 'यहाँ बदला वफा का' जैसे सीधे सरल गाने के साथ ही शहीद के ऊँचे सुरों वाले गीत भी सफलतापूर्वक गा सकते थे, जहाँ इक दिल के टुकड़े हजार हुए में वे दर्द को चरमसीमा पर ले जा सकते थे तो वहीं 'दिल तेरा दीवाना है सनम' में उत्साह और खुशी छलकी पड़ती है। रफी संपूर्ण आवाज के धनी थे। जब वे गजल गाते थे तो लगता था कि वे गजल-गायक ही हैं। यही बात उनके भजनों तथा 'सुनो-सुनो ऐ दुनिया वालों बापू की ये अमर कहानी' जैसे देशभक्ति के गानों पर भी लागू होती है।

मुकेश अपने गीतों में गहरा दर्द पैदा करते थे। उनकी सानुनासिक, गूँजती आवाज के चाहने वालों की भी कमी नहीं थी। 'पहली नजर' के गीत 'दिल जलता है तो जलने दे' से उन्हें तत्काल सफलता मिली। जो कुछ वे सुनते थे उसे वे अपनी खास शैली में ढाल लेते थे जो कि सीधी, सरल तथा स्वाभाविक थी। उनके भी भक्तिगीत बहुत सफल रहे और वे पूरी भावनात्मकता से गाए गए हैं। गैर फिल्मी क्षेत्र में रामचरित्र मानस की उनकी प्रस्तुति विशेषरूप से उल्लेखनीय है। मुकेश के ही एक समकालीन तलत महमूद भी कोई प्रशिक्षित गायक न होते हुए भी लोकप्रिय हुए। वे

जुबैदा

अनिल विश्वास द्वारा 'आरजू' के लिए रचित गीत 'ऐ दिल मुझे ऐसी जगह ले चल जहाँ कोई न हो' तथा नौशाद के द्वारा 'बाबुल' के लिए तैयार किए गए गीतों से आगे आए। उनकी आवाज नाजुक मुरकियों तथा खटकों के लिए तो उपयुक्त थी लेकिन उनकी आवाज का पिच हमेशा स्थिर नहीं रह पाता था। तलत तभी तक लोकप्रिय रहे जब तक कि लोकप्रिय धुनों का आधार भारतीय, खास तौर से गजल-आधारित रहा। जैसे ही फड़कदार अमेरिकी संगीत से प्रेरित धुनें लोकप्रिय होने लगीं, वे उनके साथ अपने आप को बदल नही सके और अपने आप रिटायर हो गए।

जिस गायक ने अपने आप को अमेरिकी लोकप्रिय संगीत (पॉप?) के साथ पूरी तरह ढाल लिया वे थे किशोर कुमार, शुरूआत वैसे किशोर ने भी बंगाली-शैली के गायक के रूप में की थी लेकिन उनकी आवाज में काफी परिवर्तन की गुंजाइश थी और वे कई प्रकार के गीत मजे से गा लेते थे 'कॉमिक साँग' गाने में उन्हें विशेष महारत हासिल थी। 'याँडलिंग' के उपयोग द्वारा उन्होंने अपने गीतों में साठ और सत्तर के दशक में भरपूर फड़क पैदा की। वे अपने-जमाने के सबसे महँगे पार्श्व गायक थे।

लता मंगेशकर के साथ गायिकाओं के क्षेत्र में नए युग की शुरूआत हुई। उनके पूर्व महिलाओं के लिए ऊँचे सुर में गाना अच्छा नहीं माना जाता था लेकिन उनके कंठ की ताजगी तथा स्वाभाविक आकर्षण ने इस प्रतिमान को ही बदल दिया। अब तो जिस गायिका के पास लता जैसे कंठ-स्वर नहीं होता उसे लोकप्रिय गायिका के तौर पर स्वीकार ही नहीं किया जाता। लता अपनी कोमल, मधुर आवाज में लगभग तीनों सप्तकों में गा लेती हैं। अभिव्यक्ति को नए-नए रंग देने के लिए वे शब्दों पर बिल्कुल सही जगह वजन देती हैं। उनके लिए माइक्रोफोन को भी किसी साज की तरह कलात्मक ढंग से उपयोग किया जा सकता है। लेकिन फिल्मी गानों की एक किस्म ऐसी जरूर थी जिसके लिए उनकी आवाज को उपयुक्त नहीं माना गया था। यह थी कामोद्दीपक, मर्दों को ललचाने वाले गीतों की किस्म। इस कमी को पहले गीता दत्त ने अपनी भावुक तथा भारी आवाज से पूरा किया तथा बाद में आशा भोंसले ने असंख्य कैबरे तथा डिस्को गीतों से इस शैली को मुकम्मल बनाया।

भविष्य में क्या होगा? काल का पहिया एक तरह से पूरा घूम गया है। जहाँ पहले फिल्मी-गीत, थिएटर, कव्वाली, ठुमरी तथा गजलों से प्रभावित होते थे वहीं अब इन्हीं चीजों में सिनेमा जैसा ही कंठ परिष्कार तथा भावुकता भरी शैली लाने की कोशिश की जाती है। क्या हमारे लोकप्रिय सिनेमा पर गीत अब भी पहले की तरह हावी बन रहेंगे या अन्य देशों की तरह लोकप्रिय संगीत एक अलग उद्योग उनकी जगह ले लेगा? क्या नित नए उपकरणों के आने के बाद आवाज के सुरीलेपन की जरूरत उतनी नहीं रह जाएगी। और किसे पता किसी दिन कम्प्यूटर ऐसी आवाज बना कर रख दे जो किसी भी मानवीय आवाज से ज्यादा मुकम्मल हो!

*लेखक प्रसिद्ध संगीतकार हैं। (सिनेमा विजन से साभार)

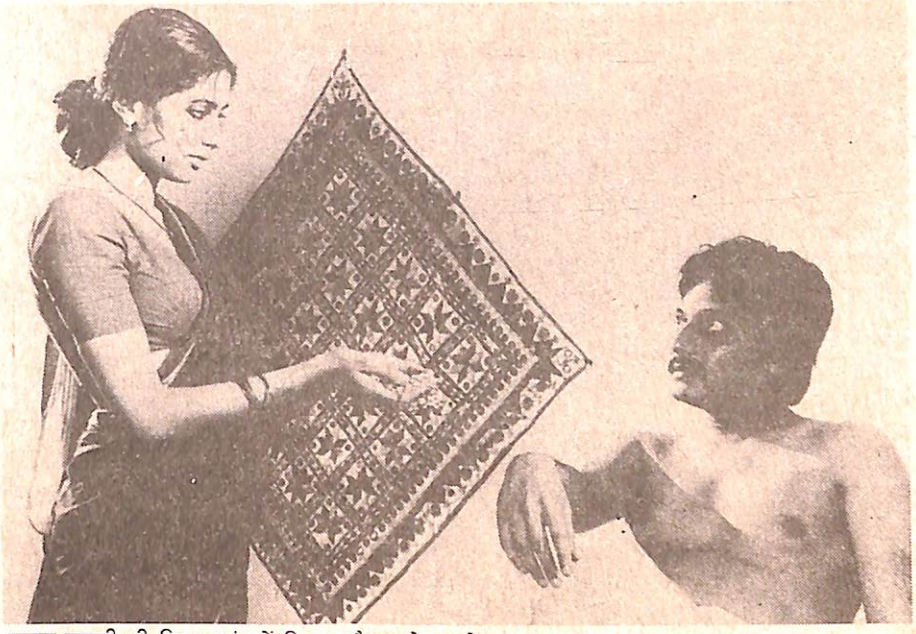

कुमार शाहनी की फिल्म तरंग में स्मिता और अमोल पालेकर

समानांतर सिनेमा का संगीत पक्ष कमजोर क्यों?

● **अजय वर्मा**

नए लहर की कलात्मक फिल्में या समानांतर सिनेमा में चाहे और कितनी भी विशेषताएँ हों, पर उनके गानों में तथा संगीत में स्थायित्व का अभाव है। किसी कलात्मक फिल्म का गीत न तो याद के खजाने में सुरक्षित बने रहने की क्षमता रखता है और न ही उसे एक बार सुनने के बाद बार-बार गुनगुनाने का जी करता है। हो सकता है कि अपवाद स्वरूप इक्के-दुक्के उदाहरण ऐसे मिल जाएँ जहाँ समानांतर सिनेमा के गीतों को लोकप्रियता की कसौटी पर खरा पाया गया हो, पर अपवाद तो सिर्फ अपवाद ही होते हैं। व्यावसायिक सिनेमा द्वारा सदा बहार गीत-संगीत की रचना तथा नई लहर के सिनेमा में संगीत की उपेक्षा का मूल कारण है दोनों पक्षों का गानों के प्रति रवैया। समानांतर सिनेमा के निर्माता- निर्देशक समझते हैं कि गीत एवं संगीत एक बेहतर फिल्म के निर्माण के लिए कतई जरूरी नहीं है, बल्कि ये फिल्म की गति और कहानी के विकास में अवरोध पैदा करते हैं। इसके विपरीत व्यावसायिक फिल्मों के निर्माता गीत और संगीत को सिर्फ जरूरी ही नहीं मानते, बल्कि सफलता की गारंटी मानते हैं।

समानांतर फिल्मों के संगीतकार **बनराज भाटिया** को शिकायत है कि उनके गीत और संगीत का उपयोग पृष्ठभूमि में करवा कर फिल्म निर्देशकों ने सत्यानाश कर दिया। इस आरोप के सिलसिले में वे '३६ चौरंगी लेन', 'मोहन जोशी हाजिर हो', यही शिकायत अजीत वर्मन (आक्रोश, अर्द्धसत्य) तथा व्यावसायिक फिल्मों के सफल संगीतकार स्वर्गीय जयदेव को रही है। 'हम दोनों' और 'मुझे जीने दो' जैसी अविस्मरणीय संगीतमय फिल्मों के इस संगीतकार को 'गमन' और 'घरौंदा' में विशेष सफलता नहीं मिल पाई थी। कलात्मक और समानांतर फिल्मों में गीत-संगीत की उपेक्षा को अनुचित मानते हुए संगीतकार बनराज भाटिया तर्क देते हैं कि हमारे हिन्दी सिनेमा की जड़ें 'संस्कृत नाटक' और 'पारसी थिएटर' में हैं और इन दोनों विधाओं में गीत-संगीत अनिवार्य थे, चूँकि पश्चिम में ऐसी कोई प्राचीन परंपरा नहीं थी, इसलिए वहाँ फिल्मों में गीत-संगीत का महत्व नहीं है। गीत और संगीत को जितना महत्व भारतीय व्यावसायिक फिल्मों में दिया जाता है उतना अन्य कहीं नहीं।

दरअसल नई लहर के फिल्म निर्देशकों में गानों का फिल्मांकन करने की क्षमता है ही नहीं। वे स्वीकार ही नहीं कर पाते कि भावविभोर होने पर कोई अभिनेता अभिव्यक्ति के लिए गाना गाएगा। गुरुदत्त और गोल्डी (विजयआनंद) की तर्ज पर गानों की उचित सिचुएशंस खोजने की क्षमता नवयथार्थवादी फिल्म निर्देशकों के पास नहीं है। नई फिल्मों के नए संगीतकार अजीत वर्मन भी गानों की सफलता के लिए सिचुएशंस का चुनाव महत्वपूर्ण मानते हैं। आक्रोश के गीत 'कान्हा रे' की सफलता का श्रेय वे सिचुएशन के उचित चुनाव को देते हैं। वर्मन का कहना है कि गोविन्द निहलानी की फिल्म 'अर्द्धसत्य' में सिचुएशंस का चुनाव ठीक नहीं था। गोविन्द निहलानी इस आरोप को स्वीकार नहीं करते। वे यह मानते हैं कि उनकी फिल्मों में संगीत महज मनोरंजन नहीं, बल्कि फिल्म की कहानी के विकास का हिस्सा रहता है। ठूँसे हुए गानों की आलोचना करते हुए वे कहते हैं कि इसी प्रवृत्ति का परिणाम है कि जैसे फिल्म में गाना शुरू होता है, तो दर्शक धूम्रपान और टायलेट के लिए बाहर निकलने लगते हैं।

कलात्मक फिल्मों के निर्माण तथा समानांनर फिल्म आंदोलन से जुड़े मणि कौल ने भारतीय संगीत (ध्रुपद) को लेकर वृत्तचित्र बनाया है, मगर वे कहते हैं कि फिल्मों के निर्माण में संगीत निर्देशक की जरूरत ही नहीं है। फिल्मों में संगीत का प्रयोग बिलकुल वैसा ही अटपटा है जैसा सामान्य जिंदगी जीने वाले फिल्मी चरित्रों के मुँह से साहित्यिक संवाद बुलवाना। 'बजट' का भी समानांतर फिल्मों के संगीत स्तर से गहरा ताल्लुक रहता है। सीमित बजट के अंदर भारी भरकम संख्या वाले आर्केस्ट्रा की व्यवस्था और लोकप्रिय प्रतिष्ठित कलाकारों की सेवाएँ प्राप्त करना आसान नहीं होता। इसीलिए कला फिल्मों में कम वाद्ययंत्रों का आर्केस्ट्रा और नई प्रतिभाएँ सामने आती हैं। प्रतिष्ठित रिकार्ड कंपनियों का रुख भी सहयोगपूर्ण नहीं रहता। वे न तो प्रचार के लिए धन खर्च करती हैं और न ही बिक्री की उचित व्यवस्था करती हैं। उनका तर्क यह रहता है कि इन फिल्मों में संगीत और गीत के लिए सिर्फ 'पृष्ठभूमि' का इस्तेमाल किया जाता है और भारतीय श्रोता ऐसे गीत-संगीत को पसंद नहीं करते। इसकी बजाए वे बिना गाने वाली फिल्म (कानून) को पसंद कर सकते हैं।

लोकप्रिय व्यावसायिक फिल्मों के संगीतकार समानांतर फिल्मों के संगीत के बारे में क्या सोचते हैं, इस सवाल का उत्तर लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल ने 'उत्सव' में सप्रमाण दिया है। शशिकपूर की इस फिल्म का निर्देशन गिरीश कर्नाड कर रहे थे। लक्ष्मीकांतजी जब कभी उन्हें नई चालू किस्म की धुन सुनाते तो वे विनम्रता से कह देते, "यह धुन बड़ी उम्दा है, पर फिल्म में प्रासंगिक नहीं है।" इस प्रकार उन्हें कड़ी मेहनत करनी पड़ी, तब कहीं जाकर 'उत्सव' पूरी हुई। अपनी इस फिल्म के संगीत को वे अब तक की ३५० से भी अधिक

एक दिन प्रति दिन (बंगला)

फिल्मों के संगीत से बेहतर मानते हैं। उनका कहना है कि गिरीश कर्नाड की दृष्टि और उनके प्रयासों ने ताजगी से भरपूर संगीत की रचना करवा दी।

वास्तविकता और समस्या का हल इसी प्रसंग में छुपा हुआ है। यदि निर्देशकों की दृष्टि व्यापक हो, संगीतकार अधिक श्रम करने को तैयार हो तथा बजट पर्याप्त रहे तो समानांतर सिनेमा से भी और बेहतर संगीत कृतियों की अपेक्षा करना सार्थक होगा।

खेल, खिलाड़ी और सा रे ग म प...

बसंत नाईक

यह सही है कि किसी भी क्षेत्र के खिलाड़ी को चोटी पर पहुँचने के लिए अपना सारा समय उसी कला को समर्पित करना पड़ता है। लेकिन फुर्सत के क्षणों में खेल हस्तियों को भी संगीत, चित्रकला या अभिनय में दिलचस्पी लेते हुए देखा जा सकता है।

टेनिस और क्रिकेट आज के सबसे ज्यादा लोकप्रिय खेलों में से हैं। टेनिस की लोकप्रियता जहाँ सारी दुनिया में है वहीं क्रिकेट भारतीय उपमहाद्वीप में सबसे ज्यादा लोकप्रिय खेल है। टेनिस के सर्वकालिक महान खिलाड़ी बिल रिल्डेन अभिनय के साथ ही संगीत में भी दिलचस्पी लेते थे। उनके जमाने में 'पॉप' और 'रॉक एंड रोल' की धूम थी मगर वे परंपरागत संगीत ही पसंद करते थे। चूँकि उनका संपर्क फिल्मी दुनिया से भी था, वे बिंग क्रॉस्वी और पॉल रॉबसन जैसे स्टार गायकों को पसंद करते थे।

स्टेफी ग्राफ, जिन्होंने मॉरीन कोनोली के बाद १९८८ में सबसे कम उम्र में ग्रॅण्ड-स्लॅम जीता, के पास तो इस समय वक्त की बहुत कमी है, लेकिन १९८६ में जब वे मात्र १६ वर्ष की थीं उन्हें फुर्सत के क्षणों में प्रसिद्ध पॉप गायक फिल कोलिंस के टेप सुनते देखा जा सकता था।

स्टेफी ग्राफ के ही देशवासी तथा एक अन्य 'वंडर किड' बोरिस बेकर को भी उनके 'वॉक मैन' टेपरिकॉर्डर तथा रेडियो-प्लेयर के साथ देखा जाता था। अपने अन्य किशोरवय के साथियों की तरह वे भी रॉक-संगीत सुनना ही पसंद करते थे। वे अकसर कॉन्सर्ट (संगीत कार्यक्रमों) सुनने भी जाते हैं।

क्रिकेट खिलाड़ियों के भी अपने प्रिय गायक रहे हैं। भारत के रहस्यमय 'स्पिन' गेंदबाज चंद्रशेखर, जिन्होंने अपने दम पर भारत को १९७१ में ओवल टेस्ट जिताया था, तथा जिनके नाम २४२ टेस्ट-विकेट हैं, के प्रिय गायक मुकेश हैं। उनसे पहले की पीढ़ी के किशनचंद, सहगल के भारी प्रशंसक थे तथा उनका प्रसिद्ध गीत 'बाबुल मोरा नैहर' वे बड़े प्रभावी ढंग से गा कर भी सुनाते थे। सिंध के होने के नाते वे सी.एच. तथा चंदू आत्मा के भी प्रशंसक थे जो कि सहगल की ही नकल करते थे। लेकिन सी.एच. आत्मा के साथ भी वही हुआ जो हर उस खिलाड़ी के साथ हुआ जिसे दूसरा ब्रेडमैन कह कर सराहा गया यानी वह अपने क्षेत्र में अधिक सफल नहीं हो पाया।

किरन मोरे, जिन्होंने विकेट-कीपर की हैसियत से बार-बार अपीलें कर के रिचर्ड्स जैसों तक को परेशान कर दिया था, अपने युग और उम्र के विपरीत तलत महमूद के प्रशंसक हैं। यह तथ्य इसलिए भी ज्यादा सुखद है कि इस लेखक का प्रिय गायक भी तलत महमूद ही है। इसमें कोई शक नहीं कि हिंदी फिल्मों में वास्तविक गजल-गायक सहगल और तलत महमूद ही हुए हैं। यह वाकई बड़े संतोष की बात है कि किरण मोरे में अभी से किसी गजल गायक के गुणों के परख लेने की परिपक्वता आ गई है।

मजे की बात यह है कि स्वयं तलत महमूद भी क्रिकेट के बड़े शौकीन हैं। पाँचवें दशक के प्रारंभ में, जब तलत अपनी लोकप्रियता के शिखर पर थे तथा दक्षिण भारत में निर्मित होने वाली हिंदी फिल्मों में उनकी बहुत माँग थी, वे एक गीत रिकॉर्ड करवा रहे थे। किसी कारण से गाना समय पर रिकॉर्ड नहीं हो सका और अगले दिन बंबई में टेस्ट-मैच शुरू हो रहा था। तलत गाने की रिकॉर्डिंग अधूरी छोड़ कर ही बंबई उड़ गए। टेस्ट-मैचों में तलत के साथ प्रसिद्ध संवाद-लेखक दीवान शरर अकसर देखे जाते थे। दक्षिण के फिल्म निर्माता आमतौर से स्टार अभिनेताओं या गायकों के नखरे या अनुशासनहीनता बर्दाश्त नहीं करते लेकिन तलत को उन्होंने माफ कर दिया और उन्हीं के लिए उन्होंने 'ये संसार, ये संसार, ये प्यार भरा संसार' गीत गाया था।'

लता मंगेशकर का क्रिकेट प्रेम सभी जानते हैं। बंबई में स्टेडियम के वी.आई.पी. स्टैंड में बैठी लताजी पर टी.वी. कैमरा अकसर केंद्रित किया जाता है। कई बार रेडियो कमेंटरी के दौरान उनका साक्षात्कार भी प्रसारित हुआ है। १९८३ में भारत द्वारा विश्व-कप जीतने पर लता ने ५० लाख रुपए एकत्र करने में मदद की थी। इसके लिए क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड ने अपनी स्वर्ण जयंती के

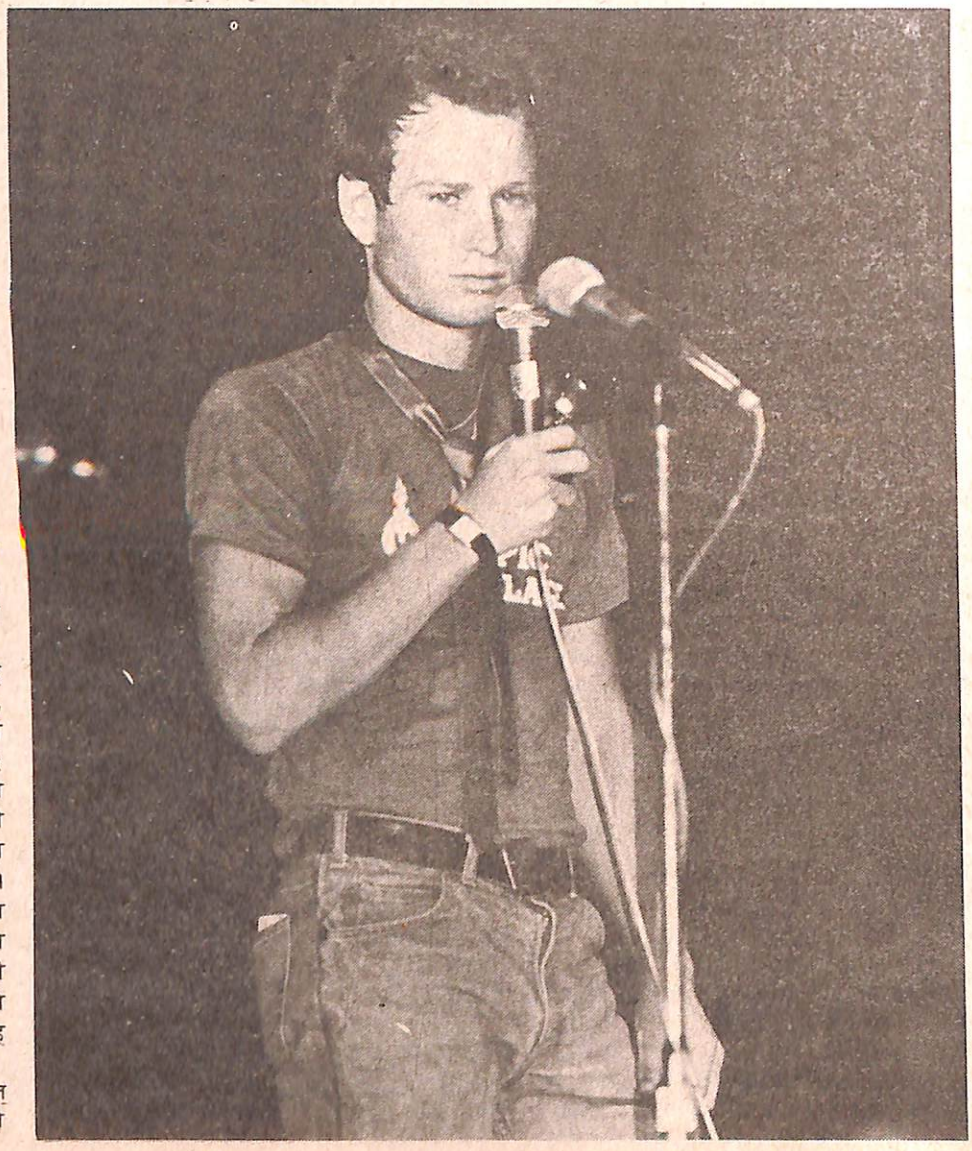

जॉन मेकेनरो

डॉन ब्रैडमन

स्टेफी ग्राफ

अवसर पर १९८३ में लता का विशेष रूप से सम्मान किया था।

लता के विपरीत संगीतकार स्व. सचिन देव बर्मन फुटबॉल के शौकीन थे। वे बंगाल के थे, जहाँ इस खेल के पीछे लोग पागल हैं। सचिन दा कई बार कूपरेज मैदान पर रोवर्स-कप का फाइनल देखने के लिए अपनी रिकॉर्डिंग मुल्तवी कर देते थे और मोहन बागान को खेलते देखने के लिए कलकत्ता तक पहुँच जाते थे।

पुराने समय से ही क्रिकेट खिलाड़ी संगीत में सक्रिय रूप से भी दिलचस्पी लेते रहे हैं। कुछ लोग वादन में निपुण थे तो कुछ गायन में। प्रसिद्ध ऑस्ट्रेलियाई क्रिकेटर विक्टर ट्रम्पर पियानो बढ़िया बजाते थे। किंवदंती-पुरुष डॉन ब्रेडमैन तो पियानो इतना अच्छा बजाते थे कि उनका एक रिकॉर्ड तक बनाया गया था। १९३० में लीड्स टेस्ट में जब उन्होंने ३३० रन बनाए तो शाम को अन्य खिलाड़ी जब पीने-पिलाने में मशगूल थे, ब्रेडमैन अपने होटल के कमरे में अकेले बैठे, अपने प्रिय ग्रामोफोन रिकॉर्ड सुन रहे थे। 'वॉकमन' जैसे उपकरण तो तब थे नहीं।

जहाँ ट्रम्पर के कप्तान नोबल गायक थे, वहीं उनके ब्रिटिश समकालीन कोलिन ब्लाइथ अच्छे वायलिन-वादक थे। नोबल ने गायन चर्च के 'कॉयर बॉय' के रूप में शुरू किया था। बाद में नोबल दंत-चिकित्सक बने तथा इस बात का कोई उल्लेख नहीं मिलता कि अपने किसी मरीज का दाँत उखाड़ते हुए, उसका जी बहलाने के लिए उन्होंने कभी गाया या नहीं!! नोबल के बारे में सबसे दुःखद बात यह रही कि वे प्रथम-विश्व युद्ध में लड़ाई के मैदान में मारे गए।

मंसूर अली खाँ पटौदी जहाँ तबला अच्छा बजाते हैं, वहीं सलीम दुर्रानी अच्छे सितार वादक बतलाए जाते हैं। पुराने जमाने में बंबई में क्रिकेट की एक स्पर्धा 'क्वाड्रेंग्यूलर टूर्नामेंट' नाम से होती थी। इसमें टीमें साम्प्रदायिक आधार पर खेलती थीं। इसमें हिंदू, मुस्लिम, पारसी तथा योरपीय टीमें खेलती थीं। हिंदुओं की तरफ से एस.एम. जोशी बहुत सफल रहे थे। वे इंदौर में महाराजा होल्कर के यहाँ नौकरी करते थे। वे भी तबला अच्छा बजाते थे और शास्त्रीय गायन भी करते थे। मैदान पर क्षेत्र-रक्षण करते हुए, जरा गंजे और लंगड़ा कर चलते जोशी को, गुनगुनाते हुए तानें भरते सुना जा सकता था। उनके गेंदबाजी-कौशल पर उनके कप्तान विट्ठल को इस कदर विश्वास था कि जब भी वे अपनी विरोधी टीम की पारी जल्दी समेटना चाहते थे, जोशी को बुला कर कहते थे, 'जोशी बुवा, जरा अपनी भैरवी शुरू करो तो' (आमतौर से संगीतकारों को बुवा कहकर बुलाते हैं तथा भैरवी किसी भी संगीत-कार्यक्रम के समापन चरण में गाया जाता है।) १९२३ में इस स्पर्धा का फाइनल हिंदुओं और योरपीयनों के बीच खेला गया था तथा पहले चार दिनों में दोनों टीमों की एक-एक ही पारी हो पाई थी। दोनों

सुनील गावस्कर

टीमों ने लगभग ४७५ रन बनाए थे। लेकिन दूसरी पारी में जोशी ने अपनी भैरवी जरा जल्द ही शुरू कर दी और योरपीयन टीम को १५३ पर ही आउट कर दिया। (जोशी ने ३९ रनों पर ७ विकेट लिए) बाद में दूसरी पारी में सी.के. नायडू ने धुआँधार शुरूआत करते हुए निर्धारित समय में ही हिंदुओं को ९ विकेट से विजयी बना दिया।

बाद के युग में विजय मांजरेकर को भी गाने का शौक था मगर वे फिल्मी गाने गाते थे। उनका गला अच्छा था तथा उन्होंने हिंदी फिल्मों में पार्श्वगायक बनने के लिए 'वॉइस-टेस्ट' भी दिया था। लेकिन जैसे उनकी आत्मकथा नहीं लिखी जा सकी वैसे ही गायक बनने की उनकी इच्छा भी पूरी न हो सकी।

किसी तेज गेंदबाज के संगीत-प्रेमी होने की आशा कम ही की जा सकती है लेकिन कम से कम तीन ऐसे तेज गेंदबाज हुए हैं जिनके संगीत से रिश्ते रहे। लंकाशायर के ऊँचे-पूरे गेंदबाज डिक पोलार्ड जिन्होंने ब्रेडमैन तक को परेशान कर दिया था, पियानो बजाते थे तथा गाते भी थे। १९४० और ५० के दशकों में लिंडवाल तथा मिलर के हाथों कई बल्लेबाज जख्मी हुए थे। ये दोनों भी संगीत-प्रेमी थे। मिलर तो पाश्चात्य शास्त्रीय-संगीत के भी अच्छे जानकार थे। जब वे इंग्लैंड गए तो उनकी नेविल कॉर्डस से अच्छी दोस्ती हो गई। कॉर्डस क्रिकेट पर आलंकारिक गद्य तो लिखते ही थे, वे बढ़िया संगीत समीक्षक भी थे। १९४८ तथा ५३ के दौरों के समय लिंडवाल, मिलर और कॉर्डस बजाए क्रिकेट हस्तियों के पाश्चात्य शास्त्रीय संगीत के शोपिन, मोत्सार्त तथा बेइटोवन जैसे दिग्गजों पर चर्चाएँ करते थे।

पुराने जमाने की दो टेनिस स्टार, एलिस मार्बल (विम्बलडन विजेता, १९३९, तिहरा खिताब) तथा ऍल्थिया गिब्सन (विम्बलडन विजेता १९५७ और ५८), दोनों अच्छी गायिकाएँ थीं। जहाँ मार्बल ने संगीत को ही बाद में अपना करियर बनाया, वहीं गिब्सन ने विम्बलडन नृत्य-निशा में माइक संभाल कर नया इतिहास निर्मित किया।

जहाँ उपरोक्त सभी खिलाड़ियों को गायन के क्षेत्र में न्यूनाधिक सफलता मिली वहीं क्रिकेट के आधुनिक युग के सफलतम सितारे सुनील

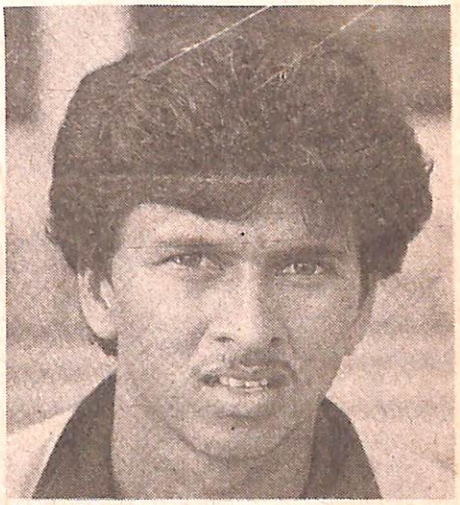

किरण मोरे

गावस्कर इस मामले में बुरी तरह असफल रहे। ब्रेडमैन की तरह उन्होंने भी अपना एक मराठी रिकॉर्ड 'हे जीवन म्हणजे क्रिकेट' जारी किया। सुनील सुरीले कंठ के मालिक भले ही न हों लेकिन उनमें हास्यबोध की कमी नहीं है। अपनी असफलता को हँसकर टालते हुए वे कहते हैं, 'जो कुल २० रिकॉर्ड बिके उनमें से एक दर्जन तो मेरे ही परिवार ने खरीदे थे। पता नहीं बाकी ८ किन प्रेमियों ने खरीदे।'

बहरहाल, जब कोई बड़ी खेल-हस्ती उतनी ही

महान संगीत-हस्ती से मिलती है तो वह एक यादगार अनुभव बन जाता है। भारत के राजकुमार रंजीतसिंहजी (रंजी-ट्रॉफी) अपना सारा जीवन इंग्लैंड की तरफ से खेले। बाद में लीग ऑव् नेरांस (संयुक्त राष्ट्र की पूर्व संस्था) में उन्होंने भारत और ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतिनिधित्व किया। यहाँ उनकी मुलाकात पोलैंड के प्रतिनिधि विश्व प्रसिद्ध पियानो वादक पेडरेवस्की से हुई। न तो रंजी को संगीत में ज्यादा दिलचस्पी थी न, पेडरेवस्की ने क्रिकेट के बारे में कभी कुछ सुना था, लेकिन जिनेवा में मिलने पर दोनों को लगा कि वे अपने-अपने क्षेत्र की प्रमुख हस्तियाँ हैं। पेडरेवस्की ने रंजी को अपने जिनेवा स्थित 'विला' में आमंत्रित किया। उनके साथ उनके निजी सहायक क्रिकेटर चार्ल्स फ्राय भी थे। कुछ अन्य आमंत्रित मेहमानों को पेडरेवस्की के पियानो वादन की दावत मिली। इस महान संगीतकार की स्वर लहरियों ने भिन्न देशों के सारे राजनीतिक मतभेदों को कुछ देर के लिए भुला दिया।

लाल रंग एक और भी ऐसे यादगार क्षण के साथ जुड़ा हुआ है, जिसमें एक प्रसिद्ध खेल हस्ती और संगीतकार एक-दूसरे के प्रशंसक के रूप में मिले। अमेरिका के डोनल्ड बज् ने टेनिस का पहला ग्रॅण्ड स्लॅम १९३८ में जीता था। रोलाँ गेरो का फ्रेंच खिताब देखते हुए उन्हें फ्रांस के प्रसिद्ध चेलोवादक पाब्लो केसेल ने भी देखा। टेनिस के शौकीन होने के नाते वे लाल केशोंवाले बज् से मिलने पहुँचे और बोले 'डॉन, तुम्हारा खेल देख कर मुझे आज इतना आनंद आया कि मैं आज रात तुम्हें अपने घर चेलो (वायलिन जैसा एक वाद्य) सुनने के लिए आमंत्रित करता हूँ। स्वाभाविक ही, बज् केसेल के इस निमंत्रण से अभिभूत हो उठे और उन्होंने बड़े प्रेम से पेरिस की चाँदनी रात में केसेल से एक के बाद एक कई हृदयस्पर्शी धुनें सुनीं।

इस तरह के अवसर ही खेल जगत की हस्तियों को संगीत की दुनिया के साथ जोड़ते हैं। संगीत अपने हर रूप में आनंद की सृष्टि करता है बशर्ते कि उसे सम्मान के साथ सुना जाए और उसे सस्ता न बना दिया जाए। इसी तरह खेल-हस्तियों से भी गरिमायुक्त आचरण की उम्मीद की जाती है। ऐसा होने पर ही दोनों में लयबद्धता, जो कि संगीत और खेल दोनों का आधार है, स्थापित होती है।

पारख ब्रदर्स

कालिदास मार्ग, मंदसौर

अधिकृत विक्रेता :-

★ ऑक्सीजन गैस व कारबाइट ★ सेनेटरी फिटिंग ★ गुडलास नेरोलक पेंट्स ★ अडवानी वेल्डिंग राड ★ फारेज एंड कं. ★ जी. आई. पाइप ★ बायर इंडिया ★ हार्ड वेयर ★ खेती की दवाइयाँ ★ काँटे-बाट ★ नाप यंत्र आदि।

शुभकामनाएँ

अनिल सचान
ए-२, कॉन्ट्रक्टर

चंद्रशेखर शर्मा
उपाध्यक्ष,
जिला ठेकेदार संघ

मंदसौर

With Best Compliments from:

MANDSAUR STEELS PRIVATE LIMITED

MANDSAUR

Manufacturers of

Stainless Steel and High Alloy, Steel Casting and guaranteed quality rolling of Stainless Steel Ingots, M.S. Angles and Gurders.

Gram :
Steel Cast

T.N. Office : 2716, 2353
Resi: 2766, 2966

देवी (बंगला) शर्मिला ठाकुर एवं सौमित्र चटर्जी

ध्वनि-प्रतीकों का फिल्मों में उपयोग

शिवाजो सेनगुप्ता

जे.बी.एच. वाडिया ने अपने संस्मरणों में बाबूराव पेंटर की मूक फिल्म **सावकारी पाश** (१९२५) के एक दृश्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। इस फिल्म में जो बड़े मद्धम प्रकाश में शूट की गई थी, एक सुनसान, उजड़ी हुई झोपड़ी का शॉट था। झोपड़ी के भीतर मौजूद भयानक त्रासदी के प्रभाव को एक कुत्ते के भौंकने की आवाज से इतने प्रभावी ढंग से उभारा गया था कि दर्शक दहल जाते थे। बाद में बाबूराव ने १९३७ में इस फिल्म को अल्लादिया खाँ के संगीत के साथ फिर बनाया और संगीत तथा ध्वनि-प्रभावों ने उसके प्रभाव को और बढ़ाया। बाबूराव ने इसी फिल्म को हिंदी में **महाजन** के नाम से भी बनाने की योजना बनाई थी, लेकिन उनके अचानक निधन से वह पूरी न हो सकी। मरते वक्त बाबूराव पेंटर पूरी तरह मोहताज हो चुके थे और यदि लता मंगेशकर की मेहरबानी न हुई होती तो उनका घर तक नीलाम हो जाता।

इसी तरह की फटेहाल स्थिति में, अस्पताल के जनरल वार्ड में बंगाल के जीनियस ऋत्विक घटक का भी निधन हुआ था। ऋत्विक घटक ने भी अपनी कालजयी फिल्म **मेघे ढाका तारा** में साउंड का चमत्कारी उपयोग किया है। जब फिल्म की नायिका नीता को पता चलता है कि उसका प्रेमी उसके बदले उसकी शोख छोटी बहन को ब्याहना चाहता है, घटक साउंड-ट्रैक पर कोड़े की आवाज पैदा करते हैं। इस ध्वनि-प्रतीक का केवल एक बार उपयोग कर घटक संतुष्ट नहीं होते। वे इस ध्वनि को उसके विभिन्न सूक्ष्म अंतरों के साथ प्रस्तुत करते हैं। "दरअसल मैं जिंदगी के इन्हीं सूक्ष्म अंतरों की तलाश में रहता हूँ, क्योंकि उन्हीं में जिंदगी की चिंगारी होती है।" घटक कहते थे। कोड़े की आवाज़ तीन बार गूँजती है और हर बार वह कुछ देर के लिए ठहर गई प्रतीत होती है।

अमेरिकी निर्देशक ईलिया कज़ान की अकादेमी पुरस्कार विजेता फिल्म 'ऑन द वाटर फ्रंट' (१९५४) में उन्होंने 'आउट-डोर' में एक भव्य दृश्य फिल्माया था, जिसमें पृष्ठभूमि में बंदरगाह तथा जहाज दिखलाई देते हैं। नायक मार्लन ब्रेन्डो अपनी प्रेमिका के सामने यह स्वीकार करते हैं कि वे नायिका के भाई की हत्या में भागीदार थे। नायिका जवाब में जो कुछ कहती है वह जहाज के भोंपू की तीखी आवाज में डूब जाता है।

राजू गाइड (देव आनंद) शराब के नशे में, पूरी तरह से दिशाहीन हो गया है। वह अपने आप को इस बात के लिए तैयार नहीं कर पाता है कि रोज़ी (वहीदा रहमान) अब बदल गई है। वह अपने कर्मचारी मणी के सामने कबूल करता है, "जिंदगी भी एक नशा है दोस्त, जब चढ़ता है, मत पूछो दोस्त, क्या आलम होता है।" थोड़ी देर का विराम और तब निर्देशक विजय आनंद बोतल से प्याला भरने की आवाज प्रस्तुत करते हैं और एक-एक बूँद जैसे हथोड़े के प्रहार की तरह गूँजती है। देव आनंद आगे बोलते हैं..."लेकिन जब उतरता है..." और अचानक गुनगुनाते हैं और वह 'दिन ढल जाए रात न जाए' के विषाद भरे गीत में बदल जाती है। सत्यजित राय की फिल्म **देवी** में आने वाले अशुभ का संकेत, अपनी बहू को देवी मानने वाले ससुर के लँगड़ाते कदमों की ध्वनि से मिलता है। बासु भट्टाचार्य की **तीसरी कसम** में उन्हें नौटंकी की नर्तकी वहीदा रहमान को पहली बार पेश करना था। हीरामन की बैलगाड़ी पर चढ़ती वहीदा रहमान के पैरों को दिखलाने के पहले वे घुँघरुओं की आवाज सुनाते हैं। बासु के ही श्वसुर बिमल राय ने इन्हीं घुँघरुओं की आवाज के द्वारा **मधुमती** में एक अलग ही प्रभाव पैदा किया था। कभी मंद होती, कभी तीव्र होती घुँघरुओं की आवाज एक तरह का तनावयुक्त आतंक दर्शकों के मन में पैदा करती है।

रॉबेर्टो रोसेलिनी की इतावली फिल्म 'पाइसा' में एक लावारिस बच्चा नाजियों द्वारा मारे हुए लोगों की लाशों के बीच अकेला भटक रहा है। बच्चे के परदे पर आने के पहले और बाद में पृष्ठभूमि में सिर्फ उसके क्रंदन की आवाज सुनाई देती है।

घड़ी के अलार्म की कर्कश आवाज का उपयोग गिरीश वैद्य की **आक्रांत** फिल्म में एक तरह से सारे समाज को चेतावनी देता है। नायक अमित एक आदर्शवादी पत्रकार है। वह क्रमशः अपनी प्रेमिका जाहिरा द्वारा गलत काम करने के लिए प्रेरित किया जाता है। परेशान नायक अपने आप में डूबता चला जाता है। कई तरह के वीभत्स अनुभवों से गुजरते हुए वह आत्महत्या का प्रयास करता है और अंत में अस्पताल पहुँचा दिया जाता है। वहाँ से भी वह भाग निकलता है और फिल्म के अंतिम दृश्य में हम उसका मृत शरीर समंदर के किनारे पड़ा देखते हैं। नायिका के कमरे में हम उसे सोते हुए देखते हैं और तभी जोर से घड़ी का अलार्म बज उठता है। नायिका आराम से सोती रहती है। बजता हुआ अलार्म जैसे पूछता है कि मरा कौन है? समुद्र किनारे पड़ी लाश या आराम से बिस्तर पर सो रही लड़की? (**स्क्रीन से**)

यदि आप सोकर जागें और सूरज की सुनहरी धूप को घर के परदों पर देखें, तो एक अलग प्रकार का अनुभव करेंगे। लेकिन अचानक पानी बरसने की आवाज से आपकी नींद खुले, तो आपका अनुभव पहले से भिन्न प्रकार का होगा। —रोमन पोलांस्की

◆◆◆

गायिका नूतन

यह आकस्मिक नहीं है कि अभिनेत्री नूतन ने फिल्म मयूरी (१९८५) में चार गाने खुद गाए हैं। बेहतरीन अभिनेत्री होने के कारण गीत-संगीत के एकाधिकार वाले क्षेत्र में उन्हें यह मौका मिला है। इसके पहले वे यादगार (१९७०), पेइंग गेस्ट (१९५७), छबीली (१९६०) और हमारी बेटी (१९५०) फिल्म में भी गाने गा चुकी हैं। नूतन की पहली फिल्म नगीना थी, जिसके प्रीमियर-शो में उसे नाबालिग होने के कारण जाने नहीं दिया गया था।

फिर न कीजे मेरी खामोश निगाहों का गिला...

फ्रांसीसी निर्देशक ज्याँ रैना की फिल्म 'इल्यूजन' के एक दृश्य में जर्मन कारागार में कुछ लोगे एक बक्से को खोलने की कोशिश कर रहे हैं। उनका ख्याल है कि उसमें खाने-पीने की बढ़िया चीजें हैं। बड़ी गहमा-गहमी तथा शोर- शराबा है और उत्सुकता बढ़ती जाती है। अंततः ढक्कन खुल जाता है और पता चलता है कि बक्से में किताबें भरी हुई हैं। अचानक साउंड-ट्रेक पर सन्नाटा खिंच जाता है। यह खामोशी हर प्रेक्षक को रचनात्मक कलाकार में बदल देती है। हर व्यक्ति अपने-अपने ढंग से उसकी व्याख्या करता है। इस दृश्य में भी हर एक मोहभंग कैदी उसकी भिन्न व्याख्या करता है।

सस्पेंस और आतंक की फिल्मों के निर्देशक अल्फ्रेड हिचकॉक की फिल्म **'द बर्ड्स'** (पंछी) का सबसे खौफनाक दृश्य वह है, जिसमें पक्षी एक भी नजर नहीं आता। फिल्म के अंतिम दृश्यों में एक कमरे में तीन-चार लोग बैठे हैं-एक माँ, उसका बच्चा, एक युवक तथा युवती। वे बिल्कुल चुपचाप बैठे पक्षियों के नए हमले का इंतजार कर रहे हैं। एक गहरी खामोशी के बाद शीशे की खिड़कियों के बाहर अचानक उनके हमले की आवाजें आनी शुरू होती हैं, मगर पंछी दिखलाई नहीं देते। लंबी, भारी तथा दहलाने-वाली खामोशी के टूटने पर जैसे दर्शक अजीब- सी, क्षणिक राहत, महसूस करते हैं।

यह सही है कि साउंड-फिल्म के आगमन ने मूक और ध्वनि-रहित फिल्मों को पीछे धकेल दिया, लेकिन फिल्म निर्माताओं ने ध्वनि-चित्रों में नीरवता का उपयोग सकारात्मक नाटकीय प्रभाव पैदा करने के लिए बहुत किया है। ध्वनि और ध्वनिविहीनता का अंतर ध्वनि-चित्र में एक नया आयाम पैदा करता है।

खामोशी से तत्काल प्रतिक्रिया पैदा होती है। ठीक वैसे ही जब आप किसी भाव को शब्दों में व्यक्त न कर सकने के कारण सिर्फ मौन रह जाते हैं। अन्य कला- विधाओं की तरह सिनेमा में भी कई बार प्रेक्षकों की भावना उनकी विचार शक्ति से ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाती है। दरअसल समझदारी बजाए विचार-शक्ति के अहसास का नतीजा होती है। स्टेनले कुब्रिक ने कहा भी है: "किसी चीज की सच्चाई तक हम उसे महसूस करके ही पहुँचते हैं, न कि उसके बारे में सोचकर।" सेल्यूलॉइड पर खामोशी के क्षण भी किसी घटना को विस्तार देने, किसी भाव को गहराई देने या ऊब पर जोर देने के काम आते हैं।

गुलजार की **'मेरे अपने'** में पिस्तौल से गोली छूटती है और नियति की विडंबना से एक बूढ़ी विधवा (मीनाकुमारी) को लग जाती है। जैसे ही वे 'स्लो मोशन' में पृथ्वी पर धराशायी होने लगती हैं, साउंड ट्रेक को गुलजार बिल्कुल खामोश कर देते हैं और कैमरा आकाश की ओर लगातार 'पैन' करते हैं। मानो वे धरती की अशांति से दूर आसमान में राहत पाना चाहते हों। जैसे ही मीनाकुमारी का शरीर जमीन पर गिरता है, कैमरा वापस उनकी लाश पर केन्द्रित होता है और आसपास की ध्वनियाँ भी सुनाई देने लगती हैं। मूल रूप से कवि गुलजार ने इस तरह मृत्यु को भी खामोशी का उपयोग कर काव्यात्मक बना दिया।

कई बार खामोशी आवाज से भी ज्यादा मुखर हो जाती है और एक मौन चितवन हजारों बातें कह जाती है। सत्यजित राय की **'अपराजितो'** में सर्वजया की उस मनःस्थिति को जब पति की मृत्यु के बाद उसे अपनी इस लाचारी का पता चलता है कि उसके साथ ही 'अपू' को भी उसके मालिक के नौकर की तरह रहना होगा, निर्देशक ने तनावयुक्त खामोशी के द्वारा ही व्यक्त किया है। इसके विपरीत **'प्रतिद्वंद्वी'** में जिस तरह सिद्धार्थ अपने बचपन के सपने देखता है, उसमें खामोशी के द्वारा ही राय ने फंतासी का प्रभाव पैदा किया है। **'अनुभव'** में संपादक संजीव कुमार दिनेश ठाकुर से कहता है कि वह उसे नौकरी में इसीलिए ले रहा है कि वह कोई सिफारिश नहीं लाया। जबकि स्थिति का व्यंग्य यह था कि दिनेश ठाकुर ने तनूजा, जो कि उसकी पूर्व प्रेमिका है तथा संजीव की पत्नी है, की सिफारिश प्राप्त करने की पूरी-पूरी कोशिश की थी और वह उसे नहीं मिली थी। दिनेश की मनःस्थिति को बासु भट्टाचार्य ने खामोश ट्रेक के द्वारा ही व्यक्त किया था। बासु चटर्जी ने भी इसी तकनीक का प्रयोग **'सारा आकाश'** में समर और प्रभा के बीच पैदा होती आत्मीयता को व्यक्त करने के लिए किया है। समर का मित्र जलाल आगा एक फुटबॉल मैच देखकर आता है और बड़े उत्साह से उसके बारे में बतलाता है। लेकिन यह दिखलाने के लिए कि समर, प्रभा के ख्यालों में गुम है, बासु साउंड ट्रेक बंद कर देते हैं और परदे पर सिर्फ जलाल आगा का मूक अभिनय दिखलाई देता है।

वॉल्टर रटमॅन अपनी फिल्म 'मॅलोडी ऑव द वर्ल्ड' के क्लाइमेक्स में युद्ध का एक दृश्य बतलाते हैं, जिसमें तोपें आग उगल रही होती है, एक चीखती हुई औरत का क्लोज-अप आता है और अचानक सन्नाटा खिंच जाता है और परदे पर हजारों सफेद क्रास लगे हुए कब्रस्तान का दृश्य उभर आता है। यह खामोशी दर्शक के कान के परदे फाड़ देने वाले शोर से भी ज्यादा प्रभावी होती है।

वक्त का हँसी सितम: कागज के फूल (स्क्रीन से)

खामोशी से तत्काल प्रतिक्रिया पैदा होती है। ठीक वैसे ही जब आप किसी भाव को शब्दों में व्यक्त न कर सकने के कारण सिर्फ मौन रह जाते हैं। अन्य कला-विधाओं की तरह सिनेमा में भी कई बार दर्शकों की भावना उनकी विचार-शक्ति से ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाती है। दरअसल समझदारी बजाए विचार-शक्ति के अहसास का नतीजा होती है।

◆◆◆

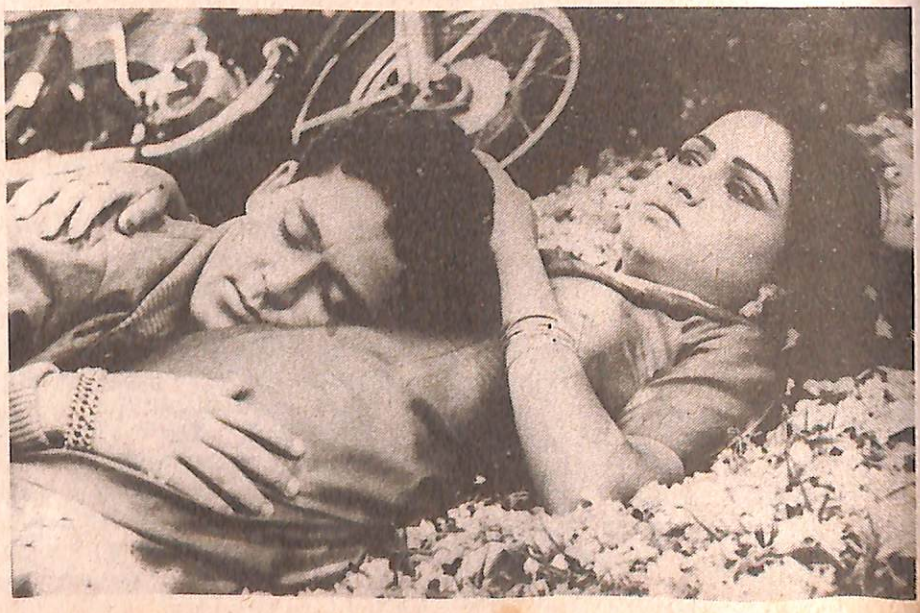

आओ प्यार करें: पद्मिनी-कुमार गौरव

झुमरी तलैया!

शरद जोशी

देखो कैसा विधना का विधान, तानसेन बंबई आ गए और उनका कदरदान अकबर झुमरीतलैया जाकर बस गया। वह आज वहाँ से पुकारता है और यहाँ तानसेन गाता है। गीत यहाँ है, गूँज उधर बसती है। कंठ यहाँ है, कान वहाँ है। सुर इधर लगता है, वाह-वाह उधर होती है। खाली दिशाओं में मुँह उठाकर बंबइया गाने वाला और गाने वाली पूछते हैं, 'ओ झुमरीतलैया तुम कहाँ हो? कहाँ हो तुम झुमरीतलैया? क्या तुम चाँदामेटा, राजनांदगाँव के समीप हो? भूगोल हो या संस्कृति? तुम झुमरी हो या तलैया? तुम कितनी झुमरी और कितनी तलैया हो? क्या उस तलैया से केवल गीतों की फरमाईश की लहरें उठती हैं? क्या वहाँ खेतों में ट्रांजिस्टर उगते हैं? फिल्मी संगीत से वहाँ पौधे पनपते हैं, मनुष्य मचल-मचल जाता है, वहाँ गद्य तिरोहित हो गया, बातचीत में लोक गीत बोलते हैं? कैसी है झुमरीतलैया लबालब, भावों से भरपूर! कहाँ हो झुमरीतलैया?'

बंबई का चालू संगीतज्ञ सुख की नींद सोता है। जिसका कोई नहीं उसकी झुमरीतलैया है। गीत बनता है और यह तलैया बलैया लेती है। बारी-बारी जाती हैं। कोई गीत चाँद सा चमका और झुमरीतलैया की लहरें उछल-उछल उसे पकड़ने को बेचैन हो जाती हैं, अपने अंतर में उसकी छाया गद्‌गद् हो जाती हैं। झुमरीतलैया फिल्मी गीत की अमरता की प्रथम और अंतिम गारंटी हैं। बंबई से झुमरीतलैया तक जो स्वर रेखा खींची हुई है, वही इस देश का असल सांस्कृतिक बंधन है, राष्ट्र की भावनात्मक एकता का प्रमाण है। जब तक इस देश में चाँद-सूरज और झुमरीतलैया विद्यमान है, हल्के फुल्के गीतों का वर्तमान सब पर भारी होगा, भविष्य सुरक्षित। फरमाइश तेरा नाम झुमरीतलैया है। झुमरीतलैया तू व्यर्थ के गीतों की सार्थक आत्मा है। तू निरर्थक को अर्थ प्रदान करने वाली शक्ति है।

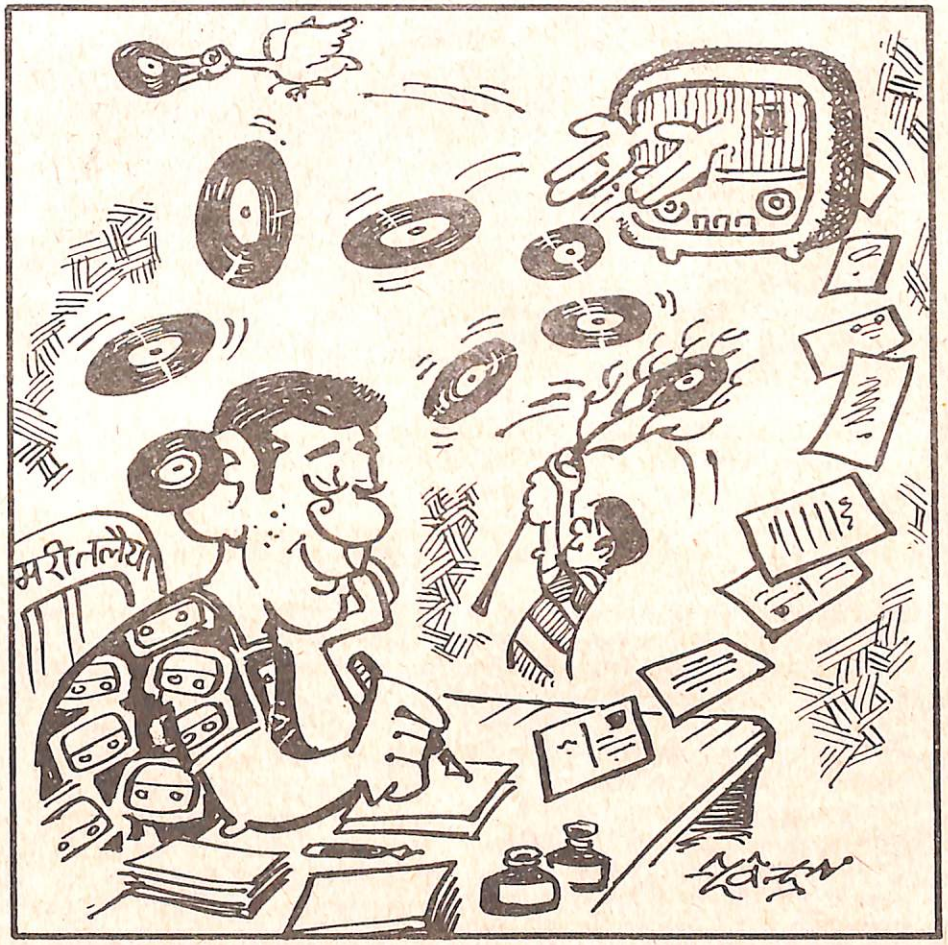

झुमरीतलैया वह छुरी है, वह कील है, जिस पर हर रिकॉर्ड घूमता है। एक पतली-सी तर्जनी ने फिल्मी गीतों का भारी पर्वत उठा रखा है। एक तलैया है जिससे निकली प्रशंसाओं की नहर बंबई के फिल्मी कानून को सींचती है। झुमरीतलैया आश्वासन भरा तकिया है, जिस पर सिर टिकाकर गीतों के हर बख्शी को तुझसे आनंद की अनुभूति होती है, हर जयपुरी की तू हसरत है, हर सुल्तानपुरी की मजरुह है, हर लुधियानवी की तू साहिर है, हर कल्याणजी की तू आनंदजी है। ओ झुमरीतलैया, तू हर मंगेशकर की लता है, आशा है तू कहाँ है झुमरीतलैया? सारे शोर की किशोरात्मा तू कहाँ है?

कोई बता रहा था झुमरीतलैया में समतल पृथ्वी नहीं है। वहाँ खदानें है और आकाश है। खदानों से सिर उठा लोग आकाश निहारते हैं। जहाँ गीतों की वाणी गूँजती है। वे हाथ उठाए फरमाइशें करते हैं। हे प्रभु, हमें सुनने के लिए गीत भेज। आकाशवाणी वरदान की तरह गीत टपकाती है, वे पपीहे की तरह चोचें उठा रिसिव करते हैं। खदान और आसमान, गहराई और खालीपन का अहसास एक साथ। ठीक वैसी ही स्थिति जो फिल्मी गीतों में होती है। गहराई का अहसास, पर वास्तव में खालीपन। जो झुमरीतलैया का भूगोल है, वह फिल्मी गीतों की आत्मा है। झुमरीतलैया के लिए जो ठोस है, वही फिल्मी गीतों का चिर पोलापन है। जो उनकी मरीचिका है, वह इनकी मंजिल है। उन खदान से वही-वही निकलता है जैसा कि फिल्मी गीतों में होता है। जैसाहोता है वैसा वहीं-वहीं होता है। 'ठाड़े रहियो ओ बाँके यार' से 'घूम जा, घूम गई, खड़ी हो जा खड़ी हो गई' तक शब्द और लय आदेशबद्ध निकलते हैं और झुमरीतलैया में समा जाते हैं। जो खदानें खाली हो रही हैं, वे गीतों से भरी जा रही हैं। इस आशा से कि कालांतर में जब वे कोयला होंगी, तब राष्ट्र के लिए अधिक उपयोगी होंगी। बंबई में गीतों की खदान है और खदान, खदान की कदरदान है।

झुमरीतलैया गाँव है या कस्बा या नगर। झुमरीतलैया समूचा देश है। वह नक्शे में एक बिंदू नहीं है, वह बिंदू का विस्तार है। अनंत, सीमाहीन सारा देश एक विराट झुमरीतलैया है। तलैया नहीं सागर। झुमरीतलैया यदि तलैया है तो देश झुमरी सागर, जो गीत की किरण पड़ते ही रिलीज की हर पूनम, बल्लियों उछलता है।

झुमरीतलैया में माँ की कोख में लेटा हर अभिमन्यु फरमाइशी गीत सुनता है और समझता है कि शब्दों के चक्रव्यूह से गुजरकर कैसे निकलते हैं। भविष्य में झुमरीतलैया की खदानों से राष्ट्र के म्युजिक डायरेक्टर जन्म लेंगे और तलैया की गीतों भरी शीतलता बदली बनी राष्ट्र की खोपड़ी पर निरंतर बरसती रहेगी। झुमरीतलैया ने रिकार्डों की चाह का रिकॉर्ड बनाया है, इनकी चाह रिकॉर्ड हो सके, इसके लिए रिकॉर्ड वालों को कुछ करना चाहिए। ओ झुमरीतलैया, फरमाइश कर! अनाज, केरोसिन के अभाव के इस युग में केवल गीतों की फरमाइश कर तू कैसे पेट भर रही है, आश्चर्य है। तू गुनगुनाती भारतीय जनता का आदर्श है। हर गली, हर ड्राइंगरूम, हर बाथरूम से तेरी गंध आती है। जब- जब हल्के-फुल्के गीतों की हानि संसार में होगी, तू जन्म लेगी। आज जिस तलैया में फिल्मी गीतों का कमल खिला है, वह झुमरीतलैया है। हर बाजा, हर सीटी तुझे समर्पित हैं। हर चीखता गला तुझे सलाम कर रहा है। तू धन्य है झुमरीतलैया। तुझमें छोटे 'उ' की मात्रा गलत है। तेरा नाम होना चाहिए-**झूम-री-तलैया।**

(माधुरी से साभार)

बावन वाद्य बजाने वाला संगीतकार: बालाकुमार दवे

मद्रास के एक मध्यमवर्गीय बैंक क्लर्क परिवार के बालाकुमार दवे जब पाँच साल के बालक थे तब उनके शरीर के दाहिने हिस्से पर पक्षाघात हुआ। माता-पिता ने इसे मामूली बीमारी समझा और पड़ोसी डॉक्टर ने भी विटामिन बी के इंजेक्शन लगाकर छुट्टी कर दी। कुछ दिनों बाद उनकी गर्दन के नीचे का भाग तो सामान्य हो गया पर चेहरे पर 'लकवे' की निशानियाँ स्थायी बन गईं। विकृत चेहरे वाले बालाकुमार का बचपन बिना दोस्तों के बीता और इस टेढ़े चेहरे वाले बच्चे को सहपाठियों ने अपने साथ खिलाना तक गवारा न किया। फिल्म में बालाकुमार ने जब एक बच्चे को माउथ- आर्गन बजाते देखा तो उनकी तबियत इस खिलौने से खेलने को मचल उठी। अगले दिन 'दादाजी' से फर्माइश की और उन्हें माउथ-आर्गन मिल गया। इस तरह बालाकुमार की जिंदगी में 'संगीत' ने कला के रूप में नहीं बल्कि खेल के रूप में दस्तक दी। संगीत को खेल मानने वाले इस बच्चे को तब यह पता भी नहीं थे कि बत्तीस साल की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते वह बावन वाद्ययंत्रों को कुशलता से बजाने वाला विलक्षण विकलांग वादक बन जाएगा। सिर्फ यही नहीं बालाकुमार एक साथ तीन वाद्ययंत्र बजा सकने की क्षमता रखने वाले विलक्षण वादक के रूप में भी चर्चित है। धातु के विशेष रूप से निर्मित स्टैंड पर रखकर वे ओठों से माउथ-आर्गन बजाते हैं, दाहिदे हाथ से तबला तथा बाएँ हाथ से कन्जीरा संभालते हैं।

पुरातत्व शास्त्र में एम.फिल की उपाधि अर्जित करने के बाद जब बालाकुमार ने इसी विषय में पी-एच.डी. करने का फैसला किया तब शोध के लिए विषय चुना 'छठवीं से तेरहवीं सदी के मध्य तमिलनाडु के वाद्ययंत्र।' पुरातत्व और संगीत इन दोनों के साथ बालाकुमार का जितना लगाव है उतना ही चाव उन्हें 'फिल्म निर्माता' के रूप में अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने का है। तमिलनाडु की प्रादेशिक सरकार के लिए वे वहाँ की पुलिस व्यवस्था पर 'कमिश्नर गायत्री' नामक डाक्युमेन्ट्री बना चुके हैं। फीचर फिल्म 'संगीत साम्राज्यम्' का निर्माण उन्होंने बड़े उत्साह से शुरू किया था। अर्थव्यवस्था न होने के कारण फिल्म की प्रगति गीतों के रिकॉर्डिंग के बाद ही रुक गई। संगीत निर्देशक वे स्वयं ही हैं और के.जे. येसूदास, एस.बी. बाल सुब्रमणियम, जयाचंद्रन और पी. सुशीला के गाए गीत रिकॉर्ड हो चुके हैं। इन गायकों ने अपना कंठ बिना पारिश्रमिक ही प्रदान किया।

बालाकुमार का कहना है कि चाहे कितनी भी मुश्किल आएँ वे फिल्म निर्माण के काम से मुँह नहीं मोड़ेंगे। फिल्मों के जरिए वे हर माता-पिता को यह संदेश पहुँचाना चाहते हैं कि शिशु की बीमारी के प्रति लापरवाही न बरतें ताकि फिर कोई बालाकुमार विकृत चेहरा लेकर हीन भावना से ग्रस्त न हो। बालाकुमार को संगीतकारों से सबसे बड़ी शिकायत यह है कि वे सफल होने के बाद गुट बना लेते हैं और नए लोगों को सफल होने से रोकने के लिए षड्यंत्र रचते हैं।

(वीकली से साभार)

लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल तबला और डग्गा

● जयप्रकाश चौकसे

दो संगीतकारों की टीम बनाकर संगीत देने की परंपरा हुस्नलाल-भगतराम से प्रारंभ होकर आनंद-मिलिंद तक आई है और इसमें अत्यंत महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं शंकर-जयकिशन, कल्याणजी-आनंदजी और लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल। 'पारसमणी' से लेकर 'राम-लखन' तक २५ वर्ष के सफर के बाद भी ये टीम तरोताजा है और इनमें कोई आंतरिक विरोध नहीं है क्योंकि तबले और डग्गे में भला कभी विरोध हुआ है? अपने जीवन के अंतिम वर्षों में शंकर-जयकिशन आपसी मनमुटाव के शिकार हुए— सरस्वती के पुत्रों को 'शारदा' ने मारा।

लक्ष्मी-प्यारे ने शास्त्रीय संगीत की धरती को कभी नहीं छोड़ा और आधुनिक पाश्चात्य संगीत के सेटेलाइट से भी अपनी सृजनशक्ति का एंटिना जोड़े रखा। उन्होंने भप्पी लहरी वाली गलती कभी नहीं की कि सेटेलाइट पकड़ने गए, जो हाथ नहीं आया और धरती से भी कदम उखड़ गए। अब संस्कारविहीन शून्य में भारहीन होकर भटक रहे हैं। लक्ष्मी-प्यारे ने गणपति उत्सव में गाए जाने वाले परंपरागत गाने की 'रिदम' पकड़ी और उसे इलेक्ट्रॉनिक्स पर बजाया— गीत बना 'एक-दो-तीन-चार'। इसमें यह प्यारे का जीनियस है कि भारतीय रिदम विदेशी वाद्य पर बजाई है। वे

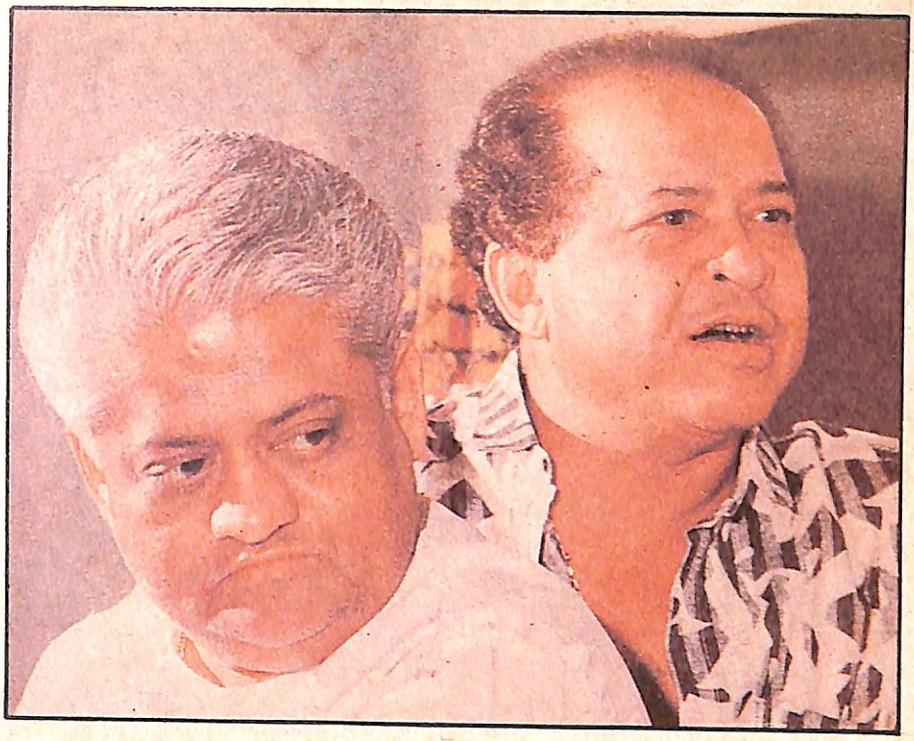

शास्त्रीय संगीत की धरती से इस कदर जुड़े हैं कि सी गीत की मूल धुन पुरानी फिल्म 'बचन' के 'चंदा मामा दूर के' के इन्टरल्यूड (मुखड़े और अंतरे के बीच संगीत का टुकड़ा) से ली गई है। यही लक्ष्मी-प्यारे की सफलता का राज है कि बदलते हुए समय के साथ मूल पुरातन का सामंजस्य करते हैं। 'राम-लखन' के सारे संगीत में अलाप का प्रयोग करके धुनों को पूर्णतः विदेशी होने से बचाया है। यह सामंजस्य ही उनकी शक्ति है।

सन् ५१-५२ से लक्ष्मी-प्यारे वादकों के रूप में फिल्म संगीत से जुड़े हैं। १४ वर्ष की उम्र में लक्ष्मी का कद इतना छोटा था कि रिकॉर्डिंग रूम में उनके लिए विशेष ऊँचा स्टूल बनाया गया था। वादक से 'अरेंजर' हुए और १९६१ में 'पारसमणी' से 'हँसता हुआ नूरानी चेहरा' निरंतर चमक रहा है। लक्ष्मी-प्यारे ने राजकपूर के 'संगम' की प्रतिद्वंद्विता में 'दोस्ती' के संगीत के लिए ६५ की फिल्म फेअर पुरस्कार तिकड़मबाजी से प्राप्त किया। ये बात वे स्वयं कबूल कर चुके हैं। सन् ६५ से ७० के बीच छोटी फिल्मों में सफल संगीत दिया, फिर एक बुरे दौर में अच्छे संगीत के बावजूद उनकी फिल्में नहीं चलीं। दरअसल वे हर एक पर राजकपूर की 'बॉबी' और खोसला की 'दो रास्ते' से आए। अमिताभ के साथ हिंसा का दौर शुरू हुआ और संगीत का महत्व घट गया। ये लक्ष्मी-प्यारे का ही कमाल है कि फिल्मों के सबसे 'बेसुरे दौर' में भी उन्होंने सुर संगीत दिया। पिछले दस सालों से मार-धाड़ की फिल्में बन रही हैं जिनमें संगीत के लिए गुंजाइश नहीं होते हुए भी लक्ष्मी-प्यारे अपना कमाल दिखाते हैं। इस माने में पुराने संगीतकार किस्मत वाले थे क्योंकि उनके जमाने की फिल्मों में संगीत के लिए मौके थे। लक्ष्मी-प्यारे की पहली विशेषता सामंजस्य की है तो दूसरी यह कि बेसुरे दौर में भी उन्होंने 'मेलोडी' को बनाए रखा।

अच्छे निर्देशकों के लिए लक्ष्मी-प्यारे ने एक-एक गीत के लिए महीनों काम किया है तो दूसरी तरफ पिछले दशक में उन्होंने रिकॉर्डिंग रूम में आकर भी धुनें बनाई हैं और ये गीत भी लोकप्रिय हुए हैं। ये 'त्वरित धुनें' बनाना कोई आसान काम नहीं है। आज लक्ष्मी-प्यारे (दोनों ही) लगभग ५० वर्ष के हैं और १४ की उम्र से काम कर रहे हैं। अतः इन ३६ वर्षों के अनुभव के कारण ही वे त्वरित धुनें बना लेते हैं। जब मोहम्मद रफी और किशोर कुमार जीवित थे, तब इन त्वरित धुनों में उनका भी योगदान होता था। यह लक्ष्मी-प्यारे का ही कमाल है कि मुकेश, रफी, किशोर के बाद आने वाले दोयम दर्जे के गायकों के साथ भी सफल संगीत दे रहे हैं। पिछले वर्षों से लता भी लक्ष्मी-प्यारे के ज्यादा गीत नहीं गातीं। दरअसल लताजी ने स्वयं ही काम कम कर दिया है। अतः लक्ष्मी-प्यारे अनुराधा पौडवाल और कविता कृष्णमूर्ति से काम चला रहे हैं। लक्ष्मी-प्यारे इतने चतुर हैं कि गायकों की कमजोरी ढाँकने के लिए कोरस का प्रयोग ज्यादा करते हैं और मामूली सी धुन को भी अपने अत्यंत निष्णात ऑर्केस्ट्रा संयोजन से सफल बनाकर दिखाते हैं। वे लोग प्रतिभा के अभाव को अपने तकनीकी कौशल से ढाँक लेते हैं। कोई भी जानकार 'राम-लखन' के संगीत का अध्ययन करके यह देख सकता है कि कमजोर धुनों को कितने कमाल के साथ सजाया गया है। पूरी फिल्म में केवल एक धुन मधुर है— 'बड़ा दुख दीना तेरे लखन ने' और धुन को चार चाँद लगाने के लिए लताजी ने गाया है। बाकी गीत दोयम दर्जे की प्रतिभा को मिले हैं। जरा गौर से सुनें तो आप महसूस करेंगे कि 'राम-लखन' की बाकी धुनों को कोरस और ऑर्केस्ट्रा ने किस खूबी से संभाला है। 'माई नेम इज लखन' फूहड़ धुन है परंतु पेकिंग गजब की है। समय के साथ अपनी कमजोरी को छुपाना और शक्ति को सही ढंग से प्रस्तुत करने में लक्ष्मी-प्यारे का जवाब नहीं। सच तो यह है कि प्यारे से बेहतर ऑर्केस्ट्रा की जमावट करने की योग्यता आज तक किसी ने प्रदर्शित नहीं की। प्यारे की 'कंडक्टिंग' योरप के स्तर की है।

आज के बेसुरे दौर में जब भी लक्ष्मी-प्यारे को मौका मिलता है, वे शास्त्रीय संगीत पर आधारित धुनें देने से चूकते नहीं हैं, जैसा कि उन्होंने शशि कपूर के 'उत्सव' में किया था। 'उत्सव' में लताजी और आशाजी का युगल गीत 'रात शुरू होती है आधी रात को' और लताजी का गीत 'होश किसे है सम पर आने का' इस बात के प्रमाण हैं। प्रेमरोग का 'मैं इंतजार करता हूँ' और 'ये गलियाँ ये चौबारा' शुद्ध आनंद के गीत हैं। इसी तरह 'मौसम होते हैं चार और पाँचवा मौसम प्यार' भी अद्भुत रचना है।

लक्ष्मी-प्यारे की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि २६ वर्ष तक सैकड़ों गीतों के बाद भी उनके उत्साह में कमी नहीं आई है और आज भी वे तरोताजा हैं। वे दोनों ही सुबह दौड़ने जाते हैं और सरगम के सफर की दौड़ तो अविरल जारी है। इस बेसुरे दौर में भी मेलोडी की पताका लक्ष्मी-प्यारे के हाथ ही है।

नदिया चले, चले रे धारा: मन्ना डे

मन्ना डे का फिल्म संगीत और पार्श्व गायन के आँगन में आगमन ऐसे समय हुआ, जब यह विधा घुटनों के बल चलना सीख रही थी। डी.वी. पलुस्कर, कृष्णचंद्र डे तथा कुन्दन लाल सहगल की खरल में घुटी आवाज ग्रामोफोन रेकार्ड से निकल कर गली-गली में गूँज रही थी। शास्त्रीय संगीत अपना अति शास्त्रीय चोला बदल कर सुगम-संगीत की पोशाक पहन रहा था। मन्ना डे की बचपन से अभिलाषा रही थी कि वे संगीत की स्वरलहरियों को जीवन भर का साथी बनाएँ; लेकिन उनके पिता चाहते थे कि बेटा पढ़-लिख कर वकील बने। नाम कमाए और दाम भी। मन्ना का पक्ष लिया उनके चाचा के.सी. डे ने, जो उस समय के मशहूर संगीतकार और गायक थे। उन्होंने मन्ना डे को अपना शिष्य बनाया और शास्त्रीय संगीत में बाकायदा प्रशिक्षित किया।

जब मन्ना डे कलकत्ता के स्काटिश चर्च कॉलेज में पढ़ते थे, तो एक संगीतप्रतियोगिता में शामिल होने के लिए उन्हें कॉलेज से चुना गया। अपने चाचा के मना करने पर उन्होंने प्रतियोगिता में जाने से इंकार कर दिया। छात्रों के आग्रह के आगे झुक कर के.सी. डे ने एक माह की अवधि में मन्ना को ध्रुपद, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, गजल, भजन, बाऊल, भटियाली और मॉडर्न बंगाली संगीत में पारंगत बना दिया। **प्रतियोगिता में निर्धारित दस पद्धतियों में से मन्ना डे को नौ में प्रथम और मॉडर्न बंगाली पद्धति में द्वितीय इनाम मिले।** यह सिलसिला तीन साल तक लगातार चलता रहा। **अंत में आयोजकों ने मन्ना डे को चाँदी का तानपुरा भेंट में देकर कहा कि आगे से वे प्रतियोगिता में भाग नहीं लें, तो बेहतर होगा।** बी.ए. करने के बाद मन्ना डे बंबई आ गए। अनेक लोगों में फैली यह गलतफहमी दूर हो जाना चाहिए कि मन्ना डे को उनके चाचा के.सी. डे की सिफारिश पर फिल्मों में प्रवेश मिला। संगीतकार बनने की तमाम योग्यताओं के साथ मन्ना डे ने खेमचंद प्रकाश, अनिल विश्वास, के.सी. डे तथा सचिन देव बर्मन के सहायक के रूप में काम किया। एक दिन बंबई के शिवाजी पार्क स्थित अपने चाचा के घर में मन्ना डे रियाज कर रहे थे। फिल्मकार विजय भट्ट वहाँ आए। उन्होंने मन्ना डे से अपनी फिल्म **रामराज्य** में गाने का अनुरोध किया। संगीतकार शंकरराव व्यास ने आवाज परीक्षण के बाद उपयुक्त पाया। इस प्रकार मन्ना डे संगीतकार से पार्श्वगायक बन गए। १९४३ में निर्मित रामराज्य भारतीय सिनेमा की क्लासिक फिल्म है। इस फिल्म में उन्होंने तीन गीत गाए हैं—चल तू दूर नगरिया तेरी, अजब विधि का लेख किसी से पढ़ा नहीं जाए और त्यागमयी तू गई तेरी अमर भावना अमर रही। धार्मिक फिल्म में गीत गाने का यह ठप्पा मन्ना डे पर कुछ इस प्रकार लगा कि उन्हें धार्मिक-पौराणिक फिल्मों का पार्श्वगायक बना दिया गया। **१९४३ से १९५० तक** मन्ना डे ऐसी ही फिल्मों में गुनगुनाते रहे। इस दौर की प्रभु का घर (१९४५), विक्रमादित्य (१९४५), श्रवण कुमार (१९४६), गीत गोविन्द (१९४७), जय हनुमान (१९४८), रामबाण (१९४८), राम विवाह (१९४९), संत जनाबाई (१९४९), भगवान श्रीकृष्ण तथा राम दर्शन (१९५०) जैसी फिल्मों ने उन्हें धार्मिक गायक बना दिया।

मन्ना डे की गायकी की असली पहचान सचिन देव बर्मन ने की। बॉम्बे टॉकीज की फिल्म मशाल (१९५०) के लिए प्रभु महिमा बखान करने वाला एक गीत गवाना था। सचिन दा की इच्छा के.सी. डे से गवाने की थी, लेकिन उन दिनों वे कलकत्ता में थे। उन्होंने अपने सहायक मन्ना डे को बुलाया और कोशिश करने को कहा। मन्ना डे का मन प्रसन्नता से भर गया, क्योंकि सचिन दा उन्हें मौका दे रहे थे। उन्होंने तन्मय होकर गाया—'ऊपर गगन विशाल नीचे गहरा पाताल।' यह फिल्म और गीत दोनों सुपर हिट रहे। गीतकार प्रदीप, सचिन दा और बॉम्बे टॉकीज के सावक वाच्छा ने मन्ना डे को सलाह दी कि वे पार्श्वगायक के रूप में ही आगे बढ़ें। मन्ना डे ने इस सलाह को स्वीकार किया और विशाल गगन के नीचे जमीन पर अपने पाँव अंगद की तरह जमा दिए।

मन्ना डे को १९४३ से १९५० तक सफलता नहीं मिली। इन सात सालों में उन्होंने अट्ठाईस फिल्मों में कुल पचास गीत गाए। लगभग हर फिल्म में एक या दो गानों से ज्यादा उनसे नहीं गवाए गए। केवल विक्रमादित्य फिल्म में नौ में से सात गीत उन्हें गवाए। इसके निर्देशक विजय भट्ट, संगीतकार शंकर राव व्यास और गीतकार रमेश गुप्ता थे। १९४४ में दिलीप कुमार की पहली फिल्म **ज्वारभाटा** में पारुल घोष के साथ उन्हें भूला भटका पथ का हा

दिल के अरमाँ आँसुओं में बह गए

देवेंद्र गोयल की फिल्म 'वचन' (१९५५) से पहली बार रवि का नाम चंद्रा के साथ आया था। बाद में गोयल के रिश्तेदार चंद्रा तो फिल्म लाइन छोड़ गए लेकिन रवि और गोयल के संबंध अंत तक बने रहे। 'वचन' का गीत 'ओ बाबू एक पैसा दे दे' खूब लोकप्रिय हुआ था। १९६० तक उन्होंने एक साल, 'नरसिंह भगत', 'नई राहें' तथा 'चिराग कहाँ रोशनी कहाँ' जैसी फिल्मों में संगीत दिया मगर चोटी के संगीतकार वे गुरुदत्त की 'चौदहवीं का चाँद' से ही बने। गुमराह (६३) से उनका संपर्क बी. आर. चोपड़ा के साथ हुआ। ६० से ७० का दशक रवि का स्वर्ण युग था। १९७० के बाद चोपड़ा ने भी उन्हें काफी लंबे अंतराल के बाद 'निकाह' में लिया। 'निकाह' में उन्होंने सलमा आगा की आवाज में 'दिल के अरमाँ आँसुओं में बह गए' गजल गवाई। हमराज, 'धुंध', 'काजल', 'नील कमल' आदि फिल्मों में उन्होंने साहिर लुधियानवी से गीतों के बोल लिखवाए और उनकी आकर्षक धुनें बनाईं। प्रमुख फिल्में: वचन (५५), अयोध्यापति (५६), एक साल, नरसिंह भगत (५७), घर संसार, दिल्ली का ठग, देवर भाभी, मेहंदी (५८), चिराग कहाँ रोशनी कहाँ, जवानी की हवा, नई राहें, पहली रात (५९), अपना घर, घर की लाज, चौदहवीं का चाँद, घूँघट, तू नहीं और सही।

मन शरण तुम्हारी आया-गाने का अवसर मिला। इस दौर की अधिकांश फिल्मों के संगीतकार शंकर राव व्यास, खेमचंद प्रकाश, बुलो सी रानी, श्याम सुंदर, सचिन देव बर्मन थे। जिन गीतों को रफी, मुकेश, हेमंत, किशोर या और कोई गाने को तैयार नहीं होता था, वे मन्ना डे को दे दिए जाते थे। ऐसे गीतों में भजन, संदेशमूलक बातें या कठिन शब्दावली होती थी। इस वजह से वे लोकप्रिय नहीं हो पाते और मन्ना डे की सफलता उनकी ऊँचाइयों से ऊपर नहीं उठ पाती थी। तत्कालीन महिला गायिकाओं में खुर्शीद, अमीरबाई, जौहरा, राजकुमारी, मीना कपूर, शमशाद बेगम, नूरजहाँ, सुरैया, लता और आशा ने भी अपनी जोड़ी मन्ना डे के साथ नहीं मिलाई क्योंकि उनकी आवाज की बुलंदगी के सामने अपनी आवाज के दब जाने का खतरा वे नहीं लेना चाहती थीं। १९५१ में 'आंदोलन' फिल्म में पहली बार किशोर कुमार और मन्ना डे ने मिलकर गाया–सुबह की पहली किरण तक जिंदगी मुश्किल है। लता ने इसी साल राज कपूर की फिल्म **आवारा** में पहली बार मन्ना डे के साथ सुर मिलाए–तेरे बिना आग ये चाँदनी तू आ जा।

मन्ना डे की गायकी के साथ एक दुःखद पहलू यह रहा कि **उनकी आवाज किसी नायक को इतनी 'सूट' नहीं हुई कि नायक-गायक में आकृति और परछाई का रिश्ता कायम हो सके।** जैसे राजकपूर के लिए मुकेश, देव आनंद तथा राजेश खन्ना के लिए किशोर कुमार, दिलीप कुमार के लिए तलत महमूद और रफी एक-दूसरे के पर्याय बन गए थे, वैसी बात मन्ना डे पर लागू नहीं होती। केवल **कॉमेडियन मेहमूद के लिए उन्होंने लगातार हास्य गीत गाए हैं।** मेहमूद भी गीतों के बोल और मन्ना डे की लोच भरी आवाजों पर हरकतें करने में कामयाब रहे हैं। नायक का साथ नहीं मिलने से मन्ना डे को फुटकर गीत गाने को मजबूर होना पड़ा है। इसके बावजूद उन्होंने अपनी विशिष्ट गायन शैली के बल पर अपनी पहचान तथा अपना स्थान बनाने में सफलता पाई है। जब लता मंगेशकर ने मन्ना डे के साथ युगल-गीतों की डोर बाँधी, तो सदाबहार गीत बनकर संगीत के सोते फूटे हैं। ऐसे गीतों में–ऋतु आए ऋतु जाए सखी री (हमदर्द), प्यार हुआ इकरार हुआ प्यार से फिर क्यों डरता है दिल (श्री ४२०), **ये रात भीगी-भीगी ये मस्त फिजाएँ** (चोरी चोरी), जहाँ मैं जाती हूँ वहीं चले आत हो तथा आ जा सनम मधुर चाँदनी में हम (चोरी चोरी), जा तो से नहीं बोलूँ कन्हैया (परिवार), ओ चाँद मुस्कुराया ये तारे शरमाए (आखरी दाव), मेरे दिल में है इक बात कह दो भला क्या है (पो. बा. नं. ९९९) प्रमुखता के साथ उल्लेखनीय हैं।

लता के बाद मन्ना डे के साथ लोकप्रिय एवं सदाबहार गीत गाने वाली गायिका गीता रॉय (दत्त) और आशा भोसले रही हैं। गीता दत्त द्वारा दो-तीन धार्मिक फिल्मों में साथ गाने के बाद बिमल राय की फिल्म देवदास (१९५५) में सचिन देव बर्मन के संगीत से सजे ये दो गीत बहुत लोकप्रिय हुए हैं–आन मिलो आन मिलो श्याम साँवरे तथा साजन की हो गई गोरी। आशा भोसले के साथ फिल्म बूट पालिश (१९५४) में मन्ना डे और मधुबाला जवेरी ने मिलकर–ठहर जरा ओ जाने वाले बाबू मिस्टर गोरे-काले–को लोगों की जबान पर चढ़ाया था। इसके बाद श्री ४२० (१९५५) में मुड़-मुड़ के न देख मुड़-मुड़ के, ये हवा ये नदी का किनारा (घर संसार १९५८), **मेरे जीवन में किरन बन के बिखरने वाले** (तलाक १९५८), चंदा मामा मेरे द्वार आना (लाजवंती १९५८) हम दम से गए हमदम की कसम हमदम न मिला

छाया : पी. के. जैन

(मंजिल १९६०), हम भी अगर बच्चे होते नाम हमारा होता गबलू बबलू को रेखांकित किया जा सकता है।

शंकर-जयकिशन को इस बात का श्रेय जाता है कि उन्होंने मन्ना डे की बहुमुखी प्रतिभा को पहचान कर उनका बहुआयामी उपयोग किया। आवारा, श्री ४२०, बूट पालिश और मेरा नाम जोकर इसके उदाहरण हैं। बूट पालिश (१९५४) का यह गीत-लप झपक तू आ रे बदरवा–अभिनेता डेविड पर जेलखाने में अद्‌भुत ढंग से स्वरबद्ध किया गया है। चोरी-चोरी फिल्म में राजकपूर के प्लेबैक के लिए मुकेश उपलब्ध नहीं थे, तो **मन्ना डे का सोच-समझकर किया गया उपयोग फिल्म को क्लासिक आधार दे जाता है।** बसंत बहार (१९५६) फिल्म में नैन मिले चैन कहाँ (लता के साथ), 'सुर ना सजे क्या गाऊँ मैं' और 'भय भंजना वंदना सुन हमारी' गीत सदाबहार इसीलिए बन पड़े हैं। नौशाद ने मदर इंडिया (१९५७) फिल्म में चुनरिया कटती जाए रे उमरिया घटती जाए रे गीत गवा कर मन्ना डे का उपयोग किया था। मन्ना डे से मीठी धुनों में मदन मोहन ने उम्दा गीत पेश कराए हैं। ओ चाँद मुस्कुराया ये तारे शरमाए (आखरी दाव) और कौन आया मेरे मन के द्वारे पायल की झंकार लिए (देख कबीरा रोया) के उदाहरण पर्याप्त हैं।

भजनों के अलावा कुछ कव्वाली भी मन्ना डे ने अपने निराले अंदाज में गाकर उन्हें बेहद लोकप्रिय बनाया है। न तो कारवाँ की तलाश है न हमसफर की तलाश है तथा यह इश्क इश्क है इश्क (बरसात की रात १९६०) आज भी रेडियो से अक्सर

मन्ना डे के लोकप्रिय गीत

* तू प्यार का सागर है तेरी इक बूंद के प्यासे हम (सीमा/शंकर-जयकिशन)
* कौन आया मेरे मन के द्वारे पायल की झंकार लिए (देख कबीरा रोया/मदनमोहन)
* सुर ना सजे क्या गाऊँ मैं (बसंत बहार/शंकर जयकिशन)
* ऊपर गगन विशाल नीचे गहरा पाताल (मशाल/सचिन देव बर्मन)
* कस्मे वादे प्यार वफा सब बातें हैं बातों का क्या (उपकार/कल्याणजी-आनंदजी)
* प्यार हुआ इकरार हुआ प्यार से फिर क्यों... (श्री ४२०/शंकर-जयकिशन)
* ऐ मालिक तेरे बंदे हम (दो आँखें बारह हाथ/बसंत देसाई)
* ऐ भाई जरा देख के चलो (मेरा नाम जोकर/शंकर-जयकिशन)
* लागा चुनरी में दाग छुपाऊँ कैसे (दिल ही तो है/रोशन)
* ऐ मेरे प्यारे वतन (काबुलीवाला/सलिल चौधरी)
* नदिया चले चले रे धारा (सफर/कल्याणजी- आनंदजी)
* पूछो न कैसे मैंने रैन बिताई (मेरी सूरत तेरी आँखें/सचिन देव बर्मन)
* न तो कारवाँ की तलाश है (बरसात की रात/रोशन)
* चले जा रहे हैं मुहब्बत के मारे (किनारे-किनारे/जयदेव)
* लपक झपक तू आरे बदरवा (बूटपालिश/शंकर-जयकिशन)
* मेरे दिल में है इक बात (पो.बा. नं. ९९९/कल्याणजी- वीरजी)
* ओ चाँद मुस्कुराया ये तारे शरमाए (आखरी दाव/मदनमोहन)
* रात के राही थक मत जाना (बाबला/सचिन देव बर्मन)
* झूमता मौसम मस्त महीना (उजाला/शंकर-जयकिशन)
* चंदा मामा मेरे द्वार आना (लाजवंती/ सचिन देव बर्मन)
* मुस्करा लाड़ले मुस्करा (जिंदगी/शंकर- जयकिशन)
* ऐ मेरी जोहराजबीं तुझे मालूम नहीं (वक्त/रवि)
* मैं तेरे प्यार में क्या-क्या न बना दिलवर (जिद्दी/सचिन दा)
* तुझे सूरज कहूँ या चंदा (एक फूल दो माली/रवि)
* तू छुपी है कहाँ मैं तड़पता यहाँ (नवरंग/सी. रामचंद्र)
* फिर तुम्हारी याद आई ऐ सनम (रुस्तमे सोहराब/सज्जाद हुसैन)
* ऋतु आए ऋतु जाए सखी री (हमदर्द/अनिल विश्वास)
* ये रात भीगी-भीगी ये मस्त फिजाएँ (चोरी-चोरी/शंकर-जयकिशन)

गीतों को मन्ना डे के अलावा और कोई गायक इतने बेहतर ढंग से शायद ही गा पाता। उदाहरण के लिए-मेरी भैंस को डंडा क्यों मारा (पगला कहीं का), एक चतुर नार करके सिंगार (पड़ोसन), जोड़ी हमारी जमेगा कैसे जानी (औलाद), चुनरी संभाल उड़ी चली जाए रे (बहारों के सपने), दो दीवाने दिल के चले हैं देखो मिल के (जौहर मेहमूद इन गोआ), फूल गेंदवा न मारो लगत करेजवा में चोट (दूज का चाँद), लागी मनवा के बीच कटारी कि मारा गया ब्रह्मचारी (चित्रलेखा), लागा चुनरी में दाग छिपाऊँ कैसे (दिल ही तो है), ओ कली अनार की न इतना सताओ (छोटी बहन), मामा हो मामा हो मामा (परवरिश) है।

मन्ना डे ने गैर फिल्मी गीत/भजन के अलावा मगधी, भोजपुरी और बंगला फिल्मों में भी पार्श्वगायन किया है। डॉ. हरिवंश राय बच्चन की मधुशाला को मन्ना डे ने अपने स्वर देकर अमर बनाया है।

मन के अंतरतम से निकलने वाली भावनाओं को उन्होंने खरी अभिव्यक्ति दी है। अपने व्यक्तिगत जीवन में मन्ना डे सादगी पसंद हैं। वे अपने को हमेशा संगीत जगत का विद्यार्थी मानते हैं। उनका कहना है कि सीखना लंबी प्रक्रिया है जबकि जिंदगी बहुत छोटी होती है। उन्हें शार्ट कट की संस्कृति बिल्कुल पसंद नहीं है। लोकप्रियता के लिए वे साधना का मार्ग छोड़ना नहीं चाहते। १९६८ में राष्ट्रीय पुरस्कार के बाद म.प्र. शासन ने १९८७ का लता मंगेशकर पुरस्कार उनके सफलता के मुकुट में मयूरपंख की तरह सजाया है।

बजती रहती है।

अपने शास्त्रीय संगीत के प्रशिक्षण को मन्ना डे ने निरर्थक नहीं जाने दिया। उन्होंने सुगम संगीत के चौखट में इस प्रकार गाया है कि औसत श्रोता भी उन्हें याद कर गुनगुनाया करता है। ऐसे गीतों में–बैरन हो गई रैन (जयजयवंती, फिल्म देख कबीरा रोया), हटो काहे को झूठी बनाओ बतियाँ (टप्पा, फिल्म मंजिल), पतझड़ जैसा जीवन मेरा तुम बिन सुनारी (जोगिया, फिल्म हमदर्द), प्रीतम दरस दिखाओ (ललित, चाचा जिंदाबाद) प्रमुख हैं। मन्नाडे हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत को पवित्र मानते हैं और साधना की तरह उसका अभ्यास करते हैं। पश्चिमी संगीत और उसकी राग-रागनियों को भी पसंद करते हैं। उनके परंपरावादी श्रोताओं ने जब आओ ट्विस्ट करें जैसा गीत सुना, तो अपनी आपत्तियाँ दर्ज कराई।

कुछ हल्के-फुल्के गीत मन्ना डे की गायकी के बेजोड़ उदाहरण हैं। उन्हें सुनकर लगता है कि इन

बड़े अरमानों से रखा है बलम...

केदार शर्मा द्वारा निर्मित 'नेकी और बदी' (४९) में रोशन ने पहली बार संगीत दिया था। 'बावरे नैन' (५०) फिल्म के गाने बहुत ही लोकप्रिय हुए और तभी से लोग रोशन की प्रतिभा को मानने लगे। उन्होंने मुकेश, शमशाद, राजकुमारी और रफी की प्रतिभा का अच्छा उपयोग किया। मुकेश का गीत 'तेरी दुनिया में दिल लगता नहीं' सर्वश्रेष्ठ था। गीता और मुकेश का युगल गीत 'खयालों में किसी के' अपने शब्द और धुन के कारण लुभावना बन पड़ा था। १९५१ में उन्होंने रंजीत की 'बेदर्दी' में संगीत दिया। उसी साल 'मल्हार' और 'हमलोग' फिल्में आई जिसमें 'गाए चला जा' (कोरस) तथा लता का 'चली जा चली जा', 'बहे अँखियों से धार' और लता-मुकेश का युगल गीत ' कहाँ हो तुम आवाज दो, और 'बड़े अरमानों से रखा है' ये सभी गीत बहुत मधुर थे। यहीं से हिंदी फिल्म संगीत का माधुर्य-युग शुरू हुआ। सन् ५१ में रोशन की एक साथ पाँच फिल्में आई-'अनहोनी', 'नौ बहार', 'रागरंग', 'शीशम' और 'संस्कार'।

अनहोनी में प्रथम बार उन्होंने तलत को लिया और उसका बहुत अच्छा परिणाम हुआ। 'मैं दिल हूँ एक अरमान भरा' बहुत लोकप्रिय हुआ। 'नौ बहार' में 'ऐ री मैं तो प्रेम दीवानी' यादगार गीत है। 'शीशम' में फिर मुकेश के श्रेष्ठ गीत सुनने को मिले। ५७ में 'कॉफी हाउस' में गीता दत्त ने दो क्लब गीत आए। १९६० में रोशन ने 'बरसात की रात' में उत्तम कव्वालियाँ दीं। 'ताजमहल', चित्रलेखा (६५) 'नई उमर की नई फसल', 'ममता', 'बहू बेगम' तथा 'अनोखी रात' उनकी उल्लेखनीय फिल्में थीं।

रोशन का जन्म पंजाब के गुजराँवाला जिले में भटिया नामक गाँव में १४ जुलाई १९१७ को हुआ था। लखनऊ में उन्होंने संगीत प्रशिक्षण लिया। उस्ताद अलाउद्दीन खान से सारंगी वादन सीखा। आकाशवाणी में उन्होंने दस साल नौकरी की। वे दिलरुबा बहुत अच्छा बजाते थे। १९४८ में वे बंबई आए और उन्होंने केदार शर्मा से मिलकर फिल्म जगत में प्रवेश किया। १६ नवंबर १९६७ को अचानक हुए उनके निधन से हमने एक महान संगीतकार खो दिया। उनके पुत्र राजेश रोशन आजकल फिल्मों में संगीत देते हैं।

प्रमुख फिल्में: बावरे नैन (१९५०), 'बेदर्दी', 'मल्हार', 'हम लोग' (१९५१), 'अनहोनी', 'नौ बहार', 'रागरंग', 'शीशम' और 'संसार' (१९५२), 'आगोश', 'माशूका' (१९५३), 'चाँदनी चौक' (१९५४), 'घर-घर में दिवाली', 'छोरा-छोरी' (१९५५), 'रंगीन रातें' (१९५६), 'आग्रा रोड', 'कॉफी हाउस', 'दो रोटी', 'अजी बस शुक्रिया' (१९५७), 'मैंने जीना सीख लिया', 'सी.आई.डी. गर्ल', 'हीरा मोती' (१९५९), 'बरसात की रात', 'बाबर' (१९६०), 'आरती', सूरत और सीरत (१९६२), 'दिल ही तो है' और ताजमहल (१९६३), 'चित्रलेखा', 'दूज का चाँद' (१९६४), 'बेदाग', 'भीगी रात', 'नई उमर की नई फसल' (१९६५), 'दादी माँ', 'देवर', 'ममता' (१९६६), 'बहू बेगम', 'नूरजहाँ' (१९६७), 'अनोखी रात' (१९६८)।

आँचल से क्यों बाँध लिया परदेसी का प्यार : हेमंत कुमार

बीसवीं सदी के इस नवें दशक में हिंदी फिल्म संगीत जिस उजाड़ बगीचे से गुजर रहा है उसमें हम इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते कि सन् १९५५ में एक ऐसा भी वक्त था जब हिट-परेडों और गीतमालाओं में एक साथ 'श्री ४२०' (शंकर-जयकिशन), 'उड़न खटोला' (नौशाद), 'मुनीमजी' (एस.डी. बर्मन) तथा 'आजाद' (सी. रामचंद्र) के गीत बज रहे थे। उन दिनों यह एक कौतुक का विषय था कि इन फिल्मों में से किसे श्रेष्ठ संगीतकार का 'अवार्ड' या गीतमाला का सरताज गीत बनने का सौभाग्य मिलेगा। मगर जैसा कि अक्सर घुड़दौड़ के मैदान में होता है कि काला घोड़ा पीछे से आकर दौड़ जीत जाता है, हेमंत कुमार भी अचानक अपनी 'नागिन' की धुन बजाते हुए आए और बाजी जीत ले गए।

बंबई की फिल्मी दुनिया में संगीत-निर्देशक के रूप में प्रवेश करने के पूर्व एक गायक तथा संगीतकार के रूप में हेमंत मुखोपाध्याय बंगाल में बहुत लोकप्रिय हो चुके थे। हिंदी फिल्मों में तो यह कहना मुश्किल है कि उनकी ख्याति एक गायक के रूप में ज्यादा है या संगीतकार के रूप में। बहरहाल, हेमंत कुमार ने १९४० में पहली बार बंगाली फिल्म 'निमाई संन्यास' में एच.पी. दास के संगीत निर्देशन में पार्श्व-गायन किया। इसके पूर्व १९३७ में 'कोलंबिया' कंपनी ने उनके कुछ गैर-फिल्मी गीत रिकॉर्ड करवाए थे। हिंदी के क्षेत्र में हेमंत ने कमलदास गुप्ता के संगीत निर्देशन में फैयाज हाशमी के दो गीतों- 'कितना दुःख भुलाया प्यारी' तथा 'ओ प्रीत निभाने वाली'-के साथ प्रवेश किया। जवाब की सफलता के बाद कमलदास गुप्ता ने १९४७-४८ में हेमंत से हिंदी फिल्म 'जमीन-आसमान' के गीत गवाए। बंबई में जब हेमेन गुप्ता ने 'आनंद मठ' के निर्माण की योजना बनाई तो उन्होंने हेमंत को इस फिल्म का गायक-संगीतकार नियुक्त किया। सचिन बर्मन ने 'सजा' में उनसे 'आ गुप-चुप, गुप-चुप प्यार करें' गवाया मगर लोकप्रियता की चोटी पर वे 'ये रात ये चाँदनी, फिर कहाँ' (जाल) से ही पहुँचे।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, हेमंत कुमार को संगीत-निर्देशक के रूप में सफलता 'नागिन' से ही मिली मगर बाद की उनकी 'बीस साल बाद', 'अनुपमा', 'काबुलीवाला', 'मिस मेरी', 'कोहरा', 'खामोशी' और 'साहब बीबी और गुलाम' संगीत की दृष्टि से कहीं ज्यादा प्रतिष्ठा दिलाने वाली साबित हुई। 'है अपना दिल तो आवारा' (सोलवाँ साल), 'जाग दर्द ए इश्क' (अनारकली), 'तेरी दुनिया में जीने से बेहतर' (घर नं ४४), 'आया तूफान' (बादबान), 'न तुम हमें जानों' (बात एक रात की), 'न ये चाँद होगा न तारे रहेंगे' (शर्त) जैसे मधुर फिल्मी गीतों के अलावा हेमंत कुमार की लोकप्रियता उनके गैर फिल्मी गीतों के कारण भी रही। 'मधुबन में न श्याम बुलाओ', आँचल से क्यूँ बाँध लिया मुझ परदेसी का प्यार', 'भला था कितना अपना बचपन', 'मैं साज बजाऊँ तुम गाओ', ए शाम की हवाओ, आदि गीत तो सदाबहार हैं ही, बाद के गीतों में भी 'अभी न पर्दा गिराओ' (गीत गुलजार), 'कल तेरी तस्वीर' (गीत-हसरत, संगीत रवि) को भी काफी पसंद किया गया।

जैसा कि फिल्म क्षेत्र का दस्तूर है, एक ऐसा दौर हर कलाकार की जिंदगी में आता है जब वह फिल्म निर्माण के क्षेत्र में कदम रखता है। हेमंत ने भी 'बीस साल बाद' से इस क्षेत्र में कदम रखा व 'राहगीर', 'खामोशी' तथा कोहरा (ये नयन डरे-डरे) जैसी फिल्मों का निर्माण किया। गुरुदत्त की विमल मित्र के उपन्यास पर आधारित 'साहब बीवी और गुलाम' में 'चले आओ, नैना थके' (गीता दत्त), 'सुना है तेरी महफिल में रत जगा है' तथा 'भँवरा बड़ा नादान' जैसे गीतों द्वारा अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया। उनके 'खामोशी' और 'कोहरा' के गीतों पर रवींद्र संगीत की भी छाप स्पष्ट है। राजेन तरफदार की क्लासिक बंगला फिल्म 'गंगा' के गीत को ही सलिल चौधरी ने उनकी आवाज में उसी लोक-धुन को 'काबुली वाला' में पेश किया था। हेमंत कुमार बहुत स्वाभिमानी कलाकार हैं। इस साल उन्हें गणतंत्र दिवस पर पद्मश्री के अलंकरण का प्रस्ताव किया गया तो उन्होंने ठुकरा दिया।

हेमंत कुमार के कुछ लोकप्रिय प्रायवेट सांग इस प्रकार हैं-*आँचल से क्यूँ बाँध लिया मुझ परदेसी का प्यार, *कितना दुःख भुलाया मैंने, *आज शराबी आँखों से, *तुमने मुझको सदा जलाया, *मैं साज बजाऊँ तुम गाओ, *भला था कितना अपना बचपन, *ऐ शाम की हवाओ, *अभी ना परदा गिराओ, *कल तेरी तस्वीर के सिजदे किए थे रात भर, *पाकर भी तुम्हें हम पा न सके बहुत मजबूर थे, *मैं प्रेम में लुटता आया हूँ।

मेरी याद में तुम ना आँसू बहाना : मदन मोहन

सुरेश गावड़े

अनिल विश्वास या श्यामसुंदर, सी. रामचंद्र या मदन मोहन, रोशन अथवा शंकर- जयकिशन, ये सभी हस्तियाँ फिल्मी संगीत के शिखर थे। इस देश के आम आदमी को सुरों का परिचय और गुनगुनाने का शौक उस्तादों अथवा पंडितों से नहीं मिला। बाथरूम से गली- सड़कों तक सुरों की बरसात कराने का श्रेय १९५० से १९७५ तक के अर्से के इन सिने संगीतकारों को निर्विवाद रूप से है। वे पच्चीस वर्ष सिने संगीत के स्वर्ण युग के वर्ष थे। क्या वे दिन फिर लौटकर आएँगे? कालचक्र पर विश्वास किया जाए तो लगता है, वे दिन जरूर लौटेंगे। किंतु आज के हालात देखकर आशंका होती है कि कालचक्र घूमकर जब एक दौर पूरा करेगा तब हम जरूर इस दुनिया में नहीं होंगे।

दिग्गज संगीतकारों की एक-दूसरे से तुलना करना बेमानी है। सभी के अपने- अपने मुकाम और अपनी-अपनी स्वतंत्र शैलियाँ थी। उनमें स्वस्थ प्रतिस्पर्धा थी और अच्छी बंदिशों को दाद देने का उदार मन था। औपचारिक शिक्षा लिए बगैर सी. रामचंद्र, अनिल विश्वास को अपना उस्ताद मानते थे और अनपढ़ की गजलों पर मदन मोहन पर न्यौछावर होने के लिए नौशाद साहब व्याकुल हो उठे थे। इन तमाम दिग्गजों में मदन मोहन हमेशा मेरी पहली पसंद रहे।

पैंतीस वर्षों का लंबा अंतराल बीत गया। मदन मोहन भी नहीं रहे, पर उनकी रचनाएँ मेरे लिए आज भी अमूल्य धरोहर हैं। वही मेरी असली संपत्ति भी है। बात १९५६ की होगी। मैं पहली बार बंबई गया और मेरे पिता के निकटतम मित्र तबला वादक नारायणराव इंदौरकर के यहाँ रुका। एक शाम डिसिल्वा रोड, दादर स्थित उनके मकान के सामने एक खूबसूरत गाड़ी आकर रुकी। एक खूबसूरत शख्सियत ने गाड़ी से बाहर निकल कर नारायण भैय्या के सुपुत्र महादेव इंदौरकर को आवाज दी। उन्हें गाड़ी में बैठाया और तुरंत गाड़ी चल दी। मैं सोचने लगा कौन था यह? दिलीप कुमार या देवानंद। चूँकि पहली बार बंबई गया था, तो निगाहें फिल्मी सितारों को ही टटोला करती थीं।

बाद में पता चला वे मदन मोहन थे। और उनके साथ गाड़ी में एक और सुरीला आदमी था-नाम था उसका तलत महमूद। वे दोनों किसी जलसे में जा रहे थे और तबलासंगत के लिए महादेव को उन्होंने साथ ले लिया था। मदन मोहन और तलत महमूद। दो दिग्गजों को मेरी मिचमिची आँखें क्या देख सकती थीं। मैं वहीं चकाचौंध हो गया।

मेरा बाल्य मेरे दिमाग में कौंध गया। इंदौर के जवाहर मार्ग पर एक रेस्तराँ हुआ करता था-पहिलाज रेस्टॉरेंट। उसका मालिक तब दिनभर ग्रामोफोन पर एक गजल बजाया करता था जिसके गायक थे- तलत महमूद और गजल थी-तुमने ये क्या सितम किया। इस गजल को सुनने मैं और मेरे दोस्त घंटों सड़क पर खड़े रहते थे। तभी से मैं तलत महमूद का दीवाना था और दीवाना अब भी हूँ। एक अर्सा बीता। दीनू ढोबले और वैष्णव की संगत में नंदू मातवणकर के साथ हमारी चौकड़ी जमने लगी। जेलर और अदालत फिल्मों की गजलों की तब धूम मची हुई थी। उन दिनों और बाद में भी नंदू मातवणकर ने मदन मोहन रचित लता मंगेशकर की उन गजलों की हम पर जैसे खैरात की। बस, उसके बाद तलत के साथ मदन मोहन भी मेरे आराध्य बन गए। तो उस दिन 'तलत और मदन' सिने संगीत के दो नक्षत्रों को एक साथ देखते ही मैं खिल उठा। थे भी दोनों लखनऊ के ही। क्या खूबसूरत आदमी थे मदन साहब। गाड़ी से जब वे बाहर आए और जैसा मैंने उन्हें देखा, वैसे ही बता रहा हूँ। शॉर्ट (निकर) और स्पोर्ट्स शर्ट। नुकीली मूँछें और रोबीला किंतु खूबसूरत व्यक्तित्व बस, मदन मोहन के प्रति मेरी दीवानगी हद से पार हो गई।

और अर्सा बीता। मदन मोहन की घरन्दाज धुनों के सहारे मेरे बाल्य ने तरुणाई में प्रवेश किया और अचानक एक दिन वह मनहूस खबर आई-मदन मोहन नहीं रहे। खबर पढ़कर मैं सुन्न रह गया। मेरा संपूर्ण शैशव और यौवन, शरीर और मन से मदन मोहन का कृतज्ञ था। कई हस्तियों ने मदन मोहन के निधन पर गहरा दुःख प्रकट किया और श्रद्धांजलियाँ दी। किंतु नौशाद साहब की श्रद्धांजलि आज भी मेरे जेहन में है। संगीतकार नौशाद ने तब कहा था-इतनी नशीली धुनें बाँधने के बाद मदन मोहन तुम्हें और नशे की क्या गर्ज थी?

तो मदन मोहन को मद्यपान का अतिरेक ले डूबा। जिस रास्ते से श्यामसुंदर, गुरुदत्त, गीतादत्त, मीनाकुमारी, शैलेंद्र और जयकिशन गुजरे, मदन मोहन भी उनके हमसफर हो गए।

संगीतकार राहुलदेव बर्मन ने अपनी प्रतिक्रिया में कहा था, मदन मोहन से हम युवा संगीतकारों को सीखने जैसा खूब है। पंचम शायद गलत बोल गए। उल्टे आज के संगीतकारों से मदन मोहन को सीख लेनी चाहिए थी। वे अपने जादू के पिटारे से मिश्री जैसी धुनें निकालना तो जानते थे, पर बार-बार में हालत यों हो गई कि रिकॉर्डिंग के लिए तीन-तीन महीनों स्टूडियो उन्हें मिल नहीं पाते थे। उनके साजिंदों को फुसला दिया जाता था। आखिरकार मदन मोहन परेशान हो उठे। फिल्मी दुनिया की कुटिल चालों को यह नेक इंसान जानता समझता नहीं था। तंग आकर रागदारियों के सहारे गजलें बाँधने के साथ-साथ बोतलों का जहर उन्होंने आकंठ गले लगा लिया।

बताते हैं एक दिन मदन मोहन, खय्याम के घर गए। पीने और गाने का दौर शुरू हुआ, अचानक व्यथित होकर मदन मोहन रोने लगे। खय्याम, क्या करूँ यार? जीने में अब मजा नहीं आ रहा। स्पष्ट ही अंदर-बाहर से वे टूट चुके थे। गीतकार राजेंद्रकृष्ण ने बाद में बताया, शराब से ज्यादा वे तन्हाई के मरीज थे। एकाकीपन की आग उन्हें अंदर-बाहर साल रही थी।

रायबहादुर चुन्नीलाल भारतीय सिने संसार की एक बड़ी हस्ती थे। बड़े बाप का यह खूबसूरत लड़का। बाप कमाई पर मदन मोहन आराम की जिंदगी जी सकते थे, पर वे सेना में भर्ती हो गए। दूसरा महायुद्ध समाप्त हुआ और मदन मोहन आकाशवाणी लखनऊ की सेवा में आ गए। बस, यहीं उनके कान पकने लगे।

मदन मोहन के निकट मित्र संगीतकार जयदेव के अनुसार मदन मोहन की शास्त्रीय संगीत की जानकारी पूर्व जन्म की थी, क्योंकि इस जन्म में

सरगम की टोली (जमीन पर बैठे हुए) जयकिशन, सी.रामचंद्र, मदन मोहन (कुर्सी पर), रोशन, अनिल विश्वास, हेमंत कुमार, मोहम्मद शफी और नौशाद

उन्होंने किसी से कुछ तालीम नहीं ली थी। हाँ, यह जरूर कि जब वे आकाशवाणी लखनऊ पर थे, तब उस्ताद फैय्याज खाँ, अली अकबर, रोशनआरा बेगम और गजल सम्राज्ञी बेगम अख्तर जैसी हस्तियाँ जरूर उन पर संस्कार कर गई। यही कारण था कि मदन मोहन की रचनाएँ अस्सल शास्त्रीय संगीत से सराबोर हुआ करती थीं। उनमें बेगम अख्तर हुआ करती थीं, मेंहदी हसन थे और संपूर्ण रूप से लता मंगेशकर हुआ करती थीं।

मदन मोहन के संपूर्ण संगीत से लता मंगेशकर को अलग किया ही नहीं जा सकता। 'हमारे बाद अब महफिल में ये अफसाने बयाँ होंगे', आज भी सुनिए तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। एक दिन मदन मोहन अचानक लताजी के घर गए। उनके आकस्मिक आगमन पर स्वर कोकिला चौंक गई। कैसे आना हुआ मदन साहब? लता ने तलाश किया।

कोई खास बात नहीं। एक बात बताने आया हूँ। बचपन में किसी ज्योतिषी ने बताया था- मेरा विवाह कब होगा? बच्चे कितने होंगे? जिंदगी में कितना आगे बढ़ूँगा आदि-आदि। किंतु लता मंगेशकर नामक कोई दिव्य आवाज मेरे पास गाएगी, यह उस ज्योतिषी ने मुझे नहीं बताया था। इतना कह कर जिस अचानक तरीके से मदन मोहन आए थे, उसी अचानक ढंग से वे चले भी गए। क्या आप सोच सकते हैं कि इस स्वर सम्राज्ञी ने एकदम शुरूआत में मदन मोहन के निर्देशन में गाने से साफ इंकार कर दिया था। हाँ, तब यह वाकया हुआ था। बात तब की है जब देवेंद्र गोयल की 'आँखें' को मदन मोहन संगीत दे रहे थे। मदन ने लता मंगेशकर को बुलावा भेजा। लता ने तब सोचा बड़े बाप का बेटा है, क्या जाने संगीत को। लता ने साफ मना कर दिया। किंतु मदन मोहन जानते थे कि उनकी धुनों के साथ सिर्फ लता ही न्याय कर सकती हैं। अपनी दूसरी फिल्म 'मदहोश' के समय मदन मोहन ने फिर से लता को न्यौता दिया। इस बार लताजी दौड़ते- दौड़ते आईं। मदन मोहन कुछ कहें, इसके पहले ही लताजी ने कहा, रुकिए, पहले मुझे कहने दीजिए। मैं अपराधी हूँ, मैंने आपका अपमान किया था, पहले आप मुझे माफ कीजिए। बस तब से आखिर तक दोनों का अभिन्न साथ बना रहा।

मदन मोहन बगदाद में पैदा हुए और बंबई के कान्वेंट स्कूल में पढ़े। वे बतियाते भी अँगरेजी में ही ज्यादा, पर पता नहीं अभिजात्य संगीत के पूजक वे कैसे बने? बंबई में जब भी बड़े गुलामअली खाँ साहब, अली अकबर या विलायत खाँ की महफिल हो, इन महफिलों में अनिवार्य उपस्थितों में मदन मोहन जरूर हुआ करते थे। उनके संगीत में साज भी शुद्ध भारतीय हुआ करते थे। देख कबीरा रोया फिल्म में जिस ढंग से सितार के टुकड़ों का उपयोग किया था, वैसा उपयोग सिर्फ मदन मोहन ही कर सकते थे।

अब सोचता हूँ, मदन मोहन का प्रशंसक मैं कबसे हुआ? बहुत दूर की सोचते हुए मुझे आशियाना फिल्म याद आती है। गीत शायद राजेन्द्रकृष्ण ने लिखे थे। मेरा करार ले जा (तलत), मेरे पिया से कोई जाके कह दे और सावरी सूरत मन भाए रे पिया (लता) ये नितांत मधुर रचनाएँ सुनकर सुनने वाला पहले झटके में ही मदन मोहन का 'फैन' बन जाता था। उसके बाद तो पटाखों की लड़ियों की तरह मदन मोहन के गीतों ने सड़कों और गलियों तक को चकाचौंध कर डाला। प्रीतम तेरी दुनिया में (अदा), हमारे बाद अब महफिल में (बागी), दुनिया भरे नैन पिया को (निर्मोही) आदि आज भी सुने बगैर मन नहीं मानता।

घर से चले थे हम तो खुशी की तलाश में, गम

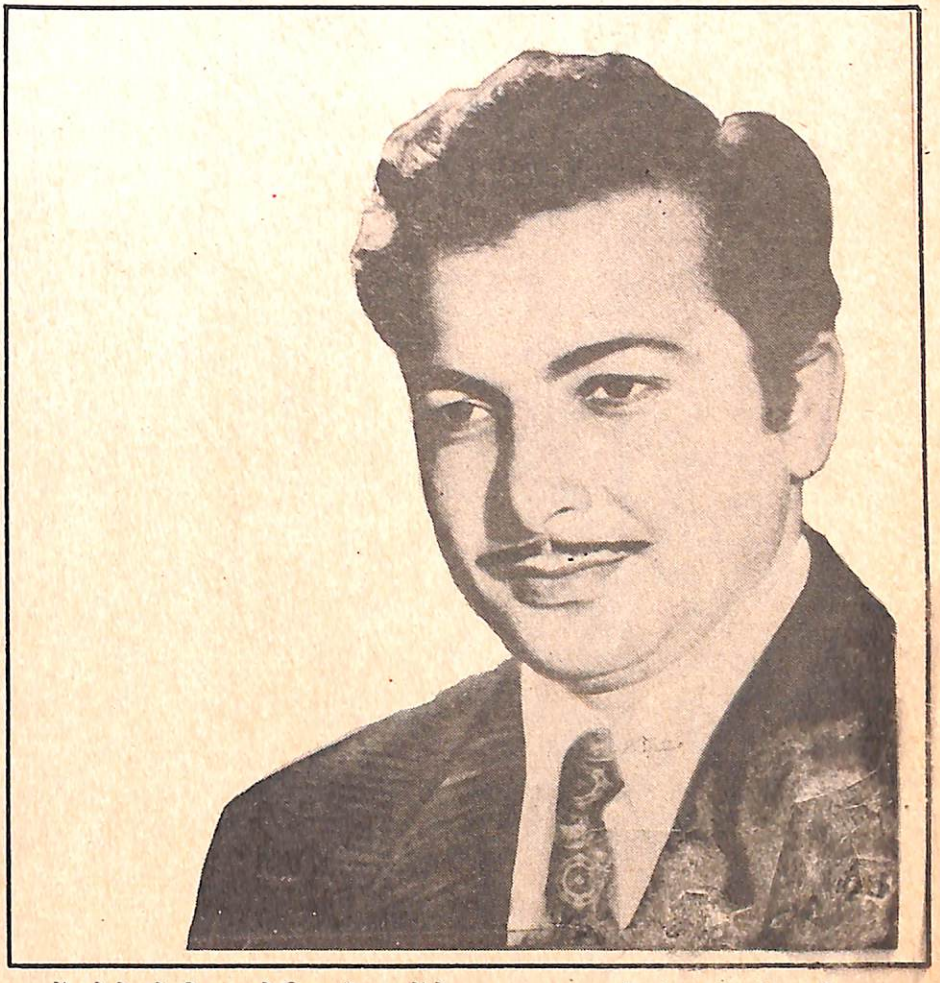

राह में खड़े थे, वो ही साथ हो लिए, यूँ हसरतों के दाग, मोहब्बत में धो लिए, जाना था हमसे दूर, हम प्यार में जलने वालों को चैन कहाँ, सपने में सजन से दो बातें, इन पुरानी रचनाओं से लगाकर दस्तक फिल्म तक मदन मोहन ने स्वर्गीक बंदिशों की बरसात की। लता मंगेशकर प्रायः अपनी श्रेष्ठ दस रचनाओं की एल.पी. पहले निकलवाया करती थीं, उनमें मदन मोहन की दो रचनाएँ अवश्य हुआ करती थीं और यह सम्मान लताजी ने खेमचंद प्रकाश, अनिल विश्वास, सज्जाद हुसैन, एस.डी. बर्मन, सी. रामचंद्र जैसे शिखर संगीतकारों तक को नहीं दिया। पर पता नहीं क्यों मदन मोहन का संगीत तो खूब चलता था, पर फिल्में पिट जाती थीं। अदालत, जेलर, गेटवे ऑफ इंडिया, चाचा जिंदाबाद आदि फिल्में लोग जरूर भूल गए होंगे, पर उनका संगीत क्या कोई भूल सकता है? आशियाना में तो नर्गिस-राजकपूर की जोड़ी थी और साथ में था मदन मोहन का मादक संगीत। पर इसके बाद भी आशियाना बुरी तरह से पिट गई। स्पष्ट ही मदन मोहन असफल फिल्मों के सफल संगीतकार साबित हुए।

मदन मोहन के समकालीन सी. रामचंद्र उन्हें सुरीला आदमी कहा करते थे। एक किस्सा है, किस्सा नहीं हकीकत है। अनपढ़ फिल्म रिलीज हुई और 'आपकी नजरों ने समझा,है इसी में प्यार की आबरू, इन दो गजलों ने धूम मचा दी। उन पर आशिक होकर नौशाद साहब ने मदन मोहन के घर जाकर दस्तक दी और उन्हें गले लगाते हुए कहा, मदन तुम्हारी इन दो रचनाओं पर मेरी तमाम रचनाएँ न्यौछावर करने को मैं तैयार हूँ। किसी आधी रात को बेगम अख्तर ने मदन मोहन को टेलीफोन किया, खुदा के लिए टेलीफोन पर ही सुना दो-कदर जाने ना। तो दैवी प्रतिभा के संगीतकार थे वे।

म्युजिक डाइरेक्टर्स एसोसिएशन की किसी बैठक में धुत्त होकर मदन मोहन आए तो तुरंत नौशाद उन्हें अपनी गाड़ी में डालकर उनके घर छोड़ आए। नौशाद ने तो उन्हें उनके घर छोड़ा, पर कुछ दिनों बाद वे दुनिया ही छोड़ गए।

तब शिरीष कणीकर ने सही लिखा था और मदन मोहन की आत्मा से सवाल किया था-मेरी याद में तुम ना आँसू बहाना, न जी को जलाना, यह कैसे संभव है? मेरा नाम लब पर न लाना तो एकदम असंभव है, मदन साहब!!

जवाहर रोजगा

हर निर्धन ग्रामीण परिवार के एक सदस्य को रोजगार

ग्रामीण भारत के गरीबों को बड़े पैमाने पर रोजगार उपलब्ध कराने का कार्यक्रम नेहरू जन्म शताब्दी पर राष्ट्र निर्माता के प्रति बड़ी श्रद्धांजलि है।

- राजीव गांधी

देश में आज तक के सबसे बड़े रोजगार कार्यक्रम **"नेहरू रोजगार योजना"** को मध्यप्रदेश में पूरी मुस्तैदी से लागू किया जा रहा है। इस महत्वाकांक्षी योजना के लिए 196 करोड़ रुपये से ज्यादा रकम मंजूर की गयी है। हम पूरी निष्ठा से पूरे मध्यप्रदेश में नेहरू रोजगार योजना को लागू कर रहे हैं ताकि हर पंचायत क्षेत्र के हर गरीब परिवार के एक सदस्य को रोजगार हासिल हो सके।

हकदार की तर

योजना

ार - मध्यप्रदेश सरकार

म.प्र. माध्यम/

ाद
कहाँ
ा दिल
रा *क्या

तुम मुझे भूल भी जाओ, तो यह हक है तुमको: सुरैया

बद्रीप्रसाद जोशी

सन् १९४२ में निर्मित प्रकाशकृत फिल्म 'स्टेशन मास्टर' जिसमें सुरैया ने जगदीश सेठी, प्रेम अदीब, रत्न माला, जीवन, उमाकांत कौशल्या, अमीरबाई के साथ छोटी, किन्तु चंचल भूमिका की थी, प्रारंभ से ही उसके अभिनय की ऐसी प्रशंसा हुई कि डी.आर.डी. वाडिया कृत 'इशारा' में उसे केवल चौदह वर्ष की उम्र में पृथ्वीराज कपूर के साथ नायिका बनने का मौका मिल गया। नायिका बनते ही अपने गीत स्वयं गाकर सुरैया अपनी फिल्मों में मिठास घोलने लगी। कुछ लोग कहने लगे कि उसके गले में मधु का झरना बहता है। उसकी अधिकांश फिल्में उसके स्वर माधुर्य के कारण लोकप्रिय हुई। 'तेरे नैनों ने चोरी किया मेरा छोटासा जिया परदेसिया', 'ओ दूर जाने वाले वादा न भूल जाना' (प्यार की जीत) और (बड़ी बहन) 'तू मेरा चाँद मैं तेरी चाँदनी' (दिल्लगी) 'पापी पपिहरे पी पी न बोल बैरी पी पी न बोल...' (परवाना), गुन गुन गुन बोल बोल रे भँवरे (अफसर), हँस ले गा ले ओ चाँद मेरे चाँद हँस ले गा ले (जीत), पढ़ोगे-लिखोगे बनोगे नवाब (मालिक), देख तों ओ दुनिया वाले तेरी दुनिया देख ली (बालम), पीपल की छाँव में ठंडी हवाओं में (डाक बंगला) जैसे गीत शायद ही कभी भुलाए जा सकेंगे।

वह प्रेम में निराश होकर बीमार न पड़ती तो उसका दिल न टूटता। वह 'देवदास', 'नागिन' और 'बैजू बावरा' जैसी फिल्में न छोड़ती और उसके अभिनय में चार चाँद लग जाते। सुरैया जब से फिल्मी अभिनेत्री और गायिका बनी, उसके प्रेमियों की संख्या भी बढ़ती रही। सुरैया के प्रेम के सच्चे-झूठे किस्से यदि संग्रहीत किए जाएँ तो भाव-भीने प्रसंगों का अच्छा खासा और दिलचस्प ग्रंथ तैयार हो सकता है। सुरैया के जीवन में यदि किसी ने गहरी टीस उत्पन्न की तो एक देव आनन्द ने और दूसरे हॉलीवुड के प्रसिद्ध आर्टिस्ट ग्रेगरी पैक ने।

वह इन दोनों में एक-दूसरे की झलक देखती थी। कभी-कभी देव आनंद को ग्रेगरी पैक कहकर ही बुलाती थी। सुनते हैं, सुरैया के साथ छाया की तरह रहने वाली, उसकी नानी बादशाह बेगम चाहती थी कि देवसाहब धर्म बदल लें और देव आनंद चाहते थे कि सुरैया शादी के बाद फिल्मों में काम करना छोड़ दे। दोनों पक्षों के लिए एक-दूसरे की शर्तें नामुमकिन सी हो गई। इस तरह देव आनंद और सुरैया का प्रेम दोनों के जीवन दर्द की कहानी बनकर रह गया।

सुरैया के जीवन में एक और दिलचस्प किस्सा हुआ। उसके चाहने वालों में अभिनेत्री वीणा का भाई शाहजादा (इफ्तिखार का भाई) भी था, जिसने उसके साथ शादी करने के लिए एक तरह से उसके घर के सामने सत्याग्रह कर दिया था। वह रात को आठ बजे अपनी मोटर में बैठकर उसके घर आता था और सुबह आठ बजे चला जाता, वह रात भर उसके कमरे की ओर ताकता रहता और सुबह घर लौटने पर 'लव लेटर' पोस्ट करना न भूलता। वह अक्सर अपने खत में लिखता, 'मैं तुम्हारी मोहब्बत का भिखारी हूँ। मैं तुमसे भीख माँगता हूँ। निकाह करने की भीख।' उसने उसे पाने के लिए साम, दाम, दंड और भेद सभी नीतियाँ अख्तियार की, पर कामयाबी नहीं मिली। आखिर घर वालों के दबाव में आकर और निराश होकर उसने शादी कर ली। फिर भी उसका सत्याग्रह जारी रहा। कुछ लोगों के कहने पर स्व. के. आसिफ और नरगिस की माँ जद्दनबाई ने उसे सुरैया से मिलने की सलाह दी। सुरैया भी उससे मिलने को तैयार हो गई और जब दोनों की मुलाकात हुई तो सुरैया ने बड़ी भावुकता से उससे कहा, 'यदि तुम सच्चे दिल से मुझे मोहब्बत करते हो तो कल से इधर चक्कर काटना छोड़ दो और अपना सत्याग्रह तोड़ दो।'

यह सुनते ही वह हक्का-बक्का रह गया, वस्तुतः वह उसका सच्चा प्रेमी था। कुछ भी नहीं बोला, आँसू ढुलकाता हुआ धीरे-धीरे घर से निकल गया और उसी दिन से उसने अपना सत्याग्रह खत्म कर दिया। इस तरह दर्द-दर्द में सिमटकर सुरैया का दिल टूट गया। वह बीमार पड़ गई। वह अपने आपसे और फिल्मों से रूठ गई।

सुरैया किसी जमाने में निश्चित ही भारतीय चित्रपट की सम्राज्ञी थी। सफलता के जिस उच्चतम शिखर पर वह पहुँच गई थी, संभवतः कोई भी अभिनेत्री वहाँ तक नहीं पहुँच पाई है। उसकी प्रत्येक छवि आकर्षण से परिपूर्ण थी और उसके स्वरों में थी सुरासी मादकता। एकाएक उसे लोग क्यों भूल गए, यह निश्चित ही अनुसंधान का विषय है।

सुरैया का जन्म १९२९ की पंद्रहवीं जून को लाहौर में हुआ था। जब वह एक वर्ष की थी, तभी उसकी माँ, मलिका बेगम उसे बंबई ले आई। उसकी नानी बादशाह बेगम का बंबई में छोटा-मोटा कारोबार था और चाचा जहूरबख्श काम की तलाश में एक स्टूडियो से दूसरे स्टूडियो के चक्कर लगाया करते थे। सुरैया की माँ को भारतीय संगीत का शौक था और उन्होंने उस युग के सभी गायकों के ग्रामोफोन रेकॉर्ड जमा कर लिए थे। इसका प्रभाव यह हुआ कि जब सुरैया केवल पाँच बरस की थी, तभी वह कानन बाला, खुर्शीद तथा सहगल के गाए हुए गानों को अत्यंत मधुर स्वरों में

गाने लगी थी।

जैसे-जैसे सुरैया बढ़ती गई, उसी तरह गाने के प्रति उसका लगाव भी तीव्रतर होता गया। जिस युग में सुरैया ने फिल्म जगत में प्रवेश किया था, वह युग दुर्गा खोटे, कानन बाला, सुलोचना, गौहर तथा देविका रानी जैसी आकर्षणमयी अभिनेत्रियों का था। सभी सौंदर्य तथा कला चेतना में एक दूसरे से बढ़कर थीं। किन्तु भाग्य का सहारा था, काम की तलाश में जब सुरैया ने सन् १९४१ के आसपास मोहन स्टूडियो में कदम रखे, तब पहली ही नजर में नानूभाई वकील ने उसे पसंद कर लिया और अपनी फिल्म 'मुमताज महल' में नायिका की भूमिका दे डाली। लेकिन सुरैया की पार्श्व गायिका बनने की इच्छा इसमें पूरी नहीं हो सकी। वह तो गाने के लिए उतावली थी। इस इच्छा की पूर्ति हुई एक वर्ष बाद, जब निर्माता-निर्देशक कारदार ने 'शारदा' नामक फिल्म में मेहताब के लिए सुरैया को पार्श्व गायन का अवसर दिया।

उन दिनों बंबई टाकीज में देविका रानी को अवसर दिया। उन्होंने सुरैया की प्रतिभा को देखकर तुरंत उसे पाँच सौ रुपए प्रति मास वेतन पर स्थाई रूप से अपने यहाँ रख लिया। बंबई टाकीज की फिल्म 'हमारी बात' में अभिनय के साथ उसने दो नृत्य भी प्रस्तुत किए थे और इसी फिल्म में उसका गाया हुआ गाना 'बिस्तर बिछा दिया है तेरे दर के सामने' हम लोग अब तक भी नहीं भूल पाए हैं। उन दिनों सुरैया का मुकाबला दो अलग गायिकाओं अभिनेत्रियों खुर्शीद और नूरजहाँ से ही था, किन्तु देश विभाजन के बाद जब यह दोनों पाकिस्तान चली गई तो सुरैया फिल्म जगत की सम्राज्ञी बन बैठी।

सन् १९५० में सुरैया को वर्ष की सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री घोषित किया गया और एक स्वर्ण मेडल भेंट किया गया। उसके बाद सुरैया के कदम शिखर की ओर अविराम बढ़ते गए। सोहराब मोदी द्वारा निर्मित तथा राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत 'मिर्जा गालिब' में सुरैया के स्वर तथा अभिनय ने कमाल कर दिया था। लेकिन मिर्जा गालिब के बाद सुरैया का भाग्य सितारा एकाएक धूमिल होने लगा। तब उसके द्वार पर न निर्माता की लाइन लगती, न दर्शकों की निगाहें उसके पीछे भागती। एकाएक पुराने साथी साथ छोड़ते गए। सुरैया ने सन् १९४१ से लेकर १९५८ तक ४० के करीब फिल्मों में काम किया। अपने कजरारे नयन और मधुर कंठ की करामात से उसने सभी प्रमुख हीरो के साथ काम किया।

सुरैया ने बंबई की रंगीन फिजाओं में होश संभाला और यहीं एक अँगरेजी कान्वेंट में तालीम पाई। अँगरेजी के साथ- साथ घर पर उर्दू और अरबी की तालीम हासिल की और साथ में गाना भी सीखती रही। जब वह अपने घर के अंदर बैठकर अपनी कोयल सी आवाज में गाती तो बाहर गुजरते हुए राही ठिठक कर खड़े हो जाते और ऐसा लगता कि सावन आ गया है। आज भी उस आवाज का वही जादू है। रात के सन्नाटे में जब कोई रिकार्ड लगा देता है 'मन मोर हुआ मतवाला किसने जादू डाला' तो दिल यही कहता है कि "हम यह तो नहीं जानते कि तुम पर किसने जादू डाला है, पर इतना विश्वास के साथ कह सकते हैं कि तेरी आवाज का जादू आज भी जिन्दा है।"

जवाँ है मोहब्बत हसीं है जमाना: नूरजहाँ

मौसीकी का फन सियासी और भौगोलिक तल्खियों से कितने ऊपर की चीज है इसकी सबसे बड़ी मिसाल **नूरजहाँ** और लता मंगेशकर की शख्सियतें हैं, जो भारत और पाकिस्तान में समान रूप से लोकप्रिय हैं। दोनों गायिकाओं के बीच, उनके व्यक्तित्व और जीवन शैलियों के भारी अंतर के बावजूद बेपनाह सम्मान का भाव है। भारत-विभाजन के पूर्व, १९३८ में लाहौर में नूरजहाँ की पहली फिल्म 'हीरकयाल'

रिलीज हुई थी। इसके बाद से भारत के आजाद होने तक उन्होंने 'ससी-पुन्नु', 'खानदान', 'जीनत', 'दोस्त', 'बड़ी माँ', 'अनमोल घड़ी, तथा 'मिर्जा साहिबा' से अभिनय और गायन दोनों किया। लता मंगेशकर के आगमन के समय वे मलिका-ए-तरन्नुम का खिताब पा चुकी थीं तथा उनकी लोकप्रियता को देखते हुए लता के सामने भी उनकी शैली की नकल करने के अलावा कोई चारा नहीं था। 'उठाए जा उनके सितम' तथा 'आएगा आने वाला' जैसे लता के गीतों में नूरजहाँ का असर साफ नजर आता है।

दरअसल भारत में रहते हुए नूरजहाँ की सनसनीखेज लोकप्रियता के पीछे उनके नौशाद-महबूब की 'अनमोल घड़ी' फिल्म के 'जवाँ है मोहब्बत हसीं है जमाना', 'मेरे बचपन के साथी' तथा 'क्या मिल गया भगवान' जैसे गीतों का हाथ था। दिलीप कुमार के साथ आई उनकी फिल्म 'जुगनू' (१९४८) के 'आवाज दे कहाँ है' तथा 'यहाँ बदला वफा का बेवफाई' तथा 'हमें तो शाम ए गम में काटनी है जिंदगी' जैसे गीत गाने के बाद वे पाकिस्तान चली गई।

पाकिस्तान जाने के बाद थोड़े दिन वे फिल्मों से दूर रहीं। बाद में उन्होंने पहले अपनी फिल्म 'चनवे' बनाई जो खूब चली। बाद में 'दुपट्टा', 'इंतजार', 'कोयल' तथा 'पाटे खाँ' फिल्मों में अभिनय भी किया। उनके द्वारा गाई हुई फैज की गजलों 'पत्ता-पत्ता बूटा-बूटा', 'मुझसे पहली सी मुहब्बत मेरे महबूब न माँग' के आशिक सीमा के दोनों पार मिलेंगे। नूरजहाँ की आवाज की रसीली मुरकियाँ अपने उतार चढ़ावों के द्वारा श्रोताओं पर जो असर छोड़ती हैं उसकी एक मिसाल श्याम सुंदर द्वारा बनाई गई 'गाँव की गोरी' के गीत 'बैठी हूँ तेरी याद का लेकर के सहारा' की यह लाजवाब धुन भी है।

सफल हो जाने के बाद अक्सर कलाकार अपने आदर्श रहे कलाकारों के नाम भी बड़े गर्व से गिनाते हैं। लता तो नूरजहाँ को अपनी आदर्श कहती है, लेकिन अभी हाल ही में आशा भोंसले ने तो उनकी गाई हुई कुछ गजलों को अपनी आवाज में फिर से प्रस्तुत कर उन्हें सबसे बड़ा 'ट्रिब्यूट' दिया है। एच.एम.वी. द्वारा प्रस्तुत इस कैसेट कशिश में नूरजहाँ के 'कभी कहा न किसी से', 'गुल खिले चाँद रात', 'दिल की दुनिया में', 'किसी का नाम लो', 'क्यों छोड़ा तुमने साथ' आदि गीत आशा भोंसले ने गाए हैं। आशा का कहना है कि नूरजहाँ के इन गीतों को गाने की प्रेरणा उन्हें उनकी बेटी वर्षा ने दी। चूँकि नूरजहाँ के गीतों के रिकॉर्ड अब एच.एम.वी. और पोलीडोर जैसी कंपनियाँ भी नहीं निकालतीं, वे भारत में दुर्लभ हो चुके हैं। मगर आशा के माध्यम से नूरजहाँ के गीतों की याद उनके पुराने प्रशंसक फिर से कर सकते हैं। **प्रमुख गीत:** *आ जा मेरी बरबाद मुहब्बत *मेरे बचपन के साथी *आवाज दे कहाँ है *बैठी हूँ तेरी याद का *किस तरह भूलेगा दिल *दिया जलाकर आप *आ इंतजार है तेरा *क्या मिल गया भगवान।

किसे याद रखूँ किसे भूल जाऊँ: मुकेश

● प्रकाश जैन

दुनिया में इंसान क्या बनना चाहता है और क्या बना दिया जाता है। स्व. मुकेशचंद माथुर भी १९४० में एक्टर बनने बंबई आए थे परिस्थितियों ने उन्हें सिंगर बना दिया। ठीक इसके विपरीत हाल हुए थे किशोर कुमार के जो सिंगर बनने आए थे और फिल्म वालों ने उन्हें एक्टर बना दिया था। हालाँकि किशोर की वर्षों पुरानी साध बाद में जाकर पूरी हो गई थी। मगर खूबसूरत चेहरे-मोहरे के बावजूद मुकेश (कुछ फिल्मों को छोड़) एक्टर नहीं बन सके। नियति ने मुकेश के साथ भले ही अन्याय किया हो पर उन हजारों-लाखों श्रोताओं के साथ तो न्याय ही किया। यदि मुकेश एक्टर के रूप में चल निकलते, तो भला उन्हें गाने की फुरसत कब मिलती। वे उस समय भले ही चोटी के नायक बन जाते मगर एक समय बाद दुनिया उन्हें भूल जाती। लेकिन गायक बन कर तो वे अमर हो गए हैं। आज भी दर्द के सुर में गाए उनके गीत हमें भुलाए नहीं भूलते।

तलत मेहमूद की आवाज में फिल्म पतिता का एक गीत है जिसके बोल कुछ इस प्रकार हैं—

'हैं सबसे मधुर वो गीत
जिन्हें हम दर्द के सुर में गाते हैं'

गायन शिरोमणि : तलत महमूद, मुकेश, लता, मोहम्मद रफी, मन्नाडे

मुकेश के गीत भी हमें इसीलिए इतने मधुर लगते हैं क्योंकि उन्होंने अपनी आवाज में सारा दर्द उंडेल कर उन्हें गाया है। दर्द भरे गीतों की जब बात चलती है, तो सहगल के बाद मुकेश और तलत मेहमूद की याद आती है। मुकेश ने ऐसे सैकड़ों गीत गाए जिन्हें सुनकर आँसू भले न छलकें, दिल जरूर भर आता है। आँसू भरी है ये जीवन की राहें, हाँ दीवाना हूँ मैं, सारंगा तेरी याद में, जाऊँ कहाँ बताए दिल दुनिया बड़ी है संगदिल, कोई दिल में है कोई है नजर में आदि ऐसे कई गीत हैं जो लगता है सिर्फ मुकेश ही गा सकते थे और उनके लिए ही रचे गए थे।

मुकेश की आवाज में इतना दर्द कैसे आया। इसकी वजह थी। वे बड़े संजीदा इंसान थे। गरीबों के रहनुमा थे। दूसरों के दुःख दर्द को समझते थे। विरह के गीतों में एक विरही की पीड़ा को वे बखूबी व्यक्त कर लेते थे, क्योंकि उन्होंने खुद यह पीड़ा भोगी थी। मुकेश ने प्रेम विवाह किया था। शुरू में लड़की के माता-पिता मुकेश के खिलाफ थे। उन्होंने मिलना-जुलना बंद कर दिया। उन दिनों मुकेश मोतीलाल के घर रहते थे। एक रात उन्हें बची बेन (उनकी प्रेमिका) की बेहद याद सताने लगी। जोरों की बारिश हो रही थी। रात के साढ़े ग्यारह बज चुके थे। मुकेश ने मोतीलाल जो उनके साथ ही रहते थे, से कहा चल मोती बची से मिलना है। टेक्सी पकड़ी और दोनों चल दिए। बची बेन के घर के सामने टेक्सी रोकी और मुकेश भर बारिश में सड़क पर खड़े होकर खिड़की को निहारने लगे। खड़े-खड़े लगभग एक घंटा बीत गया। ठंड से शरीर थर-थर काँपने लगा मगर वे वहाँ से नहीं हिले। लगभग दो बजे खिड़की का दरवाजा खुला। बची बेन ने बाहर झाँका। काँपते हुए मुकेश पर उन्होंने एक शाल गिराया। जब मुकेश ने उन्हें जी भर देख लिया तो टेक्सी में बैठते हुए बोले चल मोती बहुत देख लिया।

इसी तरह गरीबों के भी वे रहनुमा थे। ठंड के दिनों में कार की पिछली सीट पर ढेर सारे कंबल रख कर घर से निकल जाते रास्ते में जो भी फुटपाथ पर नंगे बदन ठिठुरते दिखता उसे कंबल ओढ़ा देते। एक बार उनके फ्लैट के पीछे की चाल वाले कुछ गरीब व्यक्ति मुकेश के पास आए और बोले दादा हम लोग आपका गाना सुनना चाहते हैं। मुकेश ने रविवार को सबको अपने घर आमंत्रित किया। साजिंदों की व्यवस्था की और जी भर कर उन्हें गीत सुनाए। जब सब खुश होकर चले गए तो अपने बेटे से बोले ये लोग टिकट लेकर तो मेरा प्रोग्राम सुन नहीं सकते थे। मुकेश जब पार्क में घूमने जाते तो वहाँ बैठे बूढ़ों से खूब बतियाते। कारण पूछने पर कहते जिंदगी के इन आखिरी लम्हों में इन्हीं युवकों से बातें करना अच्छा लगता है।

मुकेश का जन्म २२ जुलाई १९२३ को दिल्ली के एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम लाला जोरावरसिंह था। मुकेश की शिक्षा मैट्रिक तक हुई। इसके बाद सार्वजनिक निर्माण विभाग में सहायक सर्वेक्षक के रूप में उन्होंने कुछ समय तक काम किया। मुकेश को बचपन से ही संगीत का शौक था। अपने दोस्तों की महफिल में गाते रहते थे। एक बार किसी रिश्तेदार के यहाँ शादी में गा रहे थे। वहाँ फिल्म अभिनेता मोतीलाल भी आए हुए थे। मोतीलाल, मुकेश के भी दूर के रिश्तेदार थे। वे मुकेश को फिल्मों में काम दिलाने के लिए बंबई ले आए। उन दिनों गायक अभिनेताओं का जमाना था। फिर मुकेश तो अच्छा गा लेते थे।

एक बार मोतीलाल के यहाँ कोई पार्टी चल रही थी, जिसमें सहगल का गाया गीत मुकेश गा रहे थे। सहगल ने सीढ़ियाँ चढ़ते हुए वह गीत सुना। ऊपर जा उन्होंने मुकेश की बहुत तारीफ की और आशीर्वाद दिया कि एक दिन यह बहुत तरक्की करेगा। यही नहीं अपना हार्मोनियम भी मुकेश को दे दिया।

सन् १९४१ में मुकेश को फिल्म निर्दोष में अभिनेत्री नलिनी जयवंत के साथ काम करने का मौका मिला। इसी फिल्म में सर्वप्रथम उन्होंने 'दिल ही बुझा हो.....' गीत गाया था। इसके बाद दुःख-सुख, आदाब-अर्ज आदि कुछ फिल्मों में अभिनय किया। लेकिन फिल्में असफल रहीं। बाद में मूर्ति आदि फिल्मों में उन्होंने गीत गाए। परंतु प्रसिद्धि मिली 'पहली नजर' के गीत 'दिल जलता है तो जलने दे.....' से। यह फिल्म १९४५ में बनी थी। गीत सुनने के बाद कई लोगों ने कहा कि यह गीत सहगल का गाया हुआ है। आज भी यह सुनकर कई श्रोता इसे सहगल का समझ बैठते हैं।

फिल्म पहली नजर के हीरो मोतीलाल थे। इस समय मोतीलाल की इमेज मस्त हीरो की थी। निर्माता मजहर खाँ और वितरकों ने सोचा कि यह गीत मोतीलाल की इमेज से मेल नहीं खाता। अतः फिल्म से निकाल देना चाहिए। मुकेश को यह बात मालूम पड़ी तो वे दौड़े-दौड़े मजहर खाँ के

पास पहुँचे। मजहर खाँ ने कहा—'अच्छी बात है, दो शहरों में यह गाना चलाकर देखते हैं. अगर लोगों को पसंद नहीं आएगा तो काट देंगे।'' फिल्म रीलिज हुई और सबने देखा कि गाना बहुत हिट हुआ। वास्तव में फिल्म को तो लोग भूल गए लेकिन इस गीत को आज तक नहीं भूले हैं।

इसके बाद कई फिल्मों में मुकेश ने गीत गाए। शुरू-शुरू में उनकी आवाज पर सहगल की छाप थी। इस सहगल शैली से मुकेश को छुटकारा संगीतकार नौशाद ने फिल्म 'अंदाज' से दिलाया। यहाँ से मुकेश ने अपनी शैली विकसित की। मुकेश-नौशाद की जोड़ी ने 'तू कहे अगर जीवन भर.....', 'झूम-झूम के नाचों आज.....', 'टूटे ना दिल टूटे ना.....', 'हम आज कहीं दिल खो बैठे.....' जैसे अमर गीत फिल्मी दुनिया को दिए। इन सारे गीतों में मुकेश ने अपनी आवाज दिलीप कुमार को उधार दी थी। अंदाज के दूसरे नायक राजकपूर थे जिनके लिए रफी की आवाज का इस्तेमाल किया गया था। कालांतर में इसका उलटा हुआ और राजकपूर-मुकेश और दिलीप कुमार-मोहम्मद रफी की जोड़ी बनी।

फिल्म अंदाज के अलावा मेला और शबनम में भी दिलीप कुमार के लिए मुकेश ने गीत गाए। दोनों फिल्मों के गीत बहुत हिट हुए। इन फिल्मों के बाद दिलीप कुमार के लिए तलत और बाद में मोहम्मद रफी की आवाज का उपयोग किया जाने लगा। बरसों बाद फिल्म 'मधुमती' (सलिल चौधरी) और 'यहूदी' (शंकर-जयकिशन) के लिए मुकेश ने दिलीप कुमार को आवाज दी।

मधुमती में 'सुहाना सफर और ये मौसम हसीं...' तथा यहूदी में 'ये मेरा दीवानापन है...' काफी लोकप्रिय हुए। यहूदी के इस गीत की एक रोचक कहानी है। यह गीत रिकॉर्ड करवाने के लिए तीन ग्रुप बन गए थे। एक ग्रुप मोहम्मद रफी से, एक तलत से और एक मुकेश से यह गाना गवाना चाहता था। अंत में पर्ची का सहारा लिया और लाटरी मुकेश के नाम खुली। मुकेश ने सबसे अधिक गीत राजकपूर के लिए गाए हैं। ऐसा लगता था जैसे राजकपूर ही गीत गा रहे हों। राजकपूर को सर्वप्रथम फिल्म 'नीलकमल' में मुकेश ने आवाज दी, राजकपूर की हीरो के रूप में भी यह पहली फिल्म थी।

१९४८ में राजकपूर ने अपनी संस्था 'आर.के. फिल्मस्' गठित की और सबसे पहली फिल्म 'आग' बनाई। राम गाँगुली के संगीत निर्देशन में मुकेश ने जो गीत गाए उनमें सबसे हिट रहा 'जिन्दा हूँ इस तरह...'। इसी गीत से राजकपूर और मुकेश एक हो गए। राजकपूर ने जितनी फिल्में बनाईं (जिनमें खुद ने अभिनय किया) सभी में मुकेश ने गीत गाए।

मुकेश के अवसान पर राजकपूर ने कहा था 'मेरी तो आवाज ही चली गई।' वे मेरी आवाज थे। मेरी फिल्मों की लय थे। हम दोनों के बीच एक आंतरिक रिश्ता कायम हो गया था, जिस पर कभी पेशा हावी नहीं हुआ। वह और मैं एक थे, अभिन्न थे, अद्वैत का रूप थे।'

मुकेश ने फिल्म निर्माण भी किया। सबसे पहले उन्होंने फिल्म 'मल्हार' बनाई। फिल्म के हीरो हीरोइन दोनों नए थे। हीरोइन शम्मी थी, जो बाद में हास्य अभिनेत्री के रूप में प्रसिद्ध हुई। फिल्म के संगीत निर्देशक थे रोशन। गीतकार इंदीवर ने अपना पहला फिल्मी गीत मल्हार के लिए लिखा था। जिसे मुकेश-लता ने गाया था- 'बड़े अरमानों से रखा है बलम तेरी कसम...' फिल्म के अन्य प्रसिद्ध गीत थे 'कहाँ हो तुम जरा आवाज दो...', 'दिल तुझे दिया था रखने को...', 'तारा टूटे दुनिया देखे...'।

इसके बाद फिल्म 'अनुराग' का निर्माण किया। इसमें हीरो की भूमिका खुद मुकेश ने निभाई।साथ ही इस फिल्म के संगीतकार भी स्वयं मुकेश थे। फिल्म तो नहीं चली लेकिन फिल्म के गीत 'किसे याद रखूँ किसे भूल जाऊँ...' को लोग आज तक नहीं भूले। इसी दरमियान मुकेश ने फिल्म माशूका में हीरो की भूमिका निभाई थी जिसकी हीरोइन सुरैया थी। राजकपूर की फिल्म 'आह' में भी मुकेश ने एक अतिथि कलाकार की भूमिका निभाई थी। ताँगेवाले के रूप में मुकेश का स्वयं

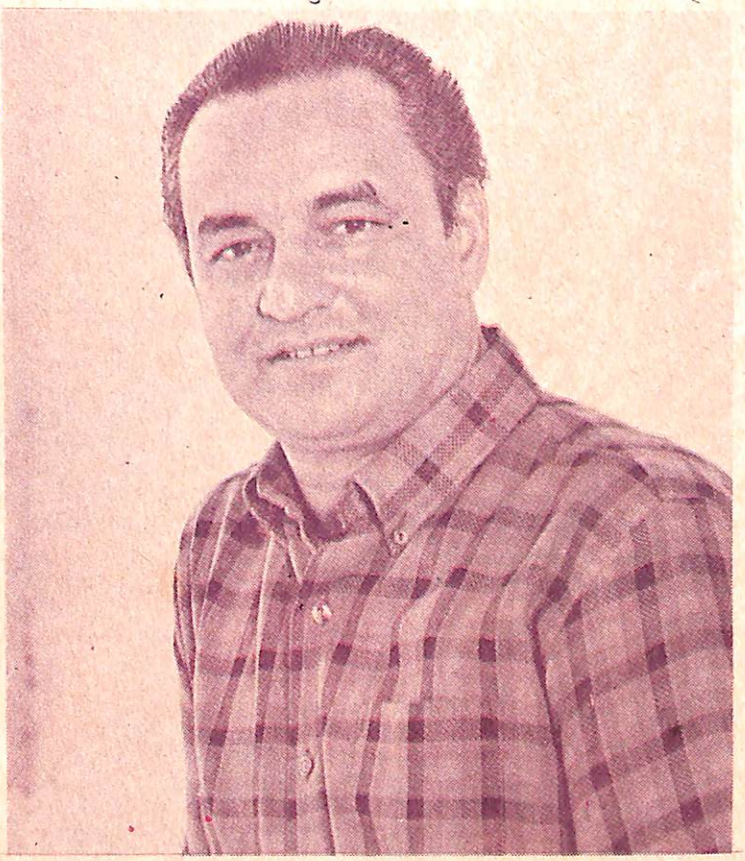

का गाया गीत मुकेश पर ही फिल्माया गया था— 'छोटी सी ये जिन्दगानी रे...'।

फिल्म निर्माण और अभिनय करना शुरू करने के बाद मुकेश ने तय किया कि अब वे अपने गीत खुद गाएँगे और पार्श्व गायन नहीं करेंगे। परंतु अभिनय के क्षेत्र में असफल रहने के कारण वापस पार्श्वगायन के क्षेत्र में उतरना पड़ा। फिल्म श्री ४२० में राजकपूर के लिए मन्नाडे ने—'दिल का हाल सुने दिलवाला...', 'प्यार हुआ इकरार हुआ', 'मुड़-मुड़ के ना देख...' आदि गीत गाए। मुकेश को भी इस फिल्म में 'मेरा जूता है जापानी...' और रमइया वस्तावइया (रफी-लता के साथ) गाने का मौका मिला और इसके साथ ही मुकेश की धमाकेदार वापसी हुई।

फिल्म 'आवारा' के 'आवारा हूँ...' और श्री ४२० के 'मेरा जूता है जापानी...' ने राजकपूर के साथ ही मुकेश को भी अंतरराष्ट्रीय ख्याति दिलवाई। एक बार जब राजकपूर रूस की यात्रा पर थे, तो उनसे 'आवारा हूँ...' गीत गाने की फरमाइश की गई तब उन्होंने कहा—यह गीत मैंने नहीं मुकेश ने गाया है। मैंने तो सिर्फ होंठ हिलाए हैं। जिस प्रकार मुकेश ने सर्वाधिक गीत राजकपूर, मनोजकुमार के लिए गाए उसी प्रकार संगीतकारों में शंकर-जयकिशन, कल्याणजी-आनंदजी और लक्ष्मीकांत प्यारेलाल सबसे ऊपर आते हैं।

१९६५ में सिने म्यूजिक डायरेक्टर्स एसोसिएशन का गठन हुआ और पहला पुरस्कार मुकेश को 'हिमालय की गोद में' के गीत—'मैं तो एक ख्वाब हूँ...' के लिए मिला था। फिल्म 'विश्वास' का एक गीत मुकेश-सुमन कल्याणपुर की आवाज में रिकॉर्ड होना था, परंतु मुकेश की अनुपस्थिति में मनहर की आवाज में 'डब' कर लिया कि बाद में मुकेश की आवाज में रिकॉर्ड कर लेंगे। बाद में मुकेश ने यह गीत सुना तो उन्होंने कहा ''यही गीत रहने दो आवाज बदलने की जरूरत नहीं है।'' इस गीत को सुनकर मुकेश का भ्रम होता है।

१९७६ में मुकेश, लता, हृदयनाथ मंगेशकर और बेटे नितिन के साथ प्रोग्राम देने अमेरिका गए थे। अस्वस्थ होने और बिना साज के बावजूद मुकेश ने 'आँसू भरी हैं ये जीवन की राहें...' गीत सुनाया। बाद में जब साथियों ने कहा आपकी तबीयत ठीक नहीं थी फिर भी आपने गा दिया। मुकेश ने जवाब दिया, 'उन्होंने प्यार से गाने को कहा और मैंने गा दिया। पता नहीं फिर जिंदगी में कहीं मिलें या न मिलें' और सचमुच यह दौरा उनका आखिरी दौरा रहा। २७ अगस्त १९७६ को उनका डेट्रायट में निधन हो गया। उन्होंने अपना अंतिम गीत राजकपूर की फिल्म सत्यम् शिवम् सुंदरम् के लिए गाया था, जो शशिकपूर पर फिल्माया गया।

मुकेश ने हिन्दी के अलावा, गुजराती, बंगाली, मराठी, सिन्धी, असमी, राजस्थानी, पंजाबी कई भाषाओं में गीत गाए हैं। रामचरित मानस के आठ एल.पी. भी उन्होंने रिकॉर्ड करवाए थे।

तुम क्या जानो तुम्हारी याद में... सी. रामचंद्र

बात पुरानी है। **सी. रामचंद्र** का नाम नया-नया चला था। गजानन जागीरदार ने एक दिन मासूमियत से कहा-देखो, चितलकर, साऊथ से कोई सी. रामचंद्र आया है और धूम मचा रहा है, करना हो तो कुछ वैसा काम कर दिखाओ। इस पर सी. रामचंद्र ने पता नहीं जागीरदार को क्या जवाब दिया पर अण्णा चितलकर अर्थात सी. रामचंद्र को भारतीय सिने संगीत का चमत्कार ही कहा जाना चाहिए, वे सिने संसार में दाखिल हुए और दाखिल होते ही चर्चित हो गए।

सी. रामचंद्र ने वर्षों तक सिने संगीत प्रेमियों के दिलों पर राज किया। उनके संगीत की फिल्मों ने निर्माताओं पर धन की धुआँधार बरसात की।

सी. रामचंद्र का संगीत कौन-सी फिल्म में सर्वश्रेष्ठ था? इस पर सर्वानुमति कभी हो नहीं सकती। सर्वानुमति तो यही है कि वे गजब की प्रतिभा के संगीतकार थे। अलबेला, झाँझर, अनारकली, आजाद, परछाई, शिन्शिना की बूबला बू, शहनाई, खिड़की, पतंगा, समाधि, निराला, सरगम, खजाना, सगाई, घुँघरू, सुबह का तारा, साकी, शगुफा, यास्मिन, देवता, पहली झलक, नोशेरवाने आदिल, शारदा, नवरंग, लंबी, फेहरिस्त है। मधुर गीतों की जैसे लड़ियाँ खोल देते थे सी. रामचंद्र। लता मंगेशकर और सी. रामचंद्र ने मिलकर जो रचनाएँ दीं, उनकी विविधता देखकर जानकार चमकृत हो जाते हैं। 'ऐ मेरे वतन के लोगों' का इतिहास यहाँ दोहराने की आवश्यकता नहीं है। पार्श्वगायकों के मामले में सी. रामचंद्र ने प्रायः सभी से गवाया और मौका आने पर या समस्या खड़ी होने पर 'चितलकर' नाम से खुद ने भी पार्श्वगायन किया। पर पार्श्वगायिकाओं के मामले में लता मंगेशकर की आवाज के बगैर सी. रामचंद्र विवश थे। जैसे लता मंगेशकर और सी. रामचंद्र अलग हो गए, उनकी सूर्यप्रकाशी प्रतिभा को स्याह बादलों ने ढँक लिया।

सी. रामचंद्र को किसी भी शैली से परहेज नहीं था। मिस्टर जॉन और ईना मिना डिका के माध्यम से पाश्चात्य संगीत को वे भारतीय सिने संगीत में ले आए। दूसरी ओर धीरे से आ जारी निन्दिया, बलमा बड़ा नादान, कटते हैं दुख में ये दिन जैसी शुद्ध भारतीय मेलडी के महल भी सी. रामचंद्र ने खड़े किए। आजाद का स्मरणीय संगीत, बताते हैं सी. रामचंद्र ने सिर्फ आठ दिनों में तैयार किया था।

ये जिन्दगी उसी की है (अनारकली), दिल से भुला दो तुम हमें (पतंगा), मेरे दर्द जिगर (परछाई), ए प्यार तेरी दुनिया में हम (झाँझर), ऐ चाँद प्यार तेरा (खजाना), मीठी-मीठी दुकान फीका-फीका पकवान (पहली झलक) इन रचनाओं ने सी. रामचंद्र की प्रतिष्ठा में यदि इजाफा किया तो लता मंगेशकर की निर्विवाद प्रतिभा को भी ऐसी रचनाओं ने

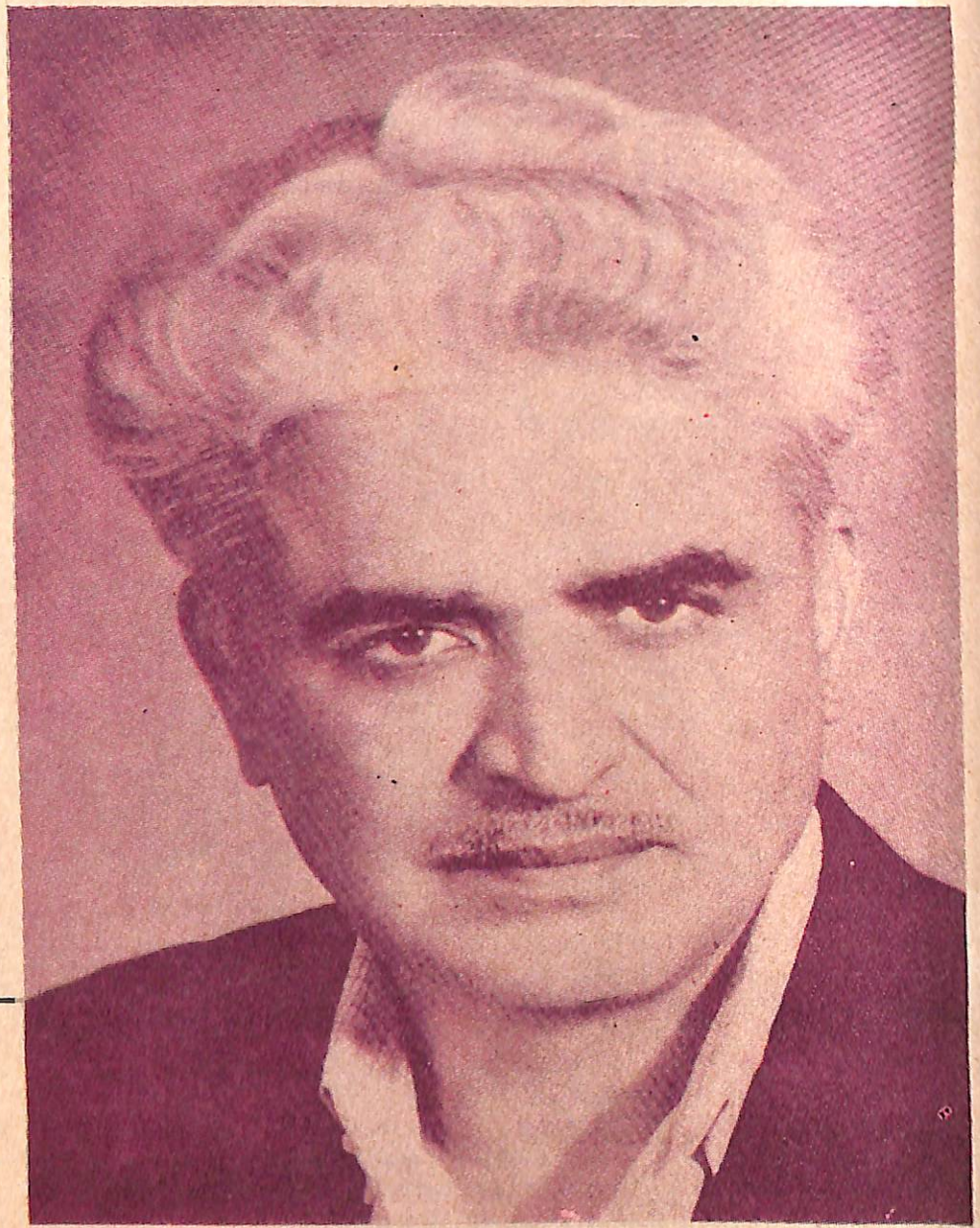

और कोशिश कीजिए

फिल्मीस्तान की एक फिल्म को सी. रामचंद्र संगीत दे रहे थे। एक धुन बनाकर उन्होंने उसे निर्माता को सुनाई। निर्माता ने कहा, रामचंद्रजी वैसे धुन ठीक है पर उसे थोड़ा और इम्प्रूव कीजिए।

ठीक है, सी. रामचंद्र ने कहा। हफ्ते भर बाद उसी धुन को बगैर कोई फर्क किए वे निर्माता के पास ले गए और उन्हें धुन सुनाई।

निर्माता ने कहा, वाह, वाह। देखिए, पहली धुन से यह धुन कितनी अच्छी बन पड़ी है। फिर भी और कोशिश कीजिए, धुन और भी सुधर जाएगी।

उसके अगले हफ्ते सी. रामचंद्र ने उसी धुन को निर्माता को सुनाया। निर्माता ने खुश होकर कहा, देखो मेहनत करने से कितना बढ़िया इफेक्ट आता है। मैं जो चाहता था, वह बिल्कुल अब इस वक्त मिल रहा है।

सी. रामचंद्र मन ही मन हँस दिए।

सरगम के सफर के हमसफर: खेल समीक्षक

यह अजीब संयोग है कि खेल के मैदान में गेंद से खेलने वाले खिलाड़ी अपने निजी क्षणों में निजी शौक के बतौर गीत-संगीत में बेहद दिलचस्पी लेते हैं। बात यहीं तक नहीं ठहरती कई खेल-समीक्षक भी सरगम के सफर के उम्दा हमसफर हैं। इस क्रम में दुनिया के सबसे बड़े क्रिकेट समीक्षक नीविल कार्डस् (इंग्लैंड) को संगीत में जबरदस्त दिलचस्पी है। भारत में क्रिकेट समीक्षक राजू भारतन जितने अधिकार से क्रिकेट पर लिखते हैं, उतना ही उनका प्रिय विषय संगीत है। शिरीष कणेकर ने मराठी में गीत-संगीतकारों पर अनेक किताबें लिखी हैं और 'फिल्मबाजी' नामक तीन घंटे का लाइव-शो शानदार तरीके से पेश करते हैं, जिसका आधार फिल्मी गीत-संगीत है। डॉ. वसंत नाईक की कलम की ताकत खेल, खिलाड़ी और सरगम के साथ बराबर वजन रखती है। इस समय ऑल इंडिया टेबल टेनिस एसोसिएशन के सेक्रेटरी सुरेश गावड़े बरसों से गीत-संगीत पर साधिकार लिखते रहे हैं। खिलाड़ियों की तरह संगीतकारों एवं गायक-गायिकाओं से उनके दोस्ताना संबंध हैं। अक्सर उनके घर पर गीत-संगीत की महफिलें जमती रहती हैं।

स्थापित किया इसमें किसी को भी संदेह नहीं

बताया जाता है कि 'ऐ मेरे वतन के लोगों' मूलतः आशा भोसले गाने वाली थीं। पर लता मंगेशकर ने उसे स्वयं गाने की इच्छा प्रकट की और गीतकार प्रदीप के हाथों सी. रामचंद्र को उस तरह से कहलवाया भी। जवाब में सी. रामचंद्र ने लता-आशा दोनों से संयुक्त रूप से उसे गवाने का फैसला किया। पर अंततः लता ने ही उसे गाया। यह बात तब की है जब सी. रामचंद्र और लता में आपसी बातचीत बंद थी।

फिल्मों में कौन सा गीत कब चल निकलेगा यह कोई भी दावे के साथ नहीं कह सकता। पर सी. रामचंद्र के संगीत के लिए यह आम विश्वास था कि वे संगीत प्रेमियों की 'दुखती रग' खूब जानते थे।

बदलते जमाने के साथ सी. रामचंद्र ने अपने संगीत में आवश्यक परिवर्तन किए। किसी शैली से उन्होंने परहेज नहीं किया। उनकी निगाहें और दृष्टि बहुत ही पैनी थी। पास-पड़ोस, सड़क, सफर, दोस्तों के बीच कहीं भी वे सदैव सुरों की थाह लेते रहते थे। अलबेला के गीत भोली सूरत की घटना है। किसी हरिजन के यहाँ विवाह प्रसंग पर गाना-बजाना हो रहा था। सी. रामचंद्र वहाँ से गुजर रहे थे। उस गाने-बजाने में से 'भोली सूरत दिल के खोटे' उन्होंने खोज निकाला था। 'यास्मिन' फिल्म नहीं चलने का उन्हें अफसोस हमेशा रहा। उस संगीत पर उन्होंने बहुत मेहनत की थी। एक से एक शिखर संगीतकारों के उस जमाने में निश्चय ही सी. रामचंद्र का अपना विशिष्ट स्थान था। कहना अनावश्यक है कि भारतीय सिने संगीत प्रेमियों की कई पीढ़ियाँ सी. रामचंद्र की कृतज्ञ रहेंगी।

छाया : मधुकांत मौर्य

रूना लैला

बंगला देश की गायिका रूना लैला ने भारत में 'दमादम मस्त कलंदर' गाकर ठीक वैसी ही धूम मचाई थी, जिस तरह से पाकिस्तान की नाजिया हसन ने अपने पहले गीत से श्रोताओं को मोह लिया था। स्टेज पर उतरते ही एक सुरीली-सी सनसनी तथा आवाज की मादकता को रूना लैला कुछ इस अंदाज में माहौल में बिखेरती हैं कि दर्शक झूम उठते हैं। पहाड़ों की गोद में मचलती नदी की तरह रूना को गाते देखना एक सुखद अनुभव है। लेकिन उसके गीत सुनने में वह आनंद नहीं दे पाते। आडियो-वीडियो का मिलाजुला मोहक संगम है वह। छत्तीस वर्षीय आकर्षक व्यक्तित्व की धनी रूना को जयदेव तथा कल्याणजी-आनंदजी ने आगे बढ़ाया था। घरौंदा फिल्म का यह गीत-दो दीवाने शहर में-अक्सर उसकी याद दिलाता है।

उच्चतम न्यायालय द्वारा सेंसर के बंधन से मुक्त।

ये केवल फिल्म नहीं—एक प्रार्थना है।

"पति परमेश्वर"-१ जून को प्रदर्शित

५८५ दिनों की कानूनी लड़ाई के पश्चात सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित फिल्म भारतीय नारी के परम्परागत संस्कारों की विजय गाथा।

राम एच अडवानी, आर के नैयर और साधना नैयर का भारतीय नारी के लिए धर्म-युद्ध-पति परमेश्वर। ये नारी के दो रूपों की कहानी है-**एक धरती की तरह सहनशील है, दूसरी बिजली की तरह कड़कती है, एक तपमय है, दूसरी तापमय।** एक जलती है, **दूसरी जलाती है,** एक प्रार्थना है, **दूसरी पीड़ा है,** एक सावित्री जैसी है, **दूसरी रणचंडी जैसी है।**

लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल के ५ गीतः अनूप जलोटा का भजन

गलत परम्पराओं और कुरीतियों से औरत की "रिहाई"

विनोद खन्ना, हेमामालिनी, नसीरुद्दीन शाह, नीना गुप्ता और मोहन अगाशे।

सृजनशील अरुणा राजे की फिल्म जो एक सशक्त सामाजिक दस्तावेज है और दोहरे सामाजिक मानदंडों पर गहरा प्रहार-

हेमामालिनी विनोद खन्ना से कहती है,
"तुम अगर औरत से सीता बनने की उम्मीद रखते हो, तो स्वयं राम की तरह आचरण करो।"

स्त्री-पुरुष के आदि संबंधों पर पहली निर्भीक भारतीय फिल्म।

जून में प्रदर्शित होगी।

प्रेषक: **प्राची फिल्म्स** १४, धेनु मार्केट, इंदौर-बेहतर फिल्मों के एकमात्र वितरक।

आगामी आकर्षण **राजकपूर की "हिना" और शशिकपूर की "अजूबा"**

बीसवीं सदी की आहट और प्रदर्शनकारी कलाएँ

मुल्कराज आनंद

इस सदी के प्रारंभिक वर्षों में जबकि मैं बड़ा हो रहा था भारत का सांस्कृतिक जीवन बहुत कुछ अंतः प्रजात ही था। मौसम के बदलने का पता समुदाय के त्योहारों से चलता था। मुझे याद है दशहरे पर हम बच्चे कागज से रावण के मुखौटे बनाया करते थे। चौराहों पर रास खेला जाता था तथा उसमें 'रामायण' की कहानियाँ साभिनय प्रस्तुत की जाती थीं। दिवाली और बसंत के साथ भी यही होता था और पूरा समुदाय उनमें हिस्सा लेता था। तभी पहले विश्व-युद्ध के पूर्व कलकत्ता से पारसी, मदान थिएटर कंपनी आई। यह हर खासो-आम के लिए मनोरंजन की पराकाष्ठा थी क्योंकि वह योरपीय शैली का नियमित मंच रूप था। मदान कंपनी भारत के प्रमुख शहरों में आगा हश्र काश्मीरी के नाटक खेलती हुई घूमती थी। अधिकांश नाटक शेक्सपियर के नाटकों के हिंदुस्तानी रूपांतर होते थे। 'हैमलेट' के हिंदुस्तानी संस्करण 'खून-ए-नाहक' की मुझे अब भी याद है। आगा हश्र ने इस नाटक में शेक्सपियर के इस मंतव्य को बड़ा ठीक पकड़ा था कि प्रेक्षकों की दिलचस्पी बनाए रखने के लिए मंच पर एक के बाद एक खून और मौतें होती रहनी चाहिए। चूँकि हैमलेट (जहाँगीर) राजा तो बनना चाहता था लेकिन किसी वजह से इस कृत्य को स्थगित करता है और इस प्रक्रिया में खुद और दूसरों को भी सताना चाहता है। हश्र इतनी सारी हत्याएँ तो दिखलाते हैं लेकिन शालीनता के कारण वे मंच पर पूरा खून नहीं बतलाते थे। मदान थिएटर 'हरिश्चंद्र' और 'महाभारत' के दृश्य भी पेश करता था।

मदान थिएटर के सारे नाटकों को सशरीर व्यावसायिक फिल्मों में ले लिया गया। मगर मैं फिल्मों तक जरा जल्दी में पहुँच गया हूँ क्योंकि पहली हिंदी फिल्म मैंने १५ वर्ष बाद देखी। इस बीच मैं चार्ली चैप्लिन की कुछ मूक फिल्में 'बायोस्कोप' (सिनेमा तब इसी नाम से जाना जाता था) पर देख चुका था। इनका प्रदर्शन आमतौर से अमृतसर की सिविल लाइन के किसी खाली बंगले में होता था और उन्हें देखने शहर के संभ्रांत वर्ग के लोग आते थे।

मेरे दिमाग में कहीं यह धुंधला खयाल उभरा कि साल भर चलने वाले त्योहारों के समय खेले जाने वाले शौकिया नाटक और मदान कंपनी के अति नाटकीय धार्मिक विषयों के नाटकों के विपरीत चार्ली चैप्लिन की धर्मनिरपेक्ष सामाजिक कॉमेडी खुद मेरे दिमाग में भी क्रांति पैदा कर रही थी। मेरी पीढ़ी के कई विद्यार्थी चार्ली चैप्लिन में खुद को देखते थे और पूरी तरह खस्ताहाल पिलपिली साहब मानते थे। सस्ता सूट तो हम नहीं खरीद सके लेकिन सोला हैट हमने जरूर खरीदे और साइकलों पर सोला हैट लगा कर हम लोग कॉलेज जाते थे।

अशिक्षित या अर्द्ध शिक्षित समुदायों के रीति-रिवाजों से जुड़े मनोरंजन से बिलकुल अलग जिस तरह का प्रदर्शन बाकी कलाओं को प्रश्रय विश्वविद्यालय दे रहे थे वह तब अपनी चरम सीमा पर पहुँचा जब हमने सुना कि प्रो. अहमदशाह बुखारी ने 'हैमलेट' का प्रदर्शन किया है। वे स्वयं हैमलेट बने तथा कल्याणी गुप्ता ओफेलिया बनी। लाहौर गवर्नमेंट कॉलेज में 'हैमलेट' की प्रस्तुति देखने सारे फैशनेबल युवक और होने वाले भारतीय साहब लोग गए। बाद में यही नाटक शिमला के 'गेअटी थिएटर' में भी प्रस्तुत किया गया और मैंने पहली बार ब्रिटिश सैनिक अफसरों को भारतीय बुद्धिजीवियों द्वारा मंचित किए गए नाटक को देखने आने की मेहरबानी करते देखा।

भारतीय संगीत की परंपरा अब भी शहरों और विभिन्न घरानों के घरों में ही बच रही थी। मुझे याद है, मैं हर सुबह स्वर्ण मंदिर में जा कर भाई फैज को विभिन्न रागों में गाते हुए सुनने जाता था। जब एक शादी में गाने के लिए जानकीबाई इलाहाबाद वाली आई, तो हम सब बिलकुल लट्टू हो गए थे। और खूबसूरत नाचनेवाली मलिकाजान पटियालावाली को देख कर तो मैं इस तरह पहली नजर में उनका आशिक हुआ कि अपनी माँ की साड़ी चुरा कर उन्हें दे डालने पर आमादा हो गया। हम लोग गुरदीपसिंह (ग्रामोफोनवाले सरदार) की बैठक में उन्हें सुनने गए। वहाँ कई प्रसिद्ध गायक आते थे तथा ग्रामोफोन के रिकॉर्ड भी सुनने को मिलते थे।

मगर यह सब करते हुए भी अपनी परंपरागत जीवन-शैली से हम लगातार अलग हटते जा रहे थे। कॉलेज की अपनी किताबों से हमें यह अहसास तो हो ही चुका था कि महाभारत में अर्जुन के 'मोह' की अपेक्षा हैमलेट की दुविधा आज के जमाने के साथ ज्यादा प्रासंगिक है। इन्हीं दिनों मैंने महसूस किया कि नाटक के द्वारा महत्वपूर्ण परिवर्तन लाया जा सकता है। हैमलेट का स्वागत-भाषण 'टु बी और नॉट टु बी' कॉलेज में मैंने भी मंच पर प्रस्तुत किया और यह भाषण मुझे जीवन भर लिखने की प्रेरणा देता रहा। मगर मेरे खुद के अलावा भी सामान्य भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग में परिवर्तन आ रहा था। पंजाब यूनिवर्सिटी से निकले कई बेरोजगार युवक कलकत्ता के थिएटरों तथा फिल्म उद्योग में जाने लगे। जब हमने सुना कि कल्याणी गुप्ता पंजाब से कलकत्ता जा कर एक फिल्म में काम करनेवाली हैं, तो हमें लगा कि हम लोग मनोरंजन की कलाओं की मुख्यधारा में प्रवेश करने जा रहे हैं। याद रखना होगा कि उस समय तक किसी भी महिला को स्टेज या फिल्मों में काम करने की इजाजत नहीं दी जाती थी। कलकत्ता की गायिका गौहरजान एकमात्र महिला थीं जो मदान थिएटर के नाटकों में काम कर चुकी थीं।

जब मैं १९२५ में लंदन गया तो वहाँ पहुँचने के दूसरे ही दिन मेरी भेंट देविका रानी से हुई, जो अपने मंगेतर हिमांशु रॉय के साथ एँडविन आर्नल्ड के 'लाइट ऑव एशिया' पर फिल्म बनाने की योजना बना रही थीं। देविका रानी की ब्रिटिश थिएटर में भी बड़ी माँग थी। 'लिरिक थिएटर' के नीगेल प्लेफेयर उन्हें कालिदास के 'शाकुंतल' पर आधारित लॉरेन्स बेनियन के नाटक में लेना चाहते थे। इस तरह देविका रानी और हिमांशु रॉय के साथ लंदन के थिएटर-माहौल में दाखिल होने का मुझे भी मौका मिला। जब १९२९ में मैं भारत लौटा तो मैं कलकत्ता और शांति निकेतन गया जहाँ टैगोर-परिवार तथा शिशिर भादुरी जैसे अभिनेता पेशेवर थिएटर के रूप में बंगाली नाटक खेल रहे थे। टैगोर के 'सेक्रिफाइस' (बलिदान) की सशक्त प्रस्तुति मैंने वहीं देखी। बाद में मुझे पता चला कि टैगोर परिवार बहुत पहले से कलकत्ता में नाटकों का लेखन, निर्देशन तथा मंचन कर रहा था। इन नाटकों की प्रतीकात्मकता का मूल कारण भी शायद राजनीतिक टकराव से बचना ही था। बिहार और बंगाल के नील बागानों के मजदूरों के शोषण पर आधारित नाटक 'इंडिगो' तो कलकता में बार-बार खेला गया।

इस तरह बंगाल का पेशेवर नाटक तथा मदान थिएटर के हिंदुस्तानी नाटक मूक सिनेमा के मुख्य प्रेरणा स्रोत बने। मैं कहना चाहूँगा कि कलकत्ता के बालीवाला थिएटर से ही पृथ्वीराज कपूर को मान्यता मिली और वहीं से उन्होंने वाक् मंच से सीधे बंबई की मूक फिल्मों में प्रवेश किया। बंबई में भी दादा साहब फालके की प्रारंभिक फिल्म-कला को मराठी मंच ने ही प्रभावित किया था। जैसा कि सर्वविदित है मराठी में १९ वीं सदी के अंत से बीसवीं सदी के प्रारंभ तक देसी नाटकों की उत्कृष्ट परंपरा थी और मामा वरेरकर जैसे नाटककारों की बड़ी इज्जत थी।

मूक-सिनेमा का पूरे भारत में बहुत लंबे समय तक बोलबाला रहा और उस पर हॉलीवुड के माइम (स्वांग) सिनेमा का बहुत असर रहा। हॉलीवुड का असर बाद में भी रहा और 'अछूत कन्या' जैसी दो चार फिल्मों को छोड़, ज्यादातर मूक और सवाक् दोनों ही तरह की फिल्में भारत की सामाजिक दुर्दशा से अछूती ही रहीं।

नगर पालिक निगम, देवास (म.प्र.)

नागरिकों से विनम्र निवेदन

नगर पालिक निगम, देवास नागरिकों की समर्पित एक सेवा प्रतिष्ठान है। हम सार्वजनिक जीवन में नागरिक हितों के संवर्धन के लिए कृत संकल्प हैं। सीमाओं का अनुभावन हमें है, फिर भी संभावनाओं के प्रति हम कम आशान्वित नहीं हैं। जनाधार हमारे विश्वास की प्रमुख शक्ति है।

१– समय पर कर चुकाइए और सम्मानित नागरिक जीवन बिताइए।

२– कर देने में देरी करना या कर नहीं देना हर स्थिति में अपमानजनक है।

३– पानी को व्यर्थ बहने से रोकिए, टोटी विहीन नलों पर टोटी बिठाइए।

४– कचरा अथवा गंदगी इधर-उधर नहीं फैलाएँ। निर्धारित स्थान पर ही कचरा डालें। नगर की स्वच्छता आपके स्वास्थ्य की सुरक्षा है।

५– जन्म और मृत्यु का पंजीयन आपको ही सेवा और सुविधा प्रदान करता है।
जन्म और मृत्यु का पंजीयन कराएँ।

६– स्व-वित्त योजना में लगा धन नगर के विकास कार्यों में लगेगा।
पूँजी का अधिक विनियोजन, नगर का अधिक नियोजित विकास।
आपका सहयोग ही हमारे संकल्प को चरितार्थ कर सकता है।

एस. जी. पाठक
आयुक्त,
नगर पालिक निगम, देवास

एम.के. खरे
प्रशासक,
नगर पालिक निगम, देवास

कार्यालय कार्यपालन यंत्री (संचा.-संधा.), मध्यप्रदेश विद्युत मंडल, देवास संभाग

विद्युत दुर्घटना से बचने के उपाय

१. बिजली के खंभों अथवा खंभे से लगी तान के सहारे जानवरों को न बाँधा जावे।
२. गीले कपड़ों को विद्युत तारों से दूर रखा जावे और जी.वाई. वायर जो कि सर्विस लाइन अथवा जी.आई. पाइप से बँधे हों, गीले कपड़े सुखाने हेतु उपयोग में न लेवें।
३. गीले पानी के हाथों से विद्युत उपकरण को न छुएँ।
४. लाइन के तारों के नीचे खलिहान व घास की गंजी भी विद्युत लाइनों से दूर रखें।
५. स्टार्टर कवर एवं स्वीच के कवर खुले न छोड़ें।
६. मोटर पंप सेट/मेन स्वीच एवं स्टार्टर को अर्थिंग करना अति आवश्यक है। अर्थिंग कनेक्शन ठीक से कसा हुआ होना आवश्यक है।
७. समय-समय पर अर्थवायर के खड्डे में पानी डालते रहना चाहिए।
८. स्टार्टर को कभी डायरेक्ट न जोड़ें। मेन स्वीच में फ्यूज की क्षमता मोटर की क्षमतानुसार ही रखें।
९. लाइन के तारों को पतंग की डोर या लंगर से बाँधकर न खींचें। खंभों अथवा तारों के सहारे बेनर इत्यादि न लगावें।
१०. तार टूटने की दशा में जमीन पर पड़े हुए तार को छूने का प्रयत्न न करें। इसकी सूचना तत्काल नजदीकी विद्युत मंडल कार्यालय को देवें।
११. डायरेक्ट लाइन पर तार जोड़कर विद्युत का उपयोग न किया जावे। भारत विद्युत अधिनियम के अंतर्गत यह एक दंडनीय अपराध है।

कार्यपालन यंत्री (संचा./संधा.)
मध्यप्रदेश विद्युत मंडल, देवास संभाग

७८:४५:३३ १/३
चक्कर प्रति मिनट

जी.एन. जोशी

भारत में फोनोग्राफ का इतिहास बीसवीं सदी के भी पहले से शुरू होता है। हालांकि भारत में फोनोग्राफ का आयात १८९८ में ही शुरू हो गया था। यहाँ उसके व्यापारिक रूप से विक्रय का काम सन् १९०० में **म्यूरो स्कोप बायोग्राफ कंपनी** ने प्रारंभ किया। यह कंपनी भोंपूवाला बाजा योरपीय रिकॉर्डों के साथ अमेरिका से आयात करती थी। १८९८ में अमेरिकी आविष्कारक ऐमिल बर्लिनर ने ब्रिटेन में अपने प्रतिनिधि डब्ल्यू.बी. ओवेन को भेजकर एक ग्रामोफोन कंपनी स्थापित की, जो कंपनी की पितृ संस्था थी। इन्हीं दिनों जॉन्सन नामक एक मेकेनिक ने फोनोग्राफ के लिए स्प्रिंग-मोटर का आविष्कार किया, जिसमें चाबी भरी जाती थी।

म्यूरो बायोस्कोप कंपनी ने अमेरिका से जो रिकॉर्ड आयात किए थे, उनमें सबसे ज्यादा लोकप्रिय 'लॉफिंग सॉंग' था, जिसकी पाँच लाख से भी ज्यादा प्रतियाँ बिकी थीं। म्यूरो स्कोप कंपनी ठीक से चली नहीं और उसकी जगह ग्रामोफोन कंपनी ने मि. जे. वॉट्सन हेरॉड को यहाँ भेजा और उन्होंने ७ जुलाई १९०१ को कलकत्ता में अपनी कंपनी की शाखा खोली।

शुरू के दिनों में ग्रामोफोन रिकॉर्ड 'जिंक ऐचिंग' प्रक्रिया द्वारा बनाए जाते थे। जस्ते की तश्तरी पर चर्बी की परत चढ़ाकर उसमें 'आँटे' डाल दिए जाते थे, जिन पर सुई (स्टाइलस) घूमती थी। 'स्टाइलस' को एक झिल्ली के साथ जोड़ा जाता था, जो ध्वनि-तरंगों के कंपनों को भोंगे में पहुँचाती थी। रिकॉर्ड की हुई जस्ते की तश्तरी को बाद में तेजाब में दस मिनट तक डुबोकर रख दिया जाता था। उस पर बनी हुई संगीत की चूड़ियाँ पक्की उत्कीर्ण हो जाती थीं और तब रिकॉर्ड को सीधे-सीधे 'बजाया' जा सकता था। १९०१ में मोम या 'लाख' पर रिकॉर्ड बनने शुरू हुए। इनकी प्रतियाँ बहुत बड़ी संख्या में ढाली जा सकती थी। अक्टोबर १९०२ में कंपनी के टी.डब्ल्यू. गेसबर्ग, जो कई वर्षों तक बर्लिनर के साथ काम कर चुके थे, भारत आए और यहाँ उन्होंने रिकॉर्डों का धंधा जमाया। गेसबर्ग और उनके उत्तराधिकारियों ने बाद के वर्षों में मिस दुलारी, गौहरजान, जौहरा, मलका जान, अंगूरबाला, इंदुबाला तथा पीरू कव्वाल, कल्ली कव्वाल तथा फख्रे आलम की आवाजों को रिकॉर्ड किया। इनके साथ साजों में हारमोनियम, तबला, सरोद, क्लेरेनेट का उपयोग किया जाता था। महिला गायिकाओं के साथ सारंगी और घंटियों का उपयोग किया जाता था। इन रिकॉर्डिंगों को 'प्रोसेस' करने के लिए हनोवर स्थित फेक्टरी में भेजा जाता था। ये रिकॉर्ड वापस बनकर भारत आते थे और भारी संख्या में बेचे जाते थे। रिकॉर्ड के अंत में गायक या गायिका अपनी अटपटी अँगरेजी में अपना नाम घोषित करते थे। पहले भोंपूवाली मशीनें काले रंग की होती थीं, मगर बाद में वे पीतल की बनने लगीं। भोंपू भी रंग-बिरंगे आने लगे।

सन् १९०८ का साल ग्रामोफोन के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण था, क्योंकि इस वर्ष कलकत्ता तथा इंग्लैंड के हेज, में रिकॉर्ड 'प्रेस' करने के कारखाने स्थापित किए गए। १९२० तक सभी फोनोग्राफ मशीनें विदेशों से ही आयात की जाती थीं और उन्हें सामाजिक रुतबे का प्रतीक माना जाता था। कलकत्ता के बेलियाघाट स्थित कारखाने के द्वारा बढ़ती हुई माँग की पूर्ति न हो सकने के कारण कंपनी ने दमदम में एक और बड़ा कारखाना डाला। लगभग इन्हीं दिनों जापान में बनी मशीनें बाजार में आईं और उनकी कीमत इतनी कम (१० रुपए) थी कि सामान्य व्यक्ति भी उन्हें खरीदने लगे। बाद में फोनो मशीनों के डीलरों ने जापान और स्विट्जरलैंड से खुदरा पुर्जे आयात कर लकड़ी के बक्सों में फिट कर स्थानीय रूप से भी ग्रामोफोन बनाना शुरू कर दिया। इन सस्ती मशीनों के आगमन से रिकॉर्डों की माँग और भी ज्यादा बढ़ी। इन रिकॉर्डों के घूमने की गति मानक रूप से ७८ राउंड पर मिनट होती थी। बिल्कुल शुरू में निकले रिकॉर्ड का व्यास सात इंच होता था, बाद में आकार बढ़ा कर दस इंच कर दिया गया। पहले रिकॉर्डिंग तवे की सिर्फ एक ही ओर होती थी, फिर दोनों तरफ होने लगी। एक रिकॉर्ड ३ मिनट और ३३ सेकंड की अवधि का होता था। बाद में कुछ बड़े कलाकारों के रिकॉर्डों का आकार बारह इंच रखा जाता था तथा उनका मूल्य भी कुछ ज्यादा होता था।

पिछले पचास वर्षों का ग्रामोफोन तथा रिकॉर्डों का इतिहास लगातार प्रगति और विस्तार का रहा है। १९२० में इलेक्ट्रिक रिकॉर्डिंग, ध्वनि-विस्तारक तथा 'स्टाइलस' के आने से मुद्रण तकनीकों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। गायकों की आवाज और साथ के वाद्यों की आवाजों के बीच 'संतुलन' स्थापित किया जाने लगा। रिकॉर्ड को घुमानेवाले गोल तख्ते पर एक निश्चित गति से घुमाना भी संभव हो गया।

प्रारंभ में संगीत को रिकॉर्ड करने के लिए अच्छे स्टूडियो नहीं थे। प्रतिध्वनियों तथा अवाँछित ध्वनियों को मुद्रित होने से बचाने के

लिए रिकॉर्डिंग-रूम में मोटे परदे लगाए जाते थे तथा फर्श पर कालीन बिछाया जाता था। बाद में बंबई, कलकत्ता, मद्रास और दिल्ली में रिकॉर्डिंग स्टूडियो की स्थापना हुई। १९४८ तक 'लाख' के रिकॉर्ड बनते रहे, हालाँकि लाने-ले जाने में उनके टूटने की जोखिम रहती थी। इसीलिए बाद में एसीटेट की पर्त चढ़ी एल्युमीनियम के रिकॉर्ड बनना शुरू हुए तथा उन पर चूड़ियाँ उत्कीर्ण करने के लिए विद्युत मोटरों का प्रयोग होने लगा। १९५० में क्रांतिकारी मेग्नेटिक टेपरिकॉर्डर का आगमन हुआ, जिसमें आवृत्ति-प्रतिक्रिया ५० से लेकर दस हजार चक्र प्रति सेकंड तक प्राप्त की जा सकती थी। इसमें मुद्रित सामग्री को फिर से बजाने तथा आगे-पीछे करने की सुविधा मिली और अंकित सामग्री या किसी टुकड़े के दोषों को दूर कर उसे फिर से रिकॉर्ड करना संभव हो गया। इसमें ध्वनि की गुणवत्ता में सुधार हुआ और १९६४ में तो ऐसे टेप भी बनने लगे, जिनमें ध्वनि की आवृत्ति ४० से पंद्रह हजार चक्र प्रति सेकंड

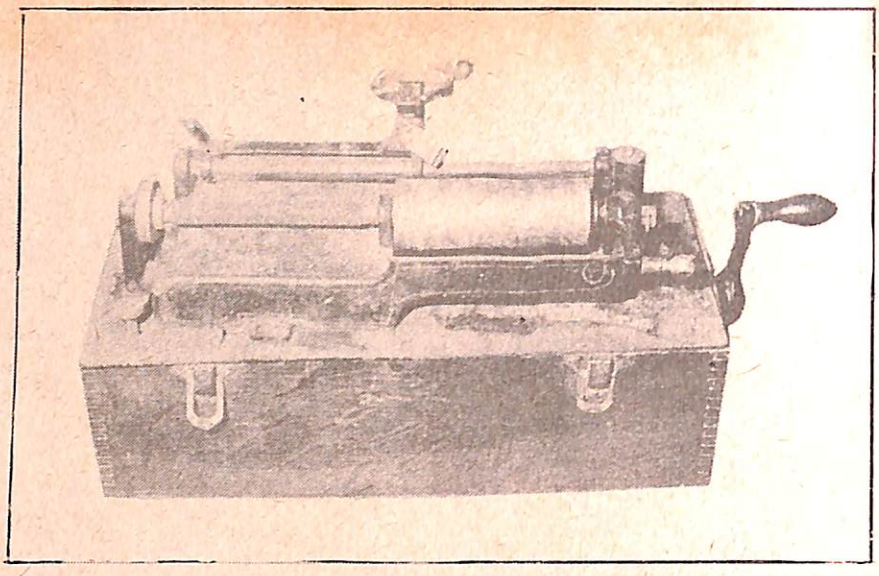

तक हो सकती थी। स्टीरियो फोनिक रिकॉर्डिंग भी इसी के साथ-साथ आई।

गीत-संगीत का खजाना

ग्रामोफोन के रिकॉर्डों में भारत की ७० करोड़ आबादी और तीस से भी अधिक भाषाओं-बोलियों में संगीत परंपराओं और लोक-संगीत का खजाना भरा पड़ा है। मनोरंजन के अलावा शैक्षिक तथा सांस्कृतिक महत्व की भी बहुत सी सामग्री इन ग्रामोफोन रिकॉर्डों पर मुद्रित करके रखी हुई है। महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू की आवाज तो इनमें है ही, सन् १९०० में एक बारह इंच रिकॉर्ड पर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की आवाज में 'वंदे मातरम्' भी मुद्रित किया गया था। १९६१ में गुरुदेव की जन्म-शताब्दी के अवसर पर इस रिकॉर्ड की एक प्रति खोज निकाली गई थी। गुरुदेव की आवाज को १९२० में भी एचएमवी ने कलकत्ता स्थित बेलियाघाट फेक्ट्री में रिकॉर्ड किया था। काजी नजरुल इस्लाम, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, डी.आर. बेंद्रे तथा महाकवि वल्लतो की आवाजें भी उनके कविता-पाठ के माध्यम से अंकित की गई है।

१९२० में रामाग्राफ के लेबल से जर्मनी में बने रिकॉर्डों में 'स्वदेशी आंदोलन' के समर्थन में कई गीत जारी किए गए थे।

शास्त्रीय संगीत के उस्तादों से उनकी कला के नमूने प्राप्त करने में शुरू में रिकॉर्ड कंपनियों को बड़ी दिक्कतें पेश आईं। कुछ संगीतकार अपना ज्ञान दूसरों के साथ बाँटना या हर एक को उपलब्ध नहीं करना चाहते थे। यदि कभी वे राजी भी होते थे तो मनमाना पारिश्रमिक माँगते थे। इसलिए कंपनी ने अपना ध्यान लोकप्रिय गायकों पर केंद्रित किया। आज पाँच दशकों के बाद भी इन्हीं में से मलका जान, गौहरजान, जानकीबाई, अंगूरबाला तथा महबूब जान जैसे नाम याद किए जाते हैं।

१९२० से २५ के बीच मराठी मंच पर नाट्य संगीत का पुनरागमन हुआ और बाल गंधर्व, हीराबाई बड़ोदकर, विनायकराव पटवर्धन, सवाई गंधर्व, मास्टर दीनानाथ जैसे अभिनेता-संगीतकार हर शाम बड़े शहरों में अपनी आवाज का जादू इन संगीत नाटकों के माध्यम से बिखेरते थे। इनमें से कुछ ने बड़े-बड़े मुसलमान उस्तादों से प्रशिक्षण प्राप्त किया था। ग्रामोफोन कंपनी ने इस अवसर का लाभ उठाकर और भी लोकप्रिय गीत रिकॉर्ड करवाए और ग्रामोफोन पर नाट्य-संगीत का युग प्रारंभ हुआ। बंगाली तथा गुजराती मंच पर भी प्रतिभाओं की कमी नहीं थी और उनके गीत भी इसमें शामिल किए गए।

इनके अलावा इस समय जो कलाकार उपलब्ध थे, उनमें कव्वाली तथा गजल गायक, कीर्तनकार तथा भजन गायक थे। पीरु कव्वाल, कल्लू कव्वाल, अशरफ खान, आगा फैज, के.सी. डे की आवाज के शौकीन आज भी मिल जाएँगे।

फोनोग्राफ जल्द ही संगीत के क्षेत्र में सार्वजनिक रुचि तथा फैशन बदलने का साधन बन गया। महाराष्ट्र में नाट्य संगीत की लोकप्रियता ने शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता का भी मार्ग प्रशस्त कर दिया। उस युग के जिन महान कलाकारों की आवाज ग्रामोफोन कंपनी ने रिकॉर्ड की, उनमें रहमत खाँ, फैयाज खान, अब्दुल करीम खान, इनायत खान, अहमन जान थिरकवा, नारायणराव व्यास, केसरबाई, रामकृष्ण बुआ वझे, निसार हुसैन, अलाउद्दीन खाँ, अमीर खाँ, बड़े गुलाम अली खाँ, ओंकारनाथ ठाकुर, गंगूबाई हंगल, मल्लिकार्जुन मंसूर आदि थे।

संत-कवियों के भक्ति-गीत की स्वर लहरियाँ बिखेरने वालों में जूथिका रॉय, के.सी.डे, वसंत अमृत, विष्णुपंत पागनीस, दिलीप कुमार राय, धार्मिक कथाओं, महाकाव्यों तथा ऐतिहासिक घटनाओं के रिकॉर्ड भी बहुत लोकप्रिय थे। महाराष्ट्र के शाहिर पी.डी. खाडिलकर, नानी वड़ेकर, पीराजी सरनाइक के नाम इस क्षेत्र में उल्लेखनीय हैं। मेगाफोन कंपनी ने बेगम अख्तर (तब अख्तरी फैजाबादी), रसूलन बाई, गिरिजादेवी, सिरेश्वरी देवी की ठुमकी, टप्पे और दादरे रिकॉर्ड किए।

यहाँ ज्यादातर जानकारी उत्तर भारतीय संगीत की ही संकलित की गई है, लेकिन कर्नाटक संगीत

चोर बन गया मोर

हिन्दुस्तान में संगीत के कॉपी राइट की कोई कानूनी परंपरा नहीं है और कॉपी राइट कानून भी बहुत मजेदार है, जो मामूली से अंतर के कारण किसी भी रचना को मौलिक करार देता है। किसी स्थापित गायक के गीत को वैसे ही आर्केस्ट्रा पर नई आवाज में पुनः रिकॉर्ड करने पर चोर सिर पर बैठकर अपने को मोर कहता है। इस काले धंधे को 'बर्सन रिकॉर्डिंग' कहते हैं। भारत में किसी भी गायक को अपने काम का सही मुआवजा नहीं मिला। रॉयल्टी में लगातार चोरी हुई है। अब ये 'बर्सन रिकॉर्डिंग' तो खुले आम डाका है। इस धंधे की शुरूआत 'सीरीज' कंपनियों ने की है।

के जानकार भी कोयंबटूर वासी, वीणा धनम तथा एम.एस. सुब्बलक्ष्मी की माता षण्मुखवादिवु के एक रिकॉर्ड की चर्चा करते हैं। इस सदी के प्रारंभिक दशक के जिन महान संगीतकारों के रिकॉर्ड बनाए गए उनमें प्रमुख वीणा शेषन, नागस्वरम् विद्वान पोन्नुस्वामी पिल्लई और रामस्वामी पिल्लई, एस.वी. सुब्बइया भगवतार आदि थे। एम.एस. सुब्बलक्ष्मी के कर्नाटक संगीत में सबसे ज्यादा रिकॉर्ड हैं।

ग्रामोफोन कंपनियाँ और कम्पनियाँ

'द ग्रामोफोन कंपनी' के सामने भारत की विविध संगीत संबंधी माँगों को पूरा करने की चुनौती थी, जिसे पूरा करना उसके लिए लगभग असंभव था। इस बीच 'कोलंबिया' और 'ओडियन' नामक दो स्थापित लेबल भी भारत में अपनी जगह बनाने की कोशिश कर रहे थे। 'कोलंबिया' ने १९३० में भारत में अपना कामकाज एस. रोज एन्ड कम्पनी के माध्यम से शुरू किया। वे अपने स्टूडियो में संगीत रिकॉर्ड करते थे और रिकॉर्ड बनवाने के लिए अमेरिका और जर्मनी भेजते थे। 'ओडियन' की शुरूआत कार्ल लिंडस्टार्म नामक एक जर्मन ने शुरू की। १९३८-३९ में कोलंबिया ने ओडियन कंपनी भी अपने हाथ में ले ली, लेकिन वह खुद 'रूबी रिकॉर्ड कंपनी' जो कि बंबई में १९३३ में प्रारंभ की गई थी, के साथ शामिल हो गई। १९४३ में रूबी कंपनी को ग्रामोफोन कंपनी ने ही खरीद लिया और उसे उसके साथ ही 'कोलंबिया' और 'ओडियन' के द्वारा रिकॉर्ड किया गया सारा संग्रह भी मिल गया। इस तरह ग्रामोफोन कंपनी का वर्चस्व भारत में पूरी तरह बना रहा। बंबई के कुछ जौहरियों ने 'ब्रॉडकास्ट रिकॉर्ड' कंपनी नामक एक भारतीय कंपनी भी शुरू की और उसे केसरबाई, मास्टर कृष्णराव, मल्लिकार्जुन मंसूर जैसे चोटी के कलाकारों का सहयोग भी मिला, लेकिन जल्दी ही यह कंपनी भी वित्तीय कठिनाइयों में फँस गई।

फिल्म और रिकॉर्ड में अंतर

चौथे और पाँचवें दशक के कई गीत फिल्म में और रिकॉर्ड में बहुत अलग-अलग पाए गए हैं। एक ही गीत और एक ही धुन है, परंतु वाद्य यंत्रों में अंतर है। उन दिनों गाने दो बार रिकॉर्ड होते थे, पहले फिल्म के लिए और फिर रात में रिकॉर्डिंग कंपनी के लिए। कई बार वादक कम हो जाते थे। कई और किस्म की परेशानियाँ आती थीं। जैसे ही "मैगनेटिक ट्रेक" पर गाने रिकॉर्ड होने लगे, उनकी अनेक प्रतियाँ बनाने की कठिनाई मिट गई और रिकॉर्डिंग दो बार करने की जरूरत ही नहीं रही।

ग्रामोफोन कंपनी ने अपने झंडे तले कुछ छोटी कंपनियों को काम करने का मौका दिया। इनमें प्रमुख थीं हिंदुस्तान रिकॉर्ड कं., मेगाफोन रिकॉर्ड कंपनी तथा सेनोला रिकॉर्ड कंपनी। हिन्दुस्तान ने के.एल. सहगल के रिकॉर्ड जारी कर बहुत सफलता प्राप्त की। मेगाफोन ने अपना ध्यान अख्तरीबाई पर केंद्रित किया। रिकॉर्डिंग ये कंपनियाँ करती थीं और रिकॉर्ड बनाने का काम एचएमवी (ग्रामोफोन कंपनी) करती थी। रिकॉर्ड बेचने का काम फिर वे ही कंपनियाँ करती थीं। इन दोनों कंपनियों की सफलता के कारण 'भारत', 'मनमोहन', विक्टोरिया फोन, फिल्मोफोन, शहंशाही तथा पायोनियर जैसे लेबल भी आए। इनके अलावा भी कुछ छोटी-छोटी कंपनियाँ थीं, मगर वे सब एच.एम.वी. के ही वरद्हस्त से काम करती थीं।

ग्रामोफोन कंपनी के ७० वर्ष के इतिहास में पाँच या छः बार उसके एकाधिकार को समाप्त करने की कोशिशें हुईं। ठेठ १९२० में ही एक गुजराती व्यापारी वल्लभदास ने 'वायोलाफोन' के नाम से जर्मन-सहयोग से एक कंपनी प्रारंभ की और उसे क्षणिक सफलता ही मिल सकी। इसके बाद जापान के तकनीकी सहयोग से एक अन्य व्यापारी ने 'नेशनल ग्रामोफोन रिकॉर्ड कंपनी' प्रारंभ की। उस पर लेबल 'यंग इंडिया' का था तथा उसमें कांग्रेस का तिरंगा झंडा छापा गया था। यह १९३८ के आसपास की बात है, जबकि पहली बार फिल्मी संगीत ने अपना असर डालना शुरू किया था। इसके पूर्व १९३४ में वी. शांताराम ने अपनी फिल्म 'सैरंध्री' के रिकॉर्ड तथा फिल्म की रंगीन कॉपी जर्मनी से बनवाकर मँगाए थे। नेशनल रिकॉर्ड कंपनी के आते ही वी. शांताराम ही एच.एम.वी. परिवार से अलग हो, उसके साथ जुड़े। वे नई कंपनी के निदेशक-मंडल में थे, इसलिए प्रभात फिल्म कंपनी का काम 'यंग इंडिया' को मिलने लगा। देश-प्रेम की भावना के कारण अँगरेजों की कंपनी एचएमवी के बहिष्कार में लोग उत्साह में शरीक हुए। लेकिन ग्रामोफोन कंपनी के पास रिकॉर्डों का जो भंडार था तथा उसके रिकॉर्डों की जो क्वालिटी थी, उसके सामने 'यंग इंडिया वाले' नहीं टिक सके।

१९३० और ४० के बीच फिल्म निर्माण में खूब तरक्की हुई। ऊँचे दर्जे की फिल्मों के निर्माण में महाराष्ट्र तथा बंगाल ने नेतृत्व किया। दोनों की अपनी विशिष्ट शैली थी। कलकत्ता में न्यू थिएटर्स तथा महाराष्ट्र में प्रभात ने क्रमशः तिमिर बरन, आर.सी. बोराल, अनुपम घटक और मास्टर कृष्णराव, दादा चांदेकर, सुधीर फड़के, केशवराव भोले आदि के माध्यम से फिल्म संगीत को समृद्ध बनाया। के.एल. सहगल, पहाड़ी सान्याल, के.सी. डे, कानन बाला, शांता आप्टे, शांता हुबलीकर, शाहू मोड़क, गोविंदराव टेंबे, विष्णुपंत पागनीस के गायन की खुशबू अब तक बरकरार है। ग्रामोफोन कंपनी ने फिल्म- निर्माताओं से उनकी फिल्मों के गीत रिकॉर्ड करने और बेचने के एकाधिकार प्राप्त कर लिए। अभिनेता-गायकों को अपने गीतों को एचएमवी के स्टूडियो में फिर से रिकॉर्ड करवाना पड़ता था। यह प्रथा अगले बीस वर्ष तक चली।

सवाक् फिल्मों के प्रारंभिक दौर में निर्माता ज्यादातर क्षेत्रीय भाषाओं में ही फिल्में बनाते रहे और हिन्दी फिल्में आजमाइश के तौर पर ही बनाई गईं। मगर बाद में जब फिल्मों का अंतरप्रांतीय बाजार विकसित हो गया, तो निर्माताओं को हिन्दी फिल्मों में अधिक फायदा नजर आने लगा और वे अखिल भारतीय अपील रखने वाली फिल्में बनाने लगे। बंबई भारत का हॉलीवुड बन गया और वहाँ बाम्बे टॉकीज, फिल्मिस्तान, प्रकाश, रंजीत, सागर, मिनर्वा जैसी फिल्म कंपनियाँ उभर आईं। यही वह वक्त था, जब देविका रानी, अशोक कुमार, पं. प्रदीप, कांतिलाल, मोतीलाल, ईश्वरलाल, कॉमेडियन चार्ली, लीला चिटनीस, नसीम, सितारा, स्नेह प्रभा तथा माया बैनर्जी के नाम रिकॉर्डों पर मुद्रित हुए। इन्हीं दिनों नूरजहाँ, खुर्शीद, सुरैया, अमीरबाई, वहीदन जैसी गायिकाओं तथा गुलाम हैदर, नौशाद, रफीक गजनवी, खेमचंद प्रकाश तथा सी. रामचंद्र जैसे संगीत निर्देशकों की खोज भी हुई। नई-नई शैलियों के मेल से एक ऐसा संगीत जन्मा, जिसे हम सच्चा राष्ट्रीय एकीकरण कह सकते हैं। पार्श्व गायन की तकनीक के आगमन से मात्र गायक प्रतिभाएँ, जिनकी आवाज ही सुरीली थी, का युग आया। आज लता मंगेशकर, आशा भोंसले, सुमन कल्याणपुर, आरती मुखर्जी, पी. सुशीला, रफी, मन्नाडे, मुकेश, हेमंत, किशोर कुमार, तलत महमूद, येसुदास और वाणी जयराम-रिकॉर्ड कंपनियों की दुनिया में किंवदंतियाँ बन गए हैं।

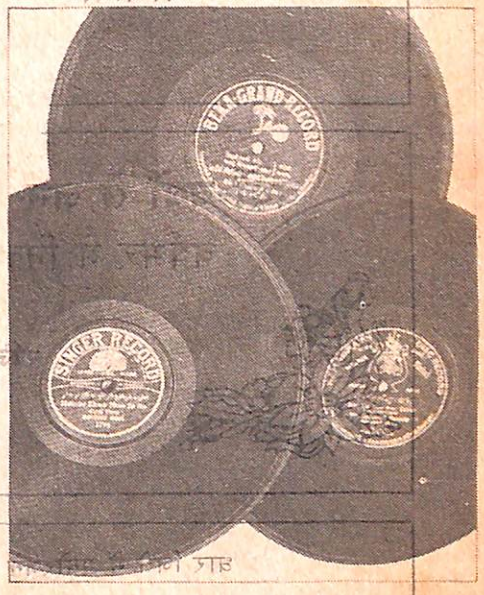

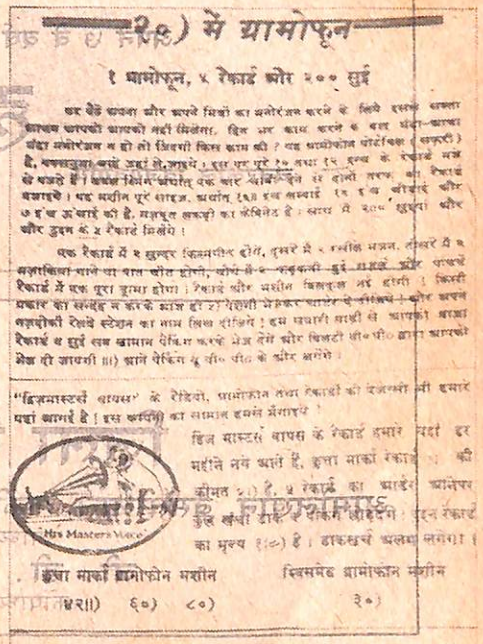

शुभकामनाएँ

* पानी बहुमूल्य है। उसकी एक-एक बूँद का उपयोग कीजिये।
* हरियाली ही जीवन है।
* पेड़ लगाएँ, जीवन बचाएँ।

–एक शुभचिंतक

शुभकामनाएँ

शेफर्स कंस्ट्रक्शन प्रा. लि., भोपाल

टे. नं. ६७०२२

वर्षों-वर्षों से जन-जन की सेवा में, रेलवे से आरक्षित स्लीपर कोच द्वारा

वर्षभर में निकलने वाली ६ विभिन्न यात्राओं का पारिवारिक आनंद

रजि. **पोरवाल यात्रा कं.**

२६, आजाद पथ, देवास, फोन : २४०९
२३९, तिलक पथ, इन्दौर, फोन : ३३२८९

धार जिले में मनोरंजन के क्षेत्र में नया इतिहास बनाने में संलग्न, ध्वनि एवं प्रकाश का सुंदर समन्वय

शेषनाग सिनेमा, धार

अपने ७ वें वर्ष में प्रवेश के अवसर पर समस्त नागरिकों, सिने दर्शकों का

हार्दिक अभिनन्दन

चतरलाल विजयवर्गीय श्रीवल्लभ विजयवर्गीय मोहन कुमार विजयवर्गीय डॉ. शरद विजयवर्गीय

फोन २४८३, फोनः २४९९, फोनः २७९५,

शुभकामनाएँ

जिला बिल्डर्स एसोसिएशन, मंदसौर

आमीलखान, बसंतीलाल, फकीरचंद, देवीलाल, चंद्रशेखर
उपाध्यक्ष

जी. डी. पारख
कोषाध्यक्ष

मन्नालाल नागदा
अध्यक्ष,

राजेंद्र कियावत
सचिव

वो सुबह कभी तो आएगी...

● राजू भारतन

आज तक की फिल्मों में संगीत की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ दस फिल्मों को चुनने का लक्ष्य आपको दिया जाए, तो कौनसी फिल्मों को चुनेंगे? जहाँ तक मेरा सवाल है, मैंने यह जटिल प्रश्न हल कर लिया है। ऐसी श्रेष्ठ संगीत प्रधान फिल्मों के बारे में सोचते समय मैंने बाबुल से लेकर कभी-कभी तक के चौथाई शतक का बंधन स्वयं पर लगा लिया। सच तो यह है कि बंधन लगाया कहना भी गलत होगा। मेरे विचार से १९५० से ७५ (बाबुल से कभी-कभी) यह हिन्दी फिल्म संगीत का स्वर्ण युग था। लता मंगेशकर और मोहम्मद रफी ने नए शिखर का आरोहण इस युग में किया। नौशाद, सी. रामचंद्र, दादा बर्मन, शंकर-जयकिशन, खय्याम, सलिल चौधरी, हेमंत कुमार जैसे संगीतकारों ने अपने अनोखे सुरों से रसिकों के कान तृप्त किए। इसके बाद संगीत का युग समाप्त हुआ। म्युजिकल हिट कहलाने वाली एक भी फिल्म बाद में नहीं बनी। यहाँ तक कि राजकपूर की 'राम तेरी गंगा मैली' भी नहीं।

मेरे विचार में 'राम तेरी गंगा मैली' में रवीन्द्र जैन का दिया हुआ संगीत राजकपूर के संग्रहालय के शंकर-जयकिशन की पुरानी टेप की सहीं-सही नकल थी। कर्ज, हीरो, गीत गाता चल, खेल खेल में से मिस्टर इंडिया तक की फिल्मों का मैं विचार भी नहीं कर सकता। मैं उस पीढ़ी का प्रतिनिधि हूँ जिसने संगीत की समृद्धि का आकंठ पान किया और अनुभव लिया। उस जमाने में गानों के शब्दों में भाव थे, अर्थ था और चित्र सृष्टि पर सुरों का साम्राज्य था। उस समय के संगीत की तुलना में आज का तथाकथित लोकप्रिय संगीत एकदम पंगु लगता है। १९७५ की कभी-कभी, मेरे मतानुसार अंतिम म्युजिकल हिट फिल्म थी। इसके बाद फिल्मों में संगीत निर्देशकों के बजाए स्टंट निर्देशक अधिक प्रभावशाली होते रहे। असली एस.जे. (शंकर-जयकिशन) के स्थान पर नकली एस.जे. (सलीम-जावेद) आ गए। अमिताभ नाम के नायक का उदय हुआ। उसकी 'एंग्री यंग मैन' की छवि के प्रवाह में फिल्मों से संगीत की कोमलता खत्म हो गई। चुनी हुई दस संगीतमय फिल्में मेरी अपनी व्यक्तिगत पसंद है। फिल्म का नाम आते ही उसके गीत, संगीत की पूरी झलक नजरों के सामने उभर उठे, यह तथ्य मैंने निकाला है।

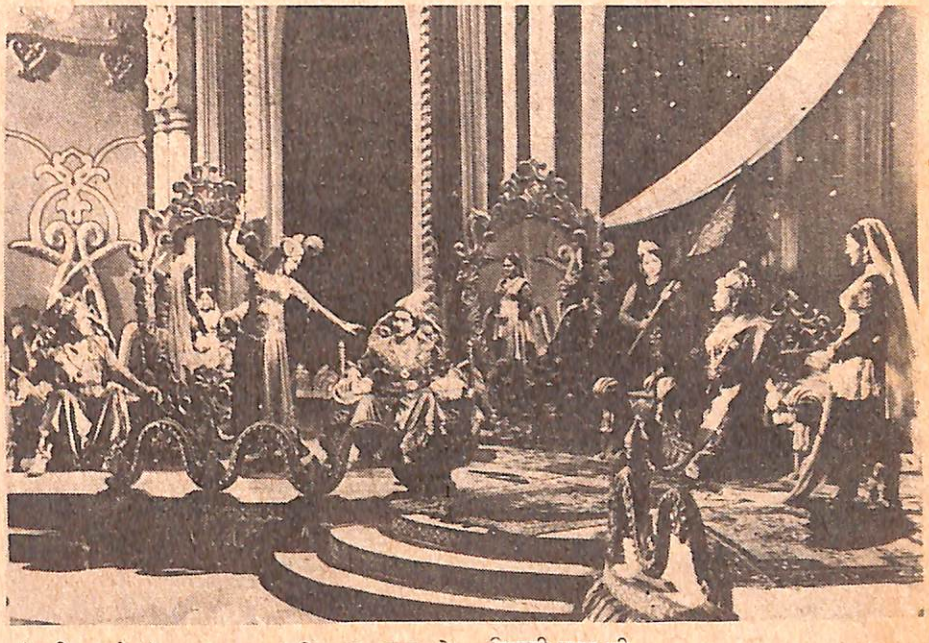

जिन्दगी प्यार की
दो चार घड़ी होती है: अनारकली

अनारकली

'उसे अलविदा... अलविदा... कहे आज ३५ साल गुजर गए लेकिन अभी भी बीना राय हमारी आँखों के सामने आती हैं तो अनारकली बनकर ही। १९५३ में बनी इस फिल्म का असर इतना जबर्दस्त था कि प्रेमनाथ परदे के बाहर की अपनी अनारकली (मधुबाला) को भूलकर परदे की इस अनारकली के प्यार में बँध गया और बाद में दोनों ने शादी की। बीना राय-प्रेमनाथ ने उस समय जो आँधी पैदा की थी, वह अब तक मुझे याद है। भारतीय फिल्म प्रतिनिधिमंडल के साथ दोनों अमेरिका गए थे। हनीमून के बहाने और वहाँ अमेरिकी लोगों के सामने प्रेमनाथ ने बीना राय का चुंबन लिया। कैमरों की रोशनी चमकी और यह दृश्य कैद कर लिया गया। भारत की पत्र-पत्रिकाओं में जब वे तस्वीरें छपीं तो तहलका मच गया। 'भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने गए लोगों ने क्या विदेशियों के सामने इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए?' हरेक व्यक्ति ने यह प्रश्न उछाला। पति-पत्नी द्वारा एक दूसरे का स्पर्श भी जहाँ सार्वजनिक स्थल पर गुनाह माना जाता था, वहाँ प्रेमनाथ ने अपनी नववधू के होठों का चुंबन हॉलीवुड स्टाइल में सबके बीच लिया। तस्वीरें उतरवाईं। उसके बाद दोनों ने घोषित कर दिया कि भविष्य में वे फिल्मों में एक साथ भूमिका करेंगे अन्यथा नहीं। बीना राय अनारकली की ख्याति पर इतनी आसक्त हुई कि प्रेमनाथ के साथ बनाए गए शगुफा में सी. रामचंद्र का ही संगीत होना चाहिए, ऐसी जिद उसने की। दुर्भाग्य से शगुफा पिट गई। अनारकली में बीना राय पर फिल्माए गए 'ये जिंदगी उसी की है', 'मोहब्बत में ऐसे कदम डगमगाए', जाग दर्दे इश्क जाग' और 'मुझसे मत पूछ' ये चार गाने कभी भी नहीं भुलाए जा सकते। १९५३ में फिल्म फेअर अवॉर्ड की शुरूआत हुई और सी. रामचंद्र के इन चार गानों का क्रम सर्वश्रेष्ठ गीतों में तीसरा, चौथा, पाँचवाँ और छठा रहा। फिल्म फेअर अवॉर्ड नौशाद को मिला बैजू बावरा के 'तू गंगा की मौज मैं जमना की धारा' इस गाने पर। दूसरे स्थान पर भी बैजू बावरा का ही 'ओ दुनिया के रखवाले'

यह गीत था। इसके आगे के सभी क्रम सी. रामचंद्र के अनारकली के थे।

लंदन के एक अखबार ने लिखा था कि 'दुआ कर गम-ए-दिल', 'ओ आसमाँ वाले' और 'मुहब्बत ऐसी धड़कन है' इन तीन गीतों को लता मंगेशकर की मखमली मुलायम आवाज का जो स्पर्श मिला, उससे बीना राय को परदे पर देखने में एक स्वर्गीय अनुभूति होती है। सी. रामचंद्र को भी 'मोहब्बत ऐसी धड़कन है' सर्वाधिक प्रिय लगता था। हेमंत कुमार के 'जाग दर्दे इश्क जाग' से सचमुच इश्क जागने का आभास होता था। 'जिंदगी प्यार की दो-चार घड़ी होती है' और 'ऐ बाद ए सबा आहिस्ता चल' इस गीत ने भी वही हालात पैदा किए। गीता रॉय का गाया 'आ जाने वफा' और लता के 'आजा अब तो आजा' ने बीना राय पर क्या प्रभाव छोड़ा होगा। गीता राय को मैं दोयम नहीं कह रहा हूँ, मगर लता की जादू भरी आवाज की मोहिनी कुछ और ही थी। हेमंत कुमार ने तो हमें चकित किया। उनका एक भी गाना प्रदीप कुमार के मुँह से नहीं था।

नागिन

यहाँ सीदा-सादा प्रदीप कुमार एक नागिन के प्रेमपाश में बँधता है और वैजयंती माला के शोध में एक अन्य दुनिया में प्रवेश कर जाता है। परिणाम क्या होता है। इस धरती के न होकर अन्य दुनिया से लाए गए हो ऐसे लगते हैं, एक से बढ़कर एक गाने नागिन के। 'सुन रसिया, सुन रसिया काहे को जलाए जिया आ जा', 'मेरा बदरी में छुप गया चाँद रे', 'तेरी याद में जलकर देख लिया' और इन सब में कलश के रूप में 'ऊँची-ऊँची दुनिया की दीवारें सैंया तोड़ के'। वैजयंतीमाला के नृत्यों ने रसिकों के हृदय झकझोर डाले थे। 'मेरा मन डोले-मेरा तन डोले', 'मेरा दिल ये पुकारे आ जा', 'जादूगर सैंया' और सुन री सखी' इन गानों से लता ने वैजयंती की बीन को अच्छा साथ दिया था। हेमंत कुमार की आवाज प्रदीप कुमार के लिए सही बैठी थी। 'ओ जिंदगी के देने वाले', 'काशी देखी, मथुरे देखी', 'याद रखना प्यार की निशानी' और 'छोड़ दे सजनिया छोड़ दे पतंग मेरी' ये गाने प्रमाण हैं। अनारकली के संगीत से सी. रामचंद्र ने अपने जीवन की सर्वोच्च ऊँचाई को छुआ, परंतु नागिन के बाद हेमंत कुमार वैसा जादू फिर नहीं कर पाए। अनारकली और नागिन ये दोनों फ़िल्में म्युजिकल हिट थीं। यह अमान्य नहीं किया जा सकता। अनारकली और नागिन में से कौनसा संगीत अधिक अच्छा था। इसका जवाब अनारकली है परंतु नागिन के पक्षधर भी बहुत होंगे। फिर भी दोनों में से एक को चुनना मुश्किल ही है। 'मोहब्बत ऐसी धड़कन है' और 'मेरा दिल ये पुकारे आ ज़ा' इन गानों में से श्रेष्ठ को चुनना असंभव सा है।

मधुमती

बीना राय ने अनारकली बनकर हृदय में स्थान पाया। उसे दूसरी अनारकली (मधुबाला) ने मुगल-ए-आजम में भुलाया और महल (१९४९) से मधुबाला को सुनहरी दुनिया में जो स्थान मिला था, उसे हटाने के लिए आना पड़ा मधुमती को- वैजयंतीमाला के रूप में (१९५७)। दोनों फिल्में रहस्य कथाएँ थीं। अभिनेत्री के आसपास घूमता हुआ कथानक। मधुबाला और वैजयंती की तुलना। वैजयंती माला के आ जा रे परदेसी की पुकार पर साथ देने वाले दिलीप कुमार ने मधुबाला के साथ प्रेम विवाह के लिए असफल परीक्षा दी थी। आशा भोसले ने एक बार कहा था कि 'आ जा रे परदेसी' गाने के लिए वे सब कुछ करने को तैयार होती। १९७७ में सलिल चौधरी नाइट में आशा ने यह गीत गाया भी था, मगर पहाड़ों की वादियों में से वैजयंती ने लता की आवाज में जो पुकार की थी, उसकी बराबरी आशा नही कर पाई। खेमचंद प्रकाश के संगीत ने महल का रहस्यमय पर्यावरण दिया, परंतु मधुमती में सलिल चौधरी ने कहीं भी कमी महसूस नहीं होने दी। १९४९ में महल के आएगा आने वाला ने लता को बड़ा ब्रेक दिया यह सच है। लेकिन लता की हान्टिंग आवाज की याद 'आजा रे परदेसी' के रूप में ही आती है। सलिल ने लता के लिए 'जुल्मी संग आँख लड़ी' और 'घड़ी-घड़ी मोरा दिल धड़के' ये गाने खेमचंद के 'दिल ने फिर याद किया' और 'मुश्किल है, बहुत मुश्किल' की तुलना में कहीं भी कम नहीं थे। प्रश्न यह है कि महल के 'आएगा आने वाला' ने जो असर डाला, उतना ही 'आ ज़ा रे परदेसी' ने भी मधुमती में छोड़ा या नहीं? इसका उत्तर आप मधुबाला के दीवाने हैं या वैजयंतीमाला के, इस पर निर्भर है। यदि आप लता की सुरीली आवाज के पीछे पागल हैं तो आपके लिए अन्य पर्याय है ही नहीं।

मुगल-ए-आजम

मधुबाला के सौंदर्य का जवाब नहीं था। 'मोहे पनघट पे नंदलाल' इस गाने के चित्रांकन के समय जुल्फिकार अली भुट्टो का 'मुगल-ए-आजम' के सेट पर बार-बार उपस्थित रहने का रहस्य ही मधुबाला का सौंदर्य था। बाबूराव पटेल ने अपनी फिल्म इंडिया पत्रिका में मधुबाला को 'वीनस ऑफ द इंडियन स्क्रीन' कहा था। ध्यान रहे,

प्यार किया तो डरना क्या: मुगले आजम

मधुबाला को इस पिक्चर में बीना राय की अनारकली वाली इमेज को भुलाना था। १९४४ में के. आसिफ नर्गिस को अनारकली बनाना चाहते थे। संगीतकार होते अनिल विश्वास। निर्माता शिराज अली हकीम विभाजन के बाद पाकिस्तान चले गए और फिल्म नहीं बनी। १९५२ में के. आसिफ ने नूतन और संगीत में नौशाद को लेकर अनारकली की शुरूआत की। अनारकली के रूप में नूतन को स्वयं के स्थान पर नर्गिस अधिक पसंद आ रही थी। इस बीच कमाल अमरोही ने भी अनारकली (मीना कुमारी) की घोषणा कर दी। दोनों के बीच स्पर्धा चल रही थी, तब ही फिल्मिस्तान के मालिक एस. मुखर्जी ने बीना राय को लेकर अपनी अनारकली बना डाली। आज हम केवल यही कह सकते हैं कि बीना राय के अलविदा... अलविदा... कहते हुए स्थापित किए प्रभाव को धुंधला कर पाना सिर्फ मधुबाला के लिए ही संभव था। पुनः एक बार अनारकली मधुबाला के रूप में थी। इसीलिए उस

सुहाना सफर और ये मौसम हसीं: मधुमती

पर गौर किया गया। 'बेकस पे करम कीजिए सरकार-ए-मदीना', मोहब्बत की झूठी कहानी पे रोए', 'प्यार किया तो डरना क्या', 'हमें काश तुमसे मोहब्बत न होती', 'ऐ इश्क ये सब दुनिया वाले बेकार की बातें करते हैं', 'खुदा निगेहबान हो तुम्हारा' ये छह गीत नौशाद ने लता की आवाज में तैयार किए। तब उन्हें सुनकर और देखकर लगा कि यह केवल मधुबाला के लिए ही हैं। कहीं जाकर यह आभास होता है कि अनारकली में सी. रामचंद्र का दिया हुआ संगीत नौशाद के मुगल-ए-आजम की तुलना में बढ़कर था। नौशाद का 'ये दिल की लगी क्या कम होगी' और 'तेरी महफिल में किस्मत आजमाकर' वैसे ही 'शुभ दिन आयो' और 'प्रेम जोगन बनके' ये गीत उनकी खासियत रखते हैं। इसमें कोई दो मत नहीं किंतु सी. रामचंद्र ने पहल की थी और उसी को नौशाद ने आगे बढ़ाया; ऐसा लगता है। जहाँ तक फिल्मी तकनीक का सवाल है, मुगल-ए-आजम, अनारकली से कई गुना श्रेष्ठ थी। सच तो यह है कि दोनों में आपसी तुलना करना ही अनुचित है।

मेरा नाम राजू: जिस देश में गंगा बहती है।

जिस देश में गंगा बहती है

नर्गिस-राजकपूर की स्फूर्ति देवी थी। १९५६ तक आर.के. की फिल्मों में राज और नर्गिस की जोड़ी इतनी अटूट हो चुका थी कि इन दोनों के बगैर आर.के. फिल्म की कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। आग, बरसात, आवारा, आह और श्री ४२०। दोनों का रोमांस और फिल्मी खटपट परदे पर देखना प्रेक्षकों को भाने लगा था। जागते रहो (१९५६) पिट गई क्योंकि इसमें नर्गिस राजकपूर की प्रेमिका नहीं थी। अंतिम सीन में जागो मोहन प्यारे कहते हुए पवित्रता की मूर्ति बनकर नर्गिस प्यासे और थके हारे राजकपूर को पानी पिलाती है। लोगों की प्रतिक्रिया थी कि राज की प्यास सिर्फ नर्गिस ही बुझा सकती है मगर परदे पर इस ढंग से देखना हमें जँचा नहीं। इसी पृष्ठभूमि पर आर.के. की फिल्म जिस देश में गंगा बहती है का चुनाव यहाँ किया है। नर्गिस के बगैर फिल्म बनाने की एक कठिन चुनौती राजकपूर के सामने थी और पद्मिनी को लेकर राज ने सफलतापूर्वक चुनौती को स्वीकार किया। इसीलिए जिस देश में गंगा बहती है का उल्लेख करना उचित होगा। नर्गिस के बगैर यह राजकपूर द्वारा निर्मित पहली प्रेमकथा थी। १४ फिल्मों की राज-नर्गिस की जोड़ी खत्म हो चुकी थी। दूसरी नायिका के साथ दर्शक अपनी जोड़ी को कैसे स्वीकारेंगे, यह शंका राज को रही होगी। परंतु १९६० में जिस देश में गंगा बहती है प्रदर्शित हुई और सफल रही तो सिद्ध हो गया कि राजकपूर की पकड़ दर्शकों पर ढीली नहीं हुई है। शोमेन-शिप समाप्त नहीं हुई, यह सिद्ध हुआ। किंतु राम तेरी गंगा मैली देखने के बाद लगा कि यह ग्रेट शोमेन है या अश्लीलता की ओर मुड़ता हुआ निर्देशक। जिस देश में गंगा बहती में पद्मिनी का शारीरिक सौंदर्य और राम तेरी गंगा मैली में मंदाकिनी को कैमरे में कैद करने का प्रयत्न राज ने किया है। 'हो मैंने प्यार किया' कहने वाली पद्मिनी 'आँखों का रंग हो गया गुलाबी' तक पहुँचती है तब उसकी सेक्स अपील राजकपूर हमें दिखाते हैं। फिर भी उस पद्मिनी की ओर देखकर वीभत्सता नहीं झलकती। किंतु मंदाकिनी में वह झलक मौजूद है। 'हो मैंने प्यार किया' या 'क्या हुआ ये मुझे क्या हुआ' इन गानों के झटके 'ओ बसंती पवन पागल' से भुला दिए जाते हैं। फिल्म में सिर्फ पद्मिनी नहीं थी। राज पूरी फिल्म में छाए हुए थे। 'होठों पे सच्चाई' और 'मेरा नाम राजू' ने काफी असर पैदा किया था। डाकुओं के पुनर्वास का संदेश देते हुए 'है आग हमारे सीने में', 'आ अब लौट चलें' और 'प्यार करले नहीं तो फाँसी चढ़ जाएगा' इन गानों की वजह से फिल्म कहीं भी कमजोर नहीं हुई। उस वक्त पद्मिनी और अब मंदाकिनी को पेश करने में जो फर्क है, वह १९६० का राज और १९८५ का राजकपूर इतना ही है। 'सुन सायबा सुन' जैसे गीत से राजकपूर का संगीत प्रभुत्व अपवाद स्वरूप ही दिखता है।

मेरे मेहबूब

ग्लैमर का आवरण और संवेदनशील चेहरे के मिश्रण वाली नायिका थी साधना शिवदासानी। १९६० में बिमलराय जैसे ख्यात निदेशक द्वारा परख फिल्म के लिए उसका चयन किया गया था। इसी में साधना की सारी खूबियाँ आ गईं। साधना ने अपने कल्प जीवन की ऊँचाइयों को छुआ मेरे मेहबूब (१९६३) से। जी. सिंग की रंगीन फोटोग्राफी में साधना की खूबसूरती पर निखार आया। शकील बदायुनी के गीत और नौशाद का संगीत मिलकर सुरों की जो बरसात हुई, उससे कान तृप्त होना ही थे। मेरे मेहबूब ने कान और आँखों को अच्छी दावत दी थी। रफी की सुरीली और स्वप्न जैसी आवाज में राजेन्द्र कुमार 'ऐ हुस्न जरा जाग तुझे इश्क जगाए' और 'तुमसे इजहार-ए-हाल कर बैठे' ऐसा साधना से कहते हैं, तब सचमुच वह स्वर्ग परी लगती है। 'ऐ हुस्न जरा जाग' में शब्द-ए-हुस्ना जरा जाग ऐसे सुनाई दिए थे। (फिल्म में साधना का नाम हुस्ना था।) 'याद में तेरी जाग-जाग के हम' सुनते समय आँखें मूँद लेने को जी चाहता है'। साधना और राजेन्द्र कुमार ने लता और रफी की आवाज में 'मेरे मेहबूब तुझे मेरी मुहब्बत की कसम' गाया, तब लगा कि यह गीत साधना और राजेन्द्र के अलावा अन्य कोई नहीं गा सकता था। 'तेरे प्यार में दिलदार' सिर्फ साधना के लिए ही रचा गया था। मेरे मेहबूब की एक विशेषता यह भी थी कि नौशाद का नाम दिलीप कुमार के साथ जुड़ा था। मुगल-ए-आजम, कोहिनूर, गंगा-जमुना, लीडर, दिल दिया दर्द लिया, राम और श्याम इन फिल्मों से ऐसी मान्यता बन गई थी कि नौशाद की कला दिलीप के साथ ही उभरती है। दिलीप के बगैर नौशाद ने मेरे मेहबूब में कमाल किया था। मेरे मेहबूब से मिले लाभ के सम्मुख दिलीप के लीडर, दिल दिया दर्द लिया, आदमी और संघर्ष में नौशाद को फ्लॉप किया था।

गाइड

फिल्मी टिप्पणीकार और समीक्षकों ने एक स्वर में गाइड (१९६५) को गोल्डी (विजय) आनंद और सचिन दादा बर्मन की सर्वोत्तम कृति कहा था। गोल्डी कहा करते थे कि सचिन दा ही एकमात्र संगीतकार थे, अन्य तो संगीत के जुगाड़ू थे। गोल्डी की यह टिप्पणी विवादग्रस्त थी। गाइड में मिलने वाले दृश्य और श्रव्य अनुभव अन्य किसी भी फिल्म में नहीं मिलता। अपना गीत परदे पर कैसा चित्रित किया जाना चाहिए, यह बर्मन दा अच्छी तरह जानते थे। उनकी नजरें परिपक्व थीं। 'पिया तोसे नैना लागे रे', 'सैंया बेइमान', 'क्या से क्या हो गया', 'दिन ढल जाए', 'तेरे मेरे सपने' इनमें से किसी भी गीत की दृश्यावली को याद करो। गाने के साथ दृश्य भी आँखों में तैर जाते हैं। बर्मन दा और गोल्डी के सुर जैसे आपस में जुड़े, वैसे अन्य किसी के नहीं जुड़ पाए। नौशाद ने कारदार के दास्तान

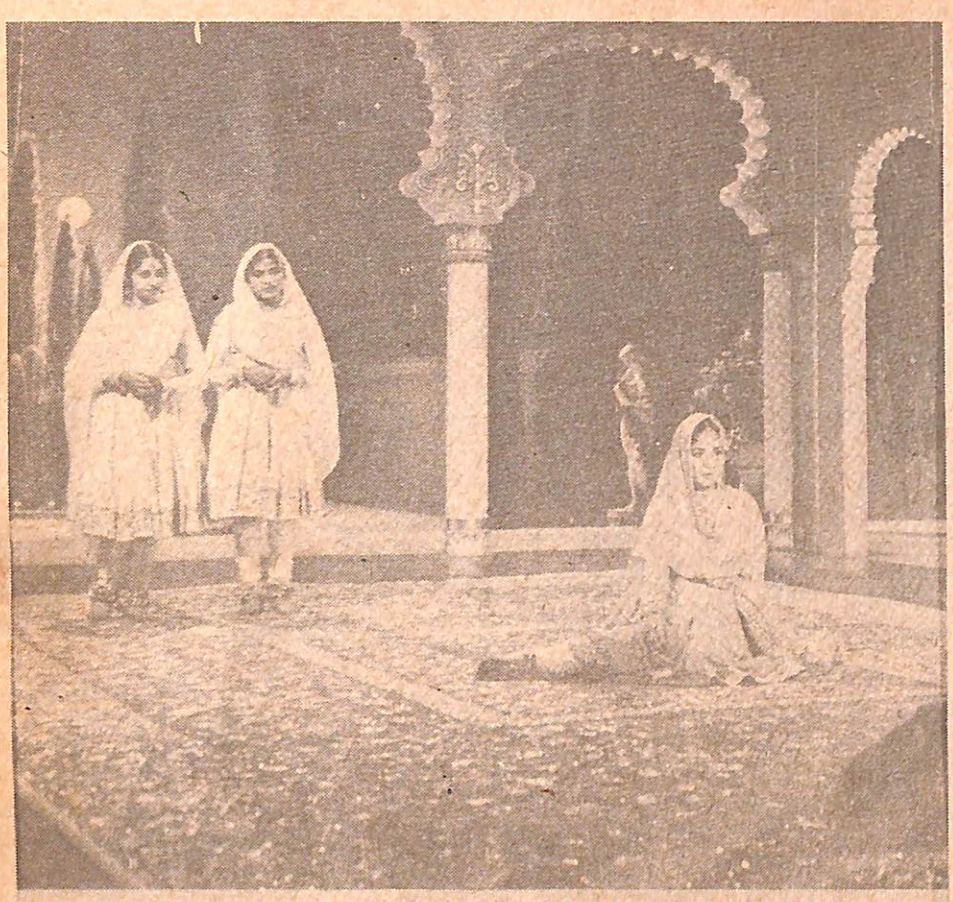

इन्ही लोगो ने ले लीना दुपट्टा मेरा : पाकीजा

में नृत्य संगीत का नजराना पेश किया था, परंतु गाइड के सर्प नृत्य समान दास्तान के नृत्य याददाश्त में नहीं रह पाए। गीतों का चित्रीकरण यह फिल्मों का एक हिस्सा नहीं होता, यह टिप्पणी करने वालों को गाइड देखने के बाद अपनी टिप्पणी पर पुनर्विचार करना पड़ा होगा। गाइड की एल.पी. बाजार में आई तब अधिक बिक्री नहीं हुई और सचिन दा अस्वस्थ हो गए। सर्वोत्तम संगीत से सँवारे गए गीतों का यह मोल सोचनीय था। चित्र प्रदर्शित होने से पहले गीतों की यह स्थिति होने के पीछे कारण यह था कि गाइड का प्रत्येक गीत केवल सुनने के लिए नहीं देखने के लिए भी था। एक बार दृश्य रूप में देखे गए गीत बाद में लोगों ने अपने संग्रह में रख लिए। गाइड देखने के बाद लगा कि गोल्डी और सचिन दा सचमुच एक दूसरे के लिए ही थे। यह बात गाइड देखने के बाद हर किसी के मन में समा गई होगी। बिजली की चपलता से नाचने वाली वहीदा के लिए साठ साल के दादा बर्मन ने 'मोसे छल किए जाए' जैसा जवानी भरा गीत दिया, इसी में सारा यश समाया हुआ है।

मीनाकुमारी के गीत

रणजीत मूवीटोन की सामाजिक फिल्म 'पिया घर आजा' (१९४७) के आठ गीत मीनाकुमारी ने गाए थे। फिल्म में कुल १० गीत थे, जिनमें दो सरोज आगा तथा मोहनतारा तलपदे के गाए हैं। इस फिल्म का संगीत बुलो सी. रानी ने तैयार किया था। मीनाकुमारी ने इस फिल्म में अभिनय भी किया था और उनके नायक करण दीवान थे। फिल्म के दो गीत मीना व करण की आवाज में हैं। इसके अलावा मीनाकुमारी ने कुछ अन्य फिल्मों में भी अपने गाने स्वयं गाए। जैसे बिछड़ गए बालम, दुनिया एक सराय।

पाकीज़ा

कमाल अमरोही की फिल्म पाकीज़ा १९७२ की जनवरी में रूपहले परदे पर आई, तब तक मीना कुमारी का जिस्म ढलान पर पहुँच गया था। वास्तव में पाकीज़ा १९७१ के अंत में प्रदर्शित होना थी किंतु भारत-पाकिस्तान लड़ाई शुरू हुई और पाकीज़ा आठ सप्ताह के लिए रुक गई। पाकीज़ा का प्रदर्शन इस तरह मीना कुमारी की मौत से आठ सप्ताह नजदीक पहुँचा था। जब बॉक्स ऑफिस पर पाकीज़ा अपने अस्तित्व के लिए जूझ रही थी, तब मीना कुमारी ने अंतिम साँस लेकर अपने उम्र के बदले फिल्म को लंबी उम्र प्रदान की। याद रहे, पाकीज़ा की मीना कुमारी की शोकांतिका की साम्राज्ञी के रूप में बनी प्रतिमा उसकी मृत्यु के बाद यानी ३१ मार्च १९७२ को अस्तित्व में आई। मीना कुमारी की मौत ने पाकीज़ा को जीवन और यश दिया। इस बात को कमाल अमरोही ने कभी स्वीकार ही नहीं किया। रजिया सुल्तान की विफलता के बाद पाकीज़ा को मीना कुमारी की मृत्यु ने जीवन दान दिया, इस बात की पुष्टि हो जाती है। मीना कुमारी को इस फिल्म में अमर बनाने में संगीतकार गुलाम मोहम्मद ने सहयोग किया। 'इन्हीं लोगों ने', 'चलते-चलते' और 'मौसम है आशिकाना' इन तीन गानों ने पाकीज़ा मीनाकुमारी को आभामंडल दिया। रिकॉर्ड प गुलाम मोहम्मद का नाम है किंतु नौशाद के अनुसार गीतों की बंदिश उन्होंने गुलाम मोहम्मद के लिए की थी। किंतु 'चलो दिलदार चलो' 'आज इम अपनी' और 'थाडे रहियो' यह राजस्थानी मांड की बंदिश सौ फीसदी गुलाम मोहम्मद का ही सृजन था। नौशाद ने पाकीज़ा को पार्श्व संगीत दिया था। रेल की सीटी याद कीजिए। उसकी कर्कशता की पृष्ठभूमि में राजकुमार द्वारा बोला हुआ 'आपके पाँव देखे' कितना मुलायम लगा था। इस एक वाक्य से मीनाकुमारी और राजकुमार की मोहब्बत की रेशमी डोर प्रेक्षकों तक पहुँचाई थी। पाकीज़ा का संपूर्ण संगीत जवान और बूढ़ों को भी पसंद आया था। सर्वमान्यता वाला संगीत अब क्यों नहीं रचा जाता, क्योंकि अब बप्पी लाहिड़ी जैसे संगीतकार अखाड़े में आ गए हैं।

बॉबी

सन् १९७२-७३ में राजकपूर ने बॉबी बनाई। मेरा नाम जोकर में ५६ लाख का घाटा हुआ था। जोकर से मनोरंजन हो सकता है, इसे दर्शकों ने नकारा था। कल आज और कल ने तो भोले नायक का अस्तित्व ही उजाड़ दिया। राजकपूर ने

और चाबी खो जाए : डिम्पल-ऋषिकपूर फिल्म बॉबी

नई योजना बनाई। आर.के. के बैनर से केवल राजकपूर ही नहीं, शंकर भी दूर कर दिए गए। लक्ष्मी-प्यारे ने उनका स्थान लिया और उनके गानों को परदे पर उतारा ऋषि कपूर और डिम्पल कापड़िया ने। डिम्पल की उम्र में १४ वर्ष और जुड़ चुके हैं, परंतु उसकी बॉबी की इमेज कोई नहीं मिटा सका है। 'हम तुम एक कमरे में बंद हों' 'झूठ बोले कौआ काटे' और 'मुझे कुछ कहना है' इन गीतों से दर्शकों ने ऋषि और डिम्पल के साथ कुछ नाजुक क्षणों का आस्वाद लिया है। 'मैं शायर तो नहीं' और 'अँखियों को रहने दो' इन गीतों ने विरोधाभास दिखाया तो ना

गीत गाया राजकपूर ने

राजकपूर ने अपना प्लेबैक पहली बार खुद दिया था फिल्म 'दिल की रानी' में। १९४७ में बनी इस फिल्म के संगीत निर्देशक थे सचिन दा। राजकपूर के साथ फिल्म की नायिका मधुबाला थी। राजकपूर के गाए इस गीत का मुखड़ा है 'ओ दुनिया के रखवाले बता कहाँ गया चितचोर।' इसके अलावा राजकपूर ने 'जेलयात्रा' में भी एक गीत गाया है।

'माँगू सोना चाँदी' और 'बेशक मंदिर मस्जिद तोड़ो' सुनने के बाद लगा कि लक्ष्मी-प्यारे ने राजकपूर को एस.जे. स्टाइल के गीत देने का प्रयत्न किया है। यह संगीत कमसीन प्यार का था। इस प्यार के रास्ते में आने वाली बाधाओं को कैसे पार किया जाए, यह दिखाने वाले निर्देशक का यह यश था। बॉबी सिर्फ युवाओं की ही नहीं; सभी की फिल्म थी। स्वविवेक से इतना कोमल चित्र बनाना राजकपूर के लिए कैसे संभव हुआ, क्योंकि उस वक्त गंगा इतनी मैली नहीं थी।

कभी-कभी

'बॉबी' के समान **'कभी-कभी'** की गणना भी पुरानी फिल्मों में नहीं की जाती किंतु संगीत प्रधान दस फिल्मों की इस अंतिम कड़ी में मैंने कभी-कभी को चुना। इसका एकमात्र कारण है— अमिताभ का दूसरा स्वरूप इसमें स्पष्ट होता है। संगीत निर्देशक ने यहाँ दूसरा अमिताभ ढाला था। आगे चलकर इसी अमिताभ को स्टंट निर्देशकों ने छीन लिया। साहिर और खय्याम तथा लता और मुकेश, राखी और अमिताभ। कभी-कभी की ये जोड़ियाँ कितनी अप्रतिम थीं। किसी भी अच्छे संगीत की जड़ें श्रेष्ठ कविता में होती हैं। अमिताभ की दर्दभरी आवाज और मुकेश की आवाज में उनके शब्दों को भुलाना कठिन है। दुर्भाग्य से अमिताभ ने सिर्फ 'पल दो पल का शायर' बनना कबूल किया और उनकी अभिनय क्षमता स्टंटबाजी में समा गई। आलाप पिट गई और अमिताभ कभी-कभी जैसी रोमांटिक फिल्मों को भूल गए। सागर सरहदी के संवादों को अमिताभ की बेजोड़ आवाज ने और भी वजनदार बनाया। संवाद ऐसे थे कि गाने में भी साहिर के शब्द पहले और खय्याम का संगीत बाद में महसूस होता था। १८ वर्ष पूर्व साहिर और खय्याम ने 'फिर सुबह होगी' में गीत-संगीत दिया था। ऐसे ही गीतों की अपेक्षा कभी-कभी से की थी। उन्होंने 'मेरे घर आई एक नन्हीं परी' जैसे गीत देकर अपेक्षापूर्ति की। साहिर अब इस दुनिया में नहीं रहे परंतु खय्याम आज भी मारधाड़ वाली फिल्मों में अपनी कोमलता को संभालने की चेष्टा में रत हैं। 'कल और आएँगे नगमों की खिलती कलियाँ चुनने वाले।'

'मुझसे बेहतर कहने वाले तुमसे बेहतर सुनने वाले।'

ऐसा कहते हुए एकाकी प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसा काव्यमय, संगीतमय जमाना क्या कल कभी आएगा? हम सिर्फ उम्मीद कर सकते हैं।

'वो सुबह कभी तो आएगी...!'

'वो सुबह कभी तो आएगी...!'

*** लेखक राजू भारतन् इलस्ट्रेटेड वीकली पत्रिका में सहायक सम्पादक हैं। फिल्म संगीत और क्रिकेट पर वे साधिकार लिखते हैं। यह लेख मराठी पत्रिका चंदेरी से साभार प्रस्तुत किया है विद्यानंद बाकरे ने।**

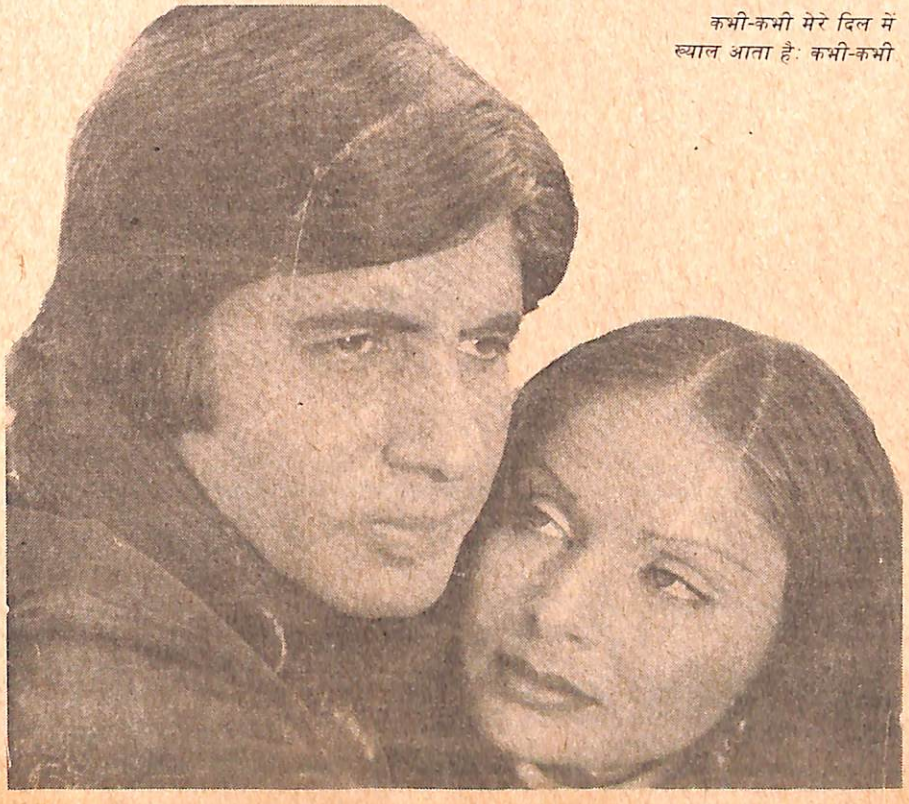

कभी-कभी मेरे दिल में
ख्याल आता है: कभी-कभी

◆◆◆

मीरा के रिकॉर्ड

मीरा के भजनों को लगभग हर प्रसिद्ध गायक-गायिकाओं ने गाया है। इस पर फिल्में भी अनेक बनीं। 'मीरा' नाम से १९४७ में मद्रास के चंद्रप्रभा सिने टोन ने एक फिल्म बनाई थी। इसके संगीतकार थे एस.वी. वेंकटरमण और प्रसिद्ध गायिका एम.एस. सुब्बलक्ष्मी ने मीरा के भजनों को स्वर दिया था। फिल्म में सुब्बलक्ष्मी द्वारा गाए मीरा के १८ भजन थे। एचएमवी को इसके लिए स्पेशल १२ इंच व्यास वाला रिकॉर्ड जारी करना पड़ा। तब ७८ आरपीएम के रिकॉर्डों का व्यास आमतौर पर १० इंच होता था। पं. नरेन्द्र शर्मा ने इस फिल्म के लिए मीरा के भजनों का गीतों में रूपांतरण किया था। इसी वर्ष में 'मीराबाई' का निर्माण भी हुआ। इसे शालीमार पिक्चर्स पूना ने बनाया था। इस फिल्म के सभी १३ गीत कानपुर की सितारा ने गाए थे। संगीतकार थे एस.के. पाल और भजनों का गीत रूपांतरण पं. भरत व्यास ने किया था।

◆◆◆

दिल का भँवर करे पुकार

कलकत्ता की सीमाओं से पार सचिनदेव का संगीत बंबई तक जा पहुँचा। बंबई में उन दिनों बाम्बे टॉकीज से निकले कुछ लोगों ने फिल्मिस्तान कंपनी की स्थापना की थी। रायबहादुर चुन्नीलाल पटेल और निर्माता निर्देशक शशधर मुखर्जी इसके मालिक थे। इन लोगों ने जोर लगाकर सचिनदेव को आखिर सपरिवार बंबई बुला लिया। इस प्रकार 'शिकारी' सचिनदेव बर्मन की पहली फिल्म थी, जिसमें अशोक कुमार हीरो थे और गीत लिखे थे प्रसिद्ध गीतकार प्रदीप ने। उन्हीं दिनों प्रसिद्ध संगीतकार नौशाद ऊपर उठ चुके थे। उनकी 'रतन' फिल्म धूम मचा रही थी। इस फिल्म के संगीत में नौशाद ने ऐसा कमाल किया था कि इसका एक-एक गाना लोगों के ओंठों पर चढ़ गया था। बमुकाबले 'शिकारी' का संगीत था तो अच्छा, मगर जन साधारण को प्रभावित करने वाली बात उसमें न थी। इसका प्रमाण तब मिला, जब एक दिन सचिनदेव ने रसोई में आती गुनगुनाहट सुनी। देखा तो चपातियाँ सेंकता हुआ उनका नौकर 'रतन' फिल्म का गीत 'जब तुम ही चले परदेश' गा रहा है। दिल में बड़ी ठेस लगी। मगर साथ ही बहुत बड़ा सबक भी मिला कि फिल्म संगीत की सफलता उसकी सहजता पर भी निर्भर होती है।

* ब.जो.

◆◆◆

धार थोक उपभोक्ता सहकारी भण्डार मर्या., धार

समस्त उपभोक्ताओं का हार्दिक अभिनंदन! समस्य नित्योपयोगी वस्तुएँ शुद्ध एवं उचित मूल्य पर उपलब्ध हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली में अग्रसर आदिवासी क्षेत्र में चलती- फिरती दुकान सेवारत।
सदस्य संख्या १४०१, अंश पूँजी ५.३७ लाख, कार्यशील पूँजी १५.०० लाख

शाखाएँ:—नालछा, कुक्षी, हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी धार, नालछा दरवाजा, धार।

हरीश कुमार जोशी, मुख्य कार्य. अधिकारी, **नीला जैन,** उपाध्यक्ष, **सुभाष जोशी,** अध्यक्ष

शुभकामनाएँ

सर्व सुविधायुक्त, एयर कंडीशण्ड कमरे उपलब्ध

होटल नीलम, मंदसौर

टे. नं. २९२२

शुभकामनाएँ

*यातायात के नियमों का पालन कीजिए *अपनी दुपहिया वाहन के कागजों की वैधता बनाए रखिए। *शराब पीकर वाहन मत चलाइए।

बस मालिक संघ, मंदसौर

जिला सहकारी संघ मर्या.
धार

अपने समस्त सदस्य संस्थाओ, कार्यकर्ताओं का **हार्दिक अभिनंदन** करता है।

डॉ. रमेशचंद पाटीदार मनावर
अध्यक्ष

किरीट कुमार पटेल
उपाध्यक्ष
एवं समस्त संचालकगण

रसिक पोतनीस
प्रबंधक

EARN MONEY By investing in SHARES

Come to us to Know-How

BLUE CHIP Investments

2/5, AMBER COMPLEX
MAHARANA PRATAP NAGAR
ZONE-II, BHOPAL-462 011 (M. P.)

Tel:- 65910
Resi:- 76669

है सबसे मधुर वे गीत जिन्हें हम दर्द के सुर में गाते हैं

● फिरोज रंगूनवाला

"मय से, मीना से, न साकी से... दिल बहलता है मेरा आपके आ जाने से"

"हमें कहते हैं वो अभी उमर नहीं है प्यार की, नादान हैं वो क्या जाने कब कली खिली बहार की"

इन दो ताजे फिल्मी गीतों में रोमांस की शीतल समीर का रोमांटिक सौंधापन है। काफी लम्बे अंतराल के बाद ऐसा प्यारा गीत किसी ने लिखा और इसे संगीतकार ने सम्पूर्ण योग्यता से धुनबद्ध किया और हमें भूली-बिसरी प्रेम की सुगंध एक बार फिर से मिली। हम यह भूल सकते हैं कि पर्दे पर इस गाने को किसने प्रस्तुत किया और किस नृत्य को इस गीत के साथ पेश किया गया पर हम इसके मधुर शब्दों को आसानी से नहीं भुला सकते।

ये मेरा दीवानापन है: दिलीप-मीनाकुमारी (यहूदी)

वास्तव में ये गीत हमें उन ढेर सारे पुराने खूबसूरत प्रेमगीतों की याद दिला देते हैं, जिनकी गंध हमारे मन में बसी है। ये वे फूल हैं जो कभी नहीं मुरझाते, चाहे तो इन्हें किताबों के पन्नों के बीच सालों तक दबा दीजिए। इन गीतों को किताबों के पन्नों में सजाने का काम संकलनकर्ता हरमन्दिर सिंह हमराज ने किया। अपने सहयोगी बी.एन. चटर्जी तथा अन्य संगीत प्रेमियों की मदद से। उन्होंने १९३१ से १९७० तक के हर हिन्दी फिल्मी गीत की पहली पंक्ति को संकलित कर चार जिल्दों में प्रकाशित किया। ये चार जिल्दें हमारे चार दशकों की अमूल्य विरासत है। मगर किताब वाद्ययंत्र नहीं होती और उसके पन्नों में उन गीतों को कैद नहीं किया जा सकता जिन्हें हमारा प्यार मिला या जिनके सहारे हमारा प्यार परवान चढ़ा। यह धरोहर तो हमारे दिल, हमारी याददाश्त और हमारे अपने रोमांटिक दिनों में सुरक्षित है। दरअसल गीत के कंधों पर ही सवार होकर कुछ यादें हम तक पहुँचती है। गीत हमें पुराने युग में ले जाते हैं और पुराने दिनों को हमारे सामने साकार लाकर खड़ा कर देते हैं। इस तरह वे आज भी प्रासंगिक हैं और मूल्यवान हैं।

इसीलिए लोगों के मन में इन पुराने प्रणय गीतों की याद आज भी ताजा है जबकि फिल्मों के बारे में शायद ही कोई जानता हो। हमारे पार्श्वगायक जब विदेशों में अपने कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं, तो ज्यादातर फर्माइश पुराने प्रेमगीतों की ही होती हैं। लगभग यही स्थिति देश में भी है। यह सब सिर्फ पुराने जमाने की याद ताजा करने के लिए ही नहीं होता। सच तो यह है कि इन गीतों में स्थाई अपील है। हमारे फिल्मी उद्योग का एक काल विशेष रोमांटिक युग रहा है और इस युग ने कई अमर प्रेमगीतों को जन्म दिया है। इस काल में नौशाद, मदनमोहन, शंकर-जयकिशन, सी. रामचन्द्र, रोशन, एस.डी. बर्मन, कल्याणजी - आनंदजी, ओ.पी. नय्यर तथा और भी कई अपनी रचनात्मक प्रतिभा के शिखर पर थे। उनके पास प्रतिभाशाली गीतकारों के शब्द थे और इन शब्दों को दर्दभरी मिठास देने वाले गायकों के कंठ थे। इन गीतों के फिल्माने के लिए प्रसंग वास्तविकता और जिन्दगी से जुड़े थे तथा प्रणय के विभिन्न स्तरों को दर्शाने का सामर्थ्य उनमें था।

हमें सदा यही महसूस हुआ कि ये प्रतिभाएँ अपनी खुद की मुहब्बत का जिक्र कर रही हैं। पाया, खोया, या पाकर फिर खोया सभी उन पर ही बीता है। उनकी कृतियाँ भावनाओं की गहराइयों से निकलती थीं और महज फिल्मों या रिकॉर्ड कंपनियों के लिए गीत तैयार करना उनका उद्देश्य नहीं था। इन कृतियों में शाश्वत होने का गुण था पर कृतिकारों को इसका पता भी न था।

मेहबूब के अंदाज में कुछ बेहतरीन और प्यारे प्रेमगीत सुनने को मिले। नर्गिस, दिलीपकुमार और राजकपूर के प्रेम त्रिकोण के रामांटिक माहौल में संगीतबद्ध प्रेम इन शब्दों में प्रकट होता है,

"तू कहे अगर जीवन भर
मैं गीत सुनाता जाऊँ
मन बीन बजाता जाऊँ"

आनंद और उत्सव के माहौल में दबे कुचले निराश प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए इससे बेहतर कौनसी रचना हो सकती है।

"झूम-झूम के नाचो आज,
गाओ खुशी के गीत,
आज किसी की हार हुई है
आज किसी की जीत"

ऐसी ही एक और अभिव्यक्ति,

"टूटे ना दिल टूटे ना टूटे ना,
साथ हमारा छूटे ना"

◆◆◆

अन्दाज सचमुच एक दर्दनाक प्रसंग था जिसमें नर्गिस की निर्दोष मगर गहरी मैत्री को दिलीप ने प्रेम समझ लिया। जबकि वास्तव में वह राज को प्यार करती थी और उसी से विवाह भी हुआ।

प्यार की पहली सीढ़ी पर मनुष्य के मन में अनिश्चय और ऊहापोह की जो भावनाएँ उपजती हैं वे **'मिर्जा गालिब'** में सिर्फ ६ शब्दों में इस प्रकार समा गई—

'आशिकी सब्र तलब और तमन्ना बेताब"

इन पंक्तियों को सोहराब मोदी की फिल्म में भी इस्तेमाल किया गया। दूसरी फिल्मों में गीतकारों ने इसी बात को अपनी विशिष्ट शैली में

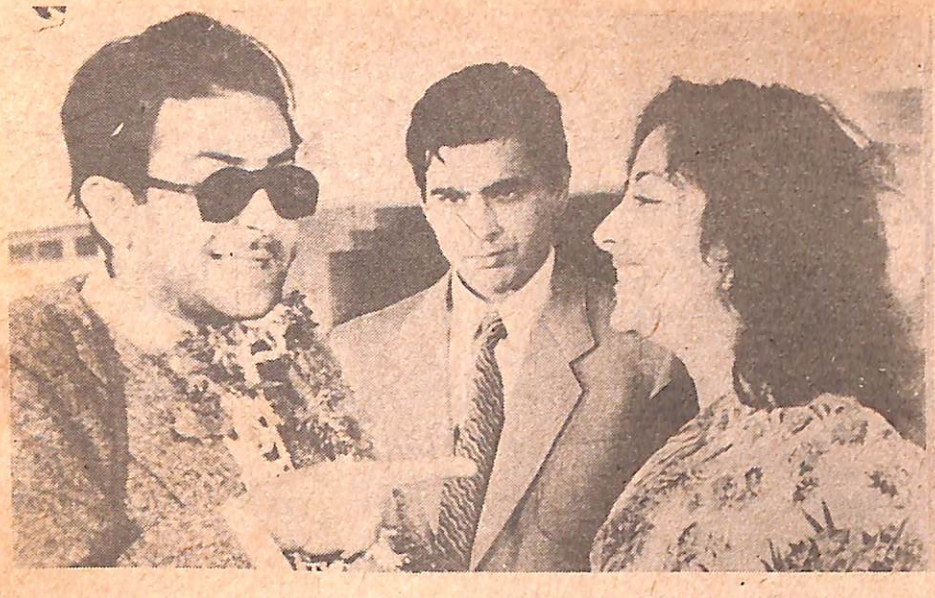

हम आज कहीं कुछ खो बैठे : दिलीप-राज-नरगिस का अंदाज।

तू कहे अगर जीवन भर मैं गीत सुनाता जाऊँ

दूसरे महायुद्ध की समाप्ति और देश विभाजन के बाद फिल्मी दुनिया में अचानक परिवर्तन आए। इंग्लैंड और हॉलीवुड की ग्लेमरस दुनिया को देखकर महबूब खान भारत लौटे, तो उन्होंने दिलीप-राज-नरगिस की नई तिकड़ी बनाकर फिल्म अंदाज बनाई। अंदाज कई मायनों में अनोखे प्रयोगों की सफल फिल्म है। जैसे दिलीप कुमार के लिए मुकेश और राजकपूर के लिए मोहम्मद रफी की आवाज उधार ली गई। लता मंगेशकर ने पहली बार नौशाद की धुनों पर गाया। फिल्म मेला में शमशाद बेगम ने नरगिस के लिए लोकप्रिय गीत गाए थे, अंदाज में उनकी आवाज नर्तकी कुक्कू को दी गई। लता की आवाज का उपयोग नरगिस के लिए किया गया। सभी गीत मजरूह ने लिखे हैं, सिर्फ 'झूम-झूम के नाचो आज' पंक्ति उन्होंने प्रेम धवन के एक गीत से उधार में ली थी। प्रेम धवन ने इसी पंक्ति को आधार बनाकर १९४७ के स्वतंत्रता दिवस पर एक गीत लिखा था।

कहने की कोशिश की 'आखिरी दाँव' की ये पंक्तियाँ...

"तुझे क्या सुनाऊँ मैं दिलरूबा,
तेरे सामने मेरा हाल है...
मेरी शाम है तेरी जुस्तजू
मेरी सुबह तेरा खयाल है"

गुरुदत की "मिस्टर एंड मिसेज ५५" में बेचारा व्यग्र चित्रकार जब प्रियतमा से कह उठता है—

"दिल पर हुआ ऐसा जादू
तबियत मचल-मचल गई
नजरें मिली क्या किसी से
कि हालत बदल-बदल गई।"

हल्के फुल्के ढंग से जाहिर किए गए इस प्रेम की गहराइयों तक पहुँच कर इसान जब पछताता है और अपने जीवन की व्यर्थता को महसूस करता है तब वह गालिब के शब्दों में कह उठता है,

"इश्क ने गालिब निकम्मा कर दिया
वर्ना हम भी आदमी थे काम के"

मेहबूब की अनोखी अदा में एक खोए-खोए से रहने वाले दार्शनिक प्रोफेसर (सुरेन्द्र) को यकायक लम्बी-चौड़ी सुन्दरी (नसीम) का प्यार जकड लेता है। सुन्दरी अपनी याददाश्त खो बैठी है। तब प्रोफेसर कह उठते हैं—

क्यों उन्हें दिल दिया, हाय ये क्या किया,
शीशे को पत्थर से टकरा दिया"

यही भावना जब ज्यादा दर्दनाक हो जाती है, तो बिमल रॉय की यहूदी के दिलीप के शब्दों में साकार हो उठती है,

'ये मेरा दीवानापन है,
या मुहब्बत का सुरुर,
तू न पहचाने तो है
ये तेरी नजरों का कसूर।"

इस गाने में इतना कालजयी प्रभाव है कि जब नसरीम कबीर लेदन की चैनल चार के लिए भारतीय सिनेमा पर एक धारावाहिक बना रही थी तब उन्होंने मनमोहन दसाई के सामने कैमरा रखकर यह गीत बजवा दिया। कुछ क्षणों के बाद ही मनमोहन देसाई भाव विभोर होकर स्वयं भी गीत गाने लगे।

मुझे याद है जब मैं बिमल रॉय पर किताब लिख रहा था तब उनकी सभी फिल्मों को देखने राष्ट्रीय फिल्म आर्काइव गया था तब फिल्म प्रशिक्षण संस्थान के कुछ छात्र भी थिएटर में मौजूद थे। वे 'यहूदी' देखने के लिए अनुमति लेकर आए थे। जब ये गीत पर्दे पर आया तब वे उत्तेजित हो गए तथा ऑपरेटर से आवाज तेज करने का आग्रह करने लगे। मुझे उनका आनंद भंग करना पड़ा और कहना पड़ा कि उनकी उत्तेजना से एक गंभीर काम में बाधा पड़ रही है।

प्यार की शाश्वत निर्झरिणी कितनी कालजयी है इसे यह गीत सरल शब्दों में दर्शाता है—

"सौ साल पहले मुझे तुमसे प्यार था,
आज भी है और कल भी रहेगा"

इसी फिल्म, "जब प्यार किसी से होता है" में प्रेमी कैद की कामना करता है और आजादी से परहेज करते हुए कहता है—

'तेरी जुल्फों से जुदाई तो नहीं माँगी थी,
कैद माँगी थी रिहाई तो नहीं माँगी थी"

प्यार की पूर्णता क्षणिक भले ही हो पर कुछ गीतों में स्थाई बन गई है,

* *"मैं खुशनसीब हूँ, मुझे किसी का प्यार मिला",*
* *"आपकी नजरों ने समझा प्यार के काबिल मुझे"*
* *"ये वादा करो चाँद के सामने"*
* *"जिन्दगी प्यार की दो-चार घड़ी होती है"*
* *"दम भर जो उधर मुँह फेरे, वो चन्दा"*

पर सच्चे प्यार का रास्ता कभी सीधा और सपाट नहीं होता। विरह एक अनिवार्य तत्व है। विरह की इस भावना को कई फिल्मी गीतों में खूबसूरती के साथ प्रस्तुत किया गया है। इन गीतों को सुनकर मन कह उठता है—

"है सबसे मधुर वे गीत जिन्हें हम दर्द के सुर में गाते हैं"

* *"सब कुछ लुटा के होश में आए तो क्या किया"*

ये न थी हमारी किस्मत : भारत भूषण-सुरैया

* *"हमसे आया न गया तुमसे बुलाया न गया"*
* *"रात ने क्या-क्या ख्वाब दिखाए"*
* *"हम चल रहे थे, वो चल रहे थे"*
* *"दिया जलाकर आप बुझाया"*
* *"जब तुम ही नहीं अपने, दुनिया ही बेगानी है*
  उल्फत जिसे कहते हैं, एक झूठी कहानी है"

लेकिन दर्द की गहराइयों तक पहुँचने के लिए हमें फिर से 'अनोखी अदा' की ओर मुड़ना पड़ेगा बेकसूर ही ठुकराए गए प्रेमी के दिल की पुकार का अन्दाज,

"कभी दिल दिल से टकराता तो होगा
उन्हें मेरा ख्याल आता तो होगा"

और इसी फिल्म का दूसरा गीत

भूलने वाले याद न आ...
देख हमें मजबूर ना कर
तुझे कसम दुख दूर ना कर
हम तो जिए बस तेरे लिए

ऐसे सैकड़ों गाने हैं जो हमारी याद को कुरेदते

झूम कर चली हवा याद आ गया कोई

● श्रीकांत प्रभु

फिल्मी गीतों के बारे में लिखते वक्त खुद को तिरस्कार और पाखण्ड के प्रभाव से मुक्त रखना मुश्किल है। उपेक्षा और निन्दा के साथ फिल्मी गानों के बारे में सोचते वक्त यह सच्चाई भी मन में कौंध जाती है कि बचपन से लेकर उम्र के इस पड़ाव तक फिल्मी गानों ने हर मोड़ पर भावनाओं को झकझोरा है। दरअसल उपेक्षा और लगाव के इन परस्पर विरोधी भावों का फिल्मी गीतों के सन्दर्भ में एक साथ उभरने की ठोस वजह है, गानों का फिल्मांकन। गानों को जिन स्थितियों में फिल्माया जाता है, वे बनावटी और अप्रासंगिक होती हैं। इन कृत्रिम स्थितियों में फिल्माए गए गीतों की मिठास जब लता मंगेशकर, आशा भोंसले, मोहम्मद रफी, के.एल. सहगल, मुकेश जैसे गायकों के कंठ से होती हुई हम तक पहुँचती है, तो वह आत्मा में समा जाती है। साहिर, शैलेन्द्र, शकील आदि शायरों के गीतों, नौशाद, एस.डी. बर्मन, सी. रामचंद्र, मदनमोहन, रोशन जैसे संगीतकारों की धुनों की अवहेलना करना आसान नहीं है। सच तो यह है कि इनमें से ज्यादातर हमारी जिन्दगी से जुड़ जाते हैं। ऐसे बेशुमार सदाबहार गीतों की लोकप्रियता और इनका फिल्मांकन दो अलग-अलग चीजें हैं। गीत तो अपनी श्रेष्ठता के कारण शाश्वत हो जाते हैं, पर इन गीतों को जिस ढंग से और जिस स्थिति में फिल्माया जाता है, वह पूर्णतः अनुपयुक्त और कभी-कभी हास्यास्पद प्रतीत होती है।

व्यावसायिक फिल्मों के मामले में तो गाने रीढ़ की हड्डी की भूमिका अदा करते हैं। आम दर्शक के लिए बिना गानों की फिल्म अधूरी फिल्म होती है। कभी-कभी कला फिल्मों की कमियों का जिक्र करते हुए उनके गीत विहीन होने की चर्चा की जाती है। औसत दर्शक ऐसी फिल्मों को 'उबाऊ' मानता है। वैसे यह भी विवाद का विषय है कि बिना गानों वाली फिल्में कलात्मक दृष्टि से सिर्फ गीतविहीन होने के कारण उत्तम होती हैं। वास्तव में 'संगीत' शब्द फिल्मी संदर्भ में गानों के साथ ही जुड़ा है। सत्यजित रॉय या अदूर गोपालकृष्णन की फिल्मों में भले ही 'संगीत' न हो, पर शांताराम, राजकपूर, देवानन्द आदि की फिल्मों की पहचान ही उनका मीठा संगीत है, जो मधुर गीतों के साथ जुड़ा रहता है। इस प्रकार फिल्मी संगीत की धारणा का आधार ही गीत है।

फिल्मों को सफलता गानों से मिलती है या गीतों की लोकप्रियता का कारण फिल्मों की सफलता है. इस बारे में फैसला करना मुश्किल है। इतना जरूर है कि गीतों ने फिल्म के दौरान विशिष्ट 'मूड' को प्रस्तुत करने में अहम् भूमिका अदा की है। इस प्रकार निर्देशन को सहारा दिया है। विशिष्ट 'मूड' का समाँ बाँधने में गीत कितने उपयोगी होते हैं, इसका एक उदाहरण 'कालाबाजार' का भक्ति गीत है। 'अपनी तो हर आह इक तूफान है, ऊपर वाला जानकर अनजान है', रफी की आवाज में यह गीत फिल्म में रोमांटिक वातावरण निर्मित करता है। ऊपर वाला 'भगवान' तो है ही मगर फिल्म में इशारा ट्रेन के डिब्बे में ऊपर की बर्थ पर आराम कर रही वहीदा रहमान की ओर है। वैसे कुछ प्रसंग ऐसे हैं, जिनके

रिमझिम बरसे बादरवा: जितेन्द्र-श्रीदेवी

फिल्म में आने पर 'गाने' की उपस्थिति अनिवार्य-सी लगती है। रोमांस, हर्ष, विषाद, आराधना, देशभक्ति, कैबरे, वर्षगाँठ, बालसमूह। कुछ अन्य प्रसंगों में निर्देशक 'गीत' के जरिए वह सब कुछ आसानी से दर्शा देता है, जो मध्यमवर्गीय मानसिकता को सामान्य संवाद में सुनना भी गवारा न होता। फिल्म प्रोफेसर के प्रारंभिक दृश्य में कुछ छात्रावासीय कमसिन कन्याएँ मर्द साथियों की संगत के लिए बेताब हैं। पुरुष प्रवेश वर्जित परिसर में मर्द के साथ की गुहार करती हुई वे गाती हैं, "हमारे गाँव कोई आएगा, प्यार की डोर से बँध जाएगा।" इस भावना को यदि संवाद के जरिए जाहिर किया जाता, तो परिवार के लोग शायद फिल्म देखना भी पसन्द न करते। 'सेक्स क्षुधा' की चर्चा से भी परहेज करने वाले समाज को गीतों के जरिए कैसे-कैसे सन्देश सरलता से दिए जा

है और जिन्हें गुनगुनाने को बरबस ही जी करता है। लेकिन सिर्फ छपे और लिखे शब्दों के जरिए ही इन गीतों का माधुर्य महसूस नहीं किया जा सकता। इन गीतों को धुनों समेत धरोहर की तरह संभालना होगा। एच.एम.वी. जैसी कुछ रिकॉर्ड कंपनियाँ इन्हें कैसेट के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास कर रही हैं। इस काम में कुछ उलझनें भी हैं। खासतौर पर गायकों की ओर से। पर चयन के मामले में भी होशियारी नहीं बरती गई है। जिन गीतों को चुना गया है वे संगीत प्रेमियों को शायद ही संतुष्ट कर पाएँ और कुछ अच्छे गीत शायद विस्मृति के गर्त में डूब जाएँ।

हम यह उम्मीद भी करते हैं कि वर्तमान फिल्मों की प्रवृत्ति में भी कुछ बदलाव आएगा। रोमांस की वापसी होगी और विकृत हिंसा का पलायन होगा। रोमांटिक फिल्मों की वापसी के साथ ही प्रेमगीतों का युग लौटेगा। "कयामत से कयामत तक" की भारी सफलता तथा "लैला मजनू" मार्का फिल्मों के पुनर्निर्माण शुभ संकेत हैं। देखना यह है कि आने वाली प्रेम आधारित फिल्में, 'मैंने प्यार किया', 'प्यार के नाम कुर्बान', 'लव लव लव', 'प्रेम', 'गूँज', 'दे दो मुझे प्यार' तथा 'हिना' कितनी असरदार सिद्ध होती है। यदि इनके गीतों में पुरानी फिल्मों के गीतों का पच्चीस फीसदी माधुर्य भी वापस मिल सके, तो यह बड़ी बात होगी। आज जब हर वस्तु के मूल्य में बिखराव और ह्रास की प्रवृत्ति पनप रही है तब शतप्रतिशत मिठास की आशा ही अनुचित होगी।

***लेखक फिल्म इतिहासकार हैं और एक इर्जन फिल्म विषयक पुस्तकों के रचयिता।**

शीशे को पत्थर से टकरा दिया
प्रेम अदीब-नसीम (अनोखी अदा)

सकते हैं, इसका उदाहरण कुछ ऐसे गीत हैं, जो कन्या के रजस्वला होने का सन्देश देते हैं। 'मैं सुंदर हूँ' का गीत आज मैं जवान हो गई हूँ। यह गीत गाती हुई लीना चन्दावरकर पालतू तोते की ओर इशारा करते हुए कहती हैं, "ओ मिट्ठू मियाँ, ये दिन ये साल ये महीना, मुझको याद रहेगा।" ऐसा ही एक गीत है "अब तो फूल बन गई, पहले बंद कली थी।"

विषाद, वेदना, गम और असफल प्रेम की पीड़ा को व्यक्त करने में मुकेश का स्वर बेजोड़ रहा है। वैसे के.एल. सहगल से लेकर अमिताभ बच्चन तक सभी नायकों ने अपने अकेलेपन की पीड़ा का इजहार गीत के माध्यम से ही किया है। 'टैक्सी ड्राइवर' का दुखी और अकेला देवानन्द समुद्र तट पर गा उठता है, "जाएँ तो जाएँ कहाँ, समझेगा कौन यहाँ" (तलत)। जोकर का दर्द मुकेश की आवाज में ये शब्द प्रकट करता है- "जाने कहाँ गए वो दिन"। ऐसी ही परिस्थिति में 'झुमरू' का किशोर कुमार कह उठता है, "कोई हमदम न रहा, कोई सहारा न रहा।" इन सब गीतों में अभिव्यक्त पीड़ा की शब्दावली सरल है और इस 'पीड़ा' को आत्मसात करने के लिए यह कतई जरूरी नहीं है कि फिल्म को देखा ही जाए। कानों के जरिए ही सारा दर्द श्रोता के हृदय में घुल जाता है। ऐसे गीतों की लोकप्रियता का एक कारण इनका शास्त्रीय राग अथवा लोकधुनों पर आधारित होना बताया जाता है। दरअसल हिन्दी फिल्मों ने प्रारंभ से ही दर्द भरे गीतों से एक 'कल्चर' विकसित किया है। इन गीतों की पृष्ठभूमि में असफल प्यार रहता है। संगीत सम्राट तानसेन में मुकेश, "झूमती चली हवा याद आ गया कोई" या जोकर में "जाने कहाँ गए वो दिन" गाते हुए उसी 'मूड' का प्रदर्शन करते हैं, जिसे सहगल ने 'शाहजहाँ' में- "जब दिल ही टूट गया, हम जी के क्या करेंगे" गाकर किया था। असफल प्यार के अतिरिक्त कुछ अन्य दर्दीली भावनाओं का इजहार फिल्मी गीतों में किया गया है, साहिर का गीत, "जिन्दगी सिर्फ प्यार ही नहीं कुछ और भी है... भूख और प्यास की मारी हुई इस दुनिया में इश्क ही एक हकीकत नहीं कुछ और, और भी है" (दीदी)। पर ऐसे गीत इक्के-दुक्के ही हैं।

दुख भरे गीतों के साथ-साथ नायिका द्वारा गाए गए रोमांटिक गीतों को भी काफी लोकप्रियता मिली। इन सारे गानों में नायिका का लक्ष्य 'नायक' ही रहा है तथा समर्पण भाव ही अधिकांश गीतों की थीम है। 'राजा की आएगी बरात' (नर्गिस/ आह) से लेकर 'आजा पिया तोहे प्यार दूँ (आशा पारेख/बहारों के सपने)। कभी-कभी नायिका रोमांटिक छेड़छाड़ कर नायक को चिढ़ाती भी है, "मैं का करूँ राम मोहे बुड्ढा मिल गया" (वैजयंतीमाला/ संगम)। नायिका तितली भी बन जाती है और चाँद भी। नायिकाओं के साथ गीतकारों ने नारी को माँ, बहन, बीवी और वह के रूप में भी शब्दबद्ध किया है। 'वह' की छवि कोठेवाली से शुरू होकर कैबरे नर्तकी तक पहुँच चुकी है। हमारे फिल्म उद्योग की नई नायिकाएँ जब 'कुछ भी' से लेकर 'सब कुछ' तक करने को तैयार होती जा रही हैं, तब पारम्परिक 'वह' का चरित्र निर्वाह करने वाली हेलन, जयश्री टी., बिन्दु, कल्पना अय्यर आदि बेकारों की श्रेणी में आ गई हैं।

युगल गीतों के जरिए नायक- नायिकाओं को प्रणय की विभिन्न मुद्राओं में दिखाकर दर्शकों की रसिकता को गुदगुदाने की परम्परा फिल्म उद्योग में शुरू से रही है। उपवन, वन, खंडहर, पर्वत आदि एकान्त स्थलों पर गाए जाने वाले गीतों में नायक-नायिका एक दूसरे का स्पर्श करने के लिए ही आजाद नहीं होते, बल्कि आलिंगन, चुम्बन आदि चेष्टाएँ प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से परदे पर दिखाने के लिए भी आजाद होते हैं। ऐसे गीत अक्सर नृत्य प्रधान होते हैं तथा फिल्मांकन के दौरान कैमरा नायिका के बदन के उभारों को घूरता रहता है। ज्यादा नाजुक दृश्य प्रत्यक्ष तो नहीं दिखाए जाते, लेकिन पक्षी युगल या दो फूलों के टकराने का सीन दिखाकर दर्शकों को इशारों में सब-कुछ समझा दिया जाता है। संगीत की मादक धुन और रोमांटिक शब्दों वाले गीत दृश्य को और भी गुदगुदा बना देते हैं।

राजसी भव्यता एवं सामन्ती शान को फिल्मी नृत्य गीतों के माध्यम से दिखाने के दोहरे उद्देश्य हैं। पहला तो ग्लैमर को पूरी भव्यता से प्रदर्शित कर दर्शकों को लुभाने का है और दूसरा दर्शकों को कल्पना के उस लोक में ले जाने का है, जहाँ वे खुद को नायक-नायिका का स्थानापन्न समझते हुए नृत्य गीत का आनंद लें। चन्द्रलेखा में नगाड़ों पर किया गया नृत्य ऐसे गीतों की सफलता की पहली पताका था। गीतों की 'सिचुएशन' और उनकी प्रकृति में भिन्नता बनाए रखना 'स्क्रिप्ट' लिखने वाले की जरूरी जिम्मेदारी है। हर स्क्रिप्ट में कम से कम छः गीतों की गुंजाइश जरूर रहती है। पाँच मिनट के गीत को फिल्माने के पूर्व उसके लिए जरूरी पृष्ठभूमि तैयार करने में इतना ही समय स्क्रिप्ट लेखक को देना होता है। इस प्रकार प्रत्येक गीत के लिए स्क्रिप्ट में दस से पन्द्रह मिनट तक का समय रखा जाता है। कुल फिल्म का एक तिहाई से भी ज्यादा हिस्सा गानों में खप जाता है। दर्शकों को ऐसा होना न तो अस्वाभाविक लगता है और न ही उन्हें बोरियत होती है। ऐसा शायद इस वजह से होता हो कि हमारी मनोरंजन की हर शैली में नृत्य और गीत प्रमुख रहे हैं।

फिल्मी गीतों को लोकप्रिय बनाने में रेडियो ने भी महत्वपूर्ण रोल अदा किया है तथा ऐसी ही भूमिका दूरदर्शन भी कर रहा है। चित्रहार, चित्रमाला, रांगोली, चित्रमंजरी जैसे कार्यक्रमों ने फिल्मी गीतों की लोकप्रियता में इजाफा ही किया है। इन कार्यक्रमों में दिखाए जाने वाले अन्य भाषाओं की फिल्मों के गीत हिन्दी फिल्मों की छाया प्रति ही लगते हैं।

(डीप फोकस से)

मेरा नाम जोकर: राजकपूर की आत्म-कहानी ◆ दम भर जो उधर मुँह फेरे: नरगिस-राज (आवारा)

तू छेड़ इक बार मन का सितार: अनिल विश्वास

● शंभूनाथ मिश्र से बातचीत

किसी जमाने में फिल्मों से जुड़े सुप्रसिद्ध संगीत-निर्देशक **अनिल विश्वास** पिछले पच्चीस वर्षों से अधिक समय से दिल्ली में रह रहे हैं। उनसे मिलने जाते समय मेरे मन में उन्हीं की बनाई एक पुरानी धुन 'ऋतु आए ऋतु जाए सखी री, मन के मीत न आए' गूँज रही है।

पचहत्तर वर्षीय अनिलदा पकी मूँछों और सफेद बालों के बावजूद काफी चुस्त- दुरुस्त नजर आते हैं। साउथ एक्सटेंशन में फिल्मों के खूबसूरत सेट सा सजा घर। उनसे लंबी बातचीत करने का इरादा है, लेकिन कोई भी सवाल पूछते हुए डर लगता है कारण मित्रों से सुन रखा है कि वे अपनी बीती जिंदगी खासकर फिल्मों से जुड़े अपने अतीत के बारे में चर्चा करने से अक्सर कतराते हैं। उनके बंबई छोड़कर दिल्ली आ बसने का कारण जानने के लिए जब मैंने उन पर जोर दिया तो मुझे पता नहीं था कि वह कारण इतना दुःख भरा होगा कि अनिलदा को दुःखी कर जाएगा।

उन्होंने रुक-रुक कर धीरे-धीरे बताया था "मैंने फिल्मों में शास्त्रीय और लोक संगीत देने की कोशिश की थी, लेकिन लोगों को पश्चिमी संगीत की नकल चाहिए थी। फिर मेरी समझ में फिल्मों में संगीत का काम उसके भावनात्मक प्रभाव को बढ़ाना भर है, लेकिन आजकल फिल्मों में हल्ला-गुल्ला वाला संगीत ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। फिल्म की कहानी कुछ भी हो, फिल्म निर्माता को एक दर्जन हिट गीत चाहिए। बंबई छोड़ने का दूसरा कारण व्यक्तिगत था। सन् १९६१ में एक ऐसा हादसा हुआ कि बीस दिन के भीतर मेरा छोटा भाई और बड़ा बेटा गुजर गया। छोटा भाई मुझे प्रेरणा देता रहता था। उसके बाद से आज तक मुझे हँसाने वाला कोई नहीं रहा। बेटा वायुसेना का अफसर था, विमान दुर्घटना में उसकी जान गई। फिर, बंबई मुझे काटने लगी और मैं दिल्ली आ गया।

"मुझे हमेशा लगता रहा है कि मैं अपने को रंडी की तरह बेचता रहा हूँ। मैं काहिले वजूद हूँ और यही मेरी दुर्बलता है। मेरे जीवन की कोई उपलब्धि नहीं रही है।" अनिलदा दुखी लगते हैं और यह दुख एक समर्थ एवं सफल संगीतकार का है।

अनिलदा बीस-इक्कीस साल की वय में संगीत-निर्देशक बन चुके थे। वे लगभग बीस साल तक बंबई में रहे। उन्होंने ही पहली बार मुकेश और तलत महमूद को फिल्मों में ब्रेक दिया। कुल एक सौ फिल्मों में उन्होंने संगीत दिया होगा। आखिरी फिल्म थी स्वर्गीय मोतीलाल की छोटी- छोटी बातें जिसे राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार मिला था। उन्होंने जिन गीतों की धुनें बनाई उनमें दूर हटो ए दुनिया वालो (किस्मत), दिल जलता है तो जलने दे (पहली नजर), राही मतवाले तू छेड़ इक बार मन का सितार, कुछ और जमाना कहता है, रिमझिम बरसे पानी आजमोरे अँगना (परदेसी) शामिल हैं।

कलकत्ता से १९३४ में बंबई आने के बाद संगीत-निर्देशक हीरेन बोस के सहयोग से उन्होंने यहूदी की लड़की और भारत की बेटी नामक फिल्मों में कुछ धुनें बनाई। ईस्टर्न आर्ट प्रोडक्शन के दरयाली ने १९३५ में "धर्म की देवी" नामक फिल्म में उन्हें संगीत निर्देशक बनाया। "यह मेरी पहली फिल्म थी जिसमें मैंने स्वतंत्ररूप से संगीत दिया था। पर्दे पर संगीत- निर्देशक के रूप में अपना नाम देखकर बड़े गर्व का अनुभव हुआ था। यह मेरा सौभाग्य रहा कि इसके बाद मुझे कभी पीछे मुड़कर नहीं देखना पड़ा। अनिलदा ने बताया।

"संगीत का रोग आपको बचपन से ही लग गया था?" मैंने पूछा।

"तुमने ठीक कहा। संगीत रोग नहीं महारोग है। एक बार लगे तो जान के साथ ही छूटता है। मैंने गाना किसी से सीखा नहीं। चार वर्ष की वय से ही मैं अच्छा गाने लगा था। माँ कहती यह श्रुतिधर है। जो कुछ भी सुनता है वह इसके पेट में चला जाता है और जब चाहे वैसे का वैसा सुना सकता है।"

"मेरा जन्म सात जुलाई १९१४ को बारिसाल (अब बंगलादेश) में हुआ था। गरीब माता-पिता का मैं सबसे बड़ा बेटा था। मेरा बचपन अग्नि युग का बचपन था यानी राजनीति से उस जमाने में बचना मुश्किल था। देश की आजादी के लिए मर मिटने की तमन्नाएँ हमारे दिलों में जवान थीं। मेरा दल सबसे आगे रहा था। बारह की वय तक में पूर्ण वयस्क हो चुका था गीता पढ़ ली थी। मेरे हाथ में कलम या साज की जगह पिस्तोल थी। मैट्रिक की परीक्षा से पहले मैं भूमिगत हो गया था। परीक्षा के तेरह-चौदह दिन पहले में घर आया। पिताजी की मृत्यु हो चुकी थी। हेड मास्टर साहब ने अपनी ओर से मेरी फीस भरी। परीक्षा में मुझे दो डिस्टिंक्शन मिले।

"कॉलेज में भरती हुआ तब भी पुलिस ने मेरा पीछा न छोड़ा। कई बार जेल आना-जाना लगा

ओ रूठे हुए भगवान

खेमचंद प्रकाश ने भी पं. गोविंदराम की तरह ही १९४० के पहले ही फिल्मों में प्रवेश किया था। 'गाजी सलाहउद्दीन' उनकी पहली फिल्म थी। १९४० में 'दिवाली' और 'होली' के साथ रंजीत फिल्म कंपनी के साथ उनका जो संबंध हुआ, वह कई वर्षों तक चला और खेमचंद प्रकाश ने एक के बाद एक उत्कृष्ट फिल्में दीं। जहाँ उन्होंने 'परदेशी' में चौदह में से सात गीत खुर्शीद से गवाए और वे बहुत लोकप्रिय हुए, वहीं 'उम्मीदें' और फरियाद' (१९४२) में नूरजहाँ के होते हुए भी वे कोई उल्लेखनीय गीत नहीं दे सके। सिंदूर (१९४७) में अमीर बाई कर्नाटकी ने उनके निर्देशन में 'ओ रूठे हुए भगवान' और 'कोई रोके उसे' जैसे करुण गीत गाए थे। १९४८ में बनी उनकी फिल्म 'जिद्दी' में खेमचंद प्रकाश ने किशोर कुमार को पहली बार पार्श्वगायक के रूप में प्रस्तुत किया और उनसे 'मरने की दुआएँ क्यों माँगूँ' गीत गवाया। इसी फिल्म में लता मंगेशकर ने 'चंदा रे जारे जारे' गाया था मगर वे इसके पहले 'आशा' में भी उनके लिए गा चुकी थीं।

१९४८ में खेमचंद की तीन फिल्में आईं। 'महल' में लता के दो अमर गीत 'आएगा आने वाला', 'मुश्किल है' थे। दो अन्य फिल्में थी 'रिमझिम' और 'सावन आया रे'। इनमें शमशाद का गीत 'नहीं फरियाद करते हम' बहुत प्रसिद्ध हुआ था। १९५० में किशोर साहू की राजकपूर-नर्गिस अभिनीत 'जान-पहचान' में खेमचंद ने गीता दत्त से ६ गीत गवाए थे जिनमें से तलत के साथ गाया हुआ दोगाना 'अरमान भरे दिल की लगन' आज तक मशहूर है। १९५२ में उन्होंने बॉम्बे टॉकीज की अंतिम फिल्म 'तमाशा' के लिए संगीत दिया। इस फिल्म में उनके साथ मन्ना डे तथा एस.के.पाल ने भी संगीत दिया था। यही फिल्म खेमचंद प्रकाश की भी अंतिम फिल्म थी। कुल चालीस फिल्मों के द्वारा ही खेमचंद प्रकाश ने हिंदी फिल्म संगीत में अपने लिए बहुत ही ऊँचा स्थान बनाया। राजस्थानी संगीत तो उनकी नस-नस में बहता था। वहाँ की लोक धुनों के अलावा शास्त्रीय संगीत का भी उन्होंने भरपूर उपयोग किया है।

प्रमुख फिल्में: मेरी आँख (१९३९), आज का हिंदुस्तान, दिवाली, होली, पागल (१९४०), परदेशी, प्यास, उम्मीद (१९४१), चाँदनी, फरियाद, खिलौना (१९४२), चिराग, गौरी, विष कन्या (१९४३), मुमताज महल, शहंशाह बाबर (१९४४), धन्ना भगत (१९४५), चलते-चलते, गाँव, समाज को बदल डालो, सिंदूर (१९४७), आशा, जिद्दी (१९४८), महल, रिमझिम, सावन आया रे (१९४९), बिजली, जान-पहचान, मुकद्दर (१९५०), तमाशा (१९५२)।

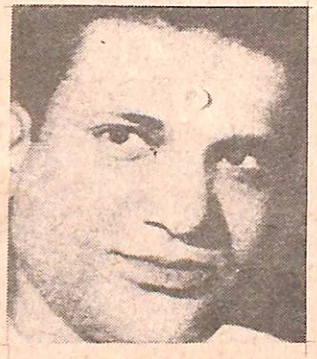

खेमचंद प्रकाश

सरस्वती देवी

अरे मन काहे सोच करे: सरस्वती देवी

हिंदी फिल्मों की पहली महिला संगीत निर्देशिका सरस्वती देवी का असली नाम खुर्शीद मिनोचा होमजी था। फिल्मों में किसी महिला का संगीत देना पारसी समाज को जरा भी पसंद नहीं आया लेकिन सारे विरोध के बावजूद संगीत के प्रति समर्पित इस महिला ने अपनी संगीत सेवा जारी रखी। उन्होंने पंडित विष्णु नारायण भातखंडे से शास्त्रीय संगीत की तालीम ली थी। १९३३-३४ में वे लखनऊ से एक संगीत समारोह में भाग लेने बंबई आई जहाँ उनकी मुलाकात बंबई टॉकीज के हिमांशु रॉय से हुई और उन्होंने उन्हें अपने यहाँ आने का निमंत्रण दिया। शुरू में सरस्वती देवी ने रॉय से कहा कि उन्हें सिर्फ शास्त्रीय संगीत ही आता है और वे फिल्मी या सुगम संगीत नहीं दे सकतीं। हिमांशु रॉय ने उन्हें इसकी चिंता न करने को कहा और वे बॉम्बे टॉकीज में आ गईं और देविका रानी को संगीत सिखाने लगीं। इसी प्रक्रिया में उन्होंने कुछ हल्की-फुल्की धुनें बनाईं। इस तरह अनायास फिल्म 'जवानी की हवा' के गीतों का जन्म हुआ। इस फिल्म के कुछ गीत उनकी बहन मानेक तथा अन्य नजमुल हसन ने गाए। पारसी समाज को बुरा न लगे इसलिए उन्होंने अपना नाम सरस्वती देवी तथा बहन का नाम चंद्रप्रभा रख लिया। बॉम्बे टॉकीज के लिए अछूत कन्या, जन्मभूमि, बंधन तथा झूला जैसी फिल्मों के अलावा सरस्वती देवी ने मिनर्वा की पृथ्वी वल्लभ, भक्त रैदास और प्रार्थना में भी संगीत दिया। नंदलाल जसवंतलाल की आम्रपाली में भी उनका संगीत था। इस बीच फिल्म संगीत लाउड होने लगा था इसलिए उनकी मदद के लिए जे.एस. कश्यप तथा रामचंद्र पाल को रखा गया। यह दखलंदाजी उन्हें पसंद नहीं आई और १९५० में वे फिल्मों से निवृत्त हो गईं। १९८० में उनका तथा १९८१ में चंद्रप्रभा का निधन हुआ।

फिल्मों में प्लेबैक की शुरूआत करने वालों में सरस्वती देवी भी हैं। १९३४ में फिल्म जवानी की हवा का एक गीत चंद्रप्रभा के ऊपर फिल्माया जा रहा था। उस दिन उनकी तबीयत कुछ खराब होने से माइक सरस्वती देवी को दे दिया गया और चंद्रप्रभा ने सिर्फ होंठ हिलाए। सरस्वती देवी के संगीत निर्देशन में कोरस गायकों के रूप में मदन मोहन तथा किशोर कुमार ने भी गाया था।

◆◆◆

दिल मतवाला लाख सम्हाला

मोहन वाले दवे भाइयों की ज्यादातर फिल्मों में ए.आर.कुरैशी (अल्लारखा कुरैशी) का संगीत था। १९४० से १९५० के दरमियान अनेक फिल्मों में संगीत देने के बाद उन्हें एक अच्छी फिल्म 'सबक' मिली जिसमें उन्होंने अपनी प्रतिभा दिखलाई। सादिक की इस फिल्म में मुनव्वर सुलताना और करण दीवान की भूमिकाएँ थीं। 'कह दो हमें ना बेकरार करे' और 'तू यूँ आसमाँ पे खड़ा' गीतों में रफी और सुरेन्द्र कौर के मधुर सुरों का संगम था। राजकपूर-नर्गिस की बेवफा (५२) उनकी श्रेष्ठ फिल्म थी। राजकपूर ने एकमात्र इसी फिल्म में तलत का 'प्ले बैक' लिया था। 'तुम को फुरसत हो', 'दिल मतवाला', और 'तू आए न आए' गीत उत्कृष्ट थे। लता के गाए गीत 'इसी का नाम दुनिया है' की धुन भी मधुर थी। इन फिल्मों पर से पता चलता है कि अच्छी फिल्में मिलने पर उनका संगीत खिल उठता है। लेकिन 'बेवफा' के बाद उनको सिर्फ धार्मिक और स्टंट फिल्में ही मिलीं। प्रारंभ की फिल्मों में वे अल्लारखा नाम से संगीत देते थे। बाद में वे ए.आर.कुरैशी के नाम से संगीत देने लगे। पंडित रविशंकर के साथ तबले पर संगत करने वाले अल्लारखा और ए.आर. कुरैशी एक ही व्यक्ति थे। फिल्म सूची: घर की शोभा, माँ-बाप (४४), घर, कुल-कलंक (४५), जीवन छाया, माँ बाप की लाज (४६), हिम्मतवाली, किस्मत का सितारा (४७), आजाद हिंदुस्तान, देश सेवा, धन्यवाद, जादुई अँगूठी (४८), सबक (५०), बेवफा (५२), नूर महल (५४), खानदान, सखी हातिम, हातिमताई की बेटी (५५), आलम आरा, इंद्रसभा, लाले यमन (५६), सिमसिम मरजीना (५८)।

रहा। आखिरकार नवंबर १९३० में मुझे भागना पड़ा। मेरी जेब में माँ के बक्से से चुराए पाँच रुपए थे और मैं अकेला सियालदह स्टेशन पर खड़ा था। कलकत्ता में बारिसाल के मेरे एक दोस्त पन्ना बाबू (जो बाद में चलकर मेरे बहनोई बने और देश के सुप्रसिद्ध बांसुरीवादक पन्नालाल घोष के नाम से मशहूर हुए) अपने बहनोई के घर रहा करते थे। वह मुझसे तीन साल बड़े थे, अखाड़े की दोस्ती थी हमारी। मैं सियालदह से आठ मील पैदल चलकर लेक रोड स्थित उनके घर आया। पुराने जमाने में आतिथ्य सत्कार का बेहद रिवाज था। पन्ना बाबू के घर मेरी खूब खातिर हुई। चौथे दिन मेरे भीतर से किसी ने कहा अनिल दोनों वक्त भोजन मिल रहा है, तुम अपने लिए अब कोशिश भी नहीं करोगे। क्या इसी के लिए आए थे? भागो।" और मैं फिर फुटपाथ पर आ गया।

"जेब में कुल पाँच आने पैसे थे। दिन भर नौकरी की तलाश में इधर-उधर भटकता रहता। ज्यादा भूख लगती तो एक पैसे की मूढ़ी (मुरमुरा) खाकर पानी पी लेता। इसी बीच मुझे बुखार हो आया। बुखार में भी भटकने और मूढ़ी खाने का क्रम जारी रहा। एक दिन बुखार से बेसुध हो गया तो एक वैद्य ने अपने यहाँ रखकर मेरी बड़ी सेवा सुश्रुषा की। कई दिन उनके औषधालय में पड़ा रहा। भूख से बेहाल होकर मैंने कई बोतल द्राक्षासव पी डाला।

"कलकत्ता में उन दिनों 'पाइस होटल' हुआ करते थे जहाँ प्लेट के हिसाब से खाना मिलता था। दो पैसे का भात, एक पैसे की दाल। एक दिन मैं ऐसे ही एक होटल के आगे जा खड़ा हुआ। मालिक ने पूछा काम करोगे? थाली परोसनी होगी, जूठन उठाना होगा। इसकी एवज में दोनों वक्त खाना मिला करेगा। मैंने हामी भर दी और काम करने लगा। मनोरंजन सरकार नामक एक जादूगर इस होटल में नियमित खाना खाने आते थे। उनसे परिचय हो गया। शाम को कुछ लोग बैठकर गाना गाया करते। मैं भी गाता। एक दिन मनोरंजन सरकार ने कहा एक जगह बढ़िया गाना होगा। चलोगे? मैंने कहा जाऊँगा। मगर, मेरे पास अच्छे कपड़े नहीं थे। पन्ना बाबू से कमीज माँगी और नंगे पैर चला। मकान रायबहादुर अधोरनाथ अधिकारी का था। वे बंगाल में इंस्पेक्टर जनरल ऑफ स्कूल थे। आलीशान सजा मकान। फर्श पर कालीन। मेरे पैर धूल से सने थे। मुझे हिचकिचाहट हुई। मनोरंजन सरकार मुझे ढेलते हुए भीतर ले गए।

"वहाँ बड़ी-बड़ी हस्तियाँ मौजूद थीं जिनमें बंगला के प्रसिद्ध कवि यतीन्द्र मोहन बागची और मेगाफोन रिकॉर्ड कंपनी के जे.एन. घोष भी थे। वहाँ अचानक मुझसे गाने को कहा गया। मैंने डरते-डरते श्यामा संगीत, भक्ति संगीत गाया। लोगों ने पसंद किया। गाने के बाद खाने का कार्यक्रम था। परात में ढेर सारी कटोरियों में सजा हुआ खाना। मैंने इस तरह सजा हुआ खाना कभी देखा न था। खाना चाह कर भी मुझसे खाया न गया।

"अधोर बाबू ने दो बच्चों को पढ़ाने और गाना सुनाने के लिए मुझे अपने यहाँ रख लिया। मैं उनके यहाँ लगभग डेढ़ महीने रहा। फिर छह बच्चों को पढ़ाने के लिए एक दूसरे सज्जन के यहाँ चला गया। धीरे-धीरे मेरा नाम एक मुहल्ले से दूसरे मुहल्ले फैलने लगा। काजी नजरूल इस्लाम ने मुझे मेगाफोन कंपनी में काम करने को कहा। मुझे ट्रेनर के रूप में रखा गया। मेरा पहला रिकॉर्ड उर्दू में था 'आरजू है दम में जब तक दम रहे।' वहीं किसी ने मुझे गाते सुना और मुझे रंगमहल थिएटर में संगीतकार निताई मोतीलाल के सहायक की नौकरी मिल गई। वहाँ मैंने अभिनेता-नर्तक-गायक का भी काम किया। कुल चालीस रुपए वेतन मिलता था। वहीं संगीत निर्देशक हीरेन बोस की निगाह मुझ पर पड़ी और वे १९३४ के अंत में मुझे बंबई ले गए। बंबई में मुझे काफी संघर्ष करना पड़ा।"

दिल्ली आने के बाद अनिलदा काफी समय तक आकाशवाणी में राष्ट्रीय वाद्यवृन्द से जुड़े रहे। उस दौरान उन्होंने संगम, विदेशिनी, प्रतीक्षा, प्रिया, प्रेयसी, आनंद ध्वनि, इन्दु और सिंधु, राही अकेला, जीवन यमुना, वासवदत्ता आदि वाद्यवृंद की अनेक रचनाएँ तैयार कीं। वे संगीत में प्रगति तो चाहते हैं मगर परम्परा के अनुकूल। वे कहते हैं

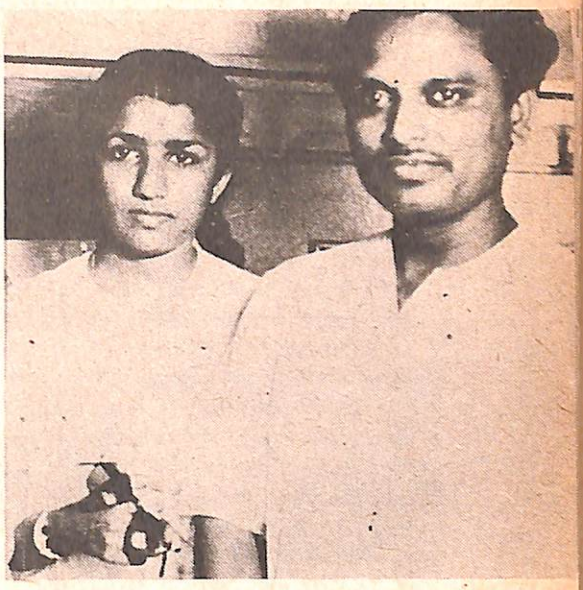

संगीतकार अनिल विश्वास के साथ लता।

"ऐसा नहीं हुआ तो हम विश्व संगीत में अपनी अलग पहचान रख नहीं पाएँगे। और इस प्रगति के लिए हमें कहीं से भी कुछ माँगने या चुराने की जरूरत नहीं है, क्योंकि हमारे पास अपनी सभी आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त संगीत सामग्री मौजूद है। मैं चुराने का धंधा नहीं कर सका, अंधी नकल भी मुझसे नहीं हुई।"

वाद्य-वृंद और गजलों को लेकर उन्होंने वर्षों काफी काम किया है। वाद्यवृंद के बारे में पूछने पर उन्होंने कहा, "वर्तमान ऑर्केस्ट्रा में जब एक साज पर एक स्वर मुखरित होता है तब उसी समय दूसरे साज पर अन्य स्वर बजाया जाता है। इस तरह विभिन्न साजों के अपने-अपने विशिष्ट स्वर जब हम एक साथ सुनते हैं तब कहते हैं यह ऑर्केस्ट्रा है। मध्य युग में अपने देश में ललित कलाओं में उस समय एक अनूठा मोड़ आया जब समूह के बदले व्यक्ति को प्रधानता मिली। परिणामस्वरूप न भारतीय चित्रकला में लैंडस्केप का विकास हुआ और न भारतीय संगीत में वाद्यवृंद का। फिल्मों के आरंभ के साथ वाद्यवृंद का पुनः प्रवेश हुआ। साथ ही नकल की प्रवृत्ति भी बढ़ी। फिल्म संगीतकार धड़ल्ले के साथ पश्चिमी वाद्यवृंद की सस्ती नकल करने लगे। वर्तमान युग में उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने संभवतः सबसे पहले वाद्यवृंद का वैज्ञानिक ढंग से उपयोग किया।

"भारतीय वाद्य यंत्रों के स्वरों की प्रकृति और प्रकार पर आज सारा पश्चिम मुग्ध है। कल्पना करो उस समय की जब पश्चिमी ऑर्केस्ट्रा में भारतीय वाद्य-यंत्रों को शामिल कर दिया जाएगा। स्वरों के उस गुलदस्ते में तब कितनी विचित्रता आ जाएगी। उसके लिए भारतीय वाद्ययंत्रों में ऐसे परिवर्तन किए जा सकते हैं कि वाद्यवृंद में उनका प्रयोग आसानी से हो सके। बहुत सारे वाद्ययंत्रों का तो अभी तक भारतीय वाद्यवृंद में भी उपयोग संभव नहीं है। तुरही और नरसिंहों के कितने प्रकार हैं। अगर बाँसुरी या बिगुल की तरह किसी प्रकार उनसे एक ही स्वर के बदले अलग-अलग स्वर

दूर हटो ए दुनिया वालों: पंडित प्रदीप

जा रहा है जिंदगी का कारवाँ

फिल्म संगीत के प्रारंभिक काल में पं. गोविंदराम का भी महत्वपूर्ण स्थान था। सी. रामचंद्र दो ही संगीतकारों से प्रभावित हुए थे। पं. गोविंदराम और दूसरे सज्जाद।

सन् १९३७ में जीवन-ज्योति उनकी पहली फिल्म थी। 'हिम्मत', 'आबरू', 'पगली' और 'सलमा' उनकी अच्छी फिल्में थीं। 'आबरू' और 'सलमा' दोनों नायक नजीर की फिल्में थीं जिनमें सितारा नायिका थी इसलिए ज्यादातर गाने सितारा ने गाए थे। १९४५ में लैला मजनूँ में गोविंदराम का संगीत पसंद किया गया था और 'जा रहा है कारवाँ, जिंदगी का कारवाँ' गीत बहुत लोकप्रिय हुआ था। ज्यादातर गीत जोहराबाई ने गाए थे। एक गीत में बातिश और रफी भी थे। 'नसीब' में राजकुमारी की गजल 'हाले दिल तुमको सुनाया जाएगा' कर्णप्रिय थी। 'दो दिल' और 'दूसरी शादी' अच्छी फिल्में थीं। 'दो दिल' में मुकेश ने पहली बार गोविंदराम के निर्देशन में गाया था।

'भोली' और 'माँ का प्यार' उनकी श्रेष्ठ फिल्में थीं। माँ का प्यार में लता मंगेशकर ने नूरजहाँ की तरह गाया है और पहली बार यह साबित कर दिया कि वह कितनी भी ऊँची पट्टी पर गा सकती हैं।

सत्रह-अठारह साल के लंबे कार्यकाल में संगीत निर्देशक के रूप में उनका स्थान कितना महत्वपूर्ण था, इस बात का पता इससे चलता है कि के. आसिफ ने 'मुगल-ए-आजम' के लिए पहले उनसे ही अनुबंध किया था।

प्रमुख फिल्में: जीवन-ज्योति (१९३७), हिम्मत (१९४१), आबरू, पगली, सलमा (१९४३), चालीस चोर, लैला-मजनूँ, नसीब, रत्नावली (१९४५), सस्सी पुन्नू (१९४७), दो दिल, दूसरी शादी (१९४७), राज मुकुट, शादी की रात (१९५०), जीवन नौका (१९५२), राजमहल (१९५३), नकाब (१९५४)।

◆◆◆

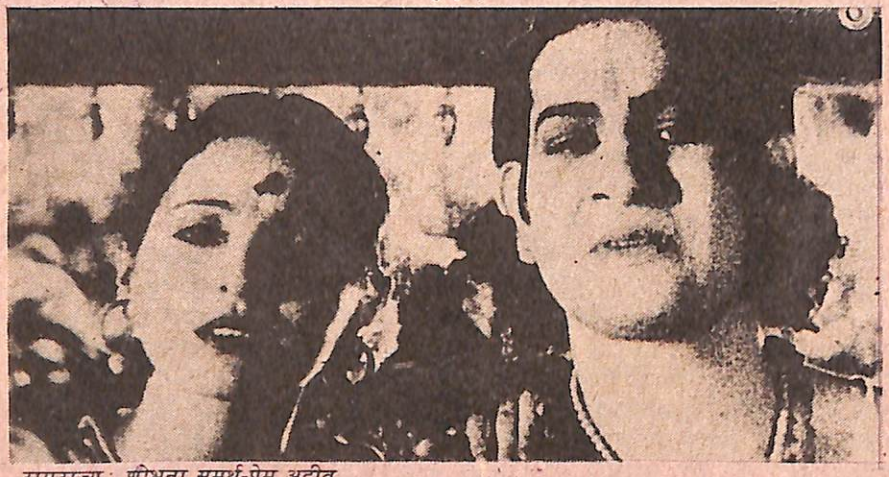

रामराज्य : शोभना समर्थ-प्रेम अदीब

वीणा मधुर-मधुर कछु बोल...

पौराणिक फिल्मों में बहुत लोगों ने संगीत दिया है लेकिन इन फिल्मों का गौरव और महिमा बरकरार रहे वैसा विशिष्ट संगीत सिर्फ शंकरराव व्यास ही देते थे। भरत मिलाप (४२) और रामराज्य (४३) इस दृष्टि से उल्लेखनीय फिल्में हैं। 'रामराज्य' के गीत 'भारत की एक सन्नारी की हम कथा सुनाते हैं' ने रामायण को घर-घर में पहुँचाया। फिल्म सूची: भरत मिलाप (४२), रामराज्य (४३), भक्त बिल्वमंगल, रामबाण (४८), राम विवाह (४९), भगवान श्री कृष्ण, राम दर्शन (५०)।

जिस दिन से जुदा हुए

श्यामबाबू पाठक ने जिन पंद्रह-सत्रह फिल्मों में संगीत दिया था उसमें किशोर शाहू की 'हमारी दुनिया' उल्लेखनीय थी। उसमें लता का 'जिस दिन से जुदा वो हमसे हुए' गीत मधुर गीतों में माना जाता है। केदार शर्मा के निर्देशन में बनी फिल्म 'सपना' में भी उन्होंने ही संगीत दिया था। फिल्म सूची: शमशीरबाज (४०), घर संसार, लाजवंती, मालन, प्यारा वतन (४२), ब्लैक मार्केट, कृष्ण-सुदामा, इम्तिहान (४७), अच्छा जी, जन्माष्टमी, प्रीत का गीत (५०), वनराज, सपना, हमारी दुनिया (५२), बॉम्बे सेंट्रल (६०), महबूबा (६५)।

यहाँ बदला वफा का बेवफा...

दिलीप-नूरजहाँ की भूमिका वाली फिल्म 'जुगनू' के संगीतकार फिरोज निजामी थे। उन्होंने भारत विभाजन के पहले अनेक फिल्मों में संगीत दिया था। उसके बाद वे पाकिस्तान चले गए और उनका फिल्मी सफर खत्म हो गया। जुगनू उनकी सबसे प्रसिद्ध फिल्म थी जिसमें नूरजहाँ और रफी का गीत—'यहाँ बदला वफा का' और नूरजहाँ के 'आज की रात उमंगें दिल की मचलीं' और 'हमें तो शामे गम में' जैसे मधुर गीत थे। फिल्म सूची: विश्वास (३३), उमंग, उस पार, बड़ी बात (४४), पिया मिलन, शरबती आँखें (४५), नेक परवीन, अमर राज (४६), जुगनू (४७), रंगीन कहानी (४७)।

नजर ने कह दिया

राजकपूर की भूमिका वाली फिल्म 'गोपीनाथ' में नीनू मजुमदार का संगीत था। उन्होंने गुड़िया (४७), पुल (४७), गोपीनाथ (४८), कुछ नया (४८), अफलातून (५०), रामी धोबन (५३), तीन तस्वीरें, भाई साहब (५४) में भी संगीत दिया था। 'भाई साहब' पांचोली की फिल्म थी। उसमें सी.एच. आत्मा का गाया 'नजर ने कह दिया' गीत बहुत लोकप्रिय हुआ। फिल्में: ब्लैक आउट (४२), अमानत (४३), मैं क्या करूँ (४५), परिस्तान (४४), स्कूल मास्टर (४३)।

निकाले जा सके तो क्या कहना। कोरनाल, भूगल, शंख, इसराज, सारंगी आदि ऐसे वाद्ययंत्र हैं जिनका विकास करने से वाद्यवृंद की संभावनाएँ निखर सकती हैं।

लेकिन सभी जानते हैं कि सामूहिक प्रयास का देश में अभाव रहा है। हर साज हर सुर में अच्छा नहीं बोलता। वाद्यवृंद के लिए ऐसे साज चाहिए जो एक ही स्वर में मिलाए जा सकें और उनसे अच्छे से अच्छा स्वर निकले। इसके लिए विशेष साज तैयार कराने पड़ेंगे। फिर, वाद्यवृंद के लिए अपने-अपने टुकड़े बजाने में सारा कौशल और शक्ति लगाने वाले वादक आम तौर पर नहीं मिलते। मिल भी नहीं सकते, क्योंकि वे व्यक्तिगत वादन का काम करना चाहते हैं और व्यक्तिगत वादन के काम से वाद्यवृंद का काम मूलतः भिन्न है। सिर्फ वाद्यवृंद के लिए कोई वादक तैयारी करे तो सवाल उठेगा, उसका भविष्य क्या होगा? इसलिए जरूरी है कि वाद्यवृंद के वादकों का भविष्य सुरक्षित बनाया जाए।

मेरा सपना रहा है कि पूर्ण रूप से भारतीय प्रकृति वाला एक सही राष्ट्रीय वाद्यवृंद तैयार किया जाए। मेरी इच्छा भारतीय संगीत को वाद्यवृंद के रूप में विश्व के संगीत मानचित्र में स्थापित करने की है ताकि अन्य देशों के अलावा भारतीय संगीत को भी उसके आकर्षण के साथ प्रस्तुत किया जा सके।

"सभी अक्सर कहा करते हैं कि मैं सपने देखा करता हूँ। मैं पूछता हूँ, सपने देखना पाप है? मैं जानता हूँ मेरे सपने कभी पूरे नहीं होंगे, लेकिन आप मुझे सपना देखने के सुख से क्यों वंचित रखना चाहते हैं?" अनिलदा का यह सवाल बार-बार कौंधता रहता है। ■

ये कौन आज आया सबेरे-सबेरे: पंकज मलिक

ओजस्वी और गंभीर आवाज के धनी **पंकज कुमार मलिक** एक ऐसे इंसान थे जिन्होंने धन और यश दोनों का डटकर मुकाबला किया। वे निःसंदेह एक उच्च कोटि के गायक थे और संगीत की बारीकियों का उन्हें समुचित ज्ञान था। ऐसे गीत जो स्वयं गा सकते थे वे भी उन्होंने सहगल से गवाए। न्यू थिएटर्स की अनेक फिल्मों का संगीत निर्देशन भी पंकज मलिक ने किया। उनकी धाक बी.एन. सरकार पर थी और प्रमथेश बरुआ भी उनका लोहा मानते थे। 'छुपो ना छुपो ना ओ प्यारी सजनिया, दो नैना मतवारे तिहारे हम पर जुलम करे' जैसे गीत इस बात के प्रमाण हैं कि इन्हें ठीक से गा पाने के बावजूद भी पंकज मलिक ने फिल्मों में सहगल से ही गवाए। जब सारी दुनिया अपने कला को पैसों की खातिर ही काम में लेती हैं, पंकज मलिक ने अपनी कला को चंद चाँदी के टुकड़ों पर कुर्बान नहीं होने दिया। वे इतने उदारमना थे कि कोई भी उन्हें गाने का आग्रह करता और वे बिना हीले हवाले के चले जाते। लोगों के मन को प्रसन्न करना ही उनकी संगीत साधना की मूल प्रेरणा थी। एक बार स्टुडियो में हारमोनियम में कोई धुन बना रहे थे तभी कॉलेज के कुछ छात्र आए और उनसे जलसे में गाने का निवेदन किया। वे तत्काल तैयार हो गए। इसी बीच वहाँ मौजूद गायक के.सी.डे. ने हस्तक्षेप करते हुए छात्रों से गायन के बदले उचित पारिश्रमिक देने पर जोर दिया। इसी घटना के बाद उन्होंने दुनियादारी सीखी। सोने की तराजू पर उन्होंने कभी स्वर को नहीं तौला। अपने 'स्व' के लिए उन्होंने कभी दूसरों के हक को नजर अंदाज नहीं किया। पंकज मलिक के जीवन से यह बात उजागर होती है कि भगवे वस्त्र धारण किए बिना भी मनुष्य जीवन में संन्यासी हो सकता है। रवींद्र संगीत को मूर्त रूप देने में पंकज मलिक ने लोक धुनों और शास्त्रीय संगीत के साथ पश्चिमी संगीत का संगम कर उसे बहुआयामी संगीत पद्धति में बदल दिया। उसे बंगाल से बाहर लाकर सारे हिन्दुस्तान से परिचित कराया। न्यू थिएटर्स की प्रसिद्ध फिल्म मुक्ति में रवींद्र संगीत का प्रयोग जिस कुशलता से किया गया है वह अपने आप में बेमिसाल है। पंकज मलिक के संगीत सफर की यह महान उपलब्धि कही जाएगी कि कवि रवींद्र जैसे अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त व्यक्ति अपनी कहानी पर आधारित फिल्मों में ही अपने गीत देते थे, लेकिन उन्होंने पंकज मलिक को ऐसी फिल्मों में भी अपने गीतों का प्रयोग करने की अनुमति दी जिनकी कहानी उनकी नहीं थी। यह एक असाधारण बात थी।

अपनी संस्था के प्रति निष्ठा के कारण पंकज मलिक न्यू थिएटर्स छोड़कर कभी दूसरी संस्था में नहीं गए। सन् १९२६ में कलकत्ता में रेडियो केंद्र खुला लगभग तभी से १९७५ तक वे रेडियो से ही जुड़े रहे। प्रत्येक रविवार की सुबह संगीत के

पाठ रेडियो के माध्यम से पढ़ाकर उन्होंने आने वाली पीढ़ी को संगीत से परिचित कराया। दुर्गा पूजा के अवसर पर प्रत्येक वर्ष 'महिषासुर मर्दिनी' नामक कार्यक्रम वे प्रस्तुत करते थे जो बहुत ही लोकप्रिय था।

सन् १९०४ में कलकत्ता में जन्मे पंकज मलिक ने दुर्गादास बेनर्जी से छह वर्ष तक संगीत शिक्षा पाई। स्वर लिपि को परिभाषित करने वाली पुस्तक को मिलाकर उन्होंने चार ग्रंथ लिखे। हृदयाघात के कारण तिहत्तर वर्ष की परिपक्व उम्र में उन्नीस फरवरी १९७८ के दिन उनका निधन हुआ। संगीत की दुनिया को उनकी दुर्लभ देन है उनके गीत संगीत का अनमोल खजाना। चार दशकों के अंतराल के बावजूद आज भी उनके अनेक गीत लोकप्रिय हैं- *आई बहार आई (डॉक्टर) *ये कौन आज आया सवेरे-सवेरे (नर्तकी) *चले पवन की चाल (डॉक्टर) *कौन देश है जाना बाबुल (मुक्ति) *छुपो ना-छुपो ना (मांय सिस्टर) *ये रातें ये मौसम *प्राण चाहे नैना ना चाहे *तेरे मंदिर का *मैंने आज पिया (गीत)।

पंकज मलिक भारतीय सिनेमा संगीताकाश के ध्रुव नक्षत्र हैं। महात्मा का मन और राजर्षि का हृदय दोनों विधाता ने उन्हें दिए थे।

सुर सागर (१९३२), संगीत रत्नाकर (१९५६), पद्मश्री (१९७०), दादा साहेब फालके पुरस्कार (१९७३), रवींद्र तत्वाचार्य (१९७५) और ग्रामोफोन कंपनी ऑफ इंडिया की गोल्डन डिस्क (१९७६), ये अलंकरण जनसत्ता व राजसत्ता द्वारा पंकज मलिक को प्रदान किए गए।

● रमेश वैद्य

बहारों ने जिसे छेड़ा

संगीतकार ज्ञानदत्त का नाम चालीस के दशक में मशहूर था। उन्होंने प्रारंभ में रनजीत की अनेक फिल्मों में संगीत दिया। उनमें से बेटी, ढिंढोरा, ससुराल, भक्त सूरदास, धीरज, बंसरी, नर्स वगैरह फिल्मों का संगीत उल्लेखनीय है। सुनहरे दिन (४९) फिल्म में उन्होंने राजकपूर के लिए मुकेश की आवाज में कर्णप्रिय धुनें बनाई थीं। मुकेश का गाया गीत 'बहारों ने जिसे छेड़ा' तथा शमशाद का गाया 'ठंडी-ठंडी हवा जो आए' गीत उल्लेखनीय हैं। प्रमुख फिल्में: कंचन, ससुराल (४१), आँख मिचौली, अरमान, भक्त सूरदास, धीरज, तूफानमेल, सबेरा (४२), बाँसुरी, नर्स, पैगाम, शंकर पार्वती (४३), अनबन, इंसान (४४), चाँद तारा, छमिया, पन्नादाई (४५), दूल्हा, कमला (४६), चंदा की चाँदनी, दुखियारी, लाल दुपट्टा (४८), सुनहरे दिन (४९), दिलरूबा (५०)।

जगमोहन

*रवीन्द्र संगीत की धारा को फिल्मों में लाकर लोकप्रिय बनाने वाले गायकों तथा संगीतकारों में जगन्मय मित्र का नाम विशेष स्थान रखता है। उन्हें हम जगमोहन के नाम से जानते हैं। कलकत्ता के एक जमींदार परिवार में ६ सितंबर १९१८ को उनका जन्म हुआ था। सुगम के साथ उन्होंने शास्त्रीय संगीत पांडिचेरी के दिलीपकुमार राय से सीखा था। मैट्रिक तक शिक्षा पाने के बाद वे आकाशवाणी पर गाने लगे थे। बंगाली फिल्म के बाद पहली बार हिन्दी फिल्म कबीर (१९४२) में उन्होंने गीत गाया था। हास्पिटल, जमीन-आसमान, मेघदूत तथा सरदार जैसी पच्चीस फिल्मों में उन्होंने गीत गाए हैं। फिल्मों के साथ उनके गैर फिल्मी गीत भी बेहद लोकप्रिय हैं। भारी आवाज के धनी जगमोहन की आवाज पंकज मलिक के समकक्ष लगती है। *ओ वर्षा के*

*पहले बादल (मेघदूत) *एक गीत सुनाना है (जमीन-आसमान) *क्या मजे की बात (सरदार) उनके उल्लेखनीय फिल्मी गीत हैं।*

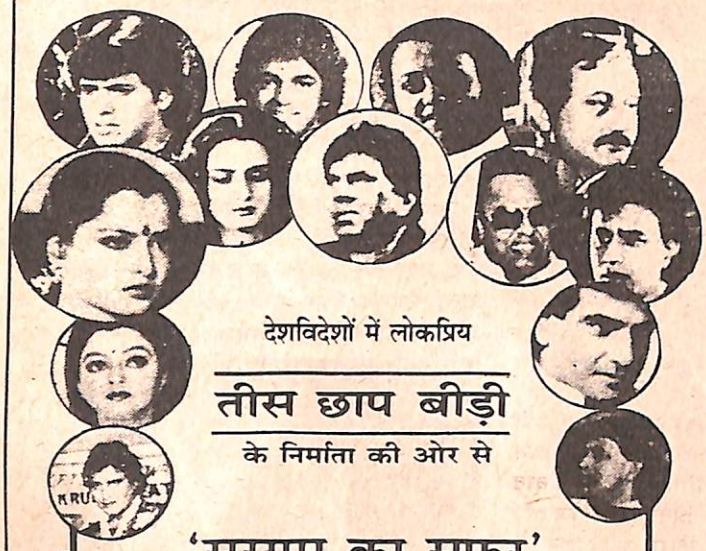

देशविदेशों में लोकप्रिय

तीस छाप बीड़ी

के निर्माता की ओर से

'सरगम का सफर'

के प्रकाशन पर

हार्दिक शुभ कामनाऐं

तीस छाप बीड़ी के निर्माता :

भारत बीड़ी वर्क्स प्रा. लि.,
मेंगलोर-575 003.

ONIDA

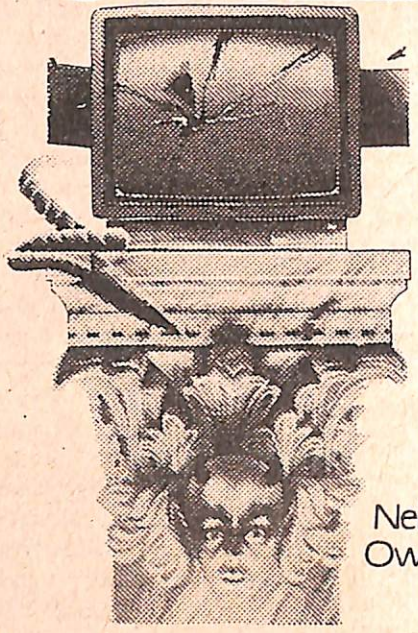

Neighbour's envy.
Owner's pride.

Avenues:O:270:88

सरगम का सफर
प्रकाशन पर

हार्दिक बधाइयां

चलचित्र प्रदर्शक संघ, जबलपुर

हर दिल पसंद,हर दिन पसंद

कमल किशोर बीड़ी
कमल किशोर जर्दा

कमल किशोर तम्बाकू
कमल किशोर माचिस
हमेशा वापरें !

मे. कमल किशोर जर्दा भंडार, हरदा

दुनिया में गरीबों को आराम नहीं मिलता: गुलाम हैदर

हिन्दी फिल्म संगीत में प्रथम बार पंजाबी लोकधुनों का प्रयोग कर फिल्म संगीत को दीवानखानों से बाहर लाकर आम आदमी तक पहुँचाने वाले गुलाम हैदर का जन्म १९०८ में हैदराबाद (सिंध) में हुआ था। उन्होंने बाबू गणेशलाल से संगीत की तालीम ली। वे दाँत के डॉक्टर थे। बाद में वे कलकत्ता की एक नाट्य कंपनी में हारमोनियम वादक के रूप में जुड़े। १९३२ में कारदार ने लाहौर में अपनी फिल्म 'स्वर्ग की सीढ़ी' में संगीत देने का उन्हें पहला मौका दिया। यह फिल्म ज्यादा नहीं चली। इस बीच पंचोली ने उन्हें अपनी प्रारंभिक पंजाबी फिल्म 'गुलेबकावली' और बतौर संगीतकार लिया। इस फिल्म में नूरजहाँ ने बेबी नूरजहाँ के रूप में गीत गाए और फिल्म बहुत चली। १९४१ में पंचोली की 'खजान्ची' फिल्म के साथ उनके करियर में बड़ा परिवर्तन आया। चालीस वें दशक के बाद, विश्व युद्ध के असर के कारण निर्माण में काला धन आने लगा और फिल्म और संगीत की शैली में जो परिवर्तन चाहिए था, उनको हैदर जैसे संगीतकार ने पूरा किया। एक तरफ लाहौर में गुलाम हैदर छा गए और दूसरी तरफ उन्हीं दिनों बंबई में नौशाद 'प्रेमनगर' और 'स्टेशन मास्टर' जैसी फिल्मों के संगीत द्वारा अपनी धाक जमा रहे थे। उनकी 'खजान्ची' फिल्म के 'सावन के नजारे हैं.....' और 'दिवाली फिर आ गई सजनी.....' गीत बहुत लोकप्रिय हुए।

गुलाम हैदर ने पहली बार राजदरबार के कुशल साजिन्दों को इकट्ठा किया। पटियाला से उस्ताद फतेहअली खान तथा सोनीखान नाम के प्रख्यात क्लेरोनेट वादक को उन्होंने अपने ग्रुप में शामिल किया। फिल्म संगीत में पहली बार उन्होंने ढोलक का उपयोग किया जो करीब-करीब एक दशक तक चला। उन्होंने तबला वादन को भी शिखर तक पहुँचाया और गीतों में आए हुए अंतरों का तरीका बदल दिया।

पंचोली की पंजाबी फिल्म 'चौधरी' (१९४१) और हिन्दी फिल्म 'खानदान' (१९४२), 'जमींदार' (१९४२) और 'पूँजी' (१९४३) में उन्होंने संगीत दिया। 'जमींदार' फिल्म में शमशाद का गाया हुआ गीत 'दुनिया में गरीबों को आराम नहीं मिलता.....' बहुत प्रचलित हुआ। १९४४ में बंबई आने के बाद उन्होंने फिल्मीस्तान की प्रथम फिल्म 'चल-चल रे नौजवान' में संगीत दिया। उसके बाद आसिफ की फिल्म 'फूल' (१९४५) आई। उसी साल 'जगबीती' और 'बेहराम खान' (१९४६) तथा मिनर्वा की 'शमा' फिल्में आईं। 'शमा' का एक गीत 'एक तेरा सहारा.....' और युगल गीत 'एक याद किसी की आती रही.....' बहुत मधुर थे।

१९४८ में 'मजबूर' और 'शहीद' फिल्में आईं। 'मजबूर' फिल्म का लता का गाया हुआ गीत 'दिल मेरा तोड़ा.....' बहुत लोकप्रिय हुआ। उस समय हैदर फिल्म निर्माताओं से कहा करते थे कि लता मंगेशकर एक दिन चोटी की गायिका बनेंगी।

शहीद में उन्होंने सुरेन्द्र कौर को पहली बार गाने का मौका दिया और इस तरह नूरजहाँ, सुरेन्द्र कौर व लता को फिल्मों में लाने का श्रेय हैदर जी को मिला। 'शहीद' फिल्म का 'वतन की राह में वतन के नौजवाँ शहीद हो.....' गीत देशभक्ति का श्रेष्ठ गीत था। १९४९ में 'कनीज' और १९५० में उनकी आखिरी फिल्म 'पुतली' आई। इस दरमियान उनके ज्यादातर साजिन्दे लाहौर चले गए और बंबई के नए साजिन्दे उन्हें जमे नहीं, इसलिए वे खुद भी लाहौर चले गए। लाहौर में उन्होंने 'गुलनार' नाम की एक फिल्म बनाई, जो १९५३ में प्रदर्शित हुई लेकिन उसके पहले ही उनका इंतकाल हो गया। उनके सम्मान में बंबई के संगीतकारों ने एक दिन का अवकाश रखा और उनकी शोकसभा में श्रद्धांजलि देते हुए लता मंगेशकर रो पड़ी थीं।

गुलाम हैदर ने संगीतकारों का दर्जा ऊँचा उठाया। वे पहले संगीतकार थे जिन्हें एक फिल्म के लिए पच्चीस हजार रुपए जैसी मोटी रकम मिली। अपने साजिन्दों को भी वे निर्माता से झगड़कर अच्छा मेहनताना दिलवाते थे।

फिल्म की सूची: 'स्वर्ग की सीढ़ी' (१९३२), 'गुलेबकावली' (१९३९), 'चौधरी' (१९४१), 'खजांची' (१९४१), 'जमींदार' (१९४२), 'खानदान' (१९४२), 'पूँजी' (१९४३), 'चल

चल रे नौजवान' (१९४४), 'फूल' (१९४५), 'हूँमायू' (४५), 'बहरामखान' (१९४६), 'जगबीती' (१९४६), 'शमा' (१९४६), 'मझधार' (१९४७), 'मेंहदी' (१९४७), 'बरसात की एक रात' (१९४८), 'मजबूर' (१९४८), 'पद्मिनी' (१९४८), 'पतझड़' शहीद (१९४८), कनीज'(१९४९), 'पुतली' (१९५०) और 'दो सौदागर' (१९५०)।

चलो दिलदार चलो गुलाम मोहम्मद

शायर साहिर लुधियानवी ने कभी लिखा था–'ये बस्ती है मुर्दापरस्तों की बस्ती।' जिंदगी भर आदमी तमन्नाओं की आस में जिंदा रहता है, पर आखिर तक उसे कुछ भी हासिल नहीं होता, और मरने के बाद उसकी कद्र होती है। संगीतकार गुलाम मोहम्मद ने भी यही नियति भोगी। तमाम जिंदगी गुलाम मोहम्मद ने संगीत की सेवा में अर्पित कर दी थी, पर बदले में उन्हें कुछ नहीं मिला। फिल्मी दुनिया की विषैली राजनीति ने उन्हें जार-जार कर डाला।

आज भी पाकीजा के गीत सुनने वालों को ताजा हवा का झोंका देते हैं। इन्हीं लोगों ने, चलो दिलदार चलो, दुपट्टा मेरा जैसे सदाबहार गीत अब भी श्रोताओं की चाह बने हुए हैं। दरअसल पाकिजा के सभी गीतों ने रिकॉर्ड तोड़ सफलता हासिल की थी, जिसके संगीतकार थे मरहूम गुलाम मोहम्मद। 'दुपट्टा मेरा' की कर्णप्रिय धुन बाँधने वाले गुलाम मोहम्मद को उनके जीते जी दुपट्टे की छाया तक नसीब नहीं हुई।

संगीत की विरासत उन्हें अपने पुरखों से मिली थी। पिता नबी बक्ष उम्दा तबलावादक थे। पिता ने ही गुलाम मोहम्मद पर संगीत के पहले संस्कार किए। अलबर्ट थिएटर में पिता-पुत्र मिलकर संगीत के जलसे किया करते थे। तबलावादन के अलावा अभिनय में भी उनकी दखल थी। पच्चीस रुपए मासिक वेतन पर अलबर्ट थिएटर में उनकी नौकरी पक्की हुई थी कि अलबर्ट थिएटर की माली हालत बिगड़ गई और गुलाम मोहम्मद नौकरी की तलाश में भटकने लगे। एक दूसरी कंपनी के आर्केस्ट्रा में वे चार आना प्रतिदिन के पारिश्रमिक पर नौकरी करने लगे। घूमते-फिरते यह कंपनी एक बार जूनागढ़ पहुँची वहाँ हुए कार्यक्रम में गुलाम मोहम्मद पर प्रसन्न होकर एक मंत्री ने उन्हें स्वर्ण जड़ित तलवार भेंट की।

आखिरकार १९२४ में गुलाम मोहम्मद बंबई आ गए। आठ वर्षों तक हैरानी में काटने के बाद १९३२ में सरोज मूवीटोन में तबला वादक की हैसियत से उनकी नियुक्ति हुई। उस कंपनी के राजा

भर्तृहरी चित्र में उनके तबला वादन की खूब प्रशंसा हुई। गुलाम मोहम्मद का चलन बढ़ने लगा। संगीतकार अनिल विश्वास के साथ काम करने का भी उन्हें अवसर मिला। इन्हीं दिनों संगीतकार नौशाद के वे संपर्क में आए। नौशाद के साथ पूरी ईमानदारी के साथ उन्होंने काम किया और नौशाद का दिल जीत लिया। संजोग से लगाकर आन फिल्मों तक वे नौशाद के सहायक रहे। गुलाम मोहम्मद का तबला और ढोलक का ठेका नौशाद के संगीत की विशेषता बन गया।

आन के बाद गुलाम मोहम्मद ने स्वतंत्रतापूर्वक संगीत देना शुरू किया। पारस, मेरा ख्वाब, टाइगर क्वीन चित्रों के बाद पी. एन. अरोरा की 'डोली' फिल्म में भी उन्हें संगीत निर्देशन का अवसर मिला। बस, यहीं से उनका नाम जोरों से चल निकला। पगड़ी, पारस, परदेस, नाजनीन, गौहर, रेल का डिब्बा, हूरे अरब, सितारा आदि फिल्मों को उन्होंने संगीत दिया। उन दिनों परदेस के दो गीत खूब पसंद किए गए थे। वे गीत थे—मेरे घुंघट वाले बाल (शमशाद बेगम) और किस्मत बनाने वाले जरा सामने तो आ (लता)।

रोशन और सी. रामचंद्र की तरह गुलाम मोहम्मद की भी संगीत देने की स्वतंत्र शैली थी। यों गुलाम मोहम्मद की रचनाओं को सरसरी निगाह से देखने पर लगता है कि उनकी धुनों में पुनरावृत्ति होती है, पर तनिक गंभीरता से सुनने पर उन धुनों की खूबियाँ भी ध्यान में आने लगती हैं।

कुंदन का गीत-जहाँ वाले हमें दुनिया में क्यूँ पैदा किया तूने और शिकायत क्या करूँ दोनों तरफ गम का फसाना है (लता) तथा शमा में सुमन कल्याणपुर का गाया हुआ, दिल गम से जल रहा है पर धुआँ ना हो गीत गुलाम मोहम्मद की प्रतिभा को उजागर करने के लिए पर्याप्त हैं।

मटके का वाद्य की तरह उपयोग करने की परम्परा को फिल्मों में लोकप्रिय बनाया श्यामसुंदर और गुलाम मोहम्मद ने। मटके के ठेके पर बनाई गई उनकी दो रचनाएँ तब लोकप्रियता की बुलंदियों पर थीं। वे रचनाएँ थीं पारस की इस दर्द की मारी दुनिया में मुझसा भी कोई मजबूर न हो (लता) और शायर का 'ये दुनिया है यहाँ दिल का लगाना' (लता-मुकेश)।

गुलाम मोहम्मद के संगीत प्रधान चित्र मिर्जा गालिब को राष्ट्रपति पदक मिला था। गालिब फिल्म की—है बसके हर एक उनके इशारे में निशाँ (रफी), फिर मुझे दीदए तर याद आया, इश्क मुझको नहीं वहशत ही सही, दिले नादाँ तुझे हुआ क्या है (तलत) ये गजलें तब घर-घर गूँजी थीं। गालिब की गजलों को हल्की धुनों में बाँधकर लोकप्रिय बनाना हमेशा चुनौती रहा है। पर गुलाम मोहम्मद ने यह भी कर दिखाया था।

परिस्थिति के अनुरूप संगीत देना भी गुलाम मोहम्मद की विशेषता थी। बानगी के तौर पर लैला-मजनू में तलत महमूद द्वारा गाया। हुआ 'चल दिया कारवाँ' इस गीत को देखिए। ऊँटों का कारवाँ चल रहा है और चलते हुए गले में बँधी घंटियों का नाद और रेगिस्तान की स्तब्धता इन सबका एहसास यह गीत सुनते हुए होता है। इसी फिल्म का एक और गीत 'आसमाँ वाले तेरी दुनिया से जी घबरा गया (लता-तलत) खूब लोकप्रिय हुआ था। लैला-मजनू और नाजनीन के कारण तो उन दिनों तलत की लोकप्रियता बेशुमार बढ़ गई थी। दिले नादान की तलत द्वारा गाई हुई गजलें जो खुशी से चोट खाए, वो जिगर कहाँ से लाऊँ, जिंदगी देने वाले सुन, ये रात सुहानी रात नहीं थी बेहतरीन थी। पर जो भी हो, इन्हीं लोगों ने और चलो दिलदार चलो जैसी रचनाएँ आज भी संगीत प्रेमियों को गुलाम मोहम्मद की याद ताजा कर देती हैं। अफसोस यही रहा कि निधन के बाद ही गुलाम मोहम्मद की प्रतिभा को असली दाद मिली।

यह जग की फुलवारी प्रभुजी: मास्टर कृष्णराव

नागेश्वर राव दक्षिण भारत के शीर्षस्थ फिल्म संगीतकारों में से एक हैं। वे सार्वजनिक तौर पर तथा निजी चर्चाओं में खुलकर कहते हैं कि उनके संगीत को प्रभावित करने वाले संगीत शिरोमणि 'प्रभात' के मास्टर कृष्णराव हैं। फिल्मी दुनिया से चार दशक पूर्व दूर हो जाने वाले संगीतकार के लिए इससे बड़ी उपलब्धि और सफलता और क्या हो सकती है। मास्टर कृष्णराव का जन्म १८९८ में हुआ था तथा अभिनय एवं संगीत के प्रति उनका लगाव बचपन से ही था। गायक, संगीतकार एवं अभिनेता के रूप में मराठी मंच पर काम करते हुए वे बालगंधर्व के संपर्क में आए। बालगंधर्व ने उनकी प्रतिभा को पहचाना और प्रभात (पूना) में काम करने का आग्रह किया। 'अमृत मंथन' की सफलता के बाद प्रभात में

संत एकनाथ के जीवन पर फिल्म बनाने की तैयारियाँ चल रही थीं। 'महात्मा' नाम से बनाई जाने वाली इस फिल्म की मुख्य भूमिका बालगंधर्व स्वयं कर रहे थे तथा उन्हीं की सिफारिश पर मास्टर कृष्णराव को संगीत निर्देशन का काम सौंपा गया। शास्त्रीय राग पर आधारित इस फिल्म के भजनों को उस जमाने में अपार लोकप्रियता मिली, राग पहाड़ी पर आधारित भजन, "यह जग की फुलवारी प्रभुजी" आज भी मन में शांति भर देता है। इस फिल्म के अन्य गीत भी सुपर हिट रहे और मास्टर कृष्णराव एक संगीत निर्देशक के रूप में स्थापित हो गए। उस जमाने के सेंसर को फिल्म के नाम महात्मा पर आपत्ति हुई और नाम बदल कर 'धर्मात्मा' कर दिया गया।

इसके बाद अगली फिल्म 'अमर ज्योति' थी जो १९३६ में रिलीज हुई। इस फिल्म में 'बेकग्राउंड म्युजिक' के जो अनूठे प्रयोग हुए उनकी वजह से मास्टर कृष्णराव काफी चर्चित हुए। आदमी १९३९ में प्रदर्शित हुई इसका गीत 'किसलिए कल की बात, काटे हँसी खुशी में रात' अपने आशावादी संदेश के कारण लोगों की जबान पर चढ़ गया। गोपाल कृष्ण, पड़ोसी आदि इनकी अन्य सफल फिल्मे थीं। वी. शांताराम ने जब प्रभात छोड़कर 'राजकमल' की स्थापना की तब मास्टर कृष्णराव भी उनके साथ आ गए। संत कवि 'माली' के जीवन पर इसी नाम से बनी फिल्म में कृष्णराव ने नायक और संगीत निर्देशक की दुहरी भूमिका अदा की। हिन्दी और मराठी में बनी इस फिल्म का संगीत सराहा गया। इसके बाद कुछ अन्य फिल्मों का संगीत निर्देशन देने के बाद १९४६ से वे पुनः मराठी मंच की ओर मुड़ गए। नाट्य-निकेतन के रागनेकर के साथ मिलकर उन्होंने मराठी नाटकों को अविस्मरणीय संगीत से अलंकृत किया। 'कुलवधू' अपनी संगीत क्षमता के कारण मराठी के सर्वाधिक सफल मंचीय नाटक के रूप में सफलता के कई कीर्तिमान स्थापित कर गया।

सच कहा जाए तो मास्टर कृष्णराव की प्रतिभा, योग्यता और देन का उचित मूल्यांकन होना अभी शेष है।

बड़ी मुश्किल से दिल की बेकरारी को करार आया

चालीस के दशक में नौशाद, शौकत हुसैन के नाम से संगीत देते रहे। बाद में नौशाद का नाम प्रसिद्ध हो जाने से निर्माता नक्शब के सुझाव पर 'नगमा' (५३) से उन्होंने नाशाद नाम से संगीत देना शुरू कर दिया। 'नगमा' के गीत 'काहे जादू किया', 'बड़ी मुश्किल से दिल की बेकरारी' (शमशाद) तथा 'तीर चला' (तलत) गीत लोकप्रिय हुए थे। 'बारादरी' और के. अमरनाथ की 'बड़ा भाई' उनकी उल्लेखनीय फिल्में हैं। पाकिस्तान जाने के बाद भी कुछ फिल्मों में उन्होंने संगीत दिया था। १९८१ के आसपास वहीं उनका निधन हुआ। फिल्में: जीने दो, पायल, सुहागी, टूटे तारे (४८), दादा (४९)।

◆◆◆

पण्डित अमरनाथ

चालीस के दशक में पं. अमरनाथ ने कई फिल्मों में संगीत दिया जिनमें पंचोली की 'दासी' (४४) उल्लेखनीय है। इसमें जीनत बेगम की कई सुंदर गजलें थीं। उनकी विशेष रूप से उल्लेखनीय फिल्मों में 'धमकी', 'शीरी-फरहाद', 'मिर्जा-साहिबा' (४७) थीं। अंतिम बार संगीतकार के रूप में उनका नाम 'गर्म कोट' (५५) में पढ़ने को मिला। फिल्में: पापी (४३), दासी, पंछी, इरादा (४४), कैसे कहूँ, धमकी, रागिनी, शीरी फरहाद (४५), झुमके, शहर से दूर, शालीमार, शाम सवेरा (४६), मिर्जा साहिबा (४७), रूपरेखा (४८), एक तेरी निशानी (४९), गर्म कोट (५५)।

मैं चाल चलूँ मतवाली: आर.सी.बोराल

राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी से दादा फालके अवार्ड लेते हुए आर.सी. बोराल

आर. सी. बोराल ने न्यू थिएटर्स की अट्ठाइस फिल्मों में संगीत दिया था। विशेष रूप से उल्लेखनीय थीं, 'प्रेसिडेंट', 'विद्यापति', 'स्ट्रीट सिगर' तथा 'लगन'। 'विद्यापति' का गीत 'मैं चाल चलू मतवाली' सुन कर लोग झूम उठते हैं। सहगल के अमर गीतों में से अधिकांश की रचना बोराल ने ही की है। नितिन बोस द्वारा बंबई में बनाई गई फिल्म 'दर्दे दिल' में बोराल ने लता मंगेशकर से ही गीत गवाए थे। इनमें 'ना तो दिन ही वो मेरे' बहुत ही कर्णप्रिय था। 'स्वामी विवेकानंद' (१९५५) में तलत महमूद का गाया हुआ गीत 'जाएँगे कहाँ' उल्लेखनीय था। प्रकाश की फिल्म 'चैतन्य महाप्रभु' में भी बोराल ने तलत से ही 'प्रियतम संसार' गीत गवाया था। आर.सी. बोराल ने ही 'धूप छाँव' फिल्म से हिंदी में पार्श्वगायन की परंपरा शुरू की। रवींद्र संगीत को फिल्म संगीत के रूप में उन्होंने बड़ी खूबी से ढाला। उमाशशि, पहाड़ी सान्याल, सहगल, कानन देवी आदि के सुरीले कंठ का उन्होंने भरपूर उपयोग किया। भारतीय फिल्म संगीत के प्रारंभिक युग में उन्होंने ऐसे कई नए रास्ते निकाले जिन पर उनके अनुगामी आसानी से आगे बढ़ते गए। पंकज मलिक ने भी एक गायक और संगीतकार के रूप में उन्हीं के कदमों में बैठकर तालीम ग्रहण की। सन् १९८१ में उन्यासी वर्ष की उम्र में उनका निधन हुआ। बोराल को संगीत विरसे में मिला था। उनके पिता लालचंद्र बोराल शास्त्रीय संगीत के अच्छे ज्ञाता तथा ध्रुपद शैली के प्रख्यात गायक थे। वे स्वयं बढ़िया तबला-वादक थे तथा गायक और तबला-वादक के बीच बढ़िया सामंजस्य स्थापित करने में निष्णात थे। न्यू थिएटर्स के स्वामी बी.एन. सरकार के साथ उनके मधुर संबंधों के कारण ही इस संस्था के साथ उनका संपर्क इतना लंबा चला और दोनों ने मिलकर फिल्म-संगीत की मजबूत बुनियाद रखी। बोराल ने कई मूक फिल्मों में पार्श्व संगीत भी दिया था। फिल्मी दुनिया को इनके योगदान पर १९७८ में दादा साहेब फालके अवार्ड भी दिया गया था। ■

कैसे कोई जिए जहर है जिन्दगी: तिमिर बरन

फिल्मों में आने के पूर्व तिमिर बरन सरोद वादक के रूप में जाने जाते थे। वे उस्ताद अल्लाउद्दीन खाँ के शिष्य थे। उदयशंकर की नृत्य नाटिका तथा साधना बोस के नृत्यों के लिए भी संगीत रचना तिमिर बरन ही करते थे। संगीत निर्देशक के रूप में 'देवदास' उनकी पहली फिल्म थी और उसी में उन्होंने अपना सर्वश्रेष्ठ संगीत दिया। न्यू थिएटर्स की 'पुजारिन' तथा अधिकार' फिल्मों में भी उन्होंने संगीत दिया तथा नृत्यों और नृत्य नाटिकाओं में वाद्यवृंद का प्रयोग करने वाले वे पहले संगीत निर्देशक थे। जिन दिनों चिमनलाल त्रिवेदी फिल्म निर्माण के शिखर पर थे, उनकी 'लक्ष्मी' और 'सुहाग' सहित कोई चालीस फिल्मों में उन्होंने संगीत दिया। वाड़िया ने साधना बोस को लेकर जो 'राजनर्तकी' फिल्म बनाई थी उसमें भी तिमिर बरन का ही संगीत था। इसके बाद अंत में १९५४ में 'बादबान' में उनका संगीत सुनने को मिला। इस फिल्म में हेमंत कुमार और गीता दत्त द्वारा गाए गीतों 'कैसे कोई जिए' से जीवन की विफलता का दर्द टपकता है। 'देवदास' के 'बालम आन बसो मोरे मन में' से लेकर 'मत भूल मुसाफिर', 'छूटे असीर तो बदला हुआ जमाना था', तथा 'दुःख के दिन अब बीतत नाहीं' जैसे अमर गीत तिमिर बरन की संगीत सिद्धि के साक्षी हैं। 'देवदास' के बंगाली संस्करण में आर.सी. बोराल और पंकज मलिक का संगीत था। जिस समय हिंदी 'देवदास' बननी शुरू हुई तो बरूआ ने उसके लिए भी इन्हीं का चयन किया था। हिंदी संस्करण की शूटिंग दो नंबर के स्टुडियो में होती थी जिसका प्रभार जतींद्रनाथ मित्र के पास था। उन्होंने इस स्टुडियो की संगीत-व्यवस्था पहले से तिमिर बरन को सौंप रखी थी इसलिए उन्होंने बरुआ से अनुरोध किया कि हिंदी 'देवदास' का संगीत भी उन्हें ही देने दिया जाए। बरुआ ने थोड़ी हिचकिचाहट के बाद यह बात मान ली और जो नतीजा सामने आया उससे वे खुश हो गए। 'देवदास' में तिमिर ने पहली बार दस-बारह साजिंदों के ऑर्केस्ट्रा का प्रयोग कर अद्‌भुत प्रभाव पैदा किया। १९४० में बी.एन. सरकार के बहुत समझाने के बावजूद उन्होंने न्यू थिएटर्स छोड़ दिया और बंबई में साधना बोस की नृत्य नाटिकाओं में संगीत देते रहे। इसके अलावा उन्होंने सुभाषचंद्र बोस के लिए 'वंदे मातरम्' की धुन बनाई तथा १९७१ में बंगलादेश की स्वतंत्रता के बाद 'मुक्ति संग्राम' नामक संगीत रचना तैयार की।

रात्रि कालीन सेवा–

मे. लक्ष्मीनारायण एण्ड कम्पनी
केमिस्ट एण्ड ड्रगिस्ट
राजबाड़ा चौक, धार
फोनः–दुकान २२७६, निवास २२६३

मेसर्स लक्ष्मीनारायण एण्ड संस
इण्डियन ऑइल डीलर
धार,फोन : २२९३

मे. अग्रवाल ऑटो पार्ट्स
महेन्द्रा एण्ड महेन्द्रा के
अधिकृत विक्रेताः– इन्दौर-अहमदाबाद रोड,
धार,
फोन : २२७२

विकास ट्रेडर्स

दया मंदिर रोड, मंदसौर
इलेक्ट्रिक एवं सब मर्सिबल पंप एवं समस्त पम्पस्
के रिपेयर्स एवं इलेक्ट्रिकल्स विक्रेता

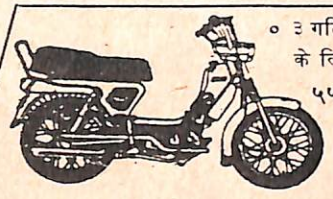

- ३ गतियों वाला गियर–ज्यादा शक्ति और बेहतर रफ्तार के लिए
- किक स्टार्ट और अधिकतम गति ५५ कि.मी. प्रतिघंटा
- दो व्यक्तियों के लिए आरामदायक अगली तरफ टेलीस्कोपिक सस्पेंशन कुश ड्राइव, चौड़ा फुटरेस्ट और मुलायम सीट
- घुमाने-फिराने में आसान, संतुलित और सुरक्षित।

KINETIC SPARK
८० कि. मी./ लिटर

अधिकृत विक्रेताः–नेमी ऑटो सेंटर, प्रताप टॉकीज केम्पस, **हरदा** फोन : २९५

राधू टॉकीज, धार
बैठने, पंखे तथा **पानी आदि** की उचित व्यवस्था के साथ अपने दर्शकों का
अभिनन्दन
करते हैं!
टेलीफोन नं. २२३८ **प्रो. बालकृष्ण झाम**

धार में (धार-मांडव रोड पर)
भव्य पूर्णिमा होटल
शादी आदि मांगलिक कार्य, भोजन एवं ठहरने की उत्तम व्यवस्था।
एक बार पधारकर सेवा का अवसर देवें।
टेलीफोन नं. २५२८ **प्रो. गंगाराम जोशी**

कार्यालय नगर पालिका परिषद, धार, मध्यप्रदेश

धार नगर पालिका परिषद् नागरिकों का हार्दिक अभिनंदन करते हुए अपेक्षा करती है कि

* घरों का कूड़ा करकट नियत स्थान पर डालें।
* सड़क, फुटपाथ आदि पर सामान रखकर अतिक्रमण न करें।
* पालिका की संपत्ति आपकी संपत्ति है। इसकी रक्षा करना आपका कर्त्तव्य है।
* पशुओं को आम रास्ते पर नहीं छोड़ें।
* नगर पालिका को देयकर की राशि का भुगतान समय पर करें।
* सड़े-गले फलों-सब्जियों का तथा खुले खाद्य पदार्थों का सेवन नहीं करें।
* जन्म-मृत्यु का पंजीयन अवश्य करावें।
* जल जीवन है, इसे व्यर्थ न बहावें।
* अग्नि दुर्घटना से बचने के लिए सावधान रहें।

प्रभाकर भौसले, मुख्य नगर पालिका अधिकारी
आर.एस. मण्डलोई, प्रशासक

साजन की गलियाँ छोड़ चले: श्याम सुंदर

गाँव की 'गोरी' (१९४५) फिल्म के द्वारा संगीतकार श्याम सुंदर पूर्ण रूप से सामने आए। इस फिल्म से नूरजहाँ के गाए 'बैठी हूँ तेरी याद में.....' और 'किस तरह भूलेगा दिल.....' गीत बहुत लोकप्रिय हुए। १९४८ में फिल्म 'एक्ट्रेस' में रफी के गाए दो गीत 'ऐ दिल मेरी आहों में.....' तथा 'हम अपने दिल का फसाना.....' उल्लेखनीय है। १९४९ में उनकी श्रेष्ठ फिल्में 'बाजार' और 'लाहौर' आई। रफी का गाया हुआ 'शहीदों तुमको मेरा सलाम.....' प्रवाही धुन का था और 'जरा सुन लो.....' वाली कव्वाली बहुत लोकप्रिय हुई। 'साजन की गलियाँ छोड़ चले.....' गीत में श्याम सुंदर की श्रेष्ठ धुन और लता की श्रेष्ठ गायकी है। वे करण दीवान जैसे मामूली गायक से भी 'लाहौर' में 'यूँ ही रोता हुआ दिल.....' जैसा बढ़िया गीत गवा सके। लता के 'बहारें फिर भी आएँगी.....' तथा 'टूटे हुए अरमानों की.....' गीत सुनकर पता चलता है कि उस जमाने में उन पर नूरजहाँ का कितना ज्यादा असर था। 'कमल के फूल' और 'काले बादल' के बाद १९५३ में श्याम सुंदर ने 'अलिफ लैला' में फिर एक बार अपने संगीत का कमाल दिखाया। 'अलिफ लैला' का युगल गीत 'खामोश क्यूँ हो तारों' लता और रफी के बेहतर युगल गीतों में गिना जाता है। श्याम सुंदर की प्रयोगात्मक शैली इस गीत में भी मौजूद है। वे किसी से प्रभावित नहीं थे। 'ढोलक' में सुलोचना कदम के गीत 'चोरी-चोरी आग सी दिल में लगाकर चल दिए' में गीता दत्त की झलक सुनाई देती है। 'काले बादल' में पुष्पाहंस ने भी दो गीत गाए थे। फिल्म सूची: 'जंगी जवान' (१९४३), 'नई कहानी' (१९४३), 'भाई' (१९४४), 'विलेज गर्ल' (१९४५), 'भाई जान' (१९४५), 'देव कन्या' (१९४६), 'उर्वशी' (१९४६), 'आरसी' (१९४७), 'एक रात' (१९४७), 'एक्ट्रेस' (१९४७), 'बाजार' (१९४८), 'चार दिन' (१९४८), 'लाहौर' (१९४८), 'भाई-बहन' (१९५०), 'कमल के फूल' (१९५०), 'निर्दोष' (१९५०), 'काले बादल' (१९५१), 'ढोलक' (१९५१) और 'अलिफ लैला' (१९५३)।

अब वो करम करें...

बलदेव राज चोपड़ा की फिल्म 'साधना' और 'धर्मपुत्र' द्वारा प्रसिद्ध होने वाले एन. दत्ता ने 'मिलाप' (५५) द्वारा फिल्मों में प्रवेश किया था। मिलाप में 'ये बहारों का समाँ' गीत लोकप्रिय हुआ था। इसी साल 'मरीन ड्राइव' में 'अब वो करम करें कि सितम' उनके गंभीर गीतों में से एक है। चंद्रकांता (५६) में भी रफी का गाया 'मैंने चाँद और सितारों की तमन्ना की थी' गीत सदाबहार है। धूल का फूल द्वारा उनकी कीर्ति शिखर पर पहुँची। उसके बाद उन्होंने चोपड़ा की फिल्मों से विदा ली और उनकी फिल्में भी कम होती गई। फिल्म सूची: मिलाप, मरीन ड्राइव (५५), चंद्रकांता (५६), मिस्टर एक्स, मोहिनी, हम पंछी एक डाल के (५७), लाइट हाउस, साधना (५८), जालसाज, दीदी, धूल का फूल, भाई-बहन (५९), रिक्शा वाला (६०), दो भाई (६१), सच्चे मोती (६२), हरक्युलिस (६५), दिलावर, जवाँ मर्द (६६)।

◆◆◆

कभी तन्हाइयों में

संगीतकार स्नेहल भाटकर ने केदार शर्मा की बहुत सी फिल्मों में संगीत दिया था। 'सुहाग रात' (४८) में मुकेश, राजकुमारी और शमशाद के दो तीन गीत कर्णप्रिय थे। शोभना समर्थ निर्मित 'हमारी बेटी' में भी उन्होंने संगीत दिया था। नंदकिशोर और 'छबीली' का संगीत विशिष्ट था। 'छबीली' में उन्होंने नूतन से गीत गवाए थे। फिल्में: सुहागरात (४८), ठेस (४९), हमारी बेटी, पगले (५०), नंदकिशोर, भोला शंकर (५१), गुनाह (५३), आज की बात, बिदिया (५५), जलदीप (५६), हरिया (५८), स्काउट केम्प (५९), गुरु भक्ति, छबीली (६०), हमारी याद आएगी (६१)।

सन् १९४४ में 'चाँद' से फिल्मों में प्रवेश करने वाले हुस्नलाल-भगतराम हिंदी फिल्म संगीतकारों की पहली जोड़ी थी। इस फिल्म का गीत 'दो दिलों को ये दुनिया जीने नहीं देती' लोकप्रिय हुआ था, तथापि उनके संगीत की मौलिक छाप पहली बार 'प्यार की जीत' फिल्म में देखने को मिली। इस फिल्म के गीत लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचे। रफी के गाए 'एक दिल के टुकड़े हजार हुए' गीत की गिनती रफी के अमर गीतों में होती है। 'बड़ी बहन' के साथ जो सिलसिला शुरू हुआ, तो कई बार एक ही वर्ष में उनकी आठ-आठ फिल्में भी आईं। १९५० में निर्मित सावन-भादो, आधी रात, मीना बाजार और गौना विशेष रूप से लोकप्रिय हुईं। १९५१ की फिल्मों में अफसाना और सनम उल्लेखनीय थीं। रेडियो सीलोन से हर रविवार की रात प्रसारित होने वाले

एक दिल के टुकड़े हजार हुए

हमेशा जवाँ गीतों के कार्यक्रम का शीर्षक गीत 'अभी तो मैं जवान हूँ' इसी फिल्म का था। १९४४ से १९५४ के दशक में इस जोड़ी का एकछत्र राज था। १९५५ में बनी 'अदले जहाँगीर' में उनके संगीत की अंतिम चमक दिखलाई दी थी। इसके बाद उन्होंने कुछ फिल्मों में संगीत दिया लेकिन वे लोकप्रिय नहीं हो सकीं। यहाँ तक कि अंतिम दिनों में तो उन्हें लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल के ऑर्केस्ट्रा में साजिंदों की तरह काम करना पड़ा। किसने सोचा था कि फिल्म 'आँसू' के अमर युगल गीत 'सुन मेरे साजना' के सर्जकों को यह दिन भी देखना पड़ेगा। हुस्नलाल-भगतराम भारतीय संगीत के आकाश पर धूमकेतु की तरह आए और उसी तरह चले गए।

फिल्मोग्राफी: चाँद (१९४४), हम एक हैं, नर्गिस (१९४६), हीरा, रोमियो जुलियट (१९४७), आज की रात, लखपति, प्यार की जीत (१९४८), बड़ी बहन, बालम, बाँसुरिया, हमारी मंजिल, जलतरंग, नाच, राखी, सावन-भादो (१९४९), आधी रात, अपनी छाया, बिरहा की रात, छोटी भाभी, गौना, मीना बाजार, प्यार की मंजिल, सरताज, सूरजमुखी (१९५०), अफसाना, शगुन, स्टेज, सनम (१९५१), काफिला, राजा हरिशचंद्र (१९५२), आँसू, फरमाइश (१९५३), शमा-परवाना (१९५४), अदले जहाँगीर, कंचन (१९५५), आन-बान, मि. चक्रम (१९५६), कृष्ण-सुदामा, जन्नत, दुश्मन (१९५७), ट्रोली ड्रायवर (१९५८), अप्सरा (१९६१), टारजन एंड सर्कस (१९६५), शेर अफगान, क्या बात है (१९६६)।

सुन मेरे बंधु रे! सचिन देव बर्मन

● हेमचन्द्र पहारे

सचिन दा के संगीत की विविधता के लिए हम सबसें पहले छठे दशक के उत्तरार्द्ध और सातवें दशक के प्रारंभिक बरसों की बात करें। सन् ६२-६३ का जमाना था और एक-दो वर्ष के भीतर ही बर्मन दा की 'बंदिनी', 'बात एक रात की', 'तेरे घर के सामने', 'बेनजीर' तथा 'मेरी सूरत तेरी आँखें' फिल्में रिलीज हुई थीं। इन फिल्मों का चुनाव यहाँ सोच समझ कर किया गया है। 'बंदिनी' बिमल रॉय की जरासंध के 'तामसी' नामक उपन्यास पर आधारित फिल्म थी। एक निहायत ही संवेदनाशील कथानक पर बनी इस फिल्म में बर्मन ने 'मोरा गोरा अंग लइले', 'अबके बरस भेज भैया को बाबुल', 'ओ जाने वाले हो सके तो लौट के आना' तथा स्वयं के द्वारा गाया भटियाली नाविक गीत 'सुन मेरे बंधु रे' जैसे गीत रचे थे। अधिकांश गीतों में बंगाल के लोक-संगीत को फिल्मों के सार्वजनीन माध्यम के अनुकूल बना कर पेश किया गया था। इसके विपरीत 'तेरे घर के सामने' असल देवानंदी शैली की रूमानी फिल्म थी और उसके मूड के मुताबिक उन्होंने 'एक घर बनाऊँगा तेरे घर के सामने' तथा 'थाम लो बाहें' जैसे धड़कदार, अन एज़्यूमिंग लेकिन मधुर गीत रचे। 'बेनजीर' भी बिमल रॉय की एस. खलिल निर्देशित मुस्लिम सोशल (?) फिल्म थी और इसमें फिर उन्होंने विषय के अनुरूप 'मोहब्बत की महफिल सुहानी रहेगी' सहित कई कर्णप्रिय मुजरे दिए थे। 'मेरी सूरत, तेरी आँखें' फिल्म को मन्ना डे के अहीर भैरव में गाए गीत 'पूछो न कैसे मैंने रैन बिताई' के कारण ही लोग जानते हैं। ऑर्केस्ट्रेशन, शैली तथा उनके खास वाद्यों के प्रयोग आदि के कारण उस जमाने के संगीत निर्देशकों को बड़ी आसानी से पहचान लिया जाता था तथा उनकी नकलें भी अन्य निर्देशक कर लेते थे। शंकर-जयकिशन के संगीत की नकल कल्याणजी वीरजी शाह तथा दत्ता राम जैसे लोग मजे से कर लेते थे। सज्जाद, अनिल विश्वास, नौशाद, नाशाद तथा गुलाम मोहम्मद के गीतों में अंतर करना विज्ञश्रोताओं के लिए भी कठिन होता था। लेकिन बर्मन की अपनी छाप होते हुए भी उनकी लीक पर अन्य लोग नहीं चल पाते थे क्योंकि न वे खुद कभी लीक पर चले और न दूसरों के लिए लीक बनाई। नौशाद, मदन मोहन तथा कुछ इनके पहले के भी संगीत निर्देशकों ने भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रति अपने आग्रह की कभी छुपाया नहीं। उनके संगीत में इसलिए माधुर्य की कमी कभी भी नहीं रही। लेकिन सचिन दा के पास अब्दुल करीम खाँ जैसों की शागिर्दी की पृष्ठभूमि के बावजूद इसे उन्होंने कभी अपना पूर्वाग्रह नहीं बनने दिया।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की अपनी सशक्त पृष्ठभूमि के बावजूद बर्मन ने इसे कभी भी अपनी सृजनात्मकता तथा प्रयोगशीलता की राह का रोड़ा नहीं बनने दिया। वे शास्त्रीय संगीत की 'रीति' के रौब में कभी नहीं आए बल्कि एक 'मास्टर' की तरह उसकी तावेदारी न करते हुए उन्होंने उस पर सवारी गाँठी। चाहे 'विद्या' में सुरैया का गीत 'मन मोर हुआ मतवारा' या 'मुनीमजी' में लता का 'घायल हिरनियाँ मैं बन-बन डोलूँ' हो या 'पेइंग गेस्ट' का 'चाँद फिर निकला मगर तुम न आए' या 'मुनीमजी' का ही 'तुम न जाने किस जहाँ में खो गए' या 'बुजदिल' 'झन-झन बाजे पायल कैसे जाऊँ पी से मिलन को' या टैक्सी ड्राइवर में 'इश्ककी बाजीसीधी बाजी' बर्मन दा हमेशा शास्त्रीय गायिका से छेड़-छाड़ करते, उसे दुलराते और हमेशा माधुर्य पैदा करते ही नजर आए। अन्य समकालीन संगीत निर्देशकों की तरह उन्होंने शास्त्रीय संगीत के महत्व को प्रतिपादित करने, फतवे देने या महिमा मंडित करने में अपना वक्त जाया नहीं किया। वे बड़े सहज और चलते-फिरते ढंग से 'गाइड' की 'पिया तोसे नैना लागे रे' जैसी क्लिष्ट बंदिशें कर डालते थे। 'तेरे मेरे सपने' में 'जैसे राधा ने माला जपी श्याम की' गीत का माधुर्य इतना सहज रूप से उपजा लगता है कि श्रोता इस झंझट में शायद पड़ना ही नहीं चाहता कि वह कोई बड़ी 'महान' या उदात्त रचना सुन रहा है।

आधुनिकता क्या है इस विषय पर बड़ी लंबी-चौड़ी बहस की जा सकती है लेकिन बगैर इसे परिभाषित किए भी यह कहने में हमें कतई हिचकिचाहट नहीं होती कि बर्मन का संगीत पाँचवें और छठे दशक में आधुनिकता का प्रतीक बन गया था। बर्मन के संगीत की 'आधुनिकता' के लिए हमें पर्याप्त श्रेय साहिर लुधियानवी और देव आनंद को देना होगा। देव आनंद ने अपनी फिल्मों में नायक के जिस पात्र को लगातार सजीव बनाया वह तरुणाई, उत्साह, ताजगी और सम-सामयिकता का प्रतीक था। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जवाहरलाल नेहरू को जिस तरह भारतीय राजनीति में बसंत का आगमन कहा था, वही चीज हिंदी फिल्मों के संदर्भ में देव आनंद पर लागू होती है। देव आनंद के नायक की परदे पर जो छवि बनी उसे साहिर के गीतों और बर्मन के संगीत ने साकार किया। साहिर तब तरक्की पसंद शायर हुआ करते थे लेकिन उनके प्रारंभिक गीतों में जो 'क्षण में जीना, कल की परवाह नहीं करना' की थीम थी वह 'बाजी', 'जाल', टैक्सी ड्राइवर' और 'फंटूश' के गीतों में ध्वनित हुई। 'सुनो गजर क्या गाए' (बाजी-गीता रॉय बाद में दत्त) 'ये रात ये चाँदनी फिर कहाँ' (जाल-हेमंत-लता) तथा 'ऐ मेरी जिंदगीआज रात झूमले' (टैक्सी ड्राइवर-लता)

मणिपुर की रियासत के राजघराने से आए कुमार सचिव देव बर्मन का बंबई की फिल्मी दुनिया में आगमन एक ऐसी चमत्कारी घटना थी, जिसके प्रभाव को तत्काल तो महसूस नहीं किया गया, लेकिन ज्यों-ज्यों उनके पैर इस पागल कर देने वाले माहौल में जमते गए, उनकी रचनाशीलता की नई-नई परतें उधड़ती गईं और इस तरह के संगीत के प्रेमियों को पता चलता गया कि फिल्म-संगीत को कोई सच्चा कलाकार कैसे-कैसे बहुरंगी आयाम दे सकता है। फिल्म-संगीत में विविधता तथा प्रयोगधर्मिता लाने के मामले में बर्मन दा का कोई सानी नहीं था। यह कहना भी अल्पोक्ति ही होगी।

में कल की अनिश्चितता, फक्कड़पन तथा बेफिक्री के स्वर निरंतर गूँजते हैं। यह 'थीम' सचिन दा को शायद इतनी प्रिय थी कि उन्होंने बाद में मजरुह सुल्तानपुरी (हम हैं राही प्यार के-नौ दो ग्यारह) (ये दिल न होता बेचारा-ज्वेल थीफ) से भी इसी तरह के गीत लिखवाए।

जिन दिनों साहिर और बर्मन की जोड़ी 'प्यासा' का अमर संगीत रच रही थी उन्हीं दिनों हिंदी साहित्य में आलोचक गीत 'विधा' की ले दे कर रहे थे। लेकिन यदि हिंदी फिल्मों में अँगरेजी के 'लिरिक' को किसी ने नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया तो वह बर्मन और साहिर की जोड़ी ही थी। 'ये दुनिया अगर मिल भी जाए' (रफी) 'जाने वो कैसे लोग थे जिनके प्यार को प्यार मिला' (हेमंत) तथा 'जिन्हें नाज है हिंद पर वो कहाँ है' में साहिर की तरक्की पसंद शायरी को बर्मन ने जिस किफायतशारी तथा अ-हस्तक्षेपकारी 'मेलोडी' के साथ पेश किया वह, शब्दशः, भारतीय फिल्म संगीत की अद्वितीय घटना थी। मगर गुरुदत्त की 'प्यासा' हिंदी फिल्म-संगीत के शौकीनों के लिए इस माने में बहुत बड़ी त्रासदी साबित हुई कि गीत में कविता और संगीत के महत्व को लेकर बर्मन और साहिर में मतभेद हो गए और यह फिल्म इस जोड़ी की अंतिम फिल्म साबित हुई। बाद में बर्मन ने मजरुह, शैलेंद्र और नीरज के साथ मिल कर पुराना जादू फिर से रचने का प्रयत्न किया और एक हद तक उन्हें सफलता भी मिली। 'बंदिनी' (गुलजार-शैलेंद्र), 'गाइड' (शैलेंद्र), 'प्रेम पुजारी', 'गैम्बलर' (नीरज) के गीतों ने लोगों को यह मानने पर मजबूर कर दिया कि बर्मन, बर्मन ही थे। रवि के साथ साहिर ने गीत तो उनकी प्रतिष्ठा के अनुरूप ही लिखे लेकिन रवि की अपनी सीमाएँ थीं।

एस. डी. को आशा भोंसले के कंठ के नए आयामों को तलाश करने का श्रेय भी दिया जा सकता है। आशा के 'रेंज' को ओ.पी. नय्यर के अलावा बर्मन ने भी पहचाना था। आधुनिकता के पुजारी बर्मन ने देव आनंद की फिल्मों में आशा से 'रात अकेली है' (ज्वेल थीफ) तो काफी बाद में गवाया लेकिन 'बाजी', 'हाउस नंबर ४४', 'टैक्सी ड्राइवर' तथा 'नौ दो ग्यारह' में उन्होंने कैबरे नृत्यों के लिए भी गजब की मधुर धुनें रचीं। शुद्ध 'रेंडरिंग' के कमाल उन्होंने किशोर कुमार से 'फूलों के रंग से दिल की कलम से तुझे रोज लिखी पाती' (प्रेम-पुजारी) तथा 'आ के जरा देख तेरी खातिर हम किस तरह जिए' (गैम्बलर) जैसे गीत गवा कर बतलाए। किशोर कुमार की प्रतिभा को परवान चढ़ाने, बल्कि सत्तर के दशक में 'आराधना' के द्वारा उनके गायक के रूप में पुनरागमन में बर्मन दा का कितना बड़ा हाथ था इसे स्वयं किशोर कुमार ने स्वीकार किया था।

सचिन देव बर्मन १९४७ में बंबई मूलतः संगीत निर्देशक बनने के लिए आए थे। बंबई टॉकीज और अशोक कुमार के लिए उन्होंने 'आठ दिन' और 'शिकारी' में संगीत दिया। मगर इसके पूर्व बंगाल में सचिन बर्मन एक गायक के रूप में घरेलू नाम बन चुके थे। बंबई में भी 'आठ दिन' में उन्होंने 'उम्मीद भरा पंछी' गीत अपनी विशिष्ट शैली में गाया जो लोकप्रिय भी हुआ था। बाद में जब भी उनकी शैली के गीत की किसी फिल्म में स्थिति आई उन्होंने अपने गायन द्वारा उसके साथ पूरा न्याय किया। 'ओरे माँझी अबकी बार ले चल पार' (बंदिनी), 'सुन मेरे बंधु रे' (सुजाता) 'सफल होगी तेरी आराधना' (आराधना), 'वहाँ कौन है तेरा मुसाफिर जाएगा कहाँ' जैसे गीतों की अपनी 'फॅन-फॉलोइंग' थी। बंगाल के भटियाली संगीत से प्रेरित इन गीतों में एक अलग माधुर्य था और सुखद आश्चर्य की बात यही रही कि बंबईया फिल्मों के बिगड़ैल दर्शक भी उनका रसास्वादन करने में पीछे नहीं रहे और उन्होंने संगीत की सार्वजनीनता को एक बार फिर सिद्ध किया।

उम्र के लिहाज से सचिन दा उनके समकालीन संगीत-निर्देशकों में सबसे वरिष्ठ थे। १९७०-७५ के आते-आते, जबकि शंकर-जयकिशन (जय-किशन तो रहे ही नहीं थे) नौशाद, मदन मोहन, रवि, चित्रगुप्त, अनिल विश्वास आदि लगभग चुक गए थे, (उनके सुपुत्र राहुल देव की भी आज उनसे आधी उम्र में यही हालत हो गई है) सचिन देव बर्मन अमिताभ बच्चन-जया भादुड़ी की फिल्म 'अभिमान' (१९७३) तथा 'मिली' (१९७५) में 'तेरे मेरे मिलन की ये रैना' 'तेरी बिंदिया रे' 'तेरे बिना बाँखिया बाजे ना' तथा 'बड़ी सूनी-सूनी है जिंदगी ये जिंदगी' जैसे 'जवान' गीतों का सृजन कर रहे थे। कितनी ही फिल्में, जो अन्य दृष्टि से बिलकुल असफल रही थी, उनमें भी उन्होंने कई कर्णप्रिय गीत दिए थे। 'बंबई का बाबू' (चल री सजनी अब क्या सोचे-मुकेश) तथा 'मंजिल' 'याद आ गई वो नशीली निगाहें' (हेमंत) ऐसी ही फिल्में थीं। इस अंतिम गीत से पता चलता था कि वे पाश्चात्य संगीत के मुहावरे को भी जड़ से पकड़ने में कितने सफल रहे थे।

और अंत में, बर्मन दा की कंजूसी के किस्से भी संजीव कुमार की तरह ही प्रसिद्ध थे। मगर वाद्यों के प्रयोग में उनकी किफायतशारी उनके इस कंजूस-व्यक्तित्व की ही परछाई थी। संजीव भी अपने अभिनय में 'अंडर प्ले' बगैर इस कंजूस प्रकृति के भला कैसे ला सकते थे? बहरहाल संगीत जगत के इस 'प्रिंस' ने हिंदी फिल्म संगीत के लिए जो कुछ किया वह उसकी अमूल्य थाती बन गया है और पता नहीं आज की पीढ़ी को सचिन बर्मन जैसे किसी अन्य राजकुमार जो उनकी जवानी को सार्थकता प्रदान करे, के आने के लिए अभी और कितने दिन इंतजार करना पड़ेगा। मगर तब तक बेशक, बर्मन दा की 'छोड़ दो आँचल जमाना क्या कहेगा', 'माना जनाब ने पुकारा नहीं', 'आँखों में क्या जी', 'आजा पंछी अकेला है', 'जीवन के सफर में राही मिलते हैं बिछड़ जाने को' तथा 'हम आपकी आँखों में इस दिल को बसा दें तो' जैसी कालजयी धुनों पर जवाँ दिल धड़कते रहेंगे।

सपनों की रानी कब आएगी तू: आराधना

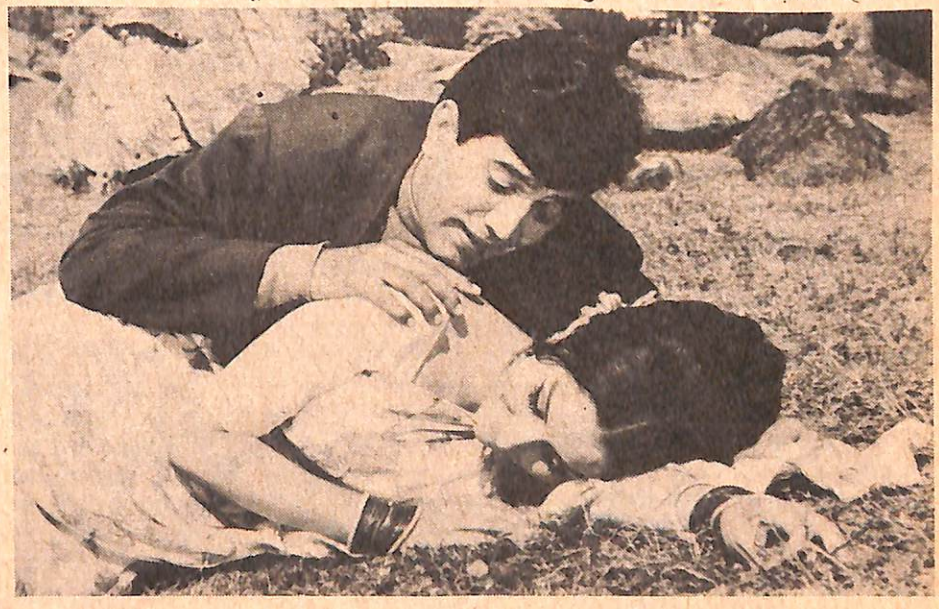

हमें अब ये जीना गवारा नहीं

सज्जाद हुसैन! कितने लोग आज इस नाम से परिचित हैं? मुश्किल है बताना किन्तु एक जमाना था जब सज्जाद के संगीत और उससे अधिक उनके तीखे तेवरों से फिल्मी दुनिया काँपती थी। सज्जाद ऐसे संगीतकार थे जो सोलह वाद्यों को साधिकार बजा सकते थे, उनमें भी मेंडोलिन पर उनका हाथ पकड़ने वाला तब भी नहीं था और आज भी नहीं है। मेंडोलिन पर रागदारियाँ बजाना सज्जाद के बाएँ हाथ का खेल था।

सज्जाद आज भी जीवित है। माहीम कॉजवे (बंबई) स्थित सीतलादेवी टेम्पल के पास एक पुरानी इमारत में यह पहाड़ जैसा आदमी आज भी रहता है, किन्तु किसे फिक्र है उसकी? दिल्ली की किसी कॉलोनी में अनिल विश्वास और माहीम में सज्जाद बची हुई जिन्दगी जी रहे हैं, पुरानी यादों के सहारे।

सज्जाद का कोई समकालीन मिल जाए और आप उससे सज्जाद का जिक्र करें तो वह क्या कहेगा मालूम है? वह कहेगा तोबा-तोबा उसका नाम मत लो, आग का दरिया है, सज्जाद नहीं जल्लाद है और लगे हाथों सज्जाद के सनकीपन के कई किस्से वह सुना देगा।

किसी संगीतकार ने एक बार सज्जाद से पूछा था सज्जाद साहब आपकी राय में श्रेष्ठ संगीतकार कौन है?

दो ही हैं। एक गुलाम हैदर जो पाकिस्तान चले गए और वहीं अल्लाह को प्यारे हो गए और दूसरा जो है वह आपके सामने बैठा है। किस्से कई हैं। बताते हैं एक बार लता मंगेशकर सज्जाद के पास गा रही थीं। पर सज्जाद संतुष्ट नहीं हो रहे थे। दो चार रिहर्सल के बाद उन्होंने साक्षात लता से कहा ठीक तरह से गाइए लताजी, ये नौशाद की धुन नहीं है। भूल जा ऐ दिल और आज मेरे नसीब ने मुझको रुला दिया इन दो धुनों से सज्जाद की प्रतिभा की बानगी मिलती है। संगदिल की अविस्मरणीय धुनों को कौन भूल सकता है। ये सभी सज्जाद के करिश्मे थे। दोस्त फिल्म से तो सज्जाद और नूरेतरन्नुम नूरजहाँ की देश भर में धूम मच गई थी। बदनाम मुहब्बत कौन करे सुनना आज भी फिल्म संगीत प्रेमियों की लाचारी है। पर बताते हैं तभी दोस्त के निर्माता और नूरजहाँ के पति शौकत हुसैन ने कहीं कह दिया कि दोस्त के गाने नूरजहाँ की वजह से लोकप्रिय हुए। सज्जाद के संगीत के कारण नहीं। सज्जाद ने यह सुना और फिर कभी नूरजहाँ के लिए धुनें नहीं बनाईं। नूरजहाँ ने संज्जाद को समझाने की खूब कोशिशें की पर वे नहीं माने। अपने स्वभाव के कारण सज्जाद ने अपने दोस्तों को भी दुश्मन बना लिया। सज्जाद शकी भी बहुत हैं। उनकी किसी रिकॉर्ड पर ऑटोग्राफ माँगने पर पूरी रिकॉर्ड सुने बगैर ऑटोग्राफ देने को वे तैयार ही नहीं होते।

नौशाद साहब को तो वे संगीतकार मानने को ही तैयार नहीं हैं, किन्तु लता मंगेशकर का जिक्र आने पर कहेंगे- लता की आवाज तो खुदा की कुदरत है। यों फिल्मी दुनिया में उनका अब किसी से रिश्ता नहीं है। पर कभी मूड आने पर वे लताजी के यहाँ जरूर जाते हैं और मंगेशकर भाई-बहनों से खूब बतियाते हैं। सज्जाद के लड़के यहाँ-वहाँ कुछ संगीतकारों के पास जरूर मेंडोलिन बजाते हैं।

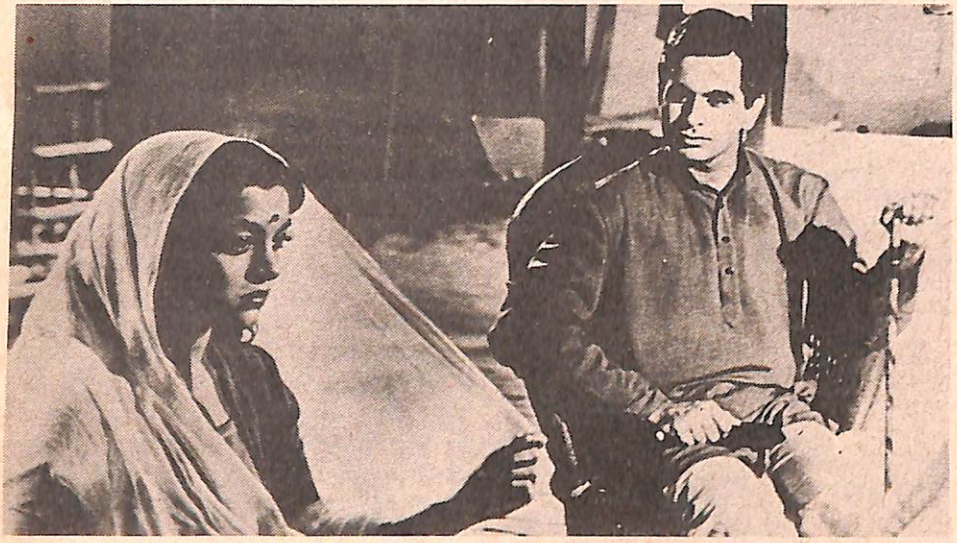

मन भूली कहानी याद न करः दिलीप-नलिनी जयवंत

एक विस्मृत संगीतकार

एरिक राबर्ट्स अर्थात विनोद

आज कितने लोग जानते हैं विनोद को? विनोद तो इस दुनिया में नहीं रहे, पर अनिल विश्वास और सज्जाद हुसैन कितने संगीत प्रेमियों को याद हैं? दोनों ही महान संगीतकार गुमनामी की जिंदगी जी रहे हैं।

विनोद पैदा हुए लाहौर में। एरिक राबर्ट्स उनका मूल नाम था। पर फिल्मी संगीत में वे विनोद बनकर आए। इस ईसाई युवक ने शुद्ध शास्त्रीय संगीत को आधार बनाकर एक से बढ़कर एक कई मीठी धुनें बनाईं। दाढ़ी बनाते समय ब्लेड लगाने का बहाना बना और इनी-गिनी चालीस साल की उम्र में विनोद का निधन हो गया। तब तक फिल्मी दुनिया भी उन्हें बिसार ही चुकी थी। याद है आपको 'अनमोल रतन' फिल्म और उसमें तलत-लता द्वारा गाया हुआ द्वंद्वगीत 'याद आने वाले फिर याद आ रहे हैं?' अनमोल रतन के बाद मीना शोरी की फिल्म 'एक थी लड़की' को याद कीजिए। फिल्म भले ही आप भूल गए होंगे, पर उसका गीत "लारे लप्पा-लारे लप्पा" को तो कदापि भूला नहीं जा सकता। समूचे देश में तब इस गाने की धूम मची थी। इस फिल्म का एक और नितांत मधुर गीत था—"घिर-घिर के आई बदरिया, बालमवा न जा, रोते हैं नैन बावरे, इन्हें समझा जा।" ये दो रचनाएँ विनोद की प्रतिभा का बखान करने के लिए पर्याप्त हैं। एक और द्वंद्व गीत को विस्मृत नहीं किया जा सकता। लता-रफी का गाया हुआ वह गीत है—"ये शोख सितारे।" द्वंद्वगीतों की रचनाओं में आज भी उस गीत को बहुत ऊपर रखा जा सकता है।

अनमोल रतन, दोराहा और एक थी लड़की में तो विनोद ने अविस्मरणीय धुनें बनाई थीं। पर 'वफा' में विनोद ने लता मंगेशकर से जो गीत गवाया, उसे लताजी की श्रेष्ठ प्रस्तुतियों में से एक आसानी से कहा जा सकता है। वह गीत है—"कागा रे जा रे जा।" अजीज काश्मीरी के उस गीत को विनोद ने अपनी धुन से शहद से भी अधिक मीठा बना दिया था। ■

काहे कोयल शोर मचाए रे

राजकपूर की पहली फिल्म 'आग' के संगीतकार राम गांगुली को फिल्मों में पहली बार जयंत देसाई 'महाराणा प्रताप' (४६) में लाए थे। इस फिल्म के गीत खुर्शीद ने गाए थे। १९४७ में महासती 'तुलसी वृंदा' आई। उन्हें असली ख्याति आग (४८) में मुकेश के गाए गीत 'जिंदा हूँ इस तरह के गमे जिंदगी नहीं' से मिली। इसी फिल्म के अन्य लोकप्रिय गीत- 'काहे कोयल शोर मचाए' (शमशाद) तथा शमशाद-शैलेष का युगल गीत 'कहीं का दीपक कहीं की बाती' थे। राम गांगुली मूलतः पृथ्वीराज के नाटकों के लिए संगीत रचना करते थे। 'आग' में शंकर-जयकिशन ने उनके सहायकों की हैसियत से काम किया था। प्रमुख फिल्में: राम दर्शन (५०), दीपक (५१), संगम और गवैया (५४), पैसा (५७), १० ओ क्लॉक (५८) तथा साया (६१)। जून (८३) में ६५ वर्ष की उम्र में कलकत्ता में उनका अवसान हुआ।

पास बैठो तबियत बहल जाएगी

क्या कभी ऐसा हो सकता है कि फिल्म वाले अपने बीच रहे संगीतकार को पहचानने से इंकार कर दें? जी हाँ, संगीतकार सी.अर्जुन के साथ ऐसा हुआ है। उनकी कुछ फिल्में फ्लॉप होने से निर्माताओं ने पिटा मोहरा मानकर मुँह फेर लिया था। यह वही सी. अर्जुन थे, जिनके मधुर गीत-पास बैठो तबियत बहल जाएगी (पुनर्मिलन), सुबह जरूर आएगी सुबह का इंतजार कर (सुशीला), मैं अभी गैर हूँ मुझको अभी अपना न कहो (मैं और मेरा भाई)— गली-गली में गूँजे थे। फिल्म एक साल पहले, उस्ताद पेड्रो और गुरु चेला का संगीत भी सराहा गया।

सी.अर्जुन के पास एक दिन सतराम रोहरा जय संतोषी माँ फिल्म के लिए संगीत देने का प्रस्ताव लेकर आए, तो उन्होंने माथा ठोका कि क्या अब ऐसी फिल्में उन्हें करना होगी। आधे मन से मंजूरी देकर गीतकार प्रदीप जी के पास पहुँचे, तो उन्होंने सवालों की तोप दाग दी-कहाँ हुई संतोषी माता? शास्त्र-पुराण में तो कहीं उल्लेख नहीं है। तीन-चार रील फिल्म बनी। दो गाने रिकॉर्ड हुए और काम बंद। एक दिन वितरक केदारनाथ अग्रवाल आए और उन्होंने संतोषी माँ के अधिकार खरीद लिए। सी. अर्जुन के लिए धार्मिक फिल्म में संगीत देने का पहला मौका था। छः गीतों में से पाँच में संतोषी माता की आरती, पुकार, वंदना थी। फिल्म प्रदर्शित हुई और ऐसी चली, ऐसी चली कि अनेक शहरों-कस्बों में 'शोले' का रिकॉर्ड तोड़ दिया। सी. अर्जुन फिर से लोकप्रिय और मालामाल हो गए।

◆◆◆

दिल्ली से दुल्हन लाया रे

'ज्वार-भाटा' के प्रसिद्ध गीत 'साँझ की बेला' के गायक और संगीतकार अरुण कुमार का पहले नागपुर में कारोबार था। लेकिन अशोक कुमार उनके मित्र थे इसलिए उनके कहने से वे फिल्मोद्योग में आ गए। बॉम्बे टॉकीज की कई फिल्मों में उन्होंने प्ले बैक दिया था। 'मैं तो दिल्ली से दुल्हन लाया' में रहमत बानु के साथ उनका ही पार्श्वगायन था। अरुण कुमार ने अशोक कुमार निर्मित फिल्म 'परिणिता' के अलावा 'समाज', 'तीन भाई' वगैरह फिल्मों में संगीत दिया था। दिलीप कुमार की भूमिका वाली दूसरी फिल्म 'प्रतिभा' में उन्होंने अपना स्वतंत्र रूप से संगीत दिया था। उन्होंने 'शमशीर' में अनुपम घटक के साथ संगीत दिया था।

हमको तुम्हारा ही आसरा: नूतन-देवानंद

दिया जलाकर आप बुझाया

दत्ता कोरगाँवकर उर्फ के. दत्ता ने चालीस के दशक में सुमधुर धुनें दी थीं। मेरी कहानी (४८) में सुरेंद्र और गीता के गाए गीतों से उनकी प्रतिभा का पता चलता है। बड़ी माँ (४५) में उन्होंने नूरजहाँ से एक से एक बढ़िया गीत गवाए। 'दिया जलाकर आप बुझाया' जैसे गीतों का जादू कभी कम नहीं होता। दामन (५१) में उनका उत्कृष्ट संगीत था। 'याद आने लगी' युगल गीत लोगों ने बहुत पसंद किया था। 'गुमास्ता' और 'रिश्ता' में भी उनका संगीत खिल उठा था। रिश्ता फिल्म में तलत का गाया 'वही चाँदनी है' बहुत मधुर था। फिल्में: याद (४२), नादान, जमीन (४३), बदमाश, महारथी कर्ण (४४), यतीम, बड़ी माँ (४५), शाहकार (४७), मेरी कहानी, रंगमहल (४८), दामन,गुमास्ता (५१), रिश्ता (५४), हरिहर भक्ति (५६)।

देवता तुम हो मेरा सहारा

केदार शर्मा ने जिस तरह रोशन और स्नेहल को मौका दिया था, उसी तरह जमाल सेन को 'शोखियाँ' में मौका देकर उनका नाम चमकाया था। सुरैया के गाए गीत 'रातों की नींद छीन ली' और लता का गाया 'सपना बन साजन आए' गीतों में जमाल सेन ने अच्छी छाप छोड़ी है। १९५३ में कमाल अमरोही ने उनको 'दायरा' में लिया। उस फिल्म का गीत 'देवता तुम हो मेरा सहारा' उनका यादगार गीत बन गया। उसके बाद उनकी कस्तूरी (५४) फिल्म उल्लेखनीय थी जिसमें उन्होंने पंकज मलिक के साथ मिलकर संगीत दिया था। फिल्में: शोखियाँ, दायरा, धर्मपत्नी, रंगीला (५३), कस्तूरी (५४), पतित पावन (५५), अमर शहीद, बदला (६०)।

दीप जल रहा है

अनेक गुजराती फिल्मों के संगीतकार के रूप में प्रसिद्ध अविनाश व्यास ने जिन अनेक हिंदी फिल्मों में भी संगीत दिया, उनमें से ज्यादातर पौराणिक थीं। 'नागमणि' (५७) फिल्म में प्रदीप का गाया 'पिंजरे के पंछी' प्रदीप के गाए गीतों में उत्तम माना जाता है। 'अंधेर नगरी चौपट राजा' में तलत का गाया 'दीप जल रहा है' भी सुमधुर था। प्रमुख फिल्में: वीर अर्जुन, शिव शक्ति (५२), महापूजा (५४), अंधेर नगरी चौपट राजा (५५), नागमणि, भक्त ध्रुव (५७), ग्रेट शो ऑफ इंडिया, गोपीचंद, राम भक्ति (५८), गृह लक्ष्मी, चरणों की दासी (५९), भक्तराज (६०)।

तेरे दर पे आया हूँ

सरदार मलिक ने 'चोर बाजार' और 'आबेहयात' जैसी उल्लेखनीय फिल्मों में संगीत दिया था। चोर बाजार का गीत 'तेरे दर पे आया हूँ' उसकी तर्ज और माधुर्य के लिए प्रसिद्ध हुआ था। आखिर में सारंगा (६०) में उनका संगीत बहुत लोकप्रिय हुआ था। फिल्में: औलाद, चोर बाजार (५४), आबेहयात (५५), टैक्सी-५५५ (५८), माँ के आँसू (५९), मेरा घर मेरे बच्चे, सारंगा, सुपरमैन (६०)।

जलते दीप बुझ गए

जलते दीप (५०) में शॉर्दूल क्वात्रा ने संगीत दिया था। उसमें रफी का गाया 'जलते दीप बुझ गए' गीत दर्दीला होते हुए भी जोशीला था। उसी साल उनकी फिल्म 'मन का मीत' आई। 'पिलपिली साहब' (५४) में उनका संगीत उल्लेखनीय था। फिल्म सूची: जलते दीप, मन का मीत (५०), गूँज (५२), पिलपिली साहब (५४), तीस मार खाँ, काला चोर, चार मीनार (५६), मिर्जा साहिबा (५७), देखा जाएगा (६०), खिलाड़ी (६१)।

विरासत जो हमारी ही नहीं पूरे भारत की है....

मध्यप्रदेश, हिंदुस्तान का दिल है और हिंदुस्तान की आत्मा यहीं रहती है।

इस बात का सबूत है यहां जगह जगह पायी जाने वाली इतिहास की बिरासत- जिसमें प्रचुरता है, निरंतरता है और श्रेष्ठता है।

भीमबेटका के लाखों बरस पुराने शैल चित्र देखें, सांची के स्तूप देखें या बाघ की गुफाएं- सब में झलक है- हमारी सभ्यता और वर्तमान जिंदगी की।

कुछ जगहें यदि, मौर्य, शुंग, सातवाहन, गुप्त, प्रतीहार, कलचुरी परमार वंशों की विरासत है, तो खजुराहो हमें चंदेलवंशियों की याद दिलाता है।

प्रदेश के हजारों ऐसे स्थलों में से एक है- भोरमदेव।

नागवंश के छटवें राजा गोपाल देव के राज में आज से कोई एक हजार साल पुराने इस मंदिर में शिव की प्रतिमा स्थापित है।

राजनांदगांव जिले की कवर्धा तहसील में स्थित यह मंदिर वास्तुशिल्प और कला की दृष्टि से अद्भुत है और इसे छत्तीसगढ़ का खजुराहो भी कहा जाता है।

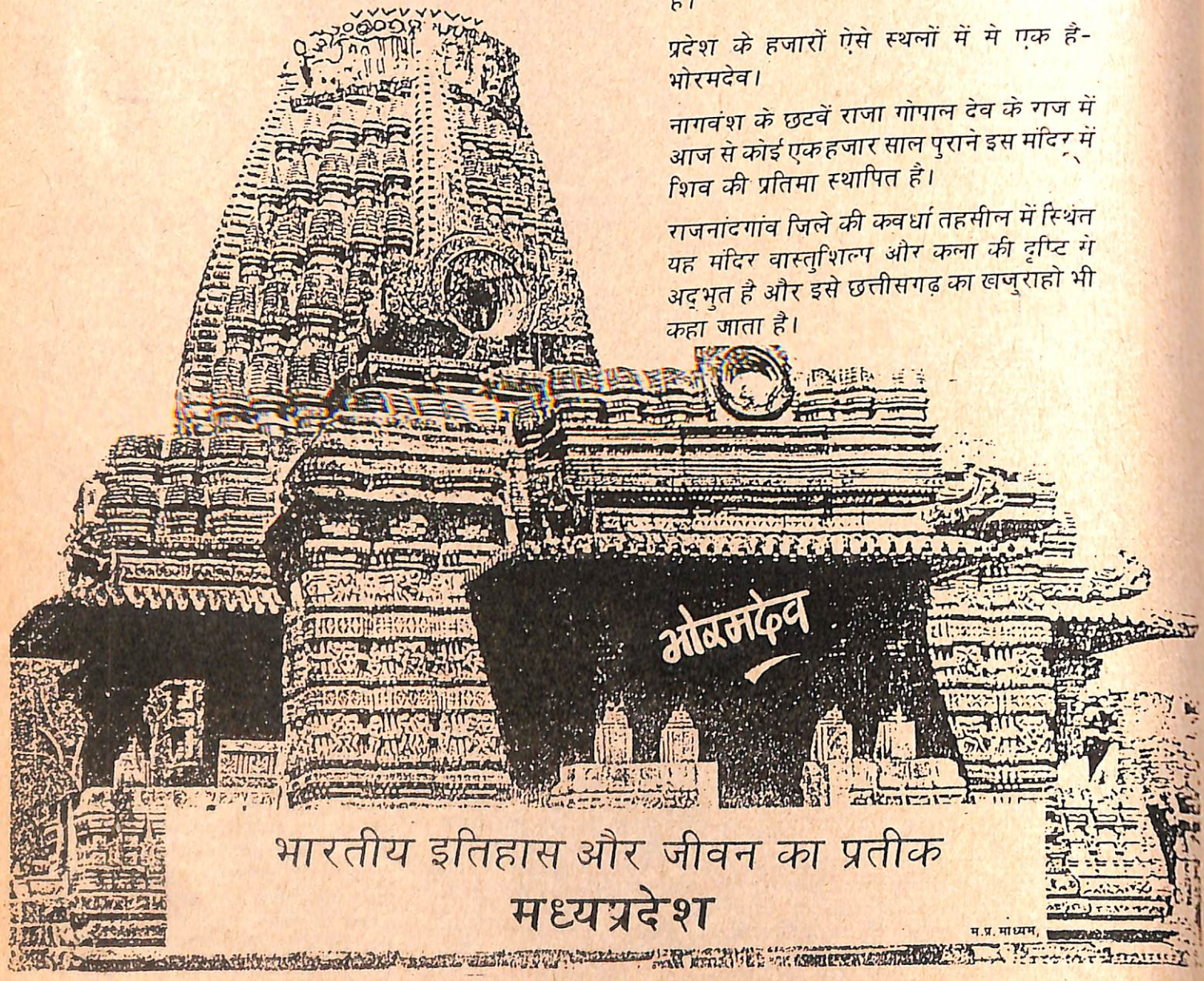

भारतीय इतिहास और जीवन का प्रतीक

मध्यप्रदेश

म.प्र. माध्यम,

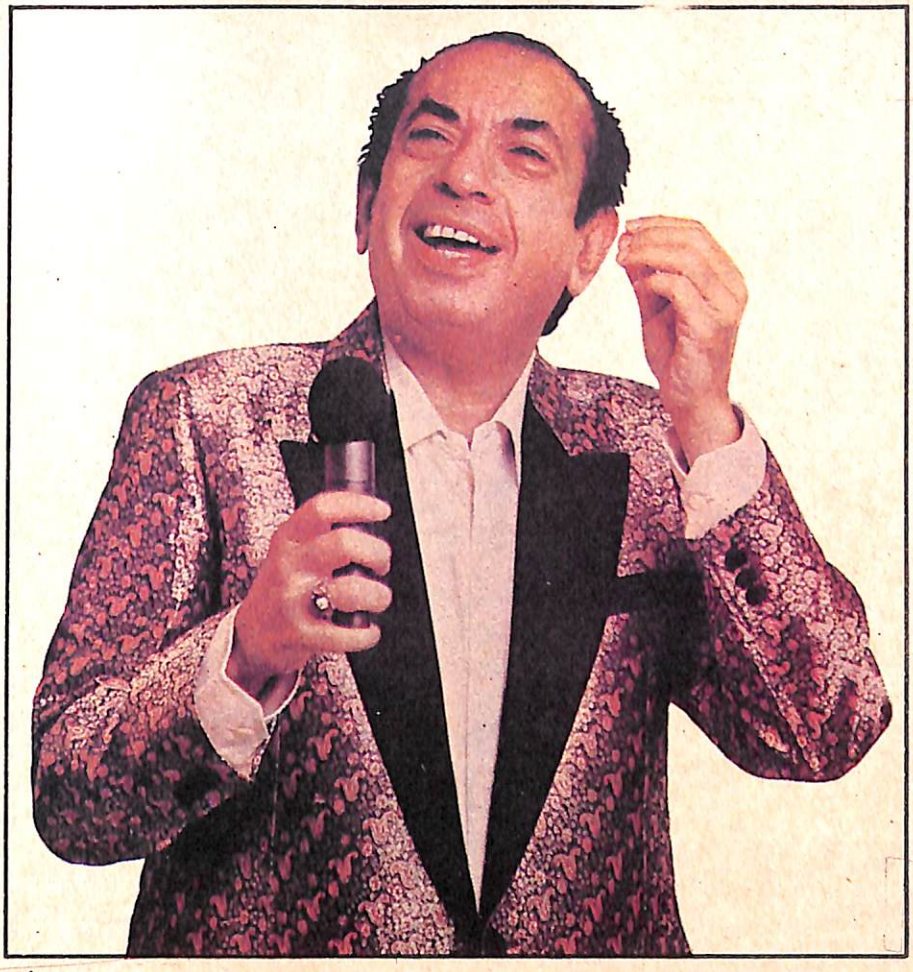

मेरे देश की धरती सोना उगले

बंबई के सेंट जेवियर स्कूल में एक कक्षा को प्रोजेक्टर के जरिए कुछ शैक्षणिक स्लाइड दिखलाई जानी थी। ऐन मौके पर प्रोजेक्टर खराब हो गया और छात्रों को व्यस्त बनाए रखने के लिए शिक्षक ने प्रस्ताव रखा कि कोई छात्र अपना गीत सुनाए। शरारती लड़कों ने एक सीधे सादे लड़के को सामने ढकेलते हुए कहा, "सर महेन्द्र बहुत अच्छा गाता है।" वे चाहते थे कि महेन्द्र की असफलता और रेंकती आवाज पर ठहाके लगाकर दिल बहलाएँ। उन्हें यह पता नहीं था कि महेन्द्र को गीत और संगीत का बेहद शौक है। महेन्द्र ने गाना शुरू किया और फिर छात्र अक्सर प्रोजेक्टर चलाने वाले को रिश्वत देकर प्रोजेक्टर बिगड़वा देते ताकि महेन्द्र का गाना सुन सकें। अमृतसर में कपड़ों का व्यापार करने वाले परिवार में जन्मा महेन्द्र अपने परिवार के साथ बंबई में बसने आया था। स्कूली जीवन की ऐसी सफलताओं के साथ-साथ उसे कई बार असफलताओं का सामना भी करना पड़ा था। एक बार तो एक विख्यात रिकॉर्डिंग कंपनी द्वारा लिए गए ध्वनि परीक्षण में उसकी आवाज गाने के अनुपयुक्त ठहरा दी गई थी।

स्कूली जीवन में ही महेन्द्र का रिश्ता फिल्मों से जुड़ा और उन्हें 'मदमस्त' फिल्म में पार्श्व गायक के रूप में काम मिला। कॉलेज के छात्र के रूप में उन्होंने फिल्मिस्तान की हीर, तलत की दिवाली की एक रात तथा याकर नामक फिल्मों के लिए पार्श्व गायन किया। इसके बाद फेहरिस्त बढ़ती गई। अपने फिल्मी जीवन के २५ वें वर्ष तक बताया जाता है कि उन्होंने लगभग २० हजार गाने गाए हैं। इनमें हिंदी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, भोजपुरी, कन्नड़, सिंधी, उड़िया और बंगाली भाषा की फिल्में शामिल हैं तथा भजन से लेकर अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करने वाले 'पॉप गीत' भी हैं।

महेन्द्र कपूर ने शास्त्रीय संगीत की शिक्षा आकाशवाणी कलाकार मनोहर पोतदार, नियाज अहमद, फैयाज अहमद, संगीत निर्देशक हुस्नलाल तथा पंडित तुलसीदास शर्मा से प्राप्त की। एक गायक के रूप में वे मोहम्मद रफी से बेहद प्रभावित रहे। 'जुगनू' फिल्म के लिए उनका गाया गीत सुनने के बाद उन्होंने तय कर लिया कि रफी साहब को गुरु बनाएँगे। काफी कोशिशों के बाद वे रफी साहब से मुलाकात करने में सफल हुए। रफी साहब ने इस अपरिचित युवक को टालने के लिए कहा कि वे उसी को चेला बनाते हैं जिसके माता-पिता स्वयं प्रस्ताव रखते हैं। यह शर्त सुनकर महेन्द्रजी खुशी-खुशी घर लौटे तथा थोड़ी देर बाद अपने पिता एवं बड़े भाई को साथ लेकर रफी साहब के पास पहुँच गए और उनके शिष्य बन गए। 'मदमस्त' से शुरू हुई उनकी मस्ती भरी गीत यात्रा में गुमराह, धूल का फूल, धर्मपुत्र, जिस देश में गंगा बहती है, क्रांति, निकाह, शक्ति, मेरे देश की धरती के लिए उन्हें राष्ट्रपति का अवार्ड मिला। 'फिल्म फेयर अवार्ड' कई बार मिला। गुजरात, महाराष्ट्र, सुरसिंगार अवार्ड के अलावा भारत सरकार ने पद्मश्री से भी अलंकृत किया है।

महेन्द्र कपूर एक सफल गायक के साथ बेहद मिलनसार और हँसमुख व्यक्ति हैं। उनकी आवाज के बारे में सर्वोत्तम टिप्पणी वेस्टइंडीज के एक श्रोता ने की थी। एक कार्यक्रम में उसने जब महेन्द्र कपूर को सुना तब वह कह उठा, **"इस गायक के गले में पिघला हुआ सोना है जो आवाज में उतर आया है।"** सुनहरी आवाज के इस गायक की यात्रा अभी शान से जारी है। महेन्द्र कपूर की आवाज बहु आयामी है, जो सभी प्रकार के गीतों के साथ न्याय कर सकती है। गीत शास्त्रीय हो या सुगम, देशभक्ति का हो या रोमांस या दुःखद उन्हें उसे प्रस्तुत करने की महारत हासिल है। प्रत्येक संगीतकार के साथ घुल-मिलकर काम करने की आदत के कारण तमाम नामी संगीतकारों की धुनों पर उन्होंने गाया है।

उलझ गए नैनवा: बेगम अख्तर

फिल्मों से बाहर अख्तरी बाई फैजाबादी उर्फ **बेगम अख्तर** को जो शोहरत, इज्जत और दौलत मिली, उसे देखकर यह अंदाज लगाना मुश्किल है कि कभी वे फिल्मों में गाती तथा अभिनय भी करती थीं। ईस्ट इंडिया कंपनी कलकत्ता की फिल्म 'नल-दमयंती' और 'एक दिन का बादशाह' में वे पहली बार रूपहले परदे पर आईं। अमीना, मुमताज बेगम, जवानी का नशा जैसी फिल्मों में भी उन्होंने काम किया, लेकिन इन फिल्मों के ग्रामोफोन रिकॉर्ड जारी नहीं हुए थे। १९४२ में मेहबूब की फिल्म 'रोटी' में उन्हें हीरोइन के बराबर रोल मिला। इस फिल्म में उन्होंने चार गाने गाए थे। संगीतकार अनिल विश्वास थे। बाद में फिल्म 'पन्ना दाई' (१९४५ ज्ञानदत्त), 'दाना-पानी' (१९५३), एक एहसान (१९५४ मदनमोहन) में अभिनय किया और गीत भी गाए। सत्यजित रॉय की फिल्म **जलसाघर** में उन्होंने शास्त्रीय गीत गाए थे। कवयित्री सरोजिनी नायडू बेगम अख्तर के गीत सुनकर इतनी प्रभावित हुई कि उन्होंने खादी की साड़ी भेटकर इस ग़ज़ल-साम्राज्ञी का सम्मान किया था। **प्रमुख फिल्मी गीत:** * उलझ गए नैनवा * ऐ प्रेम तेरी बलिहारी * चार दिनों की जवानी (रोटी) * मैं राजा के अपने (पन्ना दाई) * ऐ इश्क मुझे और (दाना-पानी) * हमें दिल में बसा ले (एहसान)।

बाँसुरिया बाजे रे...
विजय राघव राव

विजय राघव राव को फिल्म संगीत के क्षेत्र में लीक से हटकर काम करने के लिए सदैव याद किया जाएगा। बहुमुखी प्रतिभा के धनी विजय को संगीत के प्रति लगाव परिवार से मिला। सिर्फ संगीत ही नहीं, बल्कि साहित्य के प्रति भी उनके झुकाव का कारण पारिवारिक संस्कार रहे। उनके बड़े भाई मद्रास से निकलने वाले 'सोवियत लैंड' का संपादन करते थे। इस पारिवारिक संस्कार का ही चमत्कार था कि उन्होंने पंद्रह वर्ष की आयु में रेडियो नाटक लिखा, जो आकाशवाणी से प्रसारित हुआ। संगीत के प्रति वे बाँसुरी के माध्यम से आकर्षित हुए और बिना गुरु की मदद से 'बाँसुरी' बजाना सीख गए। बिना गुरु की सहायता से ही उन्होंने 'वीणा' आदि वाद्यों को बजाना सीखा। महाविद्यालय के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में मंच पर उनकी उपस्थिति कार्यक्रम की सफलता का पर्याय समझी जाने लगी। महाविद्यालय के छात्र के रूप में ही उन्हें महसूस हुआ कि गुरु के बिना व्यवस्थित ज्ञान संभव नहीं है। गुरु की खोज उन्हें चोकालिंगम पिल्लई के पास ले गई, जो नृत्य का एक स्कूल चलाते थे। गुरु ने कड़ी परीक्षा लेने के बाद उन्हें शिष्य स्वीकार किया। परीक्षा में तो खरे उतरे ही साथ ही शीघ्र ही गुरु के सर्वप्रिय शिष्यों में गिने जाने लगे। दल के साथ नृत्य के कार्यक्रम प्रस्तुत करने के लिए उन्हें भारत के विभिन्न नगरों में घूमना पड़ता था। नृत्यकार के रूप में कार्यक्रम प्रस्तुत करते-करते उन्हें लगा कि कला की इस विद्या में बहुत से दूसरे लोगों के आश्रित रहना पड़ता है। अतः वे फिर संगीत की ओर मुड़े। उन दिनों फिल्मी दुनिया के विख्यात संगीतकार रोशन आकाशवाणी से जुड़े थे। रोशन तथा आकाशवाणी के ड्रामा प्रोड्यूसर ठाकुर के सुझाव पर वे अपना दल छोड़कर आकाशवाणी की सेवा में १९४५ से आ गए। इसके बाद पंडित रविशंकर की बहुमुखी प्रतिभा से प्रभावित होकर वे उनसे जुड़े और 'त्रिवेणी' तथा संगीत भारती नामक संस्थाएँ शुरू कर नृत्यकारों एवं संगीतकारों को प्रशिक्षित करने लगे। जब पंडितजी बंबई आए तब विजयजी ने भी उनका अनुकरण किया और फिल्मस् डिविजन में सहायक संगीत निर्देशक का पद स्वीकार कर बंबई आ गए। यहाँ संगीत निर्देशक बनने का उनका सपना पूरा हुआ और फिल्मस् डिविजन की लघु फिल्मों के माध्यम से वे एक सफल संगीत निर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित होने लगे।

इसी दौरान उनकी मुलाकात मृणाल सेन से हुई, जो **'भुवन शोम'** बना रहे थे। मृणालजी ने उनके सामने इस फिल्म के संगीत निर्देशक के रूप में काम करने का प्रस्ताव किया। उन्होंने यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। इससे पूर्व वे 'बंसी और बिरजू' नामक हिन्दी फिल्म के संगीत निर्देशक के रूप में अनुबंधित हो चुके थे। 'भुवन शोम' पहले प्रदर्शित हुई और फिर शुरू हुआ सम्मानों की बरसात का सिलसिला। फिल्म फेयर अवार्ड, सुर सिंगार अवार्ड, संगीत नाटक अवार्ड और पद्मश्री इन सम्मानों में से कुछ प्रमुख हैं। इन सम्मानों के बावजूद विजयजी अपने को पूर्ण नहीं मानते। अभी भी वे संगीत के क्षेत्र में नए-नए प्रयोग करते रहते हैं। विजयजी की पत्नी भी बाँसुरी बजाती हैं, इसी वजह से उनका विवाह हुआ है। उनके चार बच्चे हैं। दो बेटे और एक बेटी अमेरिका में रहकर इलेक्ट्रॉनिक संगीत साधना में संलग्न हैं। फिल्मस् डिविजन की छोटी, किंतु महत्वपूर्ण फिल्मों में विजय राघव राव का संगीत सुनना एक अलग प्रकार का अनुभव है।

◆◆◆

मलयालम फिल्म ओलंगल में अमोल पालेकर—अम्बिका

◆◆◆

हम हाले दिल सुनाएँगे: मुबारक बेगम

बचपन से फिल्में देखने के बेहद शौक ने **मुबारक बेगम** को सुरैया की आवाज की दीवानी बना दिया। फिल्में देखना और उनके गीत गुनगुनाना। एक दिन संगीतकार रफीक गज़नवी को भनक लगी तो हौसला बढ़ाया। श्याम सुंदर ने एक फिल्म में चांस दिया, मगर रिकॉर्डिंग के वक्त जुबान तालू से चिपक गई, वह गा नहीं सकी। अभिनेता याकूब 'आइए' नाम से फिल्म बना रहे थे। नौशाद साहब ने जोर डाला और १९५१ में मुबारक बेगम के बोल फूटे—मोहे आने लगी अँगड़ाई आजा-आजा बलम। इसके बाद हंसराज बहल ने छह-सात गीत गवाए। असली सफलता दिलाने के हकदार हैं कमाल अमरोही। फिल्म थी दायरा। इस फिल्म में मोहम्मद रफी के साथ कोरस तथा तीन सोलो गीत गाए थे। १९५४ में उन्हें आठ फिल्में मिलीं और सफलता की सीढ़ियों पर वे धड़धड़ाती चढ़ती चली गईं।

मुबारक बेगम का जन्म राजस्थान में नवलगढ़ के पास झुंझनू गाँव में हुआ था। नाना की चाय की दुकान अहमदाबाद में होने से उनका बचपन वहाँ बीता। कट्टर मुस्लिम परिवार में जन्मी मुबारक बेगम की बाकायदा तालीम नहीं के बराबर हुई है। फिल्मों से अधिक उन्हें संगीत-रजनी कार्यक्रमों के न्यौते देश भर से मिलते रहे हैं। उन्होंने कोने-कोने में जाकर कार्यक्रम दिए और श्रोताओं की प्यास बुझाई है। **प्रमुख गीत:** * हम हाले दिल सुनाएँगे (मधुमती) * देवता तुम हो मेरा सहारा (दायरा) * मुझको अपने गले लगाले (हमराही) * नींद उड़ जाए तेरी चैन से सोने वाले (जुआरी) * निगाहों से दिल में चले आइएगा (हमीर-हठ)।

अफसाना लिख रही हूँ: उमा देवी

नई पीढ़ी के अधिकांश नवजवान सिर्फ टुनटुन को जानते हैं जो जरूरत से ज्यादा मोटी है और मोटापे को आधार बनाकर अपनी हरकतों से दर्शकों को हँसाती रहती है फिल्मों में। टुनटुन का असली और पूरा नाम है **उमा देवी चौधरी**। २४ दिसंबर १९२६ को दिल्ली के पास अलीपुर में जन्म हुआ। आम आदमी की तरह बचपन से ही उन्हें गाने का शौक था। पिताजी की मौत के बाद वह बंबई आ गई और नौशाद से मिलने के फेर में कारदार से भेंट कर ली। कारदार साहब उनका गाना सुनकर खुश हुए और नौशाद से मिलवाया। उन दिनों नौशाद फिल्म दर्द (१९४७) का संगीत रच रहे थे। उन्होंने उमा देवी को मौका दिया और हम सबने सुना—"अफसाना लिख रही हूँ तेरे इंतजार का।" आज तक यह गीत हरा-भरा है। इसी फिल्म में उन्होंने सुरैया के साथ तीन युगल गीत भी गाए हैं। चंद्रलेखा, अनोखी अदा, नाटक, आग, चाँदनी रात, दिल्लगी उनकी यादगार फिल्में हैं। नौशाद के ही सुझाव पर उन्होंने कॉमेडियन स्त्री के रोल करना शुरू किए। दिलीप कुमार ने उमा देवी को नया नाम दिया—**टुनटुन**। एक घरेलू स्त्री की आवाज की तरह उन्होंने गाने गाए हैं। बाद में तो छोटे-मोटे रोल कर दर्शकों को हँसाती रहीं, बस! **प्रमुख गीत:** * दिल को लगा के (अनोखी अदा) * ये कौन चला (दर्द) * माई रे मैं तो (चंद्रलेखा) * मेरी प्यारी पतंग (दिल्लगी) * उनकी आँखों का (प्यार की रात) * दिल वाले जल-जलकर (नाटक)।

गुरु-दक्षिणा कब दोगे भप्पी लहरी

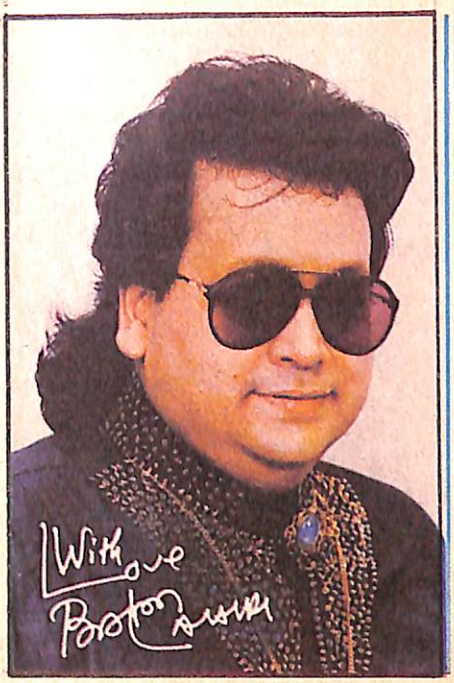

भप्पी लहरी हिंदी फिल्मों में पॉप संगीत के लिए प्रसिद्ध हैं और पश्चिमी धुनों के कायल हैं परन्तु बंगाल में बनी 'गुरु- दक्षिणा' फिल्म में भप्पी लहरी के शास्त्रीय संगीत ने तहलका मचा दिया और पिछले वर्ष की सफलतम फिल्म होने का गौरव पाया। यह अजीब बात है कि भप्पी हिंदी में पॉप और बंगला में शास्त्रीय गाने देते हैं। हिंदी में 'गुरु-दक्षिणा' जैसा संगीत क्यों नहीं देते?

भप्पी लहरी का कहना है कि जब निर्माता बलात्कार और बदले की कहानी लेकर आता है तो शास्त्रीय संगीत के लिए कहाँ गुँजाइश रह जाती है। 'शीशे का घर' में शास्त्रीय पर आधारित धुनें हैं। फिल्म प्रदर्शित ही नहीं हुई।

भप्पी लहरी ने जब हिन्दी फिल्मों में प्रवेश किया तो लक्ष्मी-प्यारे, राहुल देव बर्मन और सदाबहार कल्याणजी- आनंदजी छाए हुए थे। उन दिनों भप्पी लहरी बहुत कम पैसे में छोटे निर्माताओं के लिए काम करने लगे इसीलिए लोग उन्हें 'गरीब निर्माता का राहुल देव बर्मन' कहा करते थे। आज पाँसा पलट चुका है। पाँसा पलटने के लिए 'पॉप' और मिथुन के थिरकते हुए कदमों ने बहुत मदद की। 'डांस-डांस' की 'बीट' रशिया और चीन में भी प्रसिद्ध हुई। यह अजीब बात है कि "आवारा हूँ" के माधुर्य के बाद "मैं हूँ डिस्को डांसर" लाल देशों में चल पड़ा है। वक्त ने ये कैसी करवट ली है कि नकल के माल ने असल को बाजार से बाहर कर दिया। भप्पी लहरी के आते ही खोटे सिक्के चल पड़े हैं और 'छोटे नवाब' हरम में कैद हैं।

भप्पी की पहली प्रसिद्ध धुन थी 'बंबई से आया मेरा दोस्त, सलाम करो।' इसके बाद कवायद की अदा में फिल्मांकित होने वाले गानों के लिए भप्पी लहरी ने मद्रास में अपना कैम्प बना लिया। मद्रास के निर्माताओं को समय और पैसा बचाने का शौक है। भप्पी लहरी ने उनके लिए एक दिन में तीन गाने रिकॉर्ड करके दिए और पूरी फिल्म का संगीत एक सप्ताह में बना दिया। जेट युग की लहर पर सवार भप्पी प्रकाश मेहरा के कैम्प में जा पहुँचे और "शराबी" की सफलता उनके झोले में आ गिरी। "रपट जाएँ लिपट जाएँ" की मतवाली रिद्म को बहुत पसंद किया गया। प्रकाश मेहरा खुद गानों के मुखड़े लिखने के शौकीन हैं और भप्पी को आज भी ठीक हिंदी नहीं आती। दोनों की जोड़ी जम गई है।

भप्पी अजीबोगरीब पोशाक पहनते हैं और यही ढंग उन्होंने संगीत में भी अपनाया है। उनमें स्वाभाविक प्रतिभा की कमी नहीं है जैसा कि उन्होंने अपने बंगाली संगीत में सिद्ध किया है परन्तु "गति" के फेर में मति मारी गई है और "पॉप किंग" बनकर विदेशों में छा जाने का सपना उनकी हकीकत बन गया है। ■

◆◆◆

संगीत के स्टार-सन

जैसे राजकपूर, धर्मेन्द्र और राजेन्द्र कुमार के पुत्र अभिनेता बन गए हैं, वैसे ही सचिन देव बर्मन के पुत्र राहुल देव बर्मन, रोशन के पुत्र राजेश रोशन, चित्रगुप्त के पुत्र आनंद-मिलिंद, सरदार मलिक के पुत्र अन्नू मलिक संगीतकार हैं और अपने 'घराने' की परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं। किशोर कुमार और मुकेश के पुत्र अमित और नितिन अच्छे गायक सिद्ध हुए हैं। शैलेन्द्र के पुत्र शैली शैलेन्द्र ने गीत लेखन के साथ कहानी के क्षेत्र में भी हाथ आजमाया है।

आपकी सरका

आपके द्वार

देहाती इलाकों में लोगों की समस्याएं और तेजी से निपटाने के लिए सरकार ने शुरू किया है एक नया कार्यक्रम

आपकी सरकार आपके द्वार

इस कार्यक्रम का मतलब यह है कि मध्यप्रदेश शासन के मंत्री, पहले से तयशुदा दिनों में सभी ब्लाक मुख्यालयों का दौरा करेंगे और आपकी समस्या रूबरू सुनेंगे, इस दौरान जिले के सभी प्रमुख अधिकारी उनके साथ रहेंगे। जिन समस्याओं का निपटारा तुरन्त हो सकेगा, उन्हें वहीं के वहीं निपटा दिया जायेगा। जिन मामलों में तुरन्त फैसला नहीं हो सकता उन्हें प्राथमिकता के आधार पर जल्दी निपटाने की कार्रवाई शुरू की जाएगी।

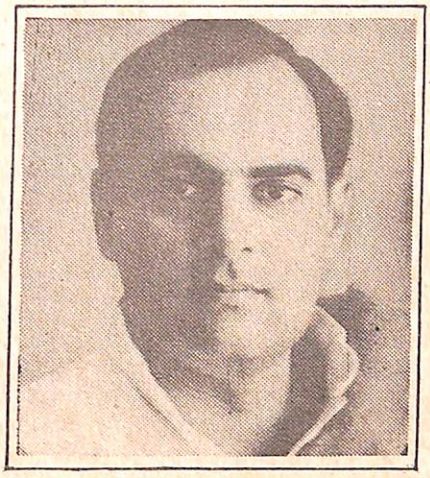

गांव-गांव खुद आकर सुने सरकार
आपकी बात

यानी जो लोग अपनी बात सरकार तक नहीं पहुंचा पाते उनकी बात सुनेगी सरकार खुद उनके घर आकर।

हकदार की तरफदार
मध्यप्रदेश सरकार

म.प्र. माध्यम

आ लौट के आजा मेरे मीत: तुझे तेरे गीत बुलाते हैं

आर.एस. यादव

एस. एन. त्रिपाठी उन संगीतकारों में थे जिन्होंने अपनी धुनों में भारतीयता का आधार कभी नहीं छोड़ा। हालाँकि पिछले कई वर्षों से वे, नौशाद और सलिल चौधरी की तरह, फिल्मी गतिविधियों से अदृश्य हो चुके थे। मगर उनकी अहमियत और असर को भारतीय फिल्म संगीत से नकारा नहीं जा सकता। आज की नवपीढ़ी को अपना संगीत-बोध सँवारने के लिए त्रिपाठी के कम्पोजिशन्स जरूर सुनने चाहिए! उनके चार गीतों ने अपने समय में पुरस्कार हासिल किए थे। पहला था—'हातिमताई' का गीत 'परवरदिगार आलम तेरा ही है सहारा।' दूसरा था 'जरा सामने तो आ ओ छलिये' 'जनम जनम के फेरे' फिल्म का गीत। तीसरा था 'आ लौट के आजा मेरे मीत'। फिल्म थी—रानी रूपमती। और चौथा था, सम्राट तानसेन का वह अमर गीत, जो अपनी वातावरण सृजना के लिए विख्यात रहेगा—"झूमती चली हवा, याद आ गया कोई।" शुरू के दो गीतों को मोहम्मद रफी, और आखिरी के दो गीत मुकेश ने गाए थे।

त्रिपाठी के संगीत की मुख्य खूबी थी—मीठी, कर्णप्रिय धुनें और उनकी निपट भारतीयता। इस नजरिए से उनके 'महाकवि कालिदास' के गीत "शाम भई घनश्याम न आए" (लता) और 'संपूर्ण रामायण' के गीत "जारी ओ पवन" (लता) को कौन भुला सकता है। **"जारी ओ पवन' तो स्वयं लता की पसंद के गीतों में से एक है।** अनिल विश्वास और दिवंगत त्रिपाठी की यह खूबी रही है कि उनके गीतों में भारतीय नारी का समर्पण और कौमाल्य फूट पड़ा है। मिसाल के लिए सन् साठ के वर्षों में बनी 'हातिमताई' फिल्म का एक युगल गीत ले लीजिए—'झूमती है नजर, झूमता है प्यार, ये नजर छीनकर ले गई करार'। रफी-आशा के इस गीत का एक इस्लामी फिल्म में भी मूल स्वर एक दम बनारसी है, और उस गीत की मोहकता केवल 'चित्रलेखा' (रोशन का संगीत) के गीत 'छा गए बादल नील गगन पर' (रफी-आशा) से ही तुलनीय साबित होती है। त्रिपाठी के युगल गीत, शब्दों और धुनों के चुनाव में, कभी भारतीय शालीनता के पार नहीं जाते! आप परिवार में बैठकर सुन लीजिए "फूल बगिया में बुलबुल बोले, डाल पे बोले कोयलिया" (रानी रूपमती) या "उन पर कौन करेगी विश्वास" (महाकवि कालिदास)। इसी तरह, रफी ने भिन्न-भिन्न संगीतकारों के निर्देशन में हजारों गीत गाए हैं। मगर गरिमा, गहराई और स्थायित्व की दृष्टि से उनके दो दुर्लभ गीत त्रिपाठी के पक्ष में जाते हैं। वे गीत हैं—"लाल किला" के। 'न किसी की आँख का नूर हूँ' और 'लगता नहीं है दिल मेरा'। आप इन गीतों को सुनिए... इनमें पृष्ठभूमि में सिर्फ हारमोनियम का हल्का सा स्वर बजता रहता है और दोनों गीत सन्नाटे की चादर पर फैलते चलते हैं। अगर आपने फिल्म नहीं भी देखी है, तो बहादुरशाह जफर के अंतिम दिनों की करुणा और जेल के सन्नाटे की पीड़ा.. गीत की धुन और गायन में उभर आते हैं। इन गीतों को सुनकर लगता है कि श्रेष्ठतम गायक से भी श्रेष्ठ संगीतकार होता है, जो शून्य में से दुर्लभ धुनें खींचकर लाता है, और काव्य, भावना तथा गायन को एक निश्चित आयाम देता है। इन दो गीतों के सिलसिले में 'कागज के फूल' (एस. डी. बर्मन का संगीत) का वह गीत भी सन लीजिए, जिसे रफी ने ही गाया था: "बिखरे सभी बारी बारी।" मैं इन तीन गीतों को गायकी के हिसाब से रफी के श्रेष्ठ गीतों और धुन के हिसाब से तीन अविस्मरणीय धुनों में मानता हूँ। इन तीनों गीतों को वातावरण-सृजना और धुन की अतींद्रियता के कारण केवल एक ही गीत सरपास करता है और वह था फिल्म 'रुस्तमे सोहराब' में सज्जाद हुसैन का कम्पोज किया हुआ और लता का गाया हुआ—"आ दिलरुबा नजरें मिला।" यह गीत कई कारणों से भारतीय संगीत का अकेला गीत है, और मजा यह है कि एच. एम. वी. अपने किसी भी एल. पी. (पुरानी फिल्म के गीतों के) में इस गीत को अभी तक नहीं निकाल पाई है।

◆◆◆

हैदराबाद का नवाब और वह गीत!

सन् साठ के वर्षों की बात है! नवाबे-हैदराबाद अपने परिवार के साथ सिनेमाघर में एक फिल्म देखने गए! फिल्म का नाम था-हातिमताई। उस फिल्म में मोहम्मद रफी का गाया हुआ एक सूफियाना गीत था—'परवरदिगार आलम तेरा ही है सहारा।' इस गीत ने नवाब साहब को इतना भाव विभोर कर दिया कि वे हॉल में ही सिसकने लगे, और बार-बार उस गीत को सुनने की फरमाइश करने लगे। सिनेमा के मैनेजर ने प्रोजेक्टर पर उस गीत को वापस फेर-फेरकर बारह बार बजवाया। जब नवाब साहब का जी भर गया, तब जाकर फिल्म आगे चली! इस गीत के रचियता थे साहिर लुधियानवी और संगीतकार थे एस. एन. त्रिपाठीजी!

एस. एन. त्रिपाठी मूलतः धार्मिक फिल्मों के संगीतकार रहे। वे अभिनेता भी थे। घटोत्कच का रोल एक फिल्म में उन्होंने इतना जानदार किया था कि घटोत्कच अगर वास्तविक जीवन में भी उस रूपरंग और व्यवहार-शैली का नहीं रहा होगा, तो हमें प्रकृति पर खेद होता। विलेन के रूप में वे खूब फबते थे। उनकी तलवार कट मूँछें और रोबीला चहरा देखकर यह विश्वास करना मुश्किल होता था कि उनका संगीत इतना मधुर और कोमल है। उनकी कम्पोज की हुई दुर्गा की आरती, जो अब सुनाई भी नहीं पड़ती, आज भी 'नवदुर्गा' के श्रेष्ठ संगीतमय स्तवनों में से एक है।

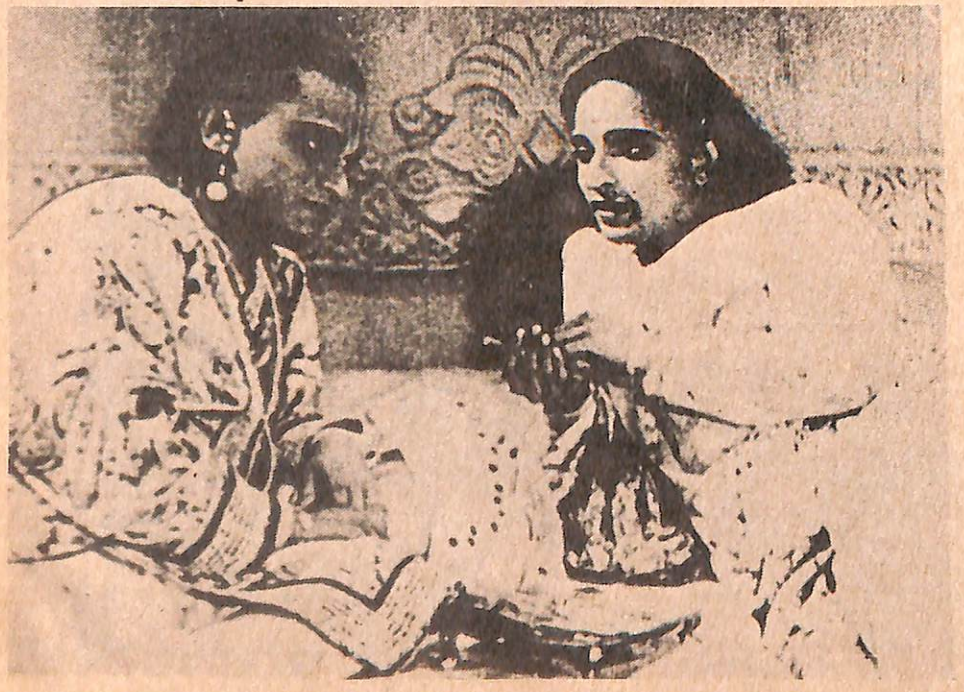

चिंतामणी फिल्म का एक दृश्य

याद कीजिए, 'नवदुर्गा' का वह गीत 'जयजयकार करो माता का, आओ शरण भवानी की, एक बार फिर जोर से बोलो जय दुर्गा महारानी की!' इसी तरह, याद कीजिए 'नवरात्रि' का वह मधुर, उदास गीत, जो गीतादत्त की स्वाभाविक सैड आवाज के कारण अविस्मरणीय हो उठा है। "आई विरहा की रात, मोरा तड़पे जिया, मोसे रूठा पिया, कोई मन का सहारा नहीं।" ऐसा लगता है, जैसे त्रिपाठीजी के साथ हमारे फिल्म संगीत का बचा-खुचा भारतीय रंग भी चला गया। उनका वह चुलबुला गीत आप कैसे भूल सकते हैं, जो विवाह के अवसर पर नाईन या साली-सरहज की छींटाकशी को व्यक्त करता है "आँखों में सुरमा डालकर जब आएगी दुलहनिया।" उषा मंगेशकर के द्वारा, 'रानी रूपमती' में गाये इस गीत मे जो प्रवाह और तबले की थापें हैं, वे आपको गुदगुदाती चली जाएँगी।

गीतों की मात्रा और धुनों की वेरायटी के हिसाब से त्रिपाठी का क्षेत्र काफी छोटा रहा, मगर जितने भी गीत उन्होंने लयबद्ध किए, वे संगीत के मर्मज्ञों और सामान्यजन में बराबर की प्रशंसा के हकदार रहे। उन्होंने भरती के गीत कभी नहीं रचे। एच. एम. वी. को चाहिए कि उनकी यादगार में उनके विशिष्ट गीतों का एल. पी. निकाले, ताकि उनका महत्व कालांतर में उभरे। "थाने काजलियो बना लूँ" और "झूमती चली हवा" का रचनात्मक पैराडॉक्स और प्रतिभा का अविभाज्य एकत्व... औसत युवा की समझ में आना चाहिए। त्रिपाठीजी के सम्मान में हमें गाना चाहिए—"आ लौट के आ जा मेरे मीत, तुझे तेरे गीत बुलाते हैं।"

रात ने क्या-क्या ख्वाब दिखाए: सलिल चौधरी

'मधुमती', 'जागते रहो', और 'माया' के गीतों को शायद ही कोई सिने-रसिक भूल सकता है। इन फिल्मों का संगीत अपने साथ धरती की एक नई सुगंध लेकर आया था। बिमल रॉय के 'दो बीघा जमीन' का समूह गीत 'अपनी कहानी छोड़ जा' सुनकर जैसे हमारे जीवन का मतलब ही बदल जाता है। बिमल रॉय की 'दो बीघा जमीन', 'नौकरी', 'बिराज बहू', 'परिवार', 'अपराधी कौन', 'मधुमती', 'परख' और 'उसने कहा था' में सलिल चौधरी ने संगीत दिया था। 'मधुमती' के 'सुहाना सफर और ये मौसम हँसी' 'आ जा रे परदेशी' तथा 'दैया रे दैया', जुल्मी संग आँख-लड़ी' और 'दिल तड़प-तड़प कर कह रहा है' ने उन्हें फिल्म संगीत निर्देशकों की पंक्ति में बिठा दिया। 'एक गाँव की कहानी' में उन्होंने तलत महमूद से 'झूमे रे' और 'रात ने क्या-क्या ख्वाब दिखाए' जैसे मधुर गीत गवाए। राजकपूर की 'जागते रहो' में 'जिंदगी ख्वाब है' और 'जागो मोहन प्यारे' में अद्भुत माधुर्य था।

'महबूब की आवाज' फिल्म के अलावा उन्होंने 'मुसाफिर' में दिलीप कुमार को भी पहली बार और शायद अंतिम बार लता मंगेशकर के साथ 'लागी नाहीं छूटे रामा' गाते हुए प्रस्तुत किया। उनकी बाद वाली फिल्मों में 'रजनीगंधा' तथा छोटी सी बात उल्लेखनीय थीं।

◆◆◆

अनुराधा पौडवाल

अनुराधा पौडवाल के गायन जीवन की शुरूआत धीमी गति से हुई है। बंबई में २७ अक्टूबर १९५४ को जन्मी अनुराधा ने कला विषय लेकर इंटरमीजिएट पास किया। पं. जसराज और पं. रामनारायण से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। वे लता मंगेशकर की इतनी भक्त हैं कि उनके ग्रामोफोन रिकॉर्ड लगाकर खुद भी उसके साथ गाने लगती थीं। अनिल-अरुण नामक संगीतकारों की जोड़ी में से उन्होंने अरुण पौड़वाल के साथ ब्याह रचाया और अनुराधा पौडवाल बन गईं। अपने श्वसुर से प्रेरणा पाकर सुरीली आवाज को पार्श्व गायिका के रूप में इस्तेमाल करने का विचार उनके मन में आया। एस. डी. बर्मन ने फिल्म 'अभिमान' में पहली बार संस्कृत के एक श्लोक की चार पंक्ति गवाई थी। आरंभ में डबिंग सिंगर बनने का इरादा था। फिल्म 'हीरो' का गीत- तू मेरा जानूं है- जब उनकी आवाज में रखा गया, तो विश्वास लौट आया। अनुराधा के मराठी गीत सुनकर संगीतकार जयदेव ने भी अवसर दिए। फिल्म कालीचरण का गीत- एक बटा दो, दो बटा चार- (कल्याणी-आनंदजी) अनुराधा का पहला हिट गीत है। दुर्गा सप्तशती तथा तुलसी भजनावली नाम से दो प्रायवेट कैसेट अनुराधा के जारी हुए हैं। उसका विश्वास है कि लोकप्रियता आसानी से नहीं मिलती, उसके लिए लंबी साधना तथा त्याग करना होता है।

◆◆◆

छाया : ओम तिवारी

चलत मुसाफिर मोह लिया रे : शंकर-जयकिशन

● हेमचंद्र पहारे

फिल्म जब बन कर तैयार होती है तो निर्देशक के दिमाग में जो कुछ भी होता है, उसे परदे तक लाने में यदि अर्थशास्त्र की भाषा में कहें तो श्रम-विभाजन का सहारा लेना ही पड़ता है। साहित्य (या लेखन), चित्रकला, फोटोग्राफी, संगीत (गायन-वादन), नृत्य, अभिनय जैसी ललित और प्रदर्शनकारी कलाओं के अलावा फिल्म के निर्माण में विज्ञान और टेक्नालॉजी का अपना योगदान अलग-अलग होता है। सिनेमा, चूँकि एक लोकप्रिय माध्यम है तथा उसमें धन भी बरसता है, उसमें प्रत्येक क्षेत्र के श्रेष्ठतम लोगों का सहयोग लिया जाना लाजमी होता है। भारतीय फिल्मों का एक महत्वपूर्ण अंग चूँकि संगीत भी होता है, उसमें भी यदि देखा जाए तो सफलता एकल के बजाए समवेत प्रयासों को ही ज्यादा मिली है। संगीतकार जोड़ी शंकर-जयकिशन की अद्‌भुत लोकप्रियता भी इसी तथ्य को रेखांकित करती है। संगीत निर्देशन के क्षेत्र में शंकर-जयकिशन की जोड़ी जब १९४८-४९ में बनी तो उसके पूर्व भी हुस्नलाल भगतराम जैसे लोग मिलकर काम कर रहे थे लेकिन जिस तरह शंकर और जयकिशन लगभग बीस-बाईस वर्षों तक 'दो जिस्म मगर एक जान' होकर संगीत की वर्षा करते रहे, वैसा इससे पहले कभी नहीं हुआ। आज लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल के बारे में भी इस तरह की बातें सामने आती हैं कि जोड़ी में से कोई एक किसी एक विभाग में निष्णात है तो दूसरा किसी अन्य में, लेकिन १९७१ में जयकिशन की मृत्यु के समय तक बहुत कोशिशों के बावजूद लोगों के लिए यह अंदाज लगाना कठिन था कि किस फिल्म के कौन से गीत की धुन शंकर ने बनाई है और किसकी जयकिशन ने। इस अनोखे समन्वय का ही नतीजा यह हुआ कि शंकर-जयकिशन की जोड़ी ने सबसे ज्यादा विपुल मात्रा में जितना मधुर, उतना ही लोकप्रिय संगीत अपने बीस-पच्चीस वर्ष के कार्यकाल में दिया। यदि इस दौरान उन्होंने लगभग डेढ़ सौ फिल्मों में संगीत दिया, तो शायद यह भी कोई बड़ी बात नहीं थी। बड़ी बात यह थी कि १९४८ से १९६८ तक की उनकी फिल्मों का एक-एक गीत 'हिट' होता था। और सिर्फ हिट ही नहीं होता था, विपुल मात्रा का उनके संगीत की गुणवत्ता पर कोई विपरीत असर नहीं पड़ता था। चाहे वह 'सीमा' जैसी गंभीर कलात्मक फिल्म हो या 'बागी सिपाही' या 'पटरानी' या 'हलाकू' जैसी पोशाक-फिल्म, 'बसंत बहार' जैसी शास्त्रीय संगीत पर आधारित फिल्म हो या 'अनाड़ी', 'उजाला' या 'कन्हैया' जैसी सामाजिक फिल्म। उन दिनों यह संभव ही नहीं था कि उसके कम से कम सात या आठ गाने बैंड वालों ने बारातों के आगे-आगे न बजाए हों। जिस तरह आज की फिल्मों में एक-आध सुरीला गीत मुश्किल से ढूँढना पड़ता है उसी तरह शंकर-जयकिशन की फिल्मों में एक-आध कम लोकप्रिय या कमजोर गीत खुर्दबीन लेकर तलाशना पड़ता था।

शंकर-जयकिशन के बारे में इतनी सारी बातें बिना राजकपूर का जिक्र किए लिख दी गई हैं। इसके पीछे मंशा राजकपूर के महत्व को कम करने की नहीं है, बल्कि शंकर-जयकिशन के संगीत का उसके अपने बल पर मूल्यांकन करने की है। राजकपूर की प्रथम फिल्म 'आग' (१९४८) के संगीतकार राम गांगुली थे और उनके सहायक हैदराबाद से आए पहलवान शंकर तथा बलसार से आए गुजू भाई जयकिशन थे। दोनों के भीतर जो प्रतिभा का ज्वालामुखी खदबदा रहा था उसे राजकपूर ने तत्काल पहचाना और स्वतंत्र रूप से 'बरसात' का संगीत निर्देशन उन्हें सौंप दिया। 'बरसात' में 'मेरा लाल दुपट्टा मलमल का', 'बरसात में तुमसे मिले हम', 'छोड़ गए बालम' और 'पतली कमर है तिरछी नजर है' जैसे गीतों के साथ मधुर संगीत की जो बारिश शुरू हुई वह उनके जाने के बाद ही थमी। 'आह' ('आजा रे अब मेरा दिल पुकारा', 'ये शाम की तनहाइयाँ') के बाद ही 'आवारा' आई। 'आवारा' का स्वप्न-दृश्य जितना राजकपूर की निर्देशकीय कल्पना शक्ति का कमाल था, उतना ही इन संगीतकारों की प्रतिभा का भी। मजे की बात तो यह है कि

◆◆◆

कलाभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में सिनेमा की सबसे बड़ी विशेषता संभवतः यही है कि वह एक अलग ढंग से, व्यक्तिनिष्ठता के ऊपर समष्टि और वस्तुनिष्ठता को तरजीह देता है। एक फिल्म जब बनती है, तो वह एक सामूहिक और संश्लिष्ट प्रयास होता है। यह भी सही है कि सिनेमा निर्देशक का माध्यम है, लेकिन वह सत्यजित राय, शांताराम और राजकपूर जैसे निर्देशकों के मामले में भी पूरी तरह व्यक्तिनिष्ठ नहीं रह पाता।

◆◆◆

राजकपूर के मन के अंतर्द्वंद्व को साक्षात् करने वाले 'तेरे बिना बेसुरी बाँसुरी', 'मुझको ये नरक न चाहिए, मुझको गीत, मुझको प्रीत चाहिए' तथा 'घर आया मेरा परदेसी' जैसे गीतों के चित्रांकन को लेकर सिने-कला के पारखी गद्‌गद् होते हैं, उतने ही पिछले चालीस साल से बैंड और ऑर्केस्ट्रा वाले भी होते रहे हैं। बल्कि आज भी 'मेलोडी मेकर्ज' से लेकर मुहल्ले के ऑर्केस्ट्रा वालों के लिए भी 'आवारा' का 'ड्रीम-सीक्वेंस' बजाना एक धार्मिक अनुष्ठान बन गया है। यह तो हुई स्वप्न-गीत की सदाबहार लोकप्रियता की बात, लेकिन राजकपूर ने अपनी फिल्मों में चार्ली चैपलिन के 'ट्रैम्प' का जो हिंदुस्तानी संस्करण निहायत ही कल्पनाशीलता के साथ प्रस्तुत किया, उसे शंकर-जयकिशन ने अपने 'जख्मों से भरा सीना है मेरा, हँसती है मगर ये मस्त नजर', 'मेरा जूता है जापानी' (श्री ४२०), 'सब कुछ सीखा हमने न सीखी होशियारी' (अनाड़ी), 'हर दिल जो प्यार करेगा वो गाना गाएगा' (संगम) जैसे गीतों से गहराई प्रदान की।

राजकपूर मुकेश को अपनी आत्मा कहते थे, लेकिन राजकपूर की खुद की आवाज तथा शैली को मन्ना-डे की आवाज ज्यादा रास आती थी। इसे स्वयं जयकिशन ने भी स्वीकार किया था और उन्होंने न केवल इसे कहा, बल्कि प्रमाणित भी किया था। आवारा के स्वप्न-दृश्य के उपर्युक्त गीत के अलावा शंकर-जयकिशन ने मन्ना-डे और लता से श्री ४२० (प्यार हुआ इकरार हुआ), 'चोरी-

शंकर-जयकिशन के सुर का कमाल : यहूदी

चोरी' ('आजा सनम मधुर चाँदनी में', 'जहाँ मैं जाती हूँ वहीं चले आते हो') जो रूमानी युगल गीत गवाए वे आज भी लोकप्रियता की चोटी पर हैं। 'मेरा नाम जोकर' में 'ऐ भाई जरा देख के चलो' तथा 'बसंत बहार' में भी शंकर-जयकिशन ने मन्ना-डे की आवाज का सटीक उपयोग किया। दरअसल हिंदी फिल्मों को शंकर-जयकिशन की सबसे बड़ी देन उनके युगल गीत ही थे। मुकेश और लता के राजकपूर की फिल्मों के बाहर के भी 'उजाला', 'आस', 'अनाड़ी', 'एक दिल सौ अफसाने' तथा 'मैं नशे में हूँ' के गीतों ने तूफानी लोकप्रियता प्राप्त की थी।

भारतीय फिल्मों को देश को उसकी समस्त विविधता के साथ एक-सूत्र में बाँधने का श्रेय दिया जाता है। यह सही है कि अंतिम उत्पाद के रूप में हिंदी फिल्में उत्तर, दक्षिण, पूरब-पश्चिम को जोड़ने का काम करती हैं, लेकिन उनकी निर्माण-प्रक्रिया में खेमेबाजी, क्षेत्रीयता और भाई-भतीजावाद का बोलबाला है। भिन्न-भिन्न कारणों से दिलीप कुमार नौशाद, कारदार, एस.यू. सनी, महबूब आदि से जुड़े थे तो देव आनंद का एक अलग खेमा था। बी.आर. तथा यश चोपड़ाओं का अपना गुट था और वह क्षेत्रीयता पर आधारित है या नहीं इसके बारे में सिर्फ अंदाज ही लगाया जा सकता है। इसी सिलसिले में शंकर-जयकिशन को भी राजकपूर-खेमे से जुड़ा हुआ माना जाता रहा है। लेकिन शंकर-जयकिशन की प्रतिभा ने इस खेमेबाजी के भ्रम को बड़ी जल्दी ही तोड़ दिया था। 'बरसात' की लोकप्रियता के बाद भले ही आर.के. के साथ उनके विशेष संबंध रहे हों, उनकी प्रतिभा उसकी मोहताज नहीं रही। अमिय चक्रवर्ती, (दाग, पतिता, सीमा, कठपुतली), किशोर साहू (कालीघटा, मयूर पंख, किस्मत का खेल), विजय भट्ट (पटरानी, हरियाली और रास्ता), मोहन सहगल (नई दिल्ली, कन्यादान), सोहराब मोदी (राजहठ, यहूदी), ए.वी.एम. (छोटी बहन, ससुराल), ऋषिकेश मुखर्जी (अनाड़ी, असली-नकली), बासु चटर्जी (तीसरी कसम), श्रीधर (दिल एक मंदिर), उत्तम कुमार (छोटी सी मुलाकात), नासिर हुसैन (जब प्यार किसी से होता है), सुबोध मुखर्जी (एप्रिल फूल) तथा आर. चंद्रा (बसंत बहार) जैसे निर्माता-निर्देशकों ने भी उनसे अपनी फिल्मों के लिए अमर गीत प्राप्त किए। एक और तथ्य इस सदाबहार जोड़ी के बारे में उल्लेखनीय यह रहा कि अच्छा संगीत देना जैसे उनकी आदत में शामिल था। निर्देशक, बैनर, सिचुएशन, विषय आदि उनके तई बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं होते थे। स्वर-माधुर्य के वे सौदागर थे। वही उनका पहला और अंतिम लक्ष्य था। उन्होंने राग भैरवी के प्रति अपनी पसंदगी जाहिर अवश्य की थी, लेकिन शास्त्रीयता, लोक-संगीत, पाश्चात्य संगीत या परंपरागत या आंचलिकता के प्रति उनके कोई पूर्वाग्रह या 'प्रिटेंशंस' नहीं थे। किसी विशेष प्रकार के संगीत या स्कूल की 'सेवा' या कोई महान कार्य करने का भाव भी उन्होंने प्रदर्शित नहीं किया। जयकिशन तो 'बेगुनाह' में 'ऐ प्यासे दिल बेजुबाँ' गाते हुए तथा श्री ४२० के 'मुड़-मुड़ के न देख' गीत में परदे पर भी बड़े सहज भाव से चले आए थे। इस सारी सहजता का एकमात्र कारण यही था कि उन्हें अपनी प्रतिभा में अदम्य विश्वास था और जनता की नब्ज पर उनका हाथ हमेशा मौजूद रहता था। इसीलिए उन्होंने अपने संगीत के बारे में व्याख्याएँ और कैफियतें देने की कभी जरूरत नहीं समझी।

शंकर-जयकिशन की फिल्मों के गीत जितने लोकप्रिय होते थे उतनी ही मेहनत वे पार्श्व-संगीत के लिए भी करते थे। नित-नए वाद्यों के प्रयोग तथा संयोजन-कुशलता के द्वारा वे फिल्मों के दृश्य-प्रभावों में रचनात्मक अभिवृद्धि करते थे। उनकी रचना-प्रक्रिया इतनी 'पर्फेक्ट' हो गई थी कि पार्श्व संगीत के टुकड़े सँजोने के लिए जयकिशन को

अन्य संगीतकारों की तरह 'दृश्य की अवधि' पहले से नोट करने की जरूरत नहीं पड़ती थी। वे फिल्म देखते जाते थे और पार्श्व संगीत रिकॉर्ड होता जाता था। बतलाया जाता है कि 'संगम' जैसी बड़ी (लंबाई में भी!!) फिल्म का पार्श्व संगीत उन्होंने एक सप्ताह में रिकॉर्ड करवा लिया था।

शंकर-जयकिशन पहले संगीतकार थे जिन्होंने वाद्यवृंद का विराट रूप में प्रयोग शुरू किया। पाश्चात्य वाद्यों में प्यानो अकॉर्डियन ('आवारा हूँ', 'हर दिल जो प्यार करेगा'), मेंडोलिन ('दुनिया वालों से दूर, जलने वालों से दूर'), ओबो, ट्रम्पेट ('नखरे वाली', 'मुड़-मुड़ के न देख') का उन्होंने खूब उपयोग किया। जहाँ २० वायलिनों का प्रयोग करना उन्हें अच्छा लगा वहाँ उन्होंने १९ से काम कभी नहीं चलाया। जयकिशन को उनके मित्र प्रिंस ऑव् पिपलिनगर कहते थे, क्योंकि उनका रहन-सहन ही शाही था और किसी भी तरह की कृपणता या ओछापन वे संगीत में भी पसंद नहीं करते थे।

शंकर-जयकिशन के संगीत की श्रेष्ठता का एकमात्र मापदंड उसकी लोकप्रियता और उसका माधुर्य ही होना चाहिए (जैसा कि उन्होंने फिल्म-फेयर के एक लेख में कहा था—'मेलोडी इज द किंग'), लेकिन इस लेख के समापन पर हम शास्त्रीय संगीत के आग्रहियों के लिए भी उनके कुछ ऐसे शास्त्रोक्त रागों पर आधारित गीतों का उल्लेख करेंगे जो उन्हें रेस्पेक्टेबिलिटी प्रदान करते हैं। बसंत बहार में मन्ना-डे के 'भय भंजना' और 'सुर ना सजे क्या गाऊँ', सीमा (तू प्यार का सागर है), 'दिल एक मंदिर है' (शीर्षक गीत), 'आज कल में ढल गया' (साँझ सवेरा) 'जाओ रे जोगी तुम' (आम्रपाली) आदि ऐसे ही गीत हैं। जो लोग उनसे लोक-संगीत की उम्मीद करते थे उन्हें भी उन्होंने 'तीसरी कसम' में 'मारे गए गुलफाम', 'चलत मुसाफिर मोह लिया रे' 'सजनवा बैरी हो गए हमार' तथा 'काहे को दुनिया बनाई' जैसे गीत देकर खुश कर दिया।

शंकर-जयकिशन ने अपनी सहज और प्रचारहीन शैली में सुबीर सेन, शारदा जैसे नए गायकों को तो आगे बढ़ाया ही, पहले से स्थापित लता, मुकेश, मन्ना-डे तथा तलत महमूद (दाग, पतिता) तथा किशोर (नई दिल्ली, रँगोली) तथा मोहम्मद रफी (छलके तेरी आँखों से—आरजू) जैसे पार्श्व गायकों के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान किया। उनकी विपुलता तथा लोकप्रियता को देखते हुए १९५० से १९७० के दो दशकों को हम शंकर-जयकिशन का युग कह सकते हैं। १९७१ में जयकिशन के असामयिक निधन से संगीतकारों की इस अद्भुत जोड़ी का जादू बिखर गया। शंकर ने बाद में बेईमान, संन्यासी, लाल पत्थर आदि फिल्मों में संगीत दिया, लेकिन वह पुरानी बात उसमें नहीं थी। एक तरह से जयकिशन के जाने से उनकी ताल और ट्यून दोनों ही भंग हो गए। ■

भूल गया सब कुछ, याद नहीं अब कुछ

सत्तर के दशक के उत्तरार्द्ध में हिन्दी फिल्म जगत में संगीतकारों के बेटों का उद्‌भव भी बड़े जोर-शोर के साथ हुआ। सचिनदेव बर्मन के बेटे राहुल देव तो सन् १९६१ से ही फिल्मों में आ गए थे और उन्होंने अपनी प्रतिभा को १९७५ के आते-आते प्रमाणित भी कर दिया था, लेकिन इसी समय संगीतकार रोशन के बेटे राजेश और बंगाल के प्रसिद्ध संगीतकार अपरेश लाहिरी के बेटे बप्पी के आगमन ने एक बार फिर से लोगों के मन में यह सवाल पैदा किया कि ये उदीयमान बेटे

अपने पिताओं की ख्याति के अनुरूप काम कर दिखलाएँगे या नहीं। यह एक विचित्र संयोग है कि जिस कॉमेडियन महमूद ने पहली बार राहुल देव की प्रतिभा को पहचाना और उन्हें मौका दिया (तब तो स्वयं सचिन दा को उनकी प्रतिभा के बारे में शंका थी!!) उन्हीं ने राजेश को भी अपनी फिल्म 'कुँवारा बाप' में पहला मौका दिया। यह कैसे हुआ यह उन्हीं के शब्दों में सुनिए: 'आनंद बख्शी की सलाह पर मैं जब लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल के सहायक के रूप में काम कर चुका तो अपनी स्वयं की बनाई धुनें निर्माताओं को सुनाने लगा। महमूद भाई जान के भाई अनवर और शौकत मेरे दोस्त हैं। उन्हें मेरी कुछ धुनें बहुत पसंद आई और वे मुझे भाईजान के पास ले गए। उन्होंने अपनी अगली फिल्म की एक लोरी वाली सिचुएशन सुनाई। बस रात भर बैठकर मैंने एक धुन बनाई और दूसरे दिन सुबह पहुँच गया। महमूद साहब को धुन तत्काल पसंद आ गई। कुँवारा बाप के बाद आई जूली। जूली में उनके किशोर द्वारा गाए 'भूल गया सब कुछ, याद नहीं अब कुछ' तथा लता के साथ 'ये राहें नई पुरानी' ने उन्हें चोटी के संगीतकार के रूप में स्थापित कर दिया। राजेश रोशन अपने संगीत में मेलोडी के साथ-साथ आधुनिकता का स्पर्श देना जरूरी मानते हैं व इस मामले में बर्मन (सीनियर) को अपना आदर्श मानते हैं। राजेश की सचिन'दा के प्रति इस श्रद्धा का शायद देव आनंद को इलहाम हो गया और उन्होंने अपनी महत्वाकांक्षी फिल्म 'देस परदेस' आर.डी. को न देकर राजेश को सौंप दी। राजेश ने एक बार फिर किशोर कुमार से उनकी सर्वश्रेष्ठ आवाज में तू पी और जी, नजर लगे न साथियो, ये है देस परदेस जैसे गीत गवा कर देव आनंद ने जो भरोसा उन पर किया था उसे सही साबित कर दिया। बर्मन शैली में ही इस फिल्म में उन्होंने एक गीत 'आप कहें और हम ना आएँ' लता से भी गवाया। राजेश रोशन की कुछ अन्य बड़ी फिल्मों में अमिताभ बच्चन की 'मि. नटवरलाल' भी थी जिसमें उन्होंने स्वयं अमिताभ से 'मेरे पास आओ मेरे दोस्तों' गीत बिल्कुल डैनी की शैली में गवाया जो बच्चों और बड़ों में एक-सा लोकप्रिय हुआ। राजेश रोशन की अन्य उल्लेखनीय फिल्मों में बासु चटर्जी की स्वामी, जिनी और जानी, उधार का सिंदूर आदि थीं।

जैसा कि अभिनेता पुत्रों के साथ हुआ वैसा ही दुर्भाग्यवश राजेश के साथ भी हुआ कि प्रारंभिक चमत्कारी सफलता के बाद वे अपनी रचनात्मकता को ज्यादा लंबे समय तक बनाए नहीं रख सके। हो सकता है पिछले दस-बारह बरसों से फिल्म संगीत में जो गिरावट आई है उसका खामियाजा राजेश को भी भुगतना पड़ा हो। स्वयं उनके अनुसार "रफ-टफ, मार-धाड़ वाली फिल्मों में संगीत देना मेरे बस की बात नहीं है। मैं एक महीने में चार या पाँच से ज्यादा गाने रिकॉर्ड नहीं कर पाता।" राजेश की ताजा हिट फिल्म उन्हीं के भाई राकेश की 'खून भरी माँग' थी जिसमें 'जिंदगी यूँ ही चलती रहे' तथा 'जीना तुझको आया ही नहीं' गीत बहुत लोकप्रिय हुए। उनकी सिद्धांतवादिता के कारण अब वे अपने भाई की फिल्मों के अलावा बहुत ही कम फिल्मों में संगीत दे पा रहे हैं।

◆◆◆

रुमझुम बरसे बादरवा: जौहरा

बंबई आने से पहले जौहराबाई पंजाब की हिंदी फिल्म हिम्मत में संगीतकार पंडित गोविंदराम के निर्देशन में गा चुकी थीं। बंबई में राजकमल की फिल्म 'शकुंतला' में पहला मौका मिला। नौशाद के संगीत का स्पर्श जब जौहरा की आवाज को मिला तो वह सोना बन गई। रतन फिल्म के गाने रुमझुम बरसे बादरवा अँखियाँ मिलाके, आई दिवाली- देश की गली गली में गूँजे और जौहरा परिचित नाम हो गया।

पंजाब के अम्बाला शहर में जन्म लेने के कारण उनका नाम अम्बालावाली पड़ा। बचपन से संगीत में लगाव होने से तथा गाना का प्रोत्साहन पाकर तेरह साल की उम्र में उनके ग्रामोफोन रिकॉर्ड तैयार हो गए थे। उनकी आवाज मोटी होने के साथ ही मर्दानी लगती थी। एक प्रकार का नशा उनकी आवाज के साथ माहौल में घुलता था। उनकी बेटी रोशन कुमारी है, जो प्रसिद्ध नृत्यांगना हैं। प्रमख गीत: *टूटा हुआ दिल गाएगा क्या (दूसरी शादी) *कोयलिया बोले (हमजोली) *आँख भर आई (पहले आप) *ऐ दिल मुझे ले चल (पंछी) *फरियाद न कर (घर)।

पंछी बावरा: खुर्शीद

खुर्शीद की आवाज बेशक लासानी थी। रणजीत की तानसेन जैसी फिल्मों में गाए उनके गीत 'छाई घटा घनघोर घोर' तथा 'मोरे बालापन के साथी छैला भुल जइयो ना' को कोई कैसे भुला सकता है। पुरुष गायकों में सहगल और स्त्री गायिकाओं में खुर्शीद जैसी जोड़ी बाद में नहीं आई। लाहौर में जन्मी खुर्शीद ने पहला गाना रणजीत की फिल्म होली में गाया था। खेमचंद प्रकाश ने फिल्म परदेसी में उनसे सात गीत गवाए थे। 'पहले जो मुहब्बत से इंकार किया होता' तथा 'अब कहाँ बसेरा, अपना' गीतों ने देश भर में लोकप्रियता का रिकॉर्ड कायम किया था। भक्त सूरदास तथा तानसेन में इन दोनों गायकों का कड़ा मुकाबला हुआ। १९४५ में बनी फिल्म मूर्ति में खुर्शीद ने मुकेश- हमीदा का साथ देते हुए एक गीत गाया था। भारत विभाजन के बाद वे पाकिस्तान चली गईं। उनके मधुर गीत हैं- *दिल आहें भर ऐसी (चाँदनी) *ऐ दर्दे मुहब्बत (बेटी) *मोहब्बत में सारा जहाँ (बाबर) *मधुर मधुर गारे (भक्त सूरदास) *वो बुखिया जियरा (तानसेन)।

दे दे खुदा के नाम पर: वजीर मोहम्मद खान

वजीर मोहम्मद खान को यदि डब्ल्यू. एम. खान नाम से पुकारा जाए, तो आप जल्दी पहचान जाएँगे। भारत की पहली बोलती फिल्म 'आलम आरा' का कोई प्रिन्ट आज उपलब्ध नहीं है और न ग्रामोफोन रिकॉर्ड। केवल लिखे हुए शब्द को आधार मानकर यह स्वीकार किया गया है कि इस फिल्म में अनेक कलाकारों को गाने तथा अभिनय का मौका मिला था। आर्देशीर ईरानी की इम्पीरियल कंपनी में वजीर मोहम्मद खान स्थाई कर्मचारी थे। जब आलम आरा बनी, तो एक फकीर का रोल उन्हें दिया गया और प्रथम गीत-दे दे खुदा के नाम पर प्यारे- गाने का मौका मिला। इसके बाद १९४६ और १९७३ में आलम आरा नाम से दो फिल्में और बनी थी, उनमें भी खान साहब को यही गीत गाने को दिया गया था। हिंदी फिल्मों का इतिहास बनाने वाले इस कलाकार के आखिरी दिन फटेहाली में बीते। १४ अक्टूबर १९७४ को वे खुदा को प्यारे हो गए।

राहुलदेव बर्मन, लताजी के साथ

दीवाना मुझ-सा नहीं —राहुलदेव बर्मन

● रमेश बहल

जिन दिनों वहीदा रहमान को लेकर गुरुदत्त और गीतादत्त में बहुत अनबन थी, गुरुदत्त ने गीता को नायिका लेकर "गौरी" नामक फिल्म की घोषणा की, क्योंकि उनका ख्याल था कि इस फिल्म के द्वारा वे अपनी टूटती हुई शादी को बचा लेंगे। फिल्म के लिए उन्होंने राहुलदेव बर्मन से दो गीत भी रिकॉर्ड कराए थे। दुर्भाग्यवश आपसी रंजिश तो कम नहीं हुई परन्तु फिल्म अधूरी ही रह गई।

सचिन देव बर्मन किसी छोटी-सी आसामी रियासत के जमींदार थे परन्तु संगीत की दुनिया में बेताज के बादशाह थे। वे हर काम सुर में करते थे। उन्होंने अपने एकमात्र पुत्र का नाम रखा राहुल हालाँकि सचिन दा गौतम की तरह ज्ञान की किसी यात्रा पर नहीं जा रहे थे। पुकारता नाम रखा पंचम। बालपन में ही माउथ आर्गन बजाकर पंचम ने अपने "होनहार बिरवान" होने का सबूत दे दिया था।

'गौरी' के नहीं बनने पर मन में घोर व्यथा थी। लक्ष्मी-प्यारे की "दोस्ती" के गीतों में माउथ आर्गन बजाकर दिल हलका किया। उन्हीं दिनों महमूद से दोस्ती हो गई और "छोटे-नवाब" का संगीत दिया। "घिर आए बदरवा" सुनकर लोगों को विश्वास हो गया कि पिता ने "पंचम" नाम यूँ ही नहीं रख दिया था। उन दिनों पंचम ने लताजी से प्रार्थना की कि वे उसका पहला गाना गाएँ। लताजी ने अगले दिन रिहर्सल पर पंचम के घर आने का वादा किया। जी हाँ, उन दिनों गायक-संगीतकार के घर जाकर रिहर्सल करते थे। आजकल तो कोई रिहर्सल ही नहीं करता। रिहर्सल की आवश्यकता हो ऐसी धुनें भी तो नहीं बनतीं।

उन दिनों सचिन दा और लताजी की अनबन थी। दो गुणवान लोगों के झगड़े भी आज की मोहब्बत से ज्यादा अर्थवान थे। लताजी को पंचम के घर पुहँचकर अपनी अनबन याद आई। अब वे सचिन दा के घर में रिहर्सल कैसे करें और "शत्रु" सचिन के बेटे का पहला गाना करना भी जरूरी था अतः घर के बाहर सीढ़ियों पर पंचम हारमोनियम लेकर बैठा और लताजी ने रिहर्सल की।

मेहमूद की दूसरी फिल्म "भूत-बंगला" में पंचम ने नए प्रयोग किए। उनका प्रयोग के प्रति शुरू से ही रुझान रहा है। राहुल देव बर्मन को अपनी सृजन शक्ति की "लय" उस समय मिली जब सचिन दा "आराधना" का संगीत रच रहे थे। उस समय पंचम सहायक के स्थान से उठकर सहयोगी बन गए और "सपनों की रानी" उन्हीं की धुन है। "बहारों के सपने" में गोरी बैया तो पे वार दूँ तो कमाल की रचना थी। "अमर प्रेम" ने पंचम को प्रथम श्रेणी के संगीतकार का दर्जा दिला दिया। "तीसरी मंजिल" और "यादों की बारात" के संगीत ने धूम मचा दी। राजेश खन्ना और राहुल की जोडी जम गई।

पंचम ने अमेरिका के कई दौरे किए और प्रयोग के प्रति रुझान को पश्चिमी हवा आ गई। उन्होंने वहाँ २७ ट्रेक की रिकॉर्डिंग देखी और भारत के ६ ट्रेक पर रोना आया। इलेक्ट्रॉनिक्स वाद्य यंत्रों ने उन्हें अचंभित कर दिए। प्रयोग की लहर में देशी 'बहर' से साथ छूट गया और दुर्भाग्यवश उनके सारे प्रिय निर्देशक पिटने लगे। इलेक्ट्रॉनिक्स का शनि शुद्ध भारतीय प्रतिभा को निगल गया। इसमें पंचम का उतना दोष नहीं है जितने उनके मित्र निर्देशकों का जिन्होंने अपने काम पर तकनीक को हावी होने दिया। दरअसल आज लक्ष्मी-प्यारे के बाद पंचम ही असली गुणवान संगीतकार हैं। कुछ दुर्भाग्य है और कुछ 'प्रयोग' का भूत की सुर का पुत्र तकनीक में उलझकर रह गया है। हमें उनसे अभी भी आशा है कि वे लौटेंगे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि फिल्मी दुनिया में मैं एकमात्र ऐसा निर्माता हूँ, जिसने अपनी फिल्म 'जवानी- दिवानी' से लेकर इंद्रजीत तक लगातार बारह फिल्मों में संगीत सिर्फ आर.डी. बर्मन से लिया है।

*लेखक प्रसिद्ध फिल्म निर्माता-निर्देशक हैं।

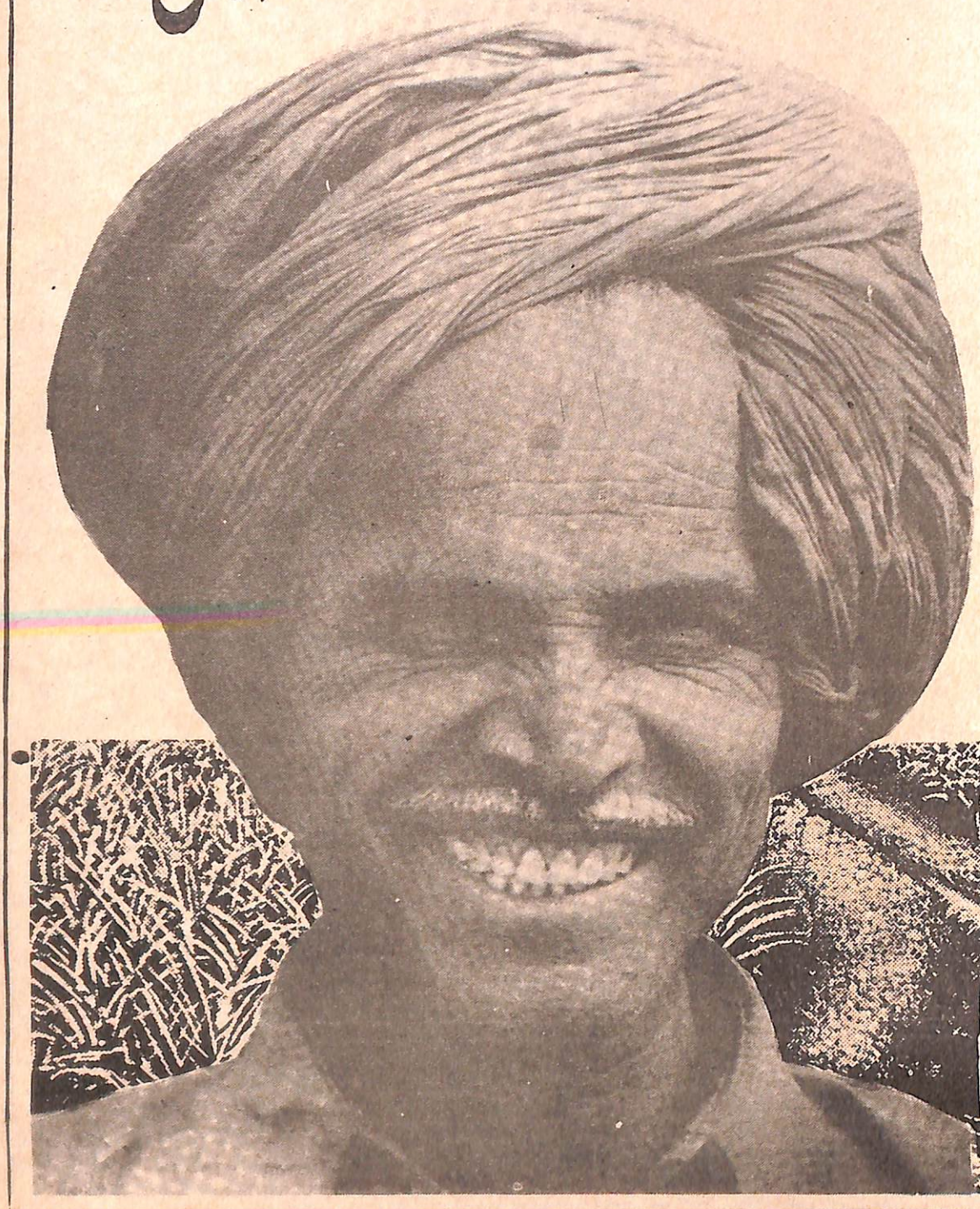

एक और फैसला ....
जिसक
हर कि
सिंचाई प
मध्यप्रदेश सरक
पांच हॉर्सपावर
जो किसान चाहें
जाएंगे।
बिजली का बि
हॉर्सपावर के मु
अब केवल 1
हॉर्सपावर की दर
का भुगतान कर
यानी उदाहरण
वाले किसान को
ही बिजली का
कितनी भी बिज
मीटर रीडिंग की
से भी किसानों
पांच हार्सपावर
साढ़े 6

ा इंतजार था
सान को

पों पर अब मीटर जरूरी नहीं

र ने फैसला किया है कि
र के सिंचाई पंपों से अब
उनके मीटर हटा लिए

हर महीने अब पंप की
बिक होगा।

रुपये प्रतिमाह, प्रति
ही किसानों को बिजली
होगा।

तौर पर 3 हार्सपावर पंप
2 रुपये महीने की दर से
ल पटाना होगा, भले ही
खर्च करें।

लतियों और दूसरे झंझटों
छुटकारा मिलेगा। हां,
से ज्यादा के पंप वाले

किसानों को बिजली का खर्च मीटर से ही देना होगा।

✓ वैसे पांच हॉर्सपावर से कम पंप वाले किसान भी चाहेंगे तो वे मीटर से भुगतान कर सकते हैं। पसंद उनकी होगी — मीटर या मासिक दर से भुगतान।

फैसले का फायदा

प्रदेश के करीब साढ़े 6 लाख किसानों को, जिनके पास 5 हॉर्सपावर से कम ताकत वाले मोटर पंप हैं, इस फैसले का फायदा होगा।

वे अब बिजली पर होने वाले खर्च की फिक्र बगैर अपने पंप का भरपूर इस्तेमाल कर सकेंगे और ज्यादा फसलें ले सकेंगे।

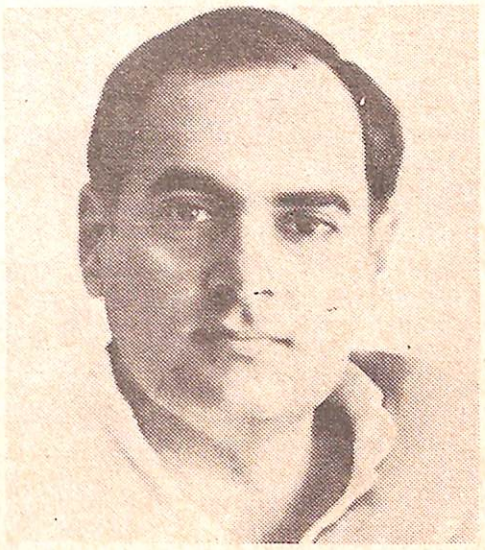

○ ज्यादा फसलों का मतलब है
किसान की खुशहाली
और किसान की खुशहाली का
मतलब है प्रदेश की तरक्की
--- यानी हर एक की
खुशहाली-- गांव देहात में
और शहरों में।

लाख किसानों को फायदा

म.प्र. माध्यम/....../८९

नैन से नैन ना ही मिलाओ
वसंत देसाई

संगीतकार के रूप में वसंत देसाई ने अपने जीवन में जितनी चुनौतियाँ स्वीकार की उतनी शायद किसी अन्य ने नहीं की होंगी। वसंत देसाई के संरक्षक एवं प्रेरणा स्रोत शांताराम कहते हैं, 'जिन दिनों रंगीन फिल्में एक के बाद एक असफल हो रही थीं मैंने झनक-झनक पायल बाजे' की योजना बनाई थी। वसंत देसाई से मैंने कहा कि संगीत लोकप्रिय नहीं हुआ तो भी चलेगा लेकिन हमें गाने राग-रागिनियों पर आधारित ही रखने हैं। उन्होंने जो-जो कलाकार और वाद्य कहे वे मैंने मँगवा दिए। तबले के लिए सामता प्रसाद तथा संतूर के लिए पं. शिवकुमार शर्मा को आमंत्रित किया गया। पं. शिवकुमार के साथ वे बारह-बारह घंटे बैठकर 'टुकड़े' सुनते। जब एच.एम.वी. वाले रिकॉर्ड के लिए आए तो मैंने उनसे कहा ये गीत लोकप्रिय तो होंगे ही नहीं फिर इनके रिकॉर्ड बनाने से क्या फायदा।'

मगर आज हम जानते हैं कि शांताराम अपनी समस्त विज्ञता के बावजूद गलत साबित हुए और वसंत देसाई ने नैन से नैन ना ही मिलाओ, मेरे ऐ दिल बता तथा सैयाँ जाओ मो से न बोलो जैसे लोकप्रिय गीत रचकर स्वीकार की हुई चुनौती को कर दिखलाया।

शांताराम 'आदमी' में नायक पहले शाहू मोड़क के बजाए वसंत देसाई को बनाना चाहते थे। मगर ऐसा न होने की सबसे ज्यादा खुशी सी. रामचंद्र को हुई। वसंत की मृत्यु के बाद शोकाकुल रामचंद्र ने कहा था 'यह बहुत ही अच्छा हुआ, वरना फिल्म संगीत एक बेहतरीन संगीतकार से वंचित हो जाता। संगीत में कैसे-कैसे परिवर्तन आए, लेकिन उन्होंने अपनी राह नहीं छोड़ी। फिल्म जगत की सारी बुराइयों से दूर रह वे अपने काम में लगे रहते थे।

वसंत देसाई के जीवन के उत्तरार्द्ध में उनकी ख्याति ऐसे राष्ट्रीय समूह गानों के कारण बहुत फैली जिनमें उन्होंने हजारों की तादाद में स्कूली बच्चों को बंबई में ब्रेबोर्न स्टेडियम में एक साथ गवाया। राष्ट्रीयहित संबंधित कार्यक्रमों के लिए वसंत देसाई ने अपने संगीत का सहयोग हमेशा दिया। सरकारी कार्यक्रमों के साथ जुड़ते हुए भी वसंत देसाई ने अपने स्वाभिमान के साथ कभी समझौता नहीं किया। एक बार बीस सूत्री कार्यक्रम का एक गीत गाने के लिए एक बड़ी गायिका आने वाली थीं। वे नहीं आईं तो उन्होंने प्रमिला दातार को बुला कर गीत रिकॉर्ड करवा लिया। देश और धर्म पर निष्ठा रखने वाले ऐसे फिल्मी संगीतकार कितने होंगे?

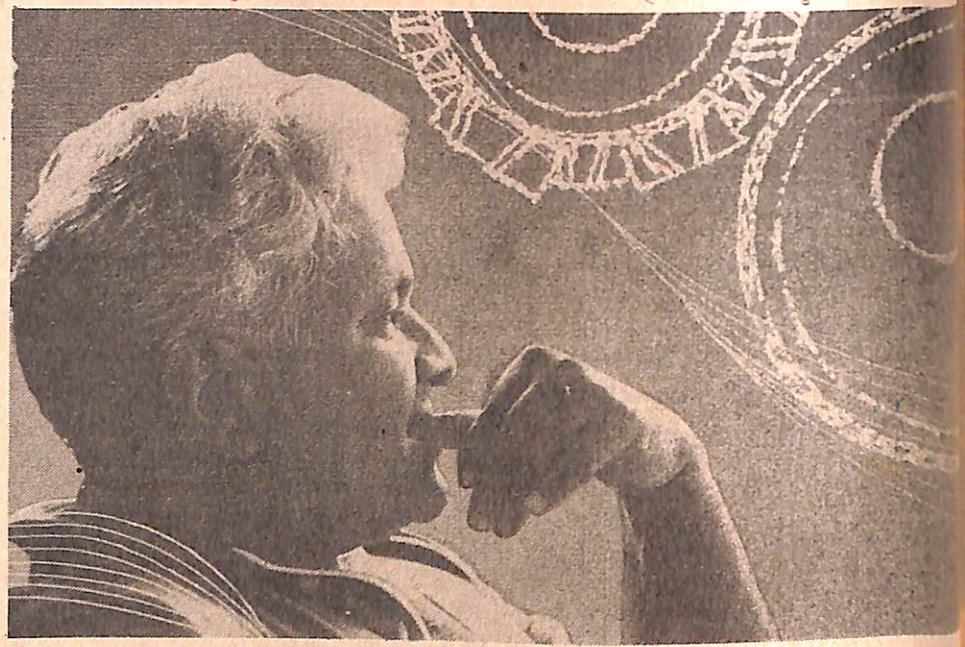

मास्टर कृष्णराव के शिष्य वसंत देसाई को प्रभात और राजकमल की फिल्मों से प्रसिद्धि मिली। सुभद्रा (४६) में वसंत देसाई के संगीत के अलावा लता मंगेशकर का अभिनय भी था। दहेज (५०) में जयश्री का गाया गीत 'अंबुआ की डारी पे बोले रे कोयलिया' लोकप्रिय हुआ था। इसी साल 'शीश महल' के गीत 'हुस्नवालों की गलियों में जाना नहीं' में सी. रामचंद्र के संगीत की छाप है। सोहराब मोदी ने भी अपनी महात्वाकांक्षी फिल्म 'झाँसी की रानी' में उन्हीं का संगीत लिया था।

गूँज उठी शहनाई' में उन्होंने बिस्मिल्लाह खाँ की शहनाई के अलावा तेरे सुर और मेरे गीत और दिल का खिलौना हाय टूट गया बहुत लोकप्रिय हुए। इस फिल्म के गीतों पर भी नौशाद और सी. रामचंद्र के संगीत की छाप थी। नौशाद की तरह उन्होंने भी अपने संगीत में मधुरता और शास्त्रीयता को महत्व दिया। ऋषिकेश मुखर्जी की 'गुड्डी' में उन्होंने ही पहली बार वाणी जयराम को 'बोल रे पपीहरा' गाते हुए पेश किया। १९६० के बाद की उनकी फिल्मों में गुड्डी, आशीर्वाद और प्यार की प्यास उल्लेखनीय थीं। २२ दिसंबर १९७५ को उनका निधन हुआ और अंतिम फिल्म 'शक' उसके बाद में रिलीज हुई। **प्रमुख फिल्में:** शकुंतला (४३), पर्वत पे अपना डेरा (४४), डॉक्टर कोटनीस की अमर कहानी, सुभद्रा (४६), अंधों की दुनिया, मतवाला शायर राम जोशी (४७), दहेज, हिंदुस्तान हमारा, शीश-महल (५०), आनंद भवन, झाँसी की रानी, धुआँ (५३), झनक-झनक पायल बाजे (५५), तूफान और दिया (५६), दो आँखें बारह हाथ (५७), दो फूल, मौसी, अर्धांगिनी (५८), गूँज उठी शहनाई, स्कूल मास्टर, सम्राट पृथ्वीराज चौहान (५९), प्यार की प्यास, संपूर्ण रामायण (६१), यादें (६४), अमर ज्योति, भरत मिलाप (६५), लड़की सह्याद्री की (६६), राम राज्य (६७), आशीर्वाद (६८), गुड्डी (७१), अचानक (पार्श्व संगीत), रानी और लाल परी (७५), शक (७६)।

गायक पति गायिका पत्नी

फिल्मों में पति-पत्नी गायक-गायिका होने का सिलसिला कोई नया नहीं है। एक अर्से से यह चला आ रहा है कि एक ही घर में एक ही छत के नीचे गायक पति और गायिका पत्नी राग आलापते हैं और पड़ोसी मगन होकर सुनते हैं। मुलाहिजा फरमाइए-

* हेमंत कुमार संगीतकार होने के साथ गायक भी है। उनकी पत्नी बेला मुखर्जी भी गायिका हैं।
* जी.एम. दुर्रानी ने गायिका ज्योति से शादी कर अपनी जोड़ी जमाई थी।
* गायक-गायिका अरुण (आहूजा) ने निर्मला देवी से शादी कर घर-संसार बसाया है।
* अनिल विश्वास की पत्नी नायिका मीना कपूर गायिका भी थी।
* मीठी आवाज के मालिक सुधीर फड़के ने ललिता देऊलकर के साथ सात फेरे लगाकर इस मिठास को दो गुना बनाया था।
* गायक-नायक करण दीवान ने गायिका- नायिका मंजू को जीवन साथी बनाया था।
* आशा भोसले के वर्तमान में जीवन साथी राहुलदेव बर्मन संगीतकार होने के साथ ही गायक भी हैं। याद कीजिए- मेहबूबा! मेहबूबा!!
* सचिन दा की पत्नी मीरा भी गायिका थीं।
* नीनू मजूमदार और कौमुदी मुंशी का भी यही हाल था।
* आजकल तो चित्रा-जगजीत/राजेंद्र- नीना मेहता/अनूप-सोनाली जलोटा (अब जुदा हो गए हैं) का रिवाज बन गया है।

देखी जमाने की यारी!

अप्रिय विवादों के बाद सी. रामचंद्र और लता मंगेशकर अर्से बाद एक मंच पर साथ आए थे। प्रसंग था-ऐ मेरे वतन के लोगों गीत के सार्वजनिक कार्यक्रम का। सी. रामचंद्र के वहाँ होने के बाद भी ऑर्केस्ट्रा का संयोजन और कोई कर रहा था। अनाउन्सर थे। अभिनेता दिलीप कुमार। अपनी जादूभरी आवाज से वे श्रोताओं को बतला रहे थे कि किस तरह से इस गीत ने पंडित जवाहरलाल नेहरू को प्रभावित किया था और गीत सुनकर वे किस तरह रो पड़े थे। फिर दिलीप ने बताया गीत कवि प्रदीप ने लिखा और लता मंगेशकर ने किस दर्दभरे अंदाज में उसे पेश किया। दिलीप ने सभी का जिक्र किया, पर गीत के जनक सी. रामचंद्र का नाम तक नहीं लिया। दिलीप कुमार को स्पष्ट ही आशंका थी कि सी. रामचंद्र का उल्लेख लताजी को पसंद नहीं आएगा। अनाउन्समेंट के बाद दिलीप कुमार जैसे ही 'विंग' में आए वहाँ खड़े सी. रामचंद्र, दिलीप कुमार पर गुस्से से पीले पड़े।

'युसूफ तुझे मालूम नहीं था कि इसका म्युजिक मैंने दिया है?

नहीं अन्ना। सचमुच मुझे पता नहीं था। अभिनय की अपनी तमाम प्रतिभा दाँव पर लगाते हुए दिलीप कुमार ने कहा।

अरे छोड़ ये सब बातें युसूफ। सब बातें मैं जानता हूँ। तूने खुद ने यह नहीं किया, किसी के कहने से तुझे यह करना पड़ा है।

दिलीप कुमार को कोई कह नहीं सकता। 'नो वन डिक्टेट्स टर्म्स टू दिलीप कुमार'।

गए वे दिन। सी. रामचंद्र ने चिल्लाते हुए कहा। एक जमाना था जब मुझे भी कोई 'डिक्टेट' नहीं कर सकता था। आज सी. रामचंद्र को भी 'डिक्टेट' किया जाता है और दिलीप कुमार को भी।

भगवान

वह एक फिल्म की शूटिंग देखने गया था अपने दोस्त राजाराम के साथ। अचानक निर्देशक की डाँट पड़ी और उन दोनों को कैमरे के सामने खड़ा कर दिया गया। वह दृश्य सात दिनों तक चलना था और इस प्रकार भगवान दादा फिल्म अभिनेता बन गए। उनका बचपन यातनामय रहा। गुस्सैल पिता और सौतेली माँ के कारण घर छोड़ दिया। फुटपाथ पर रातें गुजारना। होटल में कपबशी धोना और कभी सिनेमा टिकटों की कालाबाजारी करना। लेकिन भगवान पर भगवान की मेहरबानी कुछ ऐसी हुई कि १९३३ में वे हास्य अभिनेता कहलाए। १९३७ में निर्देशक हो गए और १९४८ में स्टूडियो के मालिक बन गए। पहलवानी का शौक पाले हुए भगवान के आदर्श अभिनेता मास्टर विट्ठल रहे हैं। दादा गुंजाल ने बेवफा आशिक में फाइटर-कामेडियन का रोल उन्हें दिया, मगर चाल पसंद नहीं आई। एकाएक दादा भगवान को फिल्म हंचबैक ऑव नाटरडेम के कुबड़े की याद आ गई। इस चाल को उन्होंने हमेशा बरकरार रखा। उनकी आरंभिक फिल्मों में जलता जिगर, खूनी खजाना, हिम्मते मर्दा मददे खुदा, कातिल कटार, सुखी जीवन उल्लेखनीय हैं। संगीतकार सी. रामचंद्र को फिल्मों में मौका दिया भगवान दादा ने। बाबूराव पहलवान और सुमति गुप्ते के साथ उनकी बचके रहना, जरा हटके, दिलवाले, मतवाले, धनवाले फिल्में प्रमुख हैं। राजकपूर, भगवान की फिल्मों के ट्रायल देखने हमेशा जाते रहे थे। फिल्म अलबेला के निर्माण में उन्होंने अपना सब कुछ दाँव पर लगा दिया। इस फिल्म के गीत और संगीत लाजवाब हैं। इसके बाद झमेला, लाड़ला, रंगीला और हल्ला-गुल्ला बनाकर उन्होंने नाम कमाया। स्टंट और कामेडी फिल्मों का दौर खत्म हो जाने से उन्हें पीछे हटना पड़ा।

पारुल घोष

*संगीतकार अनिल विश्वास की बहन और प्रसिद्ध बाँसुरी वादक पन्नालाल घोष की पत्नी पारुल घोष को हिन्दी फिल्मों में सर्वप्रथम पार्श्व गायन प्रारम्भ करने का श्रेय है। फिल्म थी धूप-छाँव। गीत था-मैं खुश होना चाहूँ, खुश हो न सकूँ। १९३८ में पारुल घोष विवाह के बाद बंबई आई और हिन्दी फिल्मों में गाने लगीं। अनिल विश्वास के संगीत में पपीहा रे (किस्मत), मैं उनकी बन जाऊँ रे (हमारी बात) और किसने बजा दी बाँसुरी (मिलन) इन गीतों ने देश भर में धूम मचा दी थी। १९५१ में फिल्म आंदोलन में मन्ना डे तथा सुधा मल्होत्रा के साथ गाकर उन्होंने निवृत्ति ले ली। १३ अगस्त १९७७ को उनका निधन हुआ। उनके स्मरणीय गीत हैं— *आए भी वो (नमस्ते) *भूल जाना चाहती (ज्वार भाटा) *उम्मीद उनसे क्या (बसंत) *मन तू किसी का (पुलिस)*

मास्टर दीनानाथ मंगेशकर

गोआ के मंगेश गाँव में २६ दिसंबर १९०० को जन्मे मास्टर दीनानाथ मंगेशकर ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी कि उनकी संतान-लता, आशा, मीना, उषा तथा हृदयनाथ-एक से बढ़कर एक अंतरराष्ट्रीय ख्याति के कलाकार साबित होंगे। दूसरे दर्जे तक स्कूल जाने वाले दीनानाथ मंगेशकर मराठी नाट्य संगीत जगत में अपनी धाक रखते थे। नाटक कम्पनी को उन्होंने फिल्म कम्पनी में बदलकर 'कृष्णार्जुन युद्ध' फिल्म बनाई, जिसके फ्लॉप होने से मंगेशकर परिवार पर संकट के बादल घिर आए। फिल्म पुण्डलिक तथा अंधेरी दुनिया में भी उन्होंने काम किया था। मास्टर दीनानाथ ने पहला विवाह १९२२ में नर्मदा से किया था। उनकी मृत्यु पर छोटी बहन शुद्धिमती से विवाह रचाया। उन्हीं की पाँच संतानें आज गीत-संगीत की दुनिया की मशहूर हस्तियाँ हैं।

गौहर

भाव प्रवण अभिनेत्री के रूप में अपने को प्रतिष्ठित करते हुए गौहर ने गूँगी फिल्म 'बेगर गर्ल' से फिल्मी दुनिया में कदम रखा था। फिल्म 'पति-पत्नी' में भारतीय नारी की व्यथा कथा को साकार किया। इन दोनों फिल्मों के निर्देशक चन्दूलाल शाह थे और नायक थे राजा सैण्डो। विश्वमोहिनी फिल्म में गौहर ने तीन विभिन्न भूमिकाएँ निभाई और अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया। इसके बाद उन्हें भावों की रानी कह कर पुकारा जाने लगा। रणजीत फिल्म कम्पनी की पहली फिल्म 'राजपुतानी' में डी. बिलिमोरिया के साथ क्रोधित राजपूत-रमणी के रूप में आकर अभिनय की नई जमीन तोड़ी। १९२५ से फिल्मों में आकर चार साल के अन्दर गौहर ने चन्दूलाल शाह के साथ मिलकर रणजीत फिल्म कम्पनी का निर्माण किया और शाह के साथ ऐसी प्रीति निभाई जिसे बिरले दम्पत्ति ही निभा पाते हैं। जब फिल्में बोलने लगीं, तो गौहर को हिन्दुस्तानी-उर्दू बोलने में कोई खास कठिनाई नहीं हुई। चन्दूलाल शाह ने पहली बोलती फिल्म देवयानी में गौहर को नायिका बनाया। उनकी यादगार फिल्मों में सावित्री, मिस १९३३, गुण सुन्दरी, बैरिस्टर की वाइफ और अंतिम फिल्म अछूत (१९४०) प्रमुख है। बैरिस्टर वाइफ में ई. बिलिमोरिया के साथ काम करते हुए एक बार फिर से भारतीय नारी की पीड़ा को उन्होंने आवाज दी थी। अपनी ही कम्पनी के उभरते सितारों की रोशनी देखकर गौहर ने अभिनय छोड़कर निर्माण व्यवस्था में हाथ बँटाया। १९५२ में वे भारतीय फिल्म प्रतिनिधि मंडल की सदस्या बनकर अमेरिका गई थीं।

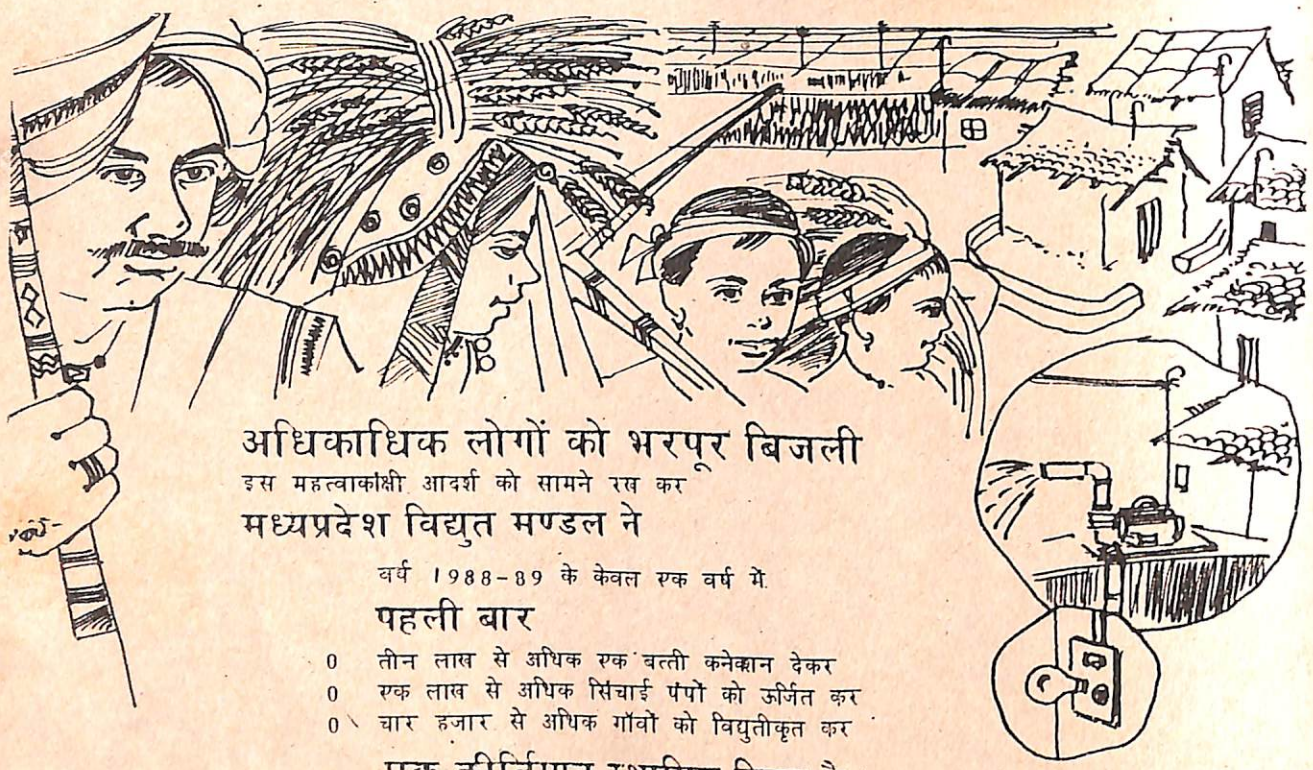

अधिकाधिक लोगों को भरपूर बिजली

इस महत्वाकांक्षी आदर्श को सामने रख कर

मध्यप्रदेश विद्युत मण्डल ने

वर्ष 1988-89 के केवल एक वर्ष में

पहली बार

- 0 तीन लाख से अधिक एक बत्ती कनेक्शन देकर
- 0 एक लाख से अधिक सिंचाई पंपों को ऊर्जित कर
- 0 चार हजार से अधिक गाँवों को विद्युतीकृत कर

एक कीर्तिमान स्थापित किया है.

प्रदेश में अब तक कुल 55,956 गाँवों के विद्युतीकृत हो जाने से
विद्युतीकरण-स्तर 78·94 प्रतिशत हो गया है
तथा इससे प्रदेश के 79·19 प्रतिशत लोग लाभान्वित हो रहे हैं·

विद्युत की बढ़ती हुई माँग को ध्यान में रखते हुए
स्थापित क्षमता में वृद्धि की दृष्टि से
टोंस, बिरसिंहपुर और पेंच में
अनेक जल विद्युत एवं ताप विद्युत इकाइयों के
निर्माण का कार्य प्रगति पर है·
साथ ही
और अधिक जल एवं ताप विद्युत इकाइयों तथा प्रदेश के
उत्तरी क्षेत्र में गैस पर आधारित चार विद्युत गृहों के प्रस्ताव
स्वीकृति हेतु केन्द्र को प्रेषित किए हैं·

म.प्र. विद्युत मण्डल के अमरकण्टक ताप विद्युत गृह ने केलेण्डर वर्ष 1988 में सराहनीय उत्पादकता पुरस्कार अर्जित कर विद्युत मण्डल की कीर्ति को बढ़ाया है.

मध्य प्रदेश विद्युत मण्डल
सराहनीय उत्पादकता द्वारा जीवन स्तर में सुधार लाकर
प्रदेश की जनता की सेवा के लिए दृढ़ संकल्पित है·

-- जनसंपर्क विभाग, मध्यप्रदेश विद्युत मण्डल जबलपुर द्वारा प्रसारित

वक्त ने किया क्या हसीं सितम: गीता दत्त

● भूपेंद्र चतुर्वेदी

मेरा सुंदर सपना बीत गया..... सचिन दा की धुन पर कहीं दूर गहराई से आती एक आवाज ने कभी लोगों के दिल के तारों को झिंझोड़ दिया था। दिल की गहराइयों से निकलकर दिल की गहराइयों तक उतरने वाली यह आवाज थी **गीता दत्त** की। २० जुलाई १९७३ कादिन,यह सुंदर सपना सचमुच बीत गया। गीता दत्त की मौत का समाचार उस सुंदर सपने की मौत की औपचारिक घोषणा थी, जो कि बहुत पहले मर चुका था। सुखी जीवन की न जाने कितनी उम्मीदें संजोए गीता राय, गीता दत्त बनकर गुरुदत्त की जिंदगी में आई थीं, लेकिन विवाह के बाद सुख के चंद लम्हों के लिए भी वह तरस गई। गुरुदत्त-वहीदा की मोहब्बत परवान चढ़ी और गीतादत्त की जिंदगी में जहर घुल गया। कैसे कोई जिए जहर है जिंदगी तनाव, घुटन का दौर फिर गुरुदत्त की असमय मौत और फिर फिल्म संगीत की दुनिया के दरवाजे हमेशा के लिए बंद हो जाने के कारण टूटी गीता सुरों की बजाए शराब में अपना सुख तलाशने लगी।

गीता दत्त की जादुई आवाज का शायद सबसे पहला इम्तहान हुआ **जोगन** में। कृष्ण की साकार भक्ति में डूबता- उतरता मीरा का भजन **"मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ....."** में गीता दत्त की आवाज प्रेम भक्ति के मधुर रस को बिखेरती नजर आती है। लेकिन मीरा के प्रेम के रंग में डूबी गीता उतनी ही तन्मयता से गाती है, कबीर का निर्गुणी भजन-**घूँघट के पट खोल रे तोहे पिया मिलेंगे.....।' "मत जा मत जा जोगी"** में गीता का कलेजा जैसे फट पड़ा हो। मन की छटपटाहट जैसे हर शब्द में भर गई हो। यह गहराई गीता दत्त की आवाज की एक ऐसी खासियत थी जिसमें कि उनका कोई मुकाबला न तो था और न है। याद आता है 'बाजी' का गीत **"तदबीर से बिगड़ी हुई, तकदीर बनाले"**। गीता दत्त के स्वर की विविधता का कमाल इस फिल्म के गानों में साफ झलक उठता है। **"चुनो गजर क्या गाए"** या फिर **बिछड़ा जमाना कभी हाथ न आएगा ऽ ऽ ऽ**। आखिरी स्वर को जरा लंबा खींचकर हल्का सा झटका देने की गीता दत्त की यह अदा गाने को और मदभरा बना देती थी।

कहने वाले कहते हैं कि लता गले से गाती है और गीता..., वह तो हृदय से गाती थी। गले के गाने में मिठास होती है जो कि हमें कर्णप्रिय लगता है लेकिन हृदय से निकली आवाज की तो बात ही कुछ और है। यह आवाज हमें भावनाओं के समुंदर में डुबोने लगती है। गीतादत्त को सुनते हुए ऐसा लगता है जैसे कि हम कहीं गहरे में डूबते जा रहे हों। वैसे लोग गीता दत्त की आवाज में लता की आवाज की कोमलता, शमशाद की आवाज का कंपन और आशा की आवाज की मादकता को एकजई पाते हैं।

याद कीजिए "साहब बीबी और गुलाम" का वह गीत जिसने कि मीनाकुमारी के सशक्त अभिनय में इतनी जान डाल दी कि वह हमेशा के लिए मिसाल बन गया। हेमंत कुमार की धुनों पर छोटी बहू की मौन वेदनाओं को गीता दत्त की आवाज ने लोगों के दिलों पर कुछ इस तरह उकेर दिया कि आज भी उसे याद करते ही मन व्यथित हो उठता है। विरह की पुकार और दूर से आवाज देती नायिका **चले आओ..... चले आओ** या फिर निराशा के घटाघोंप अंधेरे में से निकली तड़पती आवाज **न जाओ सैंया छुड़ा के बैंया, कसम तुम्हारी मैं रो पड़ूँगी.....**, लेकिन आवाज में यह कशिश और दर्द में समेटे गीता दत्त 'आर-पार' के गीतों में एकदम बदले रूप में सामने आती हैं। ओ.पी. नैयर की धुनों पर मदभरी आवाज में गाती गीता दत्त **बाबूजी धीरे चलना प्यार में... जरा संभलना... हाँ ऽऽऽ बड़े धोखे हैं इस राह में.....** एकदम नई तरह से अपनी छाप छोड़ती है। "आर-पार" में ही एक और गाना था **ये लो... मैं हारी पिया, हुई तेरी जीत रे... काहे का झगड़ा बालम नई-नई प्रीत रे...**, इस गाने में गीता दत्त ने जैसे वासना की गागर उडेल दी हो। "मिस्टर एंड मिसेज फिफ्टी फाइव" में उसके दो गानों ने खूब धूम मचाई। **'ठंडी**

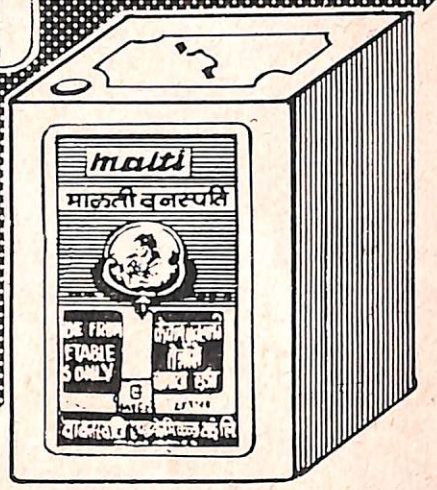

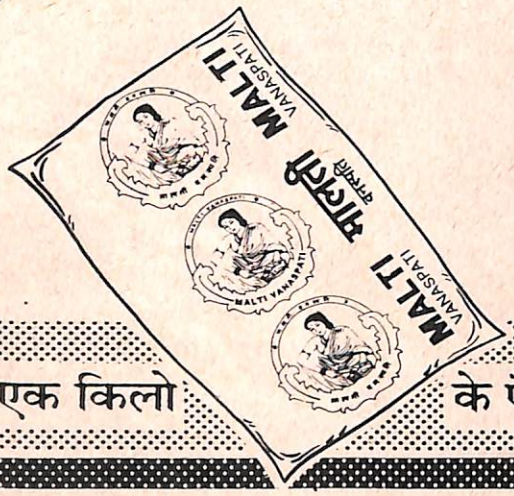

IS:10633
VANASPATI
malti
मालती वनस्पति
मालती
वनस्पति
स्वादिष्ट एवं
पौष्टिक व्यंजनों के लिये
भरपूर स्वाद
जो हमेशा
रहे याद!
MALTI
VANASPATI
मालती
एक किलो
के पैक में भी उपलब्ध
मालती
साबुन
साफ उजली धुलाई के लिये।
मालती
निर्माता-
दि मालवा वनस्पति एण्ड केमिकल कं. लि.
मोहता नगर, इन्दौर. फोन- 23251 -तार-मालतीब्रांड
Navjyoti Ads.

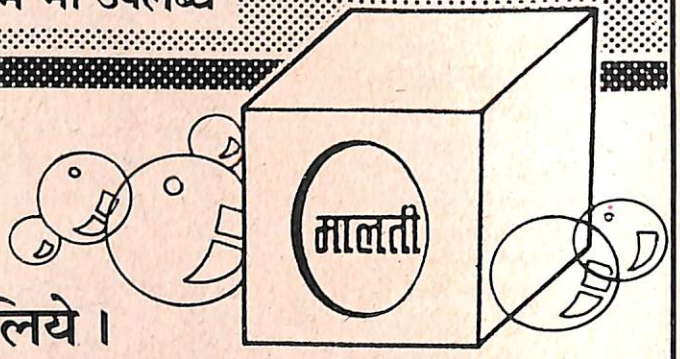

हवा काली घटा' और **'प्रीतम आन मिलो'** ने लोगों को विभोर कर दिया और ये बोल लोगों की जुबान पर चढ़ गए।

गीतादत्त ने हर तरह के गाने गाए और हर गाने में अपनी आवाज की विविधता से जान फूँकी। मीरा और कबीर के भजन से लगाकर उन्माद और मादकता की हद तक। "बाज" का गीत **'जरा सामने आ जरा आँख मिला"** में जो उन्माद है वह बहुत कम गीतों में ही मिलता है। जीवन ज्योति का गीत **"लड़ गई अखियाँ"** सफल प्रेम को एकदम से अभिव्यक्त करता जान पड़ता है। 'भाई-भाई' के गाने **ए दिल मुझे बता दे.....** में यदि आनंद का चरमोत्कर्ष है तो 'प्यासा' के गीत **' आज सजन मोहे अंग लगा ले, जन्म सफल हो जाए...** में एक अतृप्त प्यास है। 'प्यार' के एक गीत **आ गई रे, आ गई बाँके की रानी आ गई...** का उल्लास 'सुजाता' में गाई मीठी लोरी **नन्हीं कली, सोने चली...** और 'प्यासा' में **जाने क्या तूने कही, जाने क्या मैंने सुनी...** में मस्ती के आलम में वशीकरण का मंत्र फूँकती गीता दत्त की आवाज। गीता दत्त की आवाज में जो नाद की अपील थी उसे संगीत के जानकार विलक्षण मानते हैं। उनका कहना है कि नाद की ऐसी अपील दूसरी किसी भी गायिका में नहीं मिलती। आर-पार के ही एक गीत **जाऽजाऽजाऽ बेवफा...** में नाद का यह स्वर चरम पर है।

गीता दत्त शायद ही कभी अपने समकालीन पुरुष गायकों के सामने कमजोर पड़ी है। लता और आशा के बारे में यह कहना शायद गलत नहीं कि वे पुरुष गायकों के सामने हारती रही हैं। मसलन "मुनीमजी"का **"जीवन के सफर में राही, मिलते हैं बिछुड़ जाने को।"** गाना लता और किशोर दोनों की आवाज में है, लेकिन लोगों को अब किशोर की आवाज ही याद है। इसी तरह **"जिंदगी एक सफर है सुहाना"** किशोर ने भी गाया था और आशा ने भी, लेकिन लोग किशोर को ही याद करते हैं। गीता दत्त को इसका अपवाद कहा जा सकता है। बादबान का एक गीत हेमंतकुमार और गीता दत्त दोनों ने गाया था। बोल थे **"कैसे कोई जिए जहर है जिंदगी"**। गीता ने इन बोलों में जो निराशा उड़ेली वो लोगों के दिलों में उतर गई और इस गाने के लिए आज भी हेमंतकुमार से पहले गीता दत्त को याद किया जाता है।

इदलापुर (बंगाल) में जन्मी गीता ने सोलह साल की उम्र में पार्श्वगायन के क्षेत्र में पैर रख दिया था। ललिता पवार के पहले पति हनुमान प्रसाद इन्हें फिल्मों में लाए। भक्त प्रहलाद पहली फिल्म थी जिसमें गीता दत्त ने गाना गाया। गीता दत्त से जब एक दफा यह पूछा गया कि वह अपनी जिंदगी का सबसे बेहतरीन गाना किसे मानती हैं तो गीता का जवाब था 'जोगन' में गाया मीरा का भजन **जोगी मत जा, मत जा...**। गीत की सफलता का मतलब ही यह कि गीत अच्छा है, गीता दत्त की यह स्पष्ट मान्यता थी। एक बार पूछे जाने पर गीता दत्त ने कहा कि "गीत लोगों को भाता ही तब है, जब उसके बोल अच्छे हों, उसका संगीत अच्छा हो और गाने वाले ने उसे बेहतरीन ढंग से गाया हो।" गीता दत्त का कहना था कि "एक गीत मानवीय संवेदनाओं को आसान भाषा में अभिव्यक्त करता है। गीत लिखने वाला जिन भावनाओं को अपने शब्दों से अभिव्यक्त करना चाह रहा होता है, गाने वाला संगीत की धुनों के सहारे उसके साथ पूरा न्याय करे यह जरूरी है।

बंगाली की मिठास लिए गीता दत्त ने अपने गायकी के जीवन में हमेशा ही गीत के बोलों और संगीत के सुरों के साथ न्याय किया। गीता ने बहुत ज्यादा गाने नहीं गाए, लेकिन जितने भी गाए वे सब हिट और सुपरहिट रहे। एक किस्सा याद आता है "सुजाता" फिल्म का।

बच्चों के जन्म-दिनों पर आमतौर पर गाया जाने वाला यह गाना **"तुम जियो हजारों साल, साल के दिन हों पचास हजार...** एस.डी.बर्मन ने गीता दत्त और आशा भोसले दोनों से गवाया था। फिल्म में आखिरकार गीता दत्त का गाना लेना पसंद किया गया, लेकिन न जाने कैसे ग्रामोफोन कंपनी ने इस गाने के आगे गायिका के नाम की जगह गीता की बजाए आशा भोसले का नाम लिख दिया। यह गाना बहुत प्रसिद्ध हुआ और रेडियो इसे आशा के नाम से ही बजाता रहा। कम से कम सत्ताइस साल तक ऐसा ही चलता रहा। बाद में आशा ने ही इस बात का खुलासा किया कि इतने वर्षों से जो गाना मेरे नाम से बजता रहा है, यह मैंने नहीं गीता दत्त ने गाया था।

नितिन मुकेश

महान गायक मुकेश के बेटे नितिन मुकेश ने फिल्म 'जोकर' में ऋषि कपूर के लिए कुछ पंक्तियाँ गाई थीं। अपने पिता की आवाज से नितिन की आवाज का मिलना, उनकी सफलता की सबसे बड़ी बाधा है। नौ साल की उम्र से संगीत शिक्षा पं. जगन्नाथ प्रसाद के पास पूरी की। उस्ताद फैयाज अहमद खाँ से उन्होंने गजल गाने का ज्ञान प्राप्त किया। १९७४ में किशोर साहू की फिल्म 'धुएँ की लकीर' में संगीतकार श्यामजी-घनश्यामजी ने नितिन से पहली बार वाणी जयराम के साथ गवाया-तेरी झील सी गहरी आँखों में। त्रिशूल फिल्म का गाना-गापूजी गापूजी गम गम बहुत लोकप्रिय हुआ। सत्यम् शिवम् सुन्दरम्, नूरी, क्रांति, कसम, तेजाब, ईश्वर उनकी सफलता के सोपान हैं। तेज रफ्तार तथा हिंसाप्रधान फिल्मों में गीतों की गुंजाइश वैसे भी कम होती जा रही है। लिहाजा नितिन स्टेज-कार्यक्रमों में अधिक हिस्सा लेने लगे हैं। *छाया : पी. के. जैन*

गीता दत्त के साथ वक्त ने भी न जाने क्या-क्या हसीं सितम किए। सन् १९५३ में गीता गुरुदत्त की शादी हुई लेकिन शायद प्यार की उनकी दुनिया को जमाने की नजर लग गई। गीता दत्त की प्रेम कहानी का दुःखद अंत उसके संगीत जीवन का भी अंत सिद्ध हुआ। गुरुदत्त की इच्छा थी कि वह अब फिल्म संगीत से संन्यास ले ले। गीता दत्त के लिए संगीत सिर्फ गाना नहीं था बल्कि वह उसकी आत्मा थी। वह तड़प उठी, लेकिन प्रेम की देहरी पर आखिरकार उसने संगीत की बलि चढ़ाना मुनासिब समझा। लेकिन जिस प्यार की खातिर उसने अपनी आत्मा को मारा, वही प्यार बेवफा निकला। गुरुदत्त की मौत से आर्थिक संकट तक गीता दत्त के सामने आ खड़ा हुआ। फिर से फिल्मों में गाने के लिए जब उसने लोगों के दरवाजे खटखटाए तो उसे हर तरफ से ना का जवाब मिला। फिल्म की रंगीन दुनिया में गीतादत्त के दर्द की भला कौन परवाह करता। वह शराब में डूबी और डूबती चली गई। ओ. पी. नय्यर जिन्होंने कि गीता दत्त की आवाज का भरपूर दोहन किया था, के घर एक दिन गीतादत्त का टेलीफोन आया। "ओ.पी. साहब जिंदगी अब साथ छोड़ती लगती है, हो सके तो मुझसे एकाध गाना रिकॉर्ड करवा लो" गीतादत्त की इस गुजारिश पर ओ.पी. नैयर ने एक गीत रिकॉर्ड कराने का आश्वासन भी दिया। लेकिन शायद वक्त को यह मंजूर नहीं था, इसलिए गीतादत्त की जिंदगी की शमा इस दिन के आने से पहले ही बुझ गई। शायद यही गाते-गाते कि **"वक्त ने किया क्या हसीं सितम, तुम रहे न तुम, हम रहे न हम।"**

स्वाद का नया एहसास

पसंद वनस्पति के साथ

लाजवाब भोजन बनाने के लिए ताजी सब्जियाँ, बढ़िया सामग्री और शुद्ध मसालों के साथ बस एक और चीज की जरूरत है।

पकाने का एक विशुद्ध माध्यम, जैसे **"पसंद"**। जी हाँ, **"पसंद"** हमारे नए आधुनिक वनस्पति प्लांट में पूरी सूझबूझ और सावधानी से चुने गए वनस्पति तेलों से बनाया जाता है।

ताकि आप अपने परिवार को दे सकें स्वादिष्ट सब्जियाँ, लजीज पूरियाँ, समोसे और दोसे, रसीले गुलाब जामुन और जलेबियाँ और उनके पसंद के अन्य व्यंजन।

और सबमें डाल सकें **"पसंद"** का महकदार स्वाद।

म.प्र. राज्य तिलहन उत्पादक सहकारी संघ मर्यादित, भोपाल

AVN

'मध्यप्रदेश की औद्योगिक प्रगति में रत.....
मध्यप्रदेश औद्योगिक विकास निगम'
उद्योग लगाने की आपकी परिकल्पना को मूर्तरूप देने तथा इस प्रक्रिया में कदम-दर-कदम आपके साथ चलने हेतु संपर्क करें.....

(वसंत राव उइके)
अध्यक्ष,
मध्यप्रदेश औद्योगिक विकास निगम

(व्ही. के. पंडित)
प्रबंध संचालक

औद्योगिक सहायता केन्द्र (आस्क)
"पंचानन" मध्यम तल,
मालवीय नगर,
भोपाल–४६२ ००३
फोनः–५५११९५-९८,
ग्राम–"औद्विक"
टैलेक्स–७०५-२७१ ए.वी.एन.–एल.आई.एन.
(आस्क–म.प्र. औद्योगिक विकास निगम का एक प्रभाग)

डीपीआर ७२८/सी/८९

DOWN THE EARTH APPROACH

Ferro-Concrete Co. (India) Ltd.

C. R. STRIPS DIVISION

Manufacturers of

COLD ROLLED STEEL STRIPS & COILS

Reg. Office & Works:

A.B. Road, **Dhani** (Dhamnod), Dist: **Dhar.**

Head Office:

Bidasaria Mills Compound, Bhagirathpura, **Indore**

Phones: 22283, 21915,
21146, 31601-2-3 PBX
Gram: COLDSTRIPS
TELEX-0735: 386 COSTIN
0735: 360 FERRO-IN.

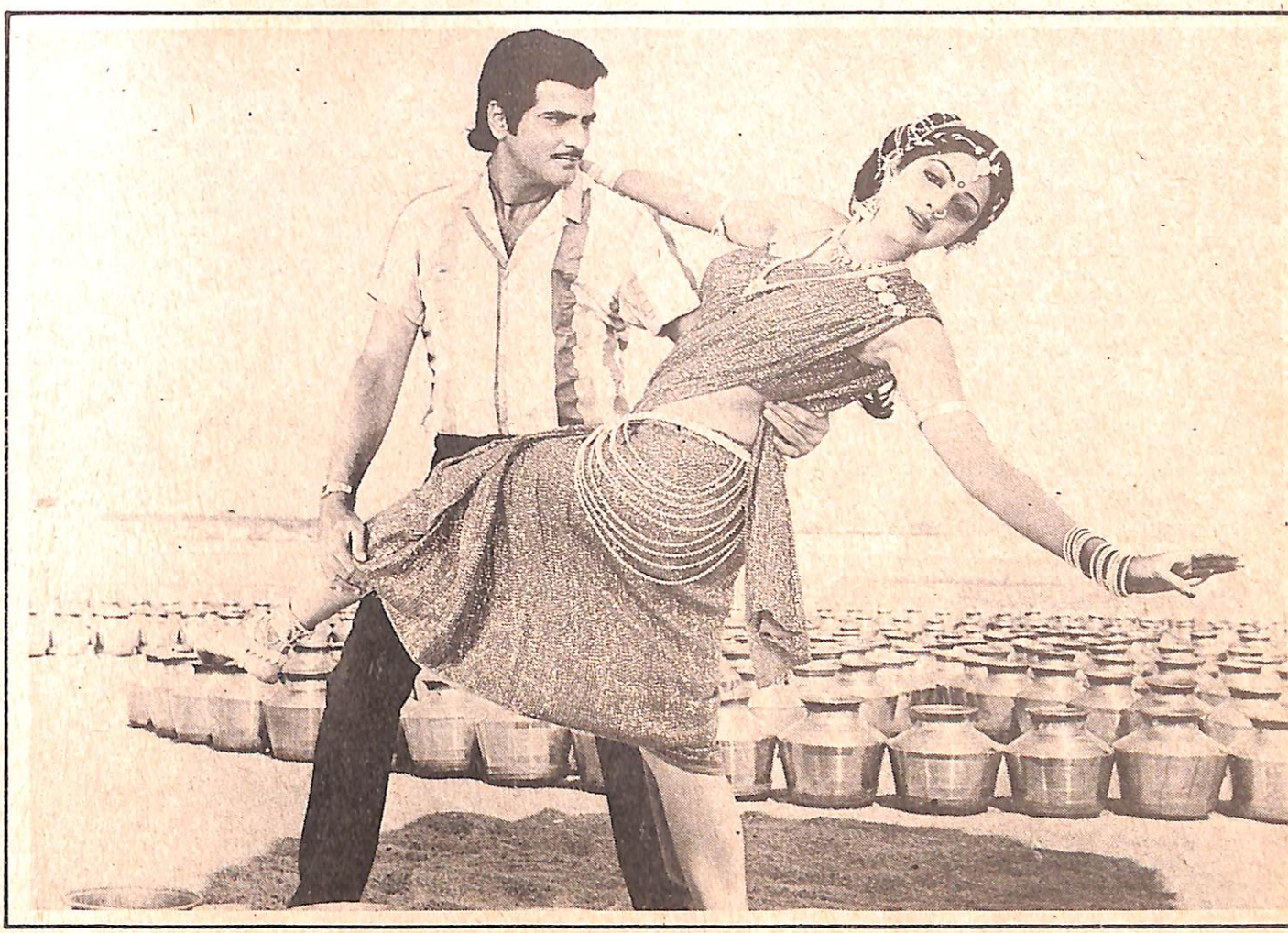

बैजू बावरा की आत्मा और 'वन टू का फोर'

यशवंत व्यास

आपका फिल्म देखने का रेकॉर्ड ज्यादा पुराना न हो तो भी यह बात दावे के साथ कह सकते हैं कि किस फिल्म में कितने और किस तरह के गाने हो सकते हैं। हम इतने ट्रेन्ड हो गए हैं कि पोस्टर देखकर ही बता सकते हैं कि फलाँ जगह 'ये' गाना होगा और फलाँ जगह 'वो'। जैसे आनंद भक्षी (बक्षी) के बारे में मशहूर है कि वो गानों की फैक्टरी चलाते हैं। काजल, बादल, नैना, पायल, चमके, झमके, बिंदिया, बोली, कोयल आदि किस्म के शब्दों का उन्होंने पिटारा बना रखा है और जैसी जरूरत होती है, वैसा फिट करके दे दिया करते हैं। यार लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि उन्होंने अलमारी में फाइलें रख छोड़ी हैं। निर्माता आता है, सिचुएशन बताता है और गीत ले जाता है। हर नाप का कपड़ा वहाँ तैयार है, नंबर बताओ माल उठाओ!

शुरू-शुरू में फिल्मों में गाने ही गाने होते थे। इंद्रसभा में ६९ गाने थे। गाने सुनते-सुनते यदि आप सो गए तो नींद खुलने पर भी आपको गाना ही चलता मिलेगा। हीरोइन जरा बैठी कि गाना शुरू, जरा उठी कि गाना शुरू, जरा रोई कि गाना शुरू। गोया कि गाने की ईंटों को जोड़ने के लिए कहानी का पलस्तर लगाया जाता था, या कि 'गानों ही गानों में कहानी चलती रहती थी। श्वेत-श्याम के शुरूआती जमाने में प्रेमगीतों का फिल्मांकन बड़ा मजेदार हुआ करता था। कैमरा एक जगह टिका है और नायक-नायिका एक-दूसरे को हाथ लगाकर गाए जा रहे हैं, कठ-पुतली की तरह। धीरे-धीरे गानों और उनके फिल्मांकन की हैसियत बढ़ती गई।

मगर शुरू में अच्छी शायरी पर बड़ा जोर था। अच्छे खासे गीतकार थे और ऊँचे दर्जे क शायरी को फिल्मी गानों में डालने की कोशि किया करते थे। 'मुगले आजम' की तरह 'जब प्या किया तो डरना क्या'? के अंदाज में कहानी आ बढ़ती जाती थी। अलबत्ता लंबे अर्से तक प्यार गानों में नकली फूलों को आपस में टकराते ह दिखाने या फूल पर भँवरे बिठाने का काम जा रहा।

जाहिर है, एक फिल्म 'प्यार' के बिना पू नहीं हो सकती, लिहाजा सबसे ज्यादा गीत प्य के बने और प्रयोग उनमें बहुत होते गए। क भर जो उधर मुँह फेरे ओ चंदा, मैं उनसे प्य कर लूँगा' की यात्रा 'चाँद जैसे मुखड़े पर बिंदि सितारा' तक चलती गई। खत भेजने का क 'फूल तुम्हें भेजा है खत में' के जरिए से लगा 'हमने सनम को खत लिखा' की सूचना तक आ और 'तन मन दे डाला पिया सोला स वाला/तूने तो खत भी न डाला, पंद्रह पैसे वा की शिकायतों में जाकर गुम हो गया। हालाँ 'आएगी जरूर चिट्ठी' जैसे भरोसे हमेशा का रहे।

हिंदी फिल्मों में प्यार करने की कुछ 'फि सिचुएशन हैं। मसलन बचपन में प्रेम का ग गाएँगे और बड़े होने पर उसी गाने को गाते मिल जाएँगे ('हम किसी से कम नहीं' 'उस्त उस्ताद से' से या 'बेताब')। कॉलेज में कित

टक्कर से गिरेंगी और नायिका लरज जाएगी। आगे चलकर इसके आधार पर प्रेम गीत बनेगा। (हालाँकि अब कॉलिज में किताबें 'आउट डेटेड' हो गई हैं और हीरोइन कॉलिज की छात्रा हो तो थोकबंद डिस्को करती है, कॉलिज के स्टेज पर भी, गलियों में भी/और गोविंदा ब्रांड नायकों का प्यार इसी तरह पनपता है)। प्रेम करने की एक सिचुएशन ये है कि—लड़का-लड़की बंबई के रहने वाले हैं, मगर गाना काश्मीर की हसीन वादियों में जाकर गा लें। इससे प्रेम पुख्ता और रंगीन हो जाता है।

इधर, हीरो की इमेज पर भी प्यार के गाने और फिल्माने का खासा असर रहता है। अगर अमिताभ बच्चन प्रेम कर रहे हैं तो 'बिल यू मेरी मी?' ब्रांड का काम होगा। मनोज कुमार जब भी प्रेम करेंगे तो नाक पर हाथ ले आएँगे, बोझ से गिरे-गिरे जाएँगे, नायिका को दूर भगाएँगे और बात आगे बढ़ी तो कहेंगे—'रख गीता पे हाथ!' देव आनंद गाने में चाहे प्रेम करें या भाषण दें हमेशा डेढ़ इंच मुस्कान और गर्दन के एंगल के बल पर चलेंगे। राजेश खन्ना के प्रेम गीत गाने के लिए किशोर कुमार को याद रखना पड़ता था कि ये पलकें झपकाए बगैर और हाथ ऊपर-नीचे किए बगैर नहीं मानेगा। लक्ष्मी-प्यारे और आर. डी. बर्मन को भी यह ध्यान रखना ही पड़ता है कि प्रेम कौन कर रहा है, राजकुमार या जितेंद्र। क्योंकि राजकुमार हरगिज न नाचेंगे और जितेंद्र उछलकूद किए बिना कैसे जी सकते हैं? शम्मी कपूर का गर्दन-हाथ-पैर को बेबात फेंकते रहना रफी को 'वो देखो मुझसे रूठकर मेरी जान जा रही है' गाते समय खुद में उतार लेना पड़ता था।

कुछ निर्देशकों की अपनी प्रिय सिचुएशन रहती है, चाहे जो विषय हो, उस सिचुएशन के बिना फिल्म नहीं बनती। मसलन प्रेम त्रिकोण के प्रेमी जे. ओमप्रकाश को एक समूह नृत्यगीत, फिल्म की खास लंबाई के बाद चाहिए, यानी चाहिए। मनोज कुमार को दो-चार देशभक्तों के नाम होना ही होना। दक्षिण भारत ने बप्पी लहरी और इंदीवर के चालू गँठजोड़ से हजार मटके, सौ साड़ियाँ, ढेर फुटबॉल और डिस्को में 'सारेगामा' का घालमेल करके दे दिया। **प्रेम को सिर्फ दैहिक और नायक-नायिका के आपसी समझौते से की जा रही परंपरा लूट-पाट जैसे कृत्य में बदल देने वाले** फूहड़ और अश्लील गीतों का परनाला बह निकला है। नायक अब दिल और चाँद की बात नहीं करता 'आँख मारने' और 'हाय उई' करने के गुणों पर विवेचन करता रहता है। अब 'जादूगर सैंया छोड़ो मोरी बइयाँ' नहीं गाया जाता, 'आना-आना शाम को छः बजे आना-आना' कहा जाता है।

हमारे यहाँ गाँव और पहाड़ की नायिका अगर पकड़ ली जाए तो हम उसे नचवाना, झरने में नहलाना और एक लोकगीत के मुखड़े में फँसी हुई उर्दू-हिंदी उसके मुख से उगलवाना कैसे छोड़ सकते हैं? जंगल में किसी खंडहर में बरसाती रात गुजारने पर आग के आस-पास खड़े होकर गाने-गवाने का मौका कौन समझदार प्रोड्यूसर छोड़ेगा? 'ओ मेरे सजन बरसात में आ' जैसा गीत अगर अच्छी धुन का बन गया, तो उसकी बला से, बीच-बीच में पर्दे पर मछुआरिनें जिस्म को तोड़ती-मरोड़ती बताई ही जाएँगी।

हमारी फिल्मों में कुछ वर्ग होते हैं, जैसे प्रेम कहानी, बदले की कहानी, डाकू की कहानी, सामाजिक कहानी वगैरह। प्रत्येक में गानों की जगहें भी निश्चित हैं। डाकू की कहानी हुई तो दो

ढपली वाले ढपली बजा: हो गया गीत तैयार

नाव में सवार होते ही हैया हो हैया की पुकार

हवा में हाथ लहराया कि सावन आ गया

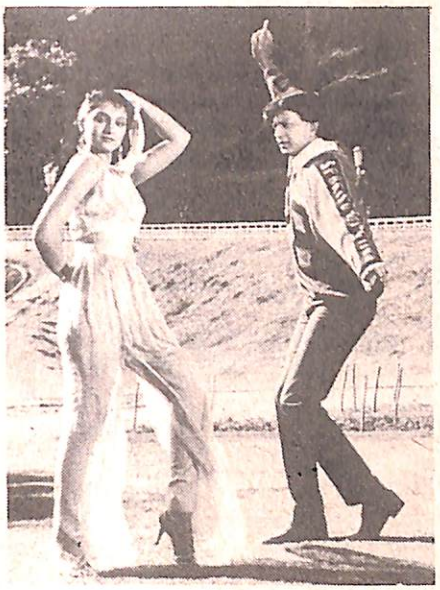

ठुमक चलत मिठुन-माधवी

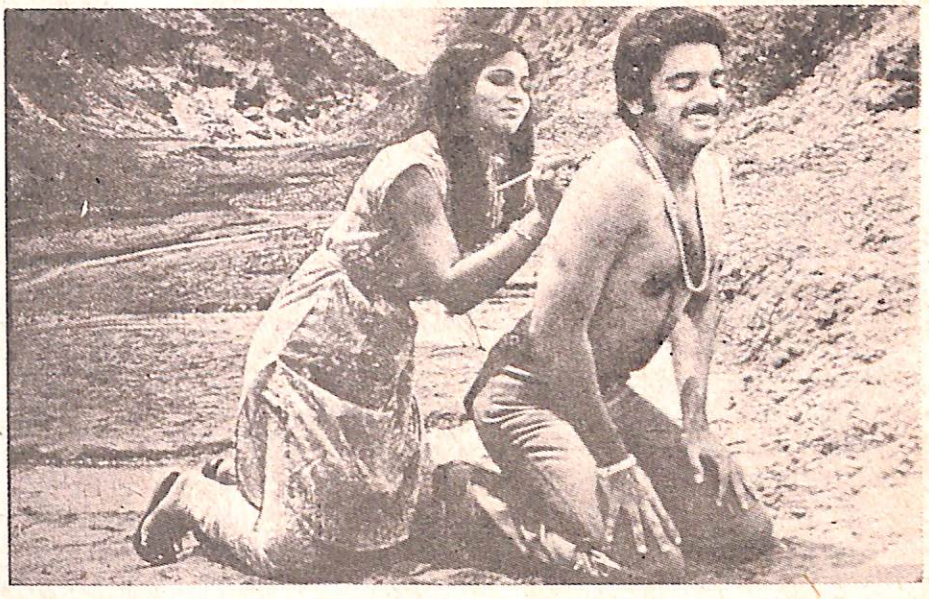

हम बने तुम बने एक दूजे के लिए

मुजरे और एक कव्वाली रखें, सामाजिक है तो भाई-बहन या माँ-बाप या घर-बार पर कुछ हो जाए, बदले की कहानी में विलेन के अड्डे पर गाना हो सकता है और एक-दो सामान्य नाच-प्रेमगीत हो सकते हैं। प्रेम कहानी का 'स्कोप' तो 'यूनिवर्सल' है ही। भक्ति की शक्ति दिखाने के लिए देवी-देवता की मूर्तियों के सामने जो परमानेंट गीत-नृत्य होता है, उसकी बॉक्स ऑफिस पर मारक शक्ति से निर्माता बिल्कुल खबरदार हैं। हॉरर/रहस्य-रोमांच की फिल्म अगर है तो 'कहीं दीप जले कहीं दिल' या 'बीस साल बाद...' की ध्वनि, किसी खंडहर से जाती श्वेत वस्त्रा के साथ रखना ही पड़ेगी।

यह तो सब जानते हैं कि आजकल, धुन पहले बनाई जाती है और उस पर फिट करने लायक शब्द देने के लिए गीतकार को ऑर्डर दिया जाता है। साहिर लुधियानवीं ने एक दफे कहा था कि आजकल निर्माता उनके पास 'सिचुएशन' लेकर नहीं आते, 'लोकेशन' लेकर आते हैं। यानी एक गाना ऐसी जगह के लिए चाहिए जहाँ नारियल का पेड़ है, समंदर है, नायिका लहरों से खेल रही हैं क्योंकि प्रोड्यूसर को वो जगह बहुत पसंद आ गई है। इनका कहानी से कुछ प्रभावकारी ताल्लुक हो, न हो, क्या फर्क पड़ता है?

शायद इसीलिए नीरज का 'कारवाँ' गुजर जाता है और परदे पर सिर्फ गुबार ही गुबार नजर आता है। इंदीवर मजे में अपनी पुरानी ताकत भूल जाते हैं, और शब्दों का सौदा करने बैठ जाते हैं। बप्पी लहरी धुनें चुराने में अधिकांश वक्त बिताते हैं और आनंद मिलिंद या अन्नू मलिक जैसे नए संगीतकारों के लिए प्रेरणा का अद्‌भुत सामान जुटाते रहते हैं। हीरोइनें नहाती रहती हैं, हीरो हंगामा करते रहते हैं, और गीत चलता रहता है।

क्या सहगल कहीं, 'दारासिंह को लड़ाओ तो जानें' सुन रहे होंगे? शैलेंद्र को पता होगा कि 'सोला खतम और सतरा शुरू' भी लिखा जाता है और एक गीतकार की लाइनें दूसरा चुरा ले जाता है? अगर मदन मोहन कहीं मिल जाएँ तो पूछिएगा—'हवा-हवा ये हवा' को तीन संगीतकार एक जैसा कंपोज करके कैसे ले आए? रफी को अपनी तीन-तीन नकलें सुनकर कैसा लगता है? कौन जाने, 'बैजू-बावरा' की आत्मा इस 'वन टू के फोर' और 'फोर टू के वन' को लेकर क्या सोच रही होगी?

■

दौलत गई, दानत नहीं

अभिनेता चंद्रमोहन की आँखें गजब की तेजस्वी और भेदक थीं। आँखें ही उनके अभिनय का प्रमुख अस्त्र थीं। इसी अस्त्र से वे दर्शकों और साथी कलाकारों को अभिभूत कर जाते थे। मोतीलाल की चंद्रमोहन पर असीम श्रद्धा थी। चंद्रमोहन के मन में भी मोतीलाल के लिए खूब आत्मीयता थी। अभिनय के प्रति उनमें संपूर्ण आत्मविश्वास था। निर्देशकों को प्रायः वे कहा करते थे, अभिनय? अभिनय तो कुर्सी पर रखा मेरा कोट भी कर सकता है।

दिन बदल गए। चंद्रमोहन की माली हालत बद से बदतर हो गई। एक दिन मोतीलाल उनसे मिलने गए। चंद्रमोहन के हाथों में गिलास था और सामने स्कॉच व्हिस्की की बोतल रखी हुई थी। चंद्रमोहन अकेले पीते रहे पर उन्होंने मोतीलाल को 'ऑफर' नहीं की। इससे मोतीलाल मन ही मन दुःखी हुए। वे जब जाने लगे, तब चंद्रमोहन ने कहा, देखो मोती, मुझे मालूम है, मेरे ऑफर नहीं करने पर तुम्हें पीड़ा हुई है। पर सुनो। मेरी दौलत गई है, दानत नहीं। मेरे सामने जो बोतल पड़ी है वह जरूर स्कॉच व्हिस्की की है, पर अंदर उसके हाथभट्टी की शराब है और मैं नहीं चाहता कि तुम्हें हाथभट्टी की पीने दूँ। बाद में चंद्रमोहन ने आत्महत्या की।

संसार की एकमात्र

किसी जमाने में अशोक कुमार और देविका रानी के प्रेम-प्रसंग परदे पर देखने के लिए दर्शकों की बेशुमार भीड़ हुआ करती थी। बॉम्बे टॉकिज को खराब हालत में भी देविका रानी ने अपने बलबूते पर चलाया। अभिय चक्रवर्ती जैसे होनहार निर्देशक को ब्रेक दिया और युसूफ नामक अभिनय सम्राट को दिलीप कुमार नाम दिया। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने जिसे 'फैन लेटर भेजा वह देविकारानी संसार की एकमात्र तारिका थी।

असीम प्रतिभा के धनी

बलराज साहनी एम. ए. तक शिक्षित थे। साम्यवाद पर उनकी असीम श्रद्धा थी। शांति निकेतन में कुछ समय के लिए वे शिक्षक भी रहे, पत्रकारिता भी की। बी.बी.सी. में वे अनाउन्सर भी थे। हलचल फिल्म में जेलर की भूमिका जब बलराज साहनी ने की उस समय वे राजनीतिक कैदी थे। कहा जाता है, पुलिस बंदोबस्त में उन्हें शूटिंग के लिए रोजाना लाया जाता था। तब थे वे कैदी और भूमिका निभा रहे थे जेलर की। गुरुदत्त की चर्चित फिल्म बाजी की पटकथा बलराज साहनी ने लिखी थी। काबुलीवाला फिल्म में मासूम पठान की भूमिका कोई भूल नहीं सकता।

करामत की करामात

गायक उस्ताद बड़े गुलामअली खाँ अच्छी खासी चुटकियाँ भी लिया करते थे। उनके एक सुपुत्र करामत अली पाकिस्तान में रहते थे। स्वाभाविक ही वे अधिक परिचित नहीं थे। एक बार कोई सज्जन खाँ साहब से मिलने उनके निवास स्थान गए। खाँ साहब ने करामत अली का परिचय कराते हुए कहा—ये मेरे बड़े साहबजादे। मेहमान ने नाम तलाश किया तो बताया गया—करामतअली। आप क्या करते हैं। मेहमान ने तलाश किया, इस पर बड़े गुलामअली खाँ ने वहाँ खेल रहे दो चार बच्चों की ओर संकेत करते हुए हँसकर कहा ये हैं करामत की करामात।

"आपकी सरकार आपके द्वार"

मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल वोरा की कारगर पहल

साधारण जन अपनी सरकार के बारे में जो राय बनाते हैं, वह उनके स्तर पर सरकारी अमले और सरकार के कार्यक्रमों से मिलने वाले संतोष से बनती है। उनकी छोटी-छोटी समस्याएँ मौके पर आसानी से सुलझ जाएँ, अनाज , मिट्टी का तेल, जलाऊ लकड़ी, खाद-बीज जैसी बुनियादी जरूरत की चीजें वाजिब कीमत पर मिल जाएँ, नामांतरण या खसरे की नकल पाने में उन्हें परेशानी न हो, बैंक ऋण और मिनिकिट समय पर मिल जाएँ, तो गाँव के लोगों को जो तसल्ली होती है उसे उनके चेहरों पर पढ़ा जा सकता है।

धरती से जुड़े मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल वोरा ने साधारण लोगों की इस मानसिकता को बड़ी गहराई तक समझा है और प्रदेश के लाखों गाँववासियों को राहत देने के लिए सरकार को उनके दरवाजों तक ले जाने की अनूठी पहल की है। पिछली ९ मई को विधानसभा में बोलते हुए उन्होंने सदन को बताया था कि प्रदेश के गाँवों के लोगों की कठिनाइयाँ हल करने और उनकी समस्याएँ सुलझाने के लिए प्रदेश के सारे विकास खंड मुख्यालयों में प्रशासनिक शिविर लगाये जायेंगे। उनके इसी सोच का नतीजा है, "आपकी सरकार आपके द्वार" अभियान जो पिछली १५ मई से सारे मध्यप्रदेश में शुरू हुआ है और आगामी अगस्त के महीने तक लगातार चलेगा।

इस अभियान के दौरान प्रदेश के सभी ४५९ विकास खंड मुख्यालयों में गाँव वालों की कठिनाइयाँ दूर करने और उनकी समस्याएँ मौके पर ही सुलझाने के लिए दिन भर चलने वाले शिविर लगाये जायेंगे, जिसमें जनता से सरोकार रखने वाले जिला कार्यालयों के सभी प्रमुख अधिकारी मौजूद होंगे। इन शिविरों में बैंकों के अधिकारी भी उपस्थित रहेंगे। इन शिविरों के आयोजन के लिए कलेक्टरों को उत्तरदायी बनाया गया है और उनसे कहा गया है कि वे अपने जिलों में इनके आयोजन का कार्यक्रम समय रहते बनायें और आयोजन से काफी पहले तारीखों की घोषणा करें, ताकि लोग अपनी कठिनाइयाँ लेकर इन शिविरों में आ सकें। अधिकारियों से कहा गया है कि वे स्थानीय समस्याओं का पूर्वानुमान लगाकर उन्हें मौके पर निपटाने की पूरी तैयारी से इन शिविरों में जाएँ।

मंत्रियों की जिम्मेदारी

विभिन्न जिलों के प्रभारी मंत्रियों, राज्य मंत्रियों, उप मंत्रियों और संसदीय सचिवों को उनके प्रभार के जिलों में आयोजित शिविरों की निगरानी करने की व्यक्तिगत जिम्मेदारी सौंपी गई है। वे हर महीने कम से कम ऐसे चार शिविरों में भाग लेंगे। निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार इस वर्ष अगस्त माह के अंत तक सभी विकास खंड मुख्यालयों में शिविर आयोजित हो जायेंगे।

जिला कलेक्टर विकास खंड मुख्यालयों पर हाट-बाजारों की तिथियों को ध्यान में रखते हुए शिविरों के आयोजन का कार्यक्रम बनायेंगे और उसके बारे में आसपास के गाँवों में मुनादी करवाएँगे, ताकि गाँव वाले इन शिविरों में बड़ी संख्या में उपस्थित होकर अपनी शिकायतों का निराकरण कर सकें। ऐसे दूरदराज के गाँवों में जो बरसात के मौसम में सड़कों से कट जाते हैं, बरसात के पहले शिविर आयोजित करने के कलेक्टरों को निर्देश दिए गए हैं।

ऐसे सभी विभाग के जिला स्तरीय अधिकारी, जिनसे सामान्यतः गाँव वाले सीधे संपर्क में आते हैं, इन शिविरों में उपस्थित रहकर मौके पर ही लोगों की शिकायतों का निराकरण करेंगे। यदि मौके पर ऐसा संभव नहीं होता, तो अधिकारियों द्वारा आवेदक को उसके प्रकरण के निपटारे की निश्चित तारीख दी जाएगी।

विभागों और अभिकरणों द्वारा तैयार किए गए ऋण, अनुदान आदि बाँटने के प्रकरण, चलित न्यायालयों की ही तरह इन शिविरों में निपटाए जाएँगे।

इन शिविरों में कामकाज सुबह से शुरू होकर जब तक कि सभी शिकायतों का निपटारा नहीं हो जाता, लगातार आठ-दस घंटे चलता रहेगा। संभागीय कमिश्नर अपने संभाग के जिलों में लगने वाले इन शिविरों में बारी-बारी से भाग लेंगे।

प्रकरणों का समयबद्ध निराकरण

मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल वोरा ने प्रदेश के सभी ग्राम पंचायतों के सरपंचों को पत्र लिखकर "आपकी सरकार आपके द्वार" अभियान को सफल बनाने में उनके सक्रिय सहयोग की अपील की है। अपने पत्र में उन्होंने कहा है कि आम जनता की रोज-रोज की समस्याओं के तत्काल हल और उसकी रोजमर्रा की जरूरतों की पूर्ति के लिए सभी विकास खंड मुख्यालयों पर प्रशासकीय शिविर लगाने की समय सारणी बनायी गयी है। उन्होंने सरपंचों को सुझाव दिया है कि शिविर लगाने की तारीख और दिन मालूम होते ही ग्राम पंचायत की बैठक बुलायें और उसमें शिविर के बारे में लोगों को पूरी-पूरी जानकारी दें और सभी पंचों से निवेदन करें कि वे अपने टोले मोहल्ले के सभी परिवारों से संपर्क कर अपनी समस्याओं के निराकरण के लिए उन्हें शिविर में आने के लिए आमंत्रित करें।

मुख्यमंत्री ने सरपंचों को यह भी सलाह दी है कि वे ग्राम पंचायत सचिव से पंचायत क्षेत्र के लोगों की समस्याओं और कठिनाइयों की सूची बनवाकर काफी पहले ही विकास खंड अधिकारी को भेज दें। इससे लोगों की अधिकांश समस्याओं का हल शिविर में ही संभव हो सकेगा। इस तरह ग्राम पंचायत की सक्रियता और सरपंचों के नेतृत्व में सामान्य जनता का भरोसा बढ़ेगा।

मुख्यमंत्री ने मंत्रिपरिषद् के सदस्यों से कहा है कि वे महीने में कम से कम चार ऐसे शिविरों में उपस्थित रहें और उनके सामने रखी जाने वाली समस्याओं का जहाँ तक संभव हो, मौके पर ही निराकरण करें। यदि किसी खास मामले में यह संभव न हो तो उसके निराकरण के लिए शिकायतकर्ता को निश्चित तारीख दी जाये।

राजस्व और भू-अभिलेखों से संबंधित भूमि आबंटन और अतिक्रमणों के व्यवस्थापन, अधिकार अभियान के अंतर्गत दिये जाने वाले कब्जों , भू-अधिकार और ऋण पुस्तिकाओं के वितरण, नामांतरण और सीमांकन के मामलों, गैर आदिवासियों के कब्जे से आदिवासियों को भूमि की वापिसी गाँव में चरनोई की कठिनाई और बंधुआ मजदूरों के पुनर्वास के मामलों में इन शिविरों में निपटारे की दिशा में विशेष प्रयास करने के निर्देश कलेक्टरों को दिये गये हैं।

इन शिविरों में निपटाये गये काम की प्रादेशिक स्तर पर निगरानी की व्यवस्था की गई है। कलेक्टर इन शिविरों में किये गये काम की विस्तृत रिपोर्ट हर माह सरकार को भेजेंगे और जिन समस्याओं का स्थानीय रूप से निराकरण नहीं हो सका है, उनके निराकरण के लिए सरकार की ओर से तत्काल उचित कार्रवाई की जायेगी।

कलेक्टरों को सलाह दी गई है कि वे समाचार पत्र प्रतिनिधियों को विश्वास में लें और अपने जिले में लगने वाले शिविरों के परिणामों की जानकारी उन्हें देते रहें।

शिविरों में निःशुल्क सुविधाएँ

"आपकी सरकार आपके द्वार" अभियान के दौरान आयोजित शिविरों में अपनी शिकायतें लेकर आने वाले लोगों के लिए नाश्ते, पानी और चिकित्सा की व्यवस्था सरकार की ओर से की जायेगी। साथ ही शिविर स्थल पर उचित मूल्य की दुकान भी खोली जायेगी। जहाँ अनाज, मिट्टी का तेल, शक्कर जैसी जरूरत की चीजें उपलब्ध रहेंगी। मुख्यमंत्री श्री मोतीलाल वोरा ने इस आशय के निर्देश सभी जिला कलेक्टरों को दिये हैं ताकि शिविर में आने वाले लोगों को असुविधा न हो।

श्री वोरा ने ये भी निर्देश दिये हैं कि शिविर में बीमार लोगों का परीक्षण करने और दवाएँ देने के लिए डॉक्टरों के एक दल की भी व्यवस्था की जाये।

शिविर में अपने मामले लेकर आने वाले लोगों को, जिसमें अधिकांश लोग गरीब हैं, लाई, मुरमुरा, चना, चूड़ा-सेंव के एक-एक पैकेट निःशुल्क देने की व्यवस्था की गई है। परिवार के साथ आने वाले लोगों को अतिरिक्त पैकेट दिया जायेगा।

प्रदेशव्यापी अभियान

मुख्यमंत्री ने "आपकी सरकार आंपके द्वार" अभियान का आरंभ बस्तर जिले के बस्तर गाँव में पिछली १५ मई को किया। इस शिविर में बड़ी संख्या में गाँवों में रहने वाले आदिवासी आये और शिविर में उन्हें मिली राहत पर संतोष व्यक्त किया।

बस्तर शिविर में कुल ९५५ शिकायती आवेदन प्राप्त हुए, जिनमें से ८९२ प्रकरणों का मौके पर ही निराकरण किया गया। मुख्य रूप से २३० ऋण पुस्तिकाओं का वितरण, १२९ नामांतरण और ५ बँटवारे के प्रकरणों का निपटारा किया गया। प्रदेश में इस पहले शिविर में प्रस्तुत ९३ प्रतिशत से भी अधिक समस्याओं का एक ही दिन में निराकरण शिविर की उल्लेखनीय सफलता थी।

इन शिविरों में स्वास्थ्य विभाग द्वारा एक रोग परीक्षण मंडप भी लगाया गया। इस मंडप में डॉक्टरों ने विभिन्न रोगों से पीड़ित रोगियों का स्वास्थ्य परीक्षण कर १३० रोगियों का इलाज शुरू किया। शिविर में उपस्थित गाँव वालों को उस समय एक सुखद अनुभूति हुई जबकि कनपाल गाँव के बावंत पिता बीतू को उसके द्वारा बैंक में जमा की गई कर्ज की अधिक राशि मौके पर ही वापस दिलवा दी गयी।

वन मंत्री डॉ. कन्हैयालाल शर्मा ने इस अभियान के तहत घरसींवा में लगाये गये शिविर में विकास खंड के छोटे किसानों को सहकारी केंद्रीय बैंक की ओर से ४.१५ लाख रुपयों की नकद राशि और खाद, बीज़ आदि का वितरण किया। सहकारी बैंक ने इस अवसर पर ३१२ छोटे किसानों को २ लाख रुपये की नकद सहायता राशि सहित १२० टन रासायनिक खाद और ११० क्विंटल धान-बीज का वितरण किया। इसके साथ ही एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत इस बैंक ने १५ ग्रामीणों को ३२ हजार २०० रुपये की सहायता दी। वन मंत्री ने ग्राम टेकारी, मुर्रा और धनली के लोगों को "अधिकार अभियान" के तहत जमीन के वास्तविक कब्जे का प्रमाण पत्र भी सौंपा। उन्होंने कृषि विभाग की ओर से लघु और सीमांत किसानों को धान के मिनीकिट्स और उन्नत कृषि उपकरण भी बाँटे।

शिविर में राजस्व विभाग द्वारा एक हजार से अधिक प्रकरणों का निपटारा किया गया। इसमें भू-अधिकार और ऋण पुस्तिका का वितरण, नामांतरण, अभिलेख दुरूस्ती वगैरह के मामले शामिल हैं।

गुना जिले के बमोरी विकास खंड के ग्राम फतेहगढ़ में "आपकी सरकार आपके द्वार" अभियान के तहत प्रथम शिविर का शुभारंभ पिछले दिनों पंचायत और ग्रामीण विकास मंत्री श्री शिवप्रतापसिंह ने किया। शिविर में ५,०० ग्रामवासियों ने भाग लिया और अपनी समस्याओं के संबंध में ३,८२१ आवेदन प्रस्तुत किये। इनमें से ३,१९८ आवेदन पत्रों का मौके पर ही निपटारा किया गया।

"आपकी सरकार आपके द्वार" अभियान की श्रृँखला में ग्वालियर जिले में पहला शिविर पिछले दिनों उटीला ग्राम में संपन्न हुआ। इस शिविर में मौके पर ३६० प्रकरण प्रस्तुत किये गये। नागरिक आपूर्ति एवं सहकारिता मंत्री, श्री बालेन्दु शुक्ल ने शिविर की अध्यक्षता की।

ग्राम उटीला में आयोजित शिविर में राजस्व विभाग के ८६ प्रकरण, सीमांकन के ७, अन्य २१ प्रकरणों का निपटारा किया गया। इसी प्रकार नामांतरण के ७, ऋण पुस्तिका वितरण के ३७ और प्रमाणीकरण के करीब ४२ मामले भी निपटाये गये। साथ ही लोक स्वास्थ्य यांत्रिकी विभाग से संबंधित ८६ आवेदन पत्र प्राप्त हुए, जिन पर मौके पर ही विचार किया गया। इसी प्रकार विद्युत विभाग से संबंधित ४० आवेदन पत्रों पर विचार किया गया। श्री बालेन्दु शुक्ल ने इस अवसर पर ग्रामवासियों को पेयजल संकट से छुटकारा दिलाने के लिए जिले के अनेक गाँवों में एक-एक हैंडपंप स्थापित किये जाने की स्वीकृति दी।

आदिवासी बहुल जिले झाबुआ के आलीराजपुर विकास खंड मुख्यालय में आयोजित शिविर में आदिवासियों की समस्याओं का निराकरण किया गया। शिविर में आदिवासियों के आवेदन पत्र लिखने की निःशुल्क व्यवस्था की गई थी।

सरकार और प्रशासन को जनोन्मुखी बनाने और लोगों से सीधे संवाद कर उनकी समस्याएँ सुलझाने की दिशा में किया गया यह प्रयास निश्चय ही प्रदेश की जनता में नया विश्वास और उत्साह जगायेगा।

मोर बनो या चोर, यहाँ सब चलता है

● शिरीष कणेकर

मेरी सुनिएगा?

जरा अपने रेडियो का बटन ऑन कर दीजिए। चूँकि आपकी तकदीर हमेशा ही मार खाती रही है, इसलिए रेडियो ऑन करते ही आपको विविध भारती के सुर सुनाई देंगे। अरे, नहीं, रेडियो यों फट् से ऑफ मत कीजिए। स्टेशन भी मत बदलिए। ऐसा भी क्या। जरा मेरी बात तो मानिए जनाब।

अच्छा, समझिए कि मैंने आपकी सहनशीलता को चुनौती दी है या फिर यह मान लीजिए कि आपके एक भाई ने आपको कसम दी है। चाहे जो समझना भैया. मगर मेरी इतनी बात रख लेना। लगातार दो-तीन घंटे विविध भारती सुनते रहना।

आपको एक नई बात का पता चल जाएगा। आपको पता चलेगा कि दुनिया में बस, एक ही पुरुषोत्तम ऐसा है, जो हिन्दी फिल्मों में पार्श्व-गायन करने लायक गले का मालिक है, किशोर कुमार कुंजीलाल गांगुली। महाकवि आनंद बख्शी की दिव्य प्रतिभा को धुनों में बाँधने की क्षमता सिर्फ पाँच संगीत शिरोमणि रखते हैं। वे हैं, लक्ष्मीकांत कुडालकर, प्यारेलाल प्रसाद, कल्याणजी शाह, आनंदजी शाह एवं सचिनदेव बर्मन पुत्र राहुल उर्फ पंचम। और इन राजा बेटों को कहीं हमारी आपकी नजर न लग जाए, इस ख्याल से कभी-कभार नौशाद और मदनमोहन का डिठौना भी लगा दिया जाता है।

विविध भारती की आखिरी सभा खत्म हो जाती है और फिर भी कभी ऐसा महसूस नहीं होता कि आज हमने कोई नई चीज सुनी है। कार्यक्रम भले ही 'नई फिल्मों के गीत' हो, मगर सुर वही होते हैं, परिचित, चिरपरिचित। लगातार यही महसूस होता है कि ये सुर कहीं सुने हैं, कहीं न कहीं जरूर सुने हैं। साहित्य की चोरी का पता लगाना हो तो देशी-विदेशी साहित्य का गहरा अभ्यास जरूरी होता है, उसी तरह जिस मूल गीत की मौलिक धुन में नया गीत बाँधा गया हो, उस मौलिक गीत या मौलिक धुन को याद रख पाना भी इस बात पर निर्भर करता है कि आपका फिल्म संगीत का अध्ययन कितना गहरा है।

ओ.पी. नय्यर

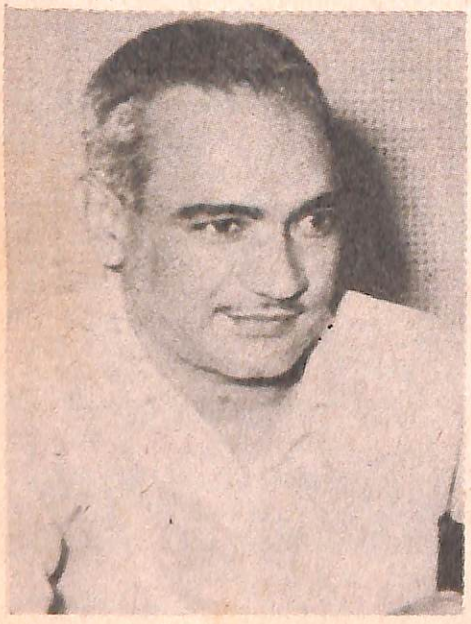

'बैराग' का दोगाना है 'सारे शहर में आप सा कोई नहीं, कोई नहीं। जब रेडियो पर अनाउंसर कहता है, 'धुन बनाई है कल्याणजी-आनंदजी ने' तो उसकी बात का यकीन तो करना ही पड़ता है। लेकिन मेरी समझ में यह धुन कल्याणजी-आनंदजी के एक समय के सहायक लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल की है। फिल्म 'राजा और रंक' में संजीव कुमार और नाजिमा एक गीत गाते हैं, 'अंग बसंती, रंग बसंती'। इस गीत की धुन हूबहू वही है, जिसमें 'बैराग' का यह गीत है।

सी. रामचंद्र और अनिल विश्वास

'चुनरिया' के लिए हंसराज बहल की बनाई गई, लता की गवाई गई गजल की धुन लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल बेझिझक उठा लेते हैं और 'जीवन-मृत्यु' में फिट कर लेते हैं। 'जमाने में अजी ऐसे कई नादान होते हैं' सुन लीजिए। और मजे की बात तो यह है कि दुबारा भी इस धुन को लता ने ही गाया है।

कुछ पहुँचे हुए तथाकथित संगीतकार भी हैं, जो डाका डालने के लिए अतीत में बहुत दूर तक जाने का भी कष्ट नहीं उठाते। 'पब्लिक मेमरी इज वेरी शार्ट' (जनता की याददाश्त बड़ी कमजोर होती है) इस अँगरेजी कहावत पर ये संगीतकार उतनी ही श्रद्धा रखते हैं, जितनी वे अँगरेजी संगीत पर रखते आ रहे हैं। इसलिए कल परसों की बनी धुनों पर हाथ साफ करते भी वे नहीं झिझकते। हो सकता है, ये लोग जिनकी धुनें चुरा रहे होते हैं, वे खुद भी उन धुनों को कहीं से मार लाते हों। इसीलिए पहले तो आर.डी. बर्मन किसी पश्चिमी गीत की धुन में 'गुलाबी आँखें जो तेरी देखी' (ट्रेन) बनाते हैं और फिर लक्ष्मीकांत- प्यारेलाल 'गुलाबी आँखें...' की धुन से फिल्म 'रूप तेरा मस्ताना' के गीत 'दिल की बातें...' का अंतरा सजाने लग जाते हैं। शंकर-जयकिशन फिल्म 'तुम हसीं मैं जवाँ' का 'चेहरा तेरा माशाअल्ला' गीत पहले पश्चिमी धुन में बना लेते हैं और फिर तुरंत उसी धुन को 'तू है बुद्धू ब्रह्मचारी' (फिल्म 'एक नारी एक ब्रह्मचारी') गीत में दोहराने लगते हैं। यह साहस वे इसलिए कर सकते हैं, क्योंकि 'जनता की याददाश्त बड़ी कमजोर होती है।'

मजा तो यह है कि हमारे फिल्म संगीत के शौकीन भी मौलिक धुन को छोड़कर उसकी नकल पर ही मरने लगते हैं। 'हमीं से मुहब्बत, हमीं से लड़ाई' (लीडर, गायक मोहम्मद रफी, संगीतकार नौशाद) से उन्हें 'ऐ, फूलों की रानी, बहारों की मलिका' (आरजू, गायक मोहम्मद रफी, संगीतकार-शंकर जयकिशन) ज्यादा अच्छा लगता है। 'मेरे पास आओ, नजर तो मिलाओ' ('संघर्ष' गायिका लता मंगेशकर, संगीतकार नौशाद) को लोग भूल गए होंगे, मगर 'कामदेव जैसी तेरी मूरतिया ('तुम हसीं मैं जवाँ' गायिका लता मंगेशकर, संगीतकार शंकर जयकिशन) तुरंत छा जाएगा। 'कैदी नं. नौ सौ ग्यारह' का एक गीत है 'मीठी-मीठी बातों से बचना जरा।' धुन बनाई है दत्ताराम ने। इसका अंतरा है 'खेलकूद में खोना नहीं, बात- बात में रोना नहीं' आर.डी. बर्मन इसी अंतरे की धुन को 'तू चाँद तू रात' (पराया धन)

के अंतरे में इस्तेमाल कर लेते हैं और लोगों को वही भा जाता है। अपने पिता द्वारा बनाई गई 'रंगीला रे' की धुन और अपनी 'सुन चंपा सुन तारा' को मिलाकर आर.डी. फिर एक बार 'मेरे दिल को ना तड़पाना' नाम से चूँ चूँ का मुरब्बा बना डालते हैं और 'शौकीन' कहलाने वाली तमाम भेड़ें खुशी से उछलने लग जाती हैं। सोच लीजिए, 'एक तू जो मिला' (हिमालय की गोद में) गीत की पंक्ति 'खिला जो मेरा दिल सारी बगिया खिली' की धुन सुनते हुए सबको सहसा 'बोलो-बोलो मेरी जान है किराया कितना' (तेरे दिल का मकान सैंया बड़ा आलीशान-फिल्म 'दो उस्ताद', संगीतकार ओ.पी. नय्यर) की याद आने लगती, तो कल्याणजी आनंदजी की सौ फिल्में भला कैसे पूरी हो पातीं?

वी. शांताराम की फिल्म 'मौसी' में संगीतकार वसंत देसाई ने इन उठाईगीरों का मखौल उड़ाने वाला गीत दिया है, 'इधर से थोड़ा, उधर से थोड़ा, माल को जोड़ा, बनाया घोड़ा,' यह गीत संगीत की उठाईगिरी की इस प्रवृत्ति को भली प्रकार उजागर करता है।

'यह हवा, यह समा, चाँदनी है जवाँ' (शगूफा-गायिका लता, संगीतकार सी. रामचंद्र) की धुन शंकर-जयकिशन सीधे- सीधे 'मिल गए, मिल गए, आज मेरे सनम' (कन्यादान-गायिका लता) में प्रयुक्त कर लेते हैं। चोरी के ऐसे सीधे सपाट ढंग उतने नहीं मिलते। हाँ, ओ.पी. नय्यर ने 'बड़ी बहू' के लिए अनिल विश्वास के बनाए गीत 'काहे नैनों में कजरा भरे' की धुन में 'तुम रूठ के मत जाना' शब्द ढालकर 'फागुन' का गीत बना डाला था। और हाँ, 'अनारकली' के लिए सी. रामचंद्र ने गीत बनाया था, 'मुझसे मत पूछ मेरे इश्क में क्या रखा है' उधर रवि ने 'चौदहवीं का चाँद' के लिए उनके खजाने पर दिनदहाड़े डाका डाला और गीत बना 'बदले-बदले मेरे सरकार नजर आते हैं' (अब यह बात दूसरी है कि सी. रामचंद्र की उस धुन में मुझे 'जुगनू' में नूरजहाँ की गाई 'आज की रात' का आभास मिलता है...!)

'बाजूबंद खुल खुल जाए' (बाजूबंद) और 'झन झन झन पायल बाजे' (बुजदिल) मौलिक बंदिशें हैं, जो क्रमशः संगीतकार मोहम्मद शफी एवं

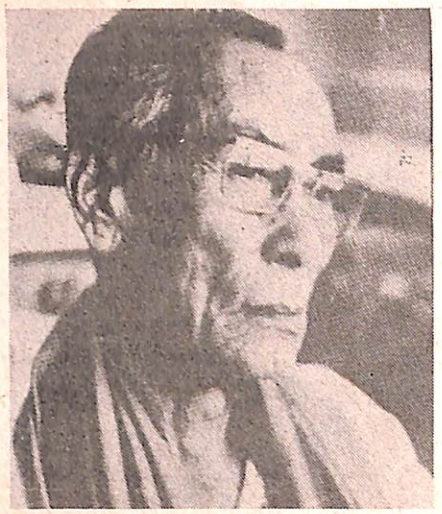

सचिनदेव बर्मन

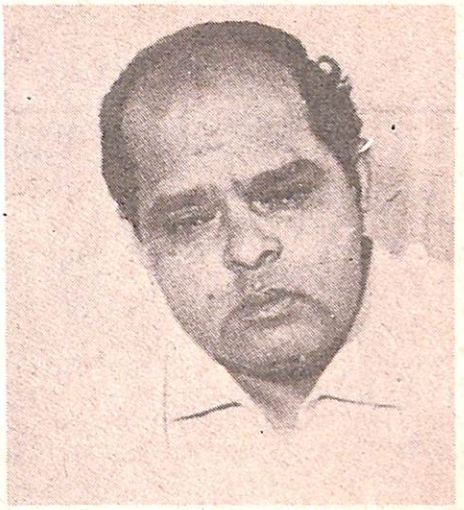

रोशन

एस.डी. बर्मन ने लता से गवाई थी। स्वर्गीय बड़े गुलाम अली खाँ की मशहूर ठुमरी 'याद पिया की आए' को सी. रामचंद्र ने 'बहूरानी' के लिए इस्तेमाल किया था। सिर्फ शब्द बदल गए, 'बलमा अनाड़ी मन भाए' और लता ने गाया।

धुनों की चोरी करते समय अक्सर संगीतकार बड़ी कल्पनाशीलता का परिचय देते हैं। हालाँकि यह कल्पनाशीलता अभ्यास से ही हासिल हो पाती है। हेमंतकुमार जैसे संगीतकार अपने पहले ही प्रयास में रंगे हाथों पकड़े जाते हैं। अपनी फिल्म 'पुलिस' के लिए उन्होंने एक अँगरेजी गीत 'ओ ओ ओ बेबी' शब्दों और धुन सहित चुरा लिया और कापीराइट कानून को भंग करने का जुर्म कर बैठे। उस समय उनके इस अधकचरे, उतावले प्रयास पर संगीतकार खूब हँसे होंगे।

दरअसल कोई भी कल्पनाशील संगीतकार जब धुन की चोरी करता है, तो मूल धुन की ताल एवं टेंपो को कुछ बदल लेता है। और बड़ी कुशलता से सुनने वालों के कानों में धूल झोंक देता है। कभी-कभी यह प्रयास बेहद सफल सिद्ध होता है और तब 'दूर होते हुए' (वारिसः तलत-सुरैया,

मदन मोहन

संगीतकार अनिल विश्वास) रूप बदलकर आता है और अपने नए रूप 'कभी खुद पे कभी हालात पे रोना आया' (हम दोनोंः मो. रफी, संगीतकार जयदेव) में बेहद लोकप्रिय हो जाता है। 'हम आज कहीं दिल खो बैठे' (अंदाजः मुकेश, संगीतकार नौशाद) की धुन तब 'मैं जब भी अकेली होती हूँ' (धर्मपुत्रः आशा भोंसले, संगीतकार एन.दत्ता) के शब्दों की नई नकाब पहनकर आ जाता है।

'उल्फत का साज छेड़ो, समाँ सुहाना है' (औरतः संगीतकार शंकर- जयकिशन) गीत जिन्हें याद है, उन्हें 'कहता है जोकर सारा जमाना' के उद्गम स्थल की खोज में दूर तक जाने की जरूरत नहीं है। 'यूँ मुस्करा के सामने आया न कीजिए' (कैदीः संगीतकार ओ.पी. नय्यर) का मूल-स्रोत 'अपनी नजर से दूर हो' (बाजारः संगीतकार श्यामसुंदर) की धुन में मिल सकता है। 'जीवन की बगिया महकेगी' (तेरे मेरे सपनेः लता-किशोर, संगीतकार एस.डी. बर्मन) के अंतरे की तर्ज १९४९ में 'सुनहरे दिन' के लिए ज्ञान दत्त के निर्देशन में मुकेश और शमशाद बेगम के गाए गीत 'मैंने देखी जग की रीत' में मिल जाती है।

कभी-कभी संयोगवश दो धुनें एक जैसी बन जाती हैं, इस बात से भी इंकार नहीं किया जा

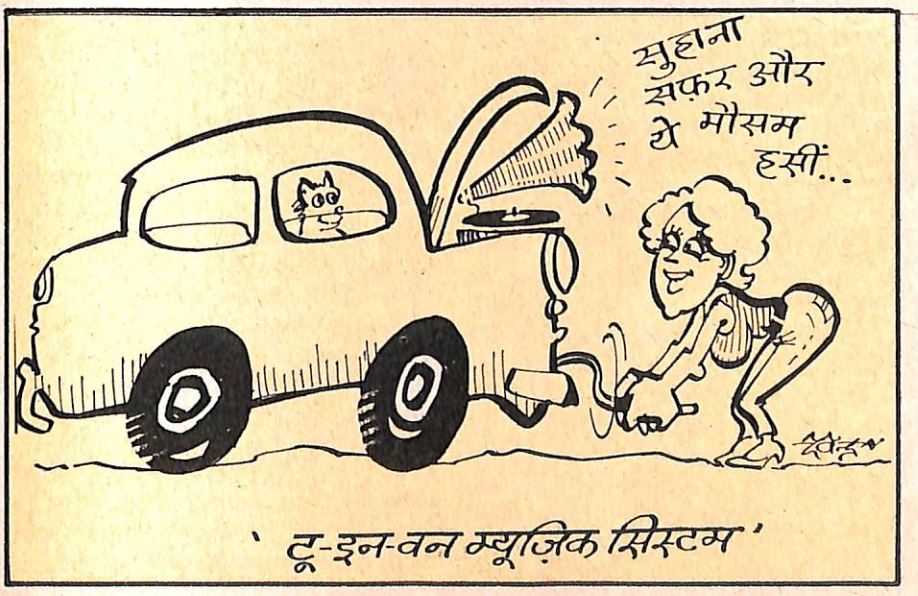

सकता। खासकर, जब इनमें से पहले बनी हुई तर्ज पर सुनने वालों का खास ध्यान नहीं जा पाता, तब ऐसे में दूसरी तर्ज बनाने वाला संगीतकार यह कहकर अपने आपको बचा सकता है कि मैंने तो वह तर्ज सुनी ही नहीं है।

लेकिन 'यह मेरा दीवानापन है' (यहूदी: शंकर-जयकिशन) और 'देख हमें आवाज न देना' (अमरदीप: सी. रामचंद्र) में धुनों की समानता को संजोग कैसे कहा जा सकता है? 'बरसो रे' (फागुन: ओ.पी. नय्यर) के ध्रुपद की दूसरी पंक्ति और 'झूम झूम के नाचो आज' (अंदाज:नौशाद) की दूसरी पंक्ति (आज किसी की हार हुई है, आज किसी की जीत) की समानता क्या वाकई संजोग की बात है? 'झुका-झुका के निगाहें मिलाई जाती हैं' (मिस कोका कोला: मुकेश, आशा भोंसले, संगीतकार- ओ.पी. नय्यर) एक बड़ा सुंदर गीत है। दायरे से हट कर लगता है। लेकिन यह खुशी तभी तक टिक पाती है, जब तक हम शांति हीरानंद की प्राइवेट गजल 'नजर नवाज नजारों में' नहीं सुन पाते। अब चूँकि मैं यह राज जान गया हूँ, ओ.पी. के उस गीत से मिलने वाली खुशी पर पानी फिर गया है। जब कभी भी वह गीत सुनता हूँ, शांति हीरानंद की वही 'ओरिजनल' गजल मुझे बरबस याद आ जाती है, और अपनी तरफ खींचने लगती है। यही ट्रैजेडी दुबारा हुई 'मेहँदी' की गजल 'अपने किए पे कोई पशेमान हो गया' (संगीतकार रवि) के साथ। मुझे यह गजल बेहद पसंद थी और फिर एक दिन मैंने 'ओरिजनल' चीज सुनी...

'एक शहंशाह ने बनवा के हसीं ताजमहल' (लीडर: नौशाद) और 'तू है मेरा प्रेम देवता' (कल्पना: ओ.पी. नय्यर) यह दोनों गीत राग ललित पर आधारित हैं। इसलिए इनके सुरों में अगर कहीं समानता नजर आती हो, तो वह बड़ी ही स्वाभाविक बात है। इसलिए जब एक ही शास्त्रीय राग को आधार बनाकर दो गीत बनाए जाते हैं, तो उन पर चोरी का इल्जाम नहीं लगाया जा सकता। लेकिन जब दो सर्वथा भिन्न धुनों के बीच सहसा कहीं कोई समानता नजर आ जाती है, तो उसे क्या कहा जाए? 'दुनिया रंग रंगीली' (धरती माता) और 'याद रखना चाँद तारों' (अनोखा प्यार) ये दो धुनें हैं, क्रमश: संगीतकार पंकज मलिक और अनिल विश्वास की। दोनों में कहीं भी कोई समानता नहीं है। और फिर भी दोनों

शंकर-जयकिशन

अनिल विश्वास

गीतों के आरंभ में बजने वाला वाद्य संगीत एक जैसा है। 'वो दिन कहाँ गए बता' (तराना: लता-अनिल विश्वास) और 'चलेंगे तीर जब दिल पर' (कोहिनूर: रफी, लता, संगीतकार नौशाद) में कहीं कोई समानता नहीं है। मगर इनकी आरंभिक पंक्तियों का ढंग एक जैसा है।

एक ही समय आए दो अलग-अलग संगीतकारों के दो गीत जब एक जैसे लगने लगते हैं, तो इसे क्या कहा जाए? चोरी या संजोग? १९५५ में दो फिल्में प्रदर्शित हुईं। देवआनंद-गीताबाली की 'मिलाप' और प्रदीप कुमार-चित्रा की 'हूरे अरब'। 'मिलाप' के संगीतकार एन. दत्ता ने एक गीत बनाया 'बचना जरा, यह जमाना है बुरा' (गीतादत्त और साथी) 'हूरे अरब' के लिए गुलाम मोहम्मद ने गीत बनाया 'तारा रा रा रम मेरे दिल में सनम' (लता) और दोनों गीतों की धुन एक थी।

कुछ संगीतकार धुनों की उठाईगिरी तो करते हैं, मगर कुछ ऐसी कुशलता से उन्हें पेश करते हैं कि वह धुन मौलिक लगती है। इसीलिए यह चोरी भी बड़ी प्यारी लगती है। 'तुझे क्या सुनाऊँ मैं दिलरूबा' (आखरी दाँव: गायक मो. रफी) इस दिलकश गीत की धुन बनाने के लिए संगीतकार मदनमोहन को 'ये हवा ये रात ये चाँदनी' (संगदिल: गायक तलत महमूद, संगीतकार सज्जाद) गीत की शरण लेनी पड़ी थी, यह बताना पड़ता है। और इस राज को जानने के बाद भी 'दिलरूबा' की मिठास कतई कम नहीं होती। 'एक मैं हूँ एक मेरी बेकसी की शाम है' (तराना: गायक तलत, संगीतकार अनिल विश्वास) बड़ा ही प्यारा गीत है और संगीतकार जयदेव ने 'किनारे-किनारे' के गीत 'देख ली तेरी खुदाई' में बड़ी कुशलता से उसका प्रयोग किया है। 'मेरे आँसुओं' (आज की बात: गायक दुर्रानी, सुरैया) गीत के लिए संगीतकार हुस्नलाल-भगतराम ने अपने बड़े भाई पं. अमरनाथ के गीत 'साथिया बेलिया साजना लो' (मिर्जा साहिबा: गायक दुर्रानी, नूरजहाँ) की सुरीली नकल उतार कर रख दी है। 'याद आई है' (पूनम: लता, संगीतकार शंकर- जयकिशन) और 'चल दिया कारवाँ' (लैला मजनूँ: तलत, संगीतकार गुलाम मोहम्मद) खूब एक जैसे लगते हैं और फिर भी दोनों गीत एक जैसे मीठे भी लगते हैं।

राहुल देव बर्मन

गुलाम हैदर

सुन बैरी बलम

'घबरा के जो हम सिर को टकराएँ तो अच्छा है' और 'ये रात फिर ना आएगी' इन गीतों को उम्र की ऊँची सीढ़ियों पर खड़े लोग भूले नहीं होंगे। अपने जमाने में डेढ़ सौ फिल्मों में गीत गाने वाली राजकुमारी ने अपनी आवाज का जादू माहौल में घोल दिया था। संगीतकार खेमचंद प्रकाश और श्यामसुंदर की धुनों पर राजकुमारी की आवाज कोयल की तरह कूकती थीं। सन् १९२२ को बनारस में जन्मी राजकुमारी दस बरस की उम्र में बंबई आ गई थीं। कजरी, बिरल और चैती गाने में वे माहिर थीं। राम राज्य फिल्म का यह गीत बीना मधुर-मधुर कुछ बोल तो अमर हो गया है। कजरारी मतवारी रंग भरी दो आँखें (नौबहार) मुझे सच-सच बतादो सुन बैरी बलम (बावरे नैन) जैसे गीत भी सदाबहार की श्रेणी में आते हैं। गायिका के अलावा वे अभिनेत्री भी थीं। फिल्म राधेश्याम उर्फ जुल्मे कंस में उन्होंने छोटी भूमिका निभाई, इसके बाद दाना दुश्मन, खुश अंजाम, संसार लीला, बंबई की सेठानी, स्नेहलता, रेड लैटर, शमशीरे अरब और नई दुनिया फिल्मों में काम किया।

कल्याणजी-आनंदजी

लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल

ऐ शाम की हवाओं, उनसे सलाम कहना

महिला संगीत निर्देशन में सबसे अधिक नाम कमाया है उषा खन्ना ने। वे अब तक ५० से भी अधिक फिल्मों में संगीत दे चुकी हैं, जिनमें अनेक फिल्में हिट हुई हैं। उषा खन्ना संगीत निर्देशिका बनने से पहले वस्तुतः पार्श्व गायिका बनना चाहती थीं। पार्श्व गायन की दिशा में सफल होने के लिए उन्होंने निरंतर अभ्यास किए और क्लासिकल तथा सुगम संगीत दोनों सीखे। पार्श्व गायन के क्षेत्र में अवसर भी मिला। मेट्रो थिएटर में मरफी वालों की ओर से नए पार्श्व गायक- गायिकाओं की खोज के लिए एक विशेष प्रतियोगिता आयोजित की गई थी। उसी प्रतियोगिता से महेन्द्र कपूर और आरती मुखर्जी का नाम चमका था। उषा खन्ना इस प्रतियोगिता में भाग लेना चाहती थीं। फार्म भरने की तारीख निकल चुकी थी। फिर भी भाग-दौड़ करके उन्होंने किसी तरह अपना फार्म स्वीकार करवा लिया। मगर दुर्भाग्य से यह रहा कि अपना नाम पुकारे जाने के पहले ही वह नर्वस हो गई और प्रतियोगिता मंच पर गला रुँध गया। वह उस प्रतियोगिता में पास न हो सकीं और इस तरह पार्श्व गायिका बनने का सपना चूर-चूर हो गया। निराशा के उन क्षणों में गीतकार इंदीवर ने हौसला बढ़ाया और उन्हें निर्देश दिया कि वे संगीत निर्देशक बनने की कोशिश करें। इन्दीवर ने इस तरह का सुझाव ही नहीं दिया, बल्कि उन्हें एस. मुखर्जी के पास ले गए, जो नई-नई प्रतिभाओं को आगे लाने के लिए विख्यात रहे हैं। एस. मुखर्जी ने उषा खन्ना द्वारा तैयार की गई धुनों को ध्यान से सुना। धुनें उन्हें पसंद आ गईं और उन्होंने नई फिल्म 'दिल देके देखो' के संगीत निर्देशन का उत्तरदायित्व उषाजी को सौंप दिया। इस तरह निराशा में आशा की किरण चमक उठी और उषा खन्ना पार्श्व गायिका बनने के बाद संगीत निर्देशिका बन गईं। *ब.जो.

इर संगीतकार के अपने कुछ प्रिय सुर होते हैं। अपना कोई प्रिय साज होता है। कभी कोई किसी प्रिय ताल पर ही डोलता मिलता है, तो कोई-कोई किसी खास लय में ही आठों पहर डूबा मिलता है। ऐसे संगीतकारों में एक नौशाद भी हैं। एक 'घूँघट नहीं खोलूँगी सैयाँ तोरे आगे' बनाकर उन्हें संतोष कहाँ। उसी गीत से वे चंद खूबसूरत से सुरों के टुकड़े उठा- उठाकर अपने दर्जन भर गीतों में इस्तेमाल करते आए होंगे जरूर। 'इश्क दीवाना' (संघर्ष: रफी) सुनते समय बराबर 'टकरा गया तुमसे दिल ही तो है' (आन: रफी) के सुरों की याद आती रहती है। 'इस दुनिया में ऐ दिलवालों' (दिल्लगी: रफी) के सुर 'भूलने वाले याद न आ' (अनोखी अदा: मुकेश) के सुरों के साथ घुल-मिल जाते हैं। 'दिल के टुकड़े हुए और जिगर लुट गया' (सन ऑफ इंडिया) 'आज है प्यार का फैसला ऐ सनम' (लीडर) और 'दिल की महफिल सजी है चले आइए' (साज और आवाज) इन तीनों गीतों को नौशाद एक ही धुन के धागे में पिरो लेते हैं।

लेकिन यह चोरी नहीं कहलाएगी। यह अपने ही निर्माण को, अपनी ही कलाकृति को जरा अलग अंदाज में सजा सँवारकर पेश करने वाली बात है। और बड़े-बड़े संगीतकारों को अपनी ही किसी तर्ज से कुछ इस कदर प्यार हो गया कि उसे बार-बार दुहराने का मोह वे संवरण नहीं कर पाए होंगे। उस पर भी अनिल विश्वास जैसे संगीतकार जब दुहराने के मोह में पड़ जाते हैं, तो वे एक लुभावना दुहराव ही पेश कर जाते हैं। १९४८ में अनिल विश्वास ने फिल्म 'गजरे' के लिए गीत बनाया 'घर यहाँ बसाने आए थे' लता की सुरीली आवाज ने इस लुभावनी तर्ज में चार चाँद लगा दिए। फिर भी ताज्जुब की बात थी कि इस गीत को लोग नजरअंदाज कर गए। मगर इतनी सुंदर तर्ज बेकार चली जाए, यह वे नहीं चाहते थे। लिहाजा उन्होंने इसी तर्ज को थोड़ा-सा बदलकर दुबारा पेश किया और लीजिए 'तराना' के लिए तलत और लता का गाया गीत 'सीने में सुलगते हैं अरमाँ' सदा के लिए अमर हो गया, ताजगी लेकर गूँजने लगा। एक ही तर्ज को जरा सा बदलकर उसे एक नया ही 'मेलोडी' का रूप देने में अनिल विश्वास की जो कुशलता हासिल है, वह सचमुच कमाल की चीज है। 'ऐ दिल मेरी वफा में कोई असर नहीं है' (अनोखा प्यार: इला नाझरथ-लता) और 'तेरा खयाल दिल से मिटाया नहीं अभी' (दोराहा: गायक तलत) अनिल विश्वास के ये दोनों गीत जरा ध्यान से सुनिए तो पता चलेगा कि इनकी आरंभिक धुन एक जैसी है।

शंकर-जयकिशन 'आँखों-आँखों में' (औरत) की धुन को दोबारा 'जानवर' के गीत के लिए इस्तेमाल करते हैं। सी. रामचंद्र ने 'आ गई है इश्क पे बहार' (साकी: रफी-लता) को 'लो इश्क मुस्कराया' (लुटेरा: लता) में दुहराते हैं और ओ.पी. नय्यर का 'छोटा सा बालमा' दुबारा 'जादूगर साँवरिया' का भेस बनाकर आ ही जाता है। कुछ लोकप्रिय धुनें ऐसी भी होती हैं, जिन्हें सुनकर जरा भी शक नहीं होता कि इन्हें पहले भी कभी सुना तो नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब हरगिज नहीं है कि वे सब मौलिक हैं। दरअसल ये धुनें हमें इसलिए मौलिक और नई लगती हैं, क्योंकि हमने वे मूल पश्चिमी धुनें सुनीं ही नहीं होती हैं, जिनकी नकल इन तथाकथित 'मौलिक' धुनों में उतारी गई होती हैं। 'मंजिल वही है प्यार के राही बदल गए' (कठपुतली: सुबीर सेन, संगीतकार शंकर-जयकिशन) का उद्गम स्थल किसी पश्चिमी धुन में है यह जानकारी मित्रों ने दी।

'अंटम फंटम छोड़ दो बाबू' (हम सब चोर हैं: ओ.पी. नय्यर) 'इस महफिल में आना बचके' (काफी हाऊस: रोशन), 'ऐ दिल है मुश्किल' (सी.आई.डी.: ओ.पी. नय्यर), 'लहरों से लहर' (छबीली: स्नेहल भाटकर) आदि कई-कई तर्जे विदेशी हैं, यह मालूम हुआ। अज्ञान का अंधकार मिट गया। मगर साथ-साथ अज्ञान का वह सुख भी तो चला गया।

एक संगीतकार एक ही समय में एक साथ तीस-तीस फिल्मों में संगीत कैसे दे पाता है? हर रोज एक नया गीत रिकॉर्ड करने वाले संगीतकार इतनी धुनें आखिर बनाते कब हैं? उनके दिलों दिमाग में ये ढेरों धुनें आती कहाँ से हैं? मेरी ये सारी पहेलियाँ सुलझ गई हैं।

(माधुरी से साभार)

रवीन्द्र जैन: टू-इन-वन

● रणधीर कपूर

पंद्रह फरवरी १९८३ को मेरे जन्म दिन पर पिताश्री राजकपूर ने मुझसे कहा कि रात पार्टी पर रवीन्द्र जैन मेरे घर आएँगे। मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा क्योंकि संगीत की महफिलें हमारे चैम्बूर वाले मकान में होती आई हैं। मेरे घर का वातावरण पश्चिमी है। ताबड़तोड़ गाव-तकिए और गादी का इंतजाम किया। मन ही मन मुझे कोफ्त हो रही थी कि शराब शबाब की पार्टी में एक शाकाहारी देशी गवैया।

रात ९ बजे रवीन्द्र जैन अपने साजिंदों सहित

मेरे घर आए। पिताश्री तो रात ग्यारह के पहले नहीं आते, अतः दो घंटे उनसे क्या बात करूँ। रवीन्द्रजी ने थोड़ी सी औपचारिक बातें की और घबराहट को ताड़ गए। आँख से उन्हें साफ दिखाई नहीं देता परंतु कोई छठी इंद्री: उन्हें सामने वाले के मन की बात बता देती है। रवीन्द्रजी ने कुछ लतीफे सुनाए। वे भोजन में जितने शाकाहारी हैं, उनके लतीफे उतने ही नॉन-वेजीटेरियन हैं। मुझे कुछ राहत हुई।

राज साहब के आने के बाद महफिल सजी और समय के साथ मेरी सारी शंकाएँ निर्मूल साबित हुई। आश्चर्य उस समय हुआ जब राज जी ने मुझसे कहा कि मैं ग्यारह हजार रुपए रवीन्द्रजी को "राम तेरी गंगा" की पेशगी दूँ। उसी समय रवीन्द्रजी संगीतकार घोषित हुए और शगुन मेरे हाथ से दिया था, अतः मैं निर्माता बना।

राज साहब की मृत्यु के बाद "हिना" के निर्देशन की जवाबदारी मेरी हुई। मैंने शंकर-जयकिशन, राहुल देव बर्मन और लक्ष्मी-प्यारे के साथ काम किया है और मेरा रुझान 'सिम्फनी' जैसे आर्केस्ट्राइ-जेशन की तरफ है। संगीत के मामले में आर. के. की कुछ परम्पराएँ है। 'हिना' की सारी धुनें और मुखड़े राज साहब बना गए थे। मैं जब चौथे गाने की तैयारी के लिए रवीन्द्रजी के घर गया तो मेरे दिमाग में सिचुएशन के अनुरून कुछ ऐसे संगीत के टुकड़े थे जिन्हें मैं पार्श्व संगीत के समय न रिकॉर्ड करते हुए, उन्हें गाने का हिस्सा बनाना चाहता था। रवीन्द्रजी क साथ बातचीत की और मुझे खुशी है कि उन्होंने मेरी बात को समझकर सभी आवश्यक परिवर्तन कर दिए। मूल कल्पना में लताजी का केवल आलाप था और मैं उनके दो अंतरे भी जोड़ना चाहता था।

राज साहब रवीन्द्रजी को दादू कहकर पुकारते थे। पहले पंद्रह मिनट में ही मैं समझ गया कि रवीन्द्रजी दादू क्यों हैं। शास्त्रीय संगीत पर उनकी पकड़ अद्‌भुत है और धुनों का ऐसा खजाना है कि दिमाग हैरत में पड़ जाता है। दादू की सबसे बड़ी शक्ति यह है कि वे जितने अच्छे संगीतकार हैं, उससे कहीं बड़े गीतकार हैं। हर गीत के लिए वे १२ से कम अंतरे तैयार नहीं करते और उनमें से तीन चुनना बड़ा कठिन काम है। मजे की बात यह है कि रिकॉर्डिंग रूम में भी ५-६ नए अंतरे ले आते हैं और शब्द इतने सटीक और मधुर होते हैं कि उन्हें नहीं रिकॉर्ड करने का अफसोस बहुत होता है। मैं उन्हें "टू-इन-वन" इसीलिए कहता हूँ कि कवि और संगीतकार का ऐसा अनोखा संगम पहले कभी नहीं देखा। दादू एक आशु कवि हैं—जैसे ही सिचुएशन बताओ पाँच अंतरे फटाफट सुना देते हैं।

दादू एक सृजनशील कलाकार हैं और उनकी गति तथा काम करने की क्षमता मुझे हैरान करती है। शायद वे दो घंटे ही सोते हैं। आमतौर पर सिचुएशन सुनने के बाद धुन बनाने में समय लगता है और फिर गीतकार भी अपना वक्त लेता है। कई बार संगीतकार और गीतकार का झगड़ा भी होता है।

दादू शास्त्रीय संगीत के ज्ञाता हैं, शास्त्र भी उन्हें कंठस्थ हैं और रिकॉर्डिंग की तकनीक में भी पारंगत हैं। हिंदी के पुराने कवियों के साथ उर्दू के शायरों के कलाम भी उन्हें जबानी याद हैं। दृष्टि नहीं होते हुए भी दादू की दृश्यावली की कल्पना शक्ति बहुत प्रखर है। इन सारी बातों को वे अपने मानवीय कम्प्यूटर में डालते हैं और फिल्म के मूड के अनुरूप सही चीज मिनटों में तैयार हो जाती है।

"हिना" के आठ गानों के अलग-अलग मूड और रंग हैं। ये एक अंतरराष्ट्रीय प्रेम कथा है और बहुत बड़े कैनवास की फिल्म है। अब तक ६ गाने रिकॉर्ड हो चुके हैं और दोनों देशों का वातावरण बनाने में संगीत सक्षम है। यह अजीब बात है कि दादू जैसे परम गुनी व्यक्ति की प्रतिभा का पूरा प्रयोग आज तक नहीं हुआ है।

बदरिया बरस गई उस पार

बंबई आने के पहले बुलो सी. रानी ने लाहौर में कुछ दिन संगीतकार के रूप में काम तलाश करने की कोशिश की थी। बंबई आने के बाद वे रणजीत में खेमचंद प्रकाश के सहायक के रूप में काम करने लगी। 'पगली दुनिया' (१९४४) उनकी पहली फिल्म थी। 'मूर्ति' (१९४५), उनकी पहली सफल फिल्म थी। इस फिल्म में मुकेश, हमीदाबानो और खुर्शीद के गाए हुए सभी गीत लोकप्रिय हुए, जिनमें 'बदरिया बरस गई उस पार' आज भी लोकप्रिय है। केदार शर्मा की 'चाँद-चकोरी' के गीत अमीर बाई कर्नाटकी ने गाए थे। राजपुतानी में मुकेश-हमीदा का युगल गीत 'जा परबाने जा' विशेष रूप से पसंद किया गया था।

केदार शर्मा की 'जोगन' उनकी सबसे प्रसिद्ध फिल्म है। दिलीप कुमार-नर्गिस की इस फिल्म में तलत महमूद का गाया गीत 'सुंदरता के सभी शिकारी' उनके प्रारंभिक सफल गीतों में से है। लाखों में एक (१९४७) का संगीत उन्होंने हंसराज बहल के साथ दिया था। जिस तरह न्यू थिएटर्स के बंद होने के बाद बोराल और तिमिरबरन जैसे संगीतकार गुमनाम हो गए उसी तरह रणजीत के अस्त होते ही बुलो सी. रानी की प्रतिभा को भी ग्रहण लग गया। इसके बाद ज्यादातर उन्होंने स्टंट फिल्मों में ही संगीत दिया। उनकी अंतिम फिल्म 'सुनहरे कदम' (१९६६) में 'माँगने से जो मौत मिल जाती' गीत से पता चलता है कि उनकी प्रतिभा पूरी तरह चुकी नहीं थी। बुलो सी. रानी ने कई फिल्मों में गाया भी है। जीवन साथी में उन्होंने अशोक कुमार को प्लेबैक दिया था। 'वफा' के दो बढ़िया गीतों, 'अरमान भरा दिल टूट गया' (मुकेश-लता) और 'बरबाद मुकद्दर ने' (लता) की धुन उन्हों ने बनाई थी। इन फिल्मों का आर्केस्ट्रेशन और गायकी दोनों लाजवाब है।

प्रमुख फिल्में: पगली दुनिया (१९४४), चाँद चकोरी, मूर्ति, प्रभु का घर, प्रीत (१९४५), धरती, राजपुतानी, श्रवण कुमार (१९४६), कौन हमारा, लाखों में एक, पिया घर आजा, वो जमाना (१९४७), अंजुमन, गुण संदरी, मिट्टी के खिलौने (१९४८), भूल भुलैया, गरीबी, नजारे (१९४९), जोगन, मगरुर, वफा (१९५०), इज्जत (१९५१), औरत तेरी यही कहानी, बिल्व मंगल, (१९५४), मधुर मिलन, वीर राजपुतानी, शिकार हसीना (१९५५), अलहिलाल, (१९५८), टिन-टिन-टिन (१९५९), अब्दुल्ला (१९६०), हकदार (१९६४), सन ऑफ हातिमताई (१९६५), जादू, सुनहरे कदम, रसिया (१९६६)।

चली-चली रे पतंग

चित्रगुप्त प्रकाश में भले ही १९५० के बाद आए पर वे ठेठ १९४६ से फिल्मों में संगीत दे रहे थे। उनकी प्रारंभिक फिल्में महत्वहीन थीं। ५२ में 'सिंदबाद दी सेलर' में उन्होंने 'अदा से झूमते हुए' और 'जिंदगी सँवर गई' जैसी दिल को छू लेने वाली धुनें दीं। 'अलीबाबा चालीस चोर' (५४) में उन्होंने एस. एन. त्रिपाठी के साथ मिलकर धुनें बनाई थीं। ए.वी.एम. की फिल्म भाभी (५७) से चित्रगुप्त एकाएक चोटी पर पहुँच गए। 'चल उड़ जा रे पंछी' तथा 'चली चली रे पतंग' जैसी धुनें देने के बाद भी उन्हें इस वर्ग की फिल्में बाद में नहीं मिली यह बड़े दुःख की बात थी। इसके बावजूद उन्होंने 'तीसरी गली' 'कंगन', 'कल हमारा है', 'गेस्ट हाउस', 'बरखा' और 'पतंग' जैसी बी और सी ग्रेड की फिल्मों में भी बढ़िया संगीत दिया। साठ के दशक में आई उनकी उल्लेखनीय फिल्में 'ऊँचे लोग', 'आकाश दीप' और 'वासना' थीं, जबक (६१) का गीत 'तेरी दुनिया से दूर चले हो के मजबूर' बहुत लोकप्रिय हुआ था।

प्रमुख फिल्में: जादुई रतन (४७), जयहिंद (४८), दिल्ली एक्सप्रेस, जोकर, शौकीन (४९), हमारा घर (५०), हमारी शान (५१), सिंदबाद दी सेलर (५२), नया रास्ता, नागपंचमी (५३), अलीबाबा चालीस चोर, टूटे खिलौने, शिवरात्रि, सल्तनत (५४), नवरात्रि, महासती सावित्री, राजकन्या, राज दरबार, श्रीकृष्ण भक्ति, श्री गणेश विवाह, शिव भक्त, सती मदालसा (५५), बसंत पंचमी, बसरे की हूर (५६), नीलमणि, पवन पुत्र हनुमान, लक्ष्मी पूजा, साक्षी गोपाल (५७), चालबाज, जिम्बो, तीसरी गली, माया बाजार, सन ऑफ सिंदबाद, सिंदबाद की बेटी (५८), कल हमारा है, काली टोपी लाल रुमाल, कंगन, गेस्ट हाउस, बरखा (५९), गेम्बलर, चाँद मेरे आ जा, नाचे नागिन बाजे बीन, माँ बाप (६०), अपलम-चपलम, हम मतवाले नौजवाँ, ऑपेरा हाउस, तेल मालिश बूट पालिश, जबक (६१), आँख मिचौली, बेजुबान, बर्मा रोड, मैं चुप रहूँगी, मैं शादी करने चला (६२), घर बसा के देखो, काबली खान (६३), बागी, गंगा की लहरें, मैं भी लड़की हूँ, मेरा कसूर क्या है (६४), आकाश दीप, ऊँचे लोग (६५), औलाद, वासना (६८), कभी धूप कभी छाँव, संसार (७१), जय महालक्ष्मी माँ, तूफान और बिजली (७६), गायत्री महिमा (७७)।

◆◆◆

चले जा जहाँ प्यार मिले

सुमन कल्याणपुर

सरगम के अथाह सागर में डूबकर गीतों के सच्चे मोती तलाशने की धुन जिन्हें सवार रही है, वे गायिका **सुमन कल्याणपुर** के गीतों की कद्र जानते हैं। अल्हड़ शोखी में डूबा चंचल गीत—अहा-अहा-आ ये सुहाना सफर। प्यार की निश्चल गहराइयों से उभरता गीत—चले जा चले जा चले जा, जहाँ प्यार मिले। पश्चिमी धुन पर उछलता-कूदता शरारती गीत—आजकल तेरे-मेरे प्यार के चर्चे हर जबान पर। या फिर शास्त्रीय गीत—अजहूँ न आए बालमा सावन बीता जाए। इन तमाम गीतों की गायिका है सुमन। जो शादी के पहले सुमन हेमाड़ी नाम से गाती थी।

सुमन का जन्म २८ जनवरी १९३७ को बंगाल के ढाका में हुआ। १९४३ में उनका परिवार बंबई आ गया। संगीत की शिक्षा बंबई में पाई। एक कार्यक्रम में गा रही थी, जहाँ तलत महमूद उपस्थित थे। उन्होंने नई आवाज की एच.एम.वी. कंपनी से सिफारिश की। मराठी भावगीत सुमन ने गाए, जो बहुत लोकप्रिय हुए। उनकी पहली हिंदी फिल्म 'मंगू' है, जिसके संगीतकार मोहम्मद शफी थे। हिंदी के विशाल आँगन में कदम रखते ही उसके सामने यह समस्या खड़ी हो गई कि आवाज हूबहू लता मंगेशकर से मिलती थी। इसलिए बड़े निर्माताओं ने कन्नी काट ली। लता जैसी लंबी तानें लेना भी सुमन के लिए संभव नहीं हुआ। इसके बावजूद लता विरोधी कैम्प के निर्माताओं ने उन्हें लिया। दिल एक मंदिर, शगुन, दिल ही तो है, जहाँआरा, साँझ और सबेरा, पाकीजा, बात एक रात की, नूरजहाँ उनकी उल्लेखनीय फिल्में हैं। बंबई के ही व्यवसायी कल्याणपुर से शादी रचाकर वह सुमन कल्याणपुर बनी। विदेशों में रंगमंच के कार्यक्रमों में आज भी भाग लेती हैं। एक टीस सुमन के दिल में काँटा बनकर चुभती है कि काश उसकी आवाज लता जैसी न होती।

प्रमुख गीत: * जूही की कली मेरी लाड़ली (दिल एक मंदिर) * न तुम हमें जानो (बात एक रात की) * कोई पुकारे धीरे (मंगू)।

◆◆◆

सलामे हसरत कुबूल कर लो

सुधा मल्होत्रा

एक पार्टी में **सुधा मल्होत्रा** गा रही थीं, तो उन्हें संगीतकार अनिल विश्वास सुन रहे थे। उन्होंने फिल्म 'आरजू' में सुधा को मौका दिया। संगीतकार पन्नालाल घोष ने 'आंदोलन' और 'वंदे मातरम्' फिल्मों में मन्नाडे एवं पारूल घोष के साथ गवाया। दिले नादान फिल्म से उन्हें बेहतर ब्रेक मिला। इसके बाद गोलकुंडा का कैदी, देख कबीरा रोया, बाबर, भाई-बहन ने उनका नाम चमकाया। सुधा के साथ ट्रेजेडी यह हुई कि उनसे अँधेर नगरी चौपट राजा, अब दिल्ली दूर नहीं, जीवन साथी तथा मासूम जैसी फिल्मों में बच्चों के गीत या माँ की ममता के गीत अधिक गवाकर उन्हें 'टाइप्ड' कर दिया गया। १९६५ के बाद तो उनकी आवाज गायब ही हो गई। वे बेगम अख्तर, नूरजहाँ तथा लताजी को अपनी आराध्य मानती हैं। नूरजहाँ की आवाज की कॉपी करना और गीतों में उदासी भरने का उनका स्वभाव रहा है।

◆◆◆

सुरेश वाडकर

मुकेश, रफी और किशोर कुमार की मृत्यु से पुरुष पार्श्वगायकों का एकाएक जो अकाल हो गया, उसकी एक सीमा तक पूर्ति गायक सुरेश वाडकर करते हैं। उन्होंने संगीत को साधना मानकर बरसों तक पं. जियालाल बसंत के पास रहकर सीखा है। शास्त्रीय-संगीत का मजबूत आधार उनकी सबसे बड़ी ताकत है। जिस प्रकार क्रिकेट में मिडिल ऑर्डर होता है, संगीत की दुनिया में सुरेश सशक्त मध्यक्रम के गायक हैं। सभी नायकों को उनकी आवाज उपयुक्त बैठती है। उनकी यह निजी विशेषता है कि वे मुश्किल गीतों को भी आसानी के साथ गा लेते हैं। ७ अगस्त १९५५ को बंबई में जन्मे सुरेश वाडकर ने १९७७ में सुरसिंगार संसद में मदनमोहन अवार्ड प्राप्त किया था। निर्णायकों में रवीन्द्र जैन थे, जिन्होंने फिल्म पहेली में उनसे गवाया-दृष्टि पड़े टापुर टापुर। फिल्म 'गमन' से श्रोता उन्हें जानने लगे-सीने में जलन। इस समय वे प्रथम श्रेणी के पार्श्व गायक हैं।

◆◆◆

३० नवंबर १९३६ को दिल्ली में जन्मी सुधा का बचपन लाहौर, भोपाल और फिरोजपुर में गुजरा। आगरा वि.वि. से वे संगीत स्नातक हैं। उस्ताद अब्दुल रहमान खाँ से उन्होंने शास्त्रीय संगीत विधिवत् सीखा है। लक्ष्मण प्रसाद उनके गुरु थे। **प्रमुख गीत:** * ना वो हमारे (दिले नादान) * साजन चले गए (गौहर) * सलामे हसरत (बाबर) * जाएँगे जहाँ से (भाई-बहन)।

ले आए नेशनल
जापान की खूबियाँ

डायनोरा®

टेलिविजन

अधिकृत विक्रेता : **सेलमोर इलेक्ट्रॉनिक्स** 42, एम.टी.एच. कम्पाउण्ड, इन्दौर फोन : (ऑ.) 37769 (नि.) 21199

श्रीजी

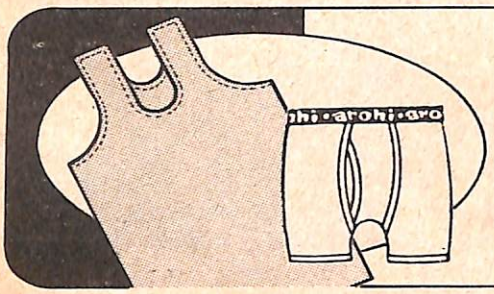

सर्वश्रेष्ठ!

आरोही®

बनियान, अण्डरवियर

सभी प्रमुख स्टोर्स पर उपलब्ध!

निर्माता : **आरोही टेक्सटाइल्स** कॉटन स्ट्रीट, कलकत्ता-7

श्रीजी

TOYO COOLERS

COOLS Your HOME Perfectly

- कूलिंग सिस्टमस् के इन्जीनियरों द्वारा डिजाइन किया हुआ एकमात्र कूलर.
- कभी न फेल होने वाला वाटर लेवल इंडिकेटर.
- कुशल व अनुभवी टेक्नीशियन्स द्वारा फ्री मेंटेनेंस सर्विस.

TOYO
ELECTRONICS
46, M.T.H. Compound,
Indore
व्यापारिक पूछताछ आमंत्रित है।

श्रीजी

DEFATTED SOY FLOUR
WORLD'S RICHEST VEGETABLE PROTEIN SOURCE
CAN BE USED FOR PREPARING
BREAD, BISCUITS, CHOCLATES, PAKODA, DOSA, CHAKLY
IDLY, VADA, CHAPPATIES

Vippy Solvex Products Ltd.

28, Industrial Area.
A.B. Road,
DEWAS-455001.

Telex: 0732-201 • Gram: VEESPEE • PH: 3251/3252

सरगम के सफर के बहु-आयामी सोपान

फिल्म संगीत का गौरवशाली इतिहास

● भास्कर चंदावरकर

भारतीय समाज एवं संस्कृति में मनोरंजन की आधारशिला गीत, संगीत एवं नृत्य की नींव पर ही टिकी है। संस्कृत साहित्य के शास्त्रीय नाटकों से लेकर प्रादेशिक लोक नाट्य शैली के मंच प्रधान नाटकों में गीत और संगीत की महत्वपूर्ण भूमिका एक ऐतिहासिक तथ्य है। इसी परंपरा को बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में लोकप्रिय पारसी थिएटर में अपनाया गया और फिर भारतीय फिल्म के इतिहास के पहले पृष्ठ से लेकर अब तक की गाथा गीत-संगीत के ताने-बाने से ही बुनी गई।

भारतीय फिल्मों में गीत और संगीत को जितना महत्वपूर्ण स्थान मिला है उतना विश्व के किसी भी अन्य देश के फिल्मोद्योग में नहीं मिल पाया। इस सिलसिले में सबसे दिलचस्प बात गीत-संगीत के महत्व की व्यापकता और स्थायित्व है। यह महत्व किसी एक भाषा की फिल्मों तक ही सीमित नहीं रहा। हिंदी के साथ-साथ सभी प्रादेशिक भाषा की फिल्मों में भी गीत और संगीत अभिन्न अंग के रूप में स्वीकृत एवं मान्य किए गए हैं। कई निर्माताओं ने प्रयोग के तौर पर बिना 'गाने' की फिल्में बनाई किंतु ऐसे सारे प्रयोग अंततः असफल ही सिद्ध हुए। इसके विपरीत वे फिल्में जो हर दृष्टि से कमजोर थीं, किंतु जिनका गीत एवं संगीत पक्ष सशक्त था, सफल एवं लोकप्रिय हो गई।

भारतीय फिल्मों में गीत-संगीत के प्रभाव का दौर मूक फिल्मों के युग से ही शुरू हो गया था। मूक फिल्मों का प्रदर्शन जब सिनेमाघरों में होता था तब संगीतकारों की टोली हॉल में स्टेज पर उपस्थित रहकर फिल्म के मूड के अनुसार गीत-गजल प्रस्तुत करती थी। हारमोनियम एवं तबला बजाने वाले उस्तादों को फिल्मी प्रसंग के अनुसार रसिया और गजल आदि प्रस्तुत करने में महारत हासिल थी। फिल्म निर्माताओं एवं प्रदर्शकों द्वारा ऐसा करने का उद्देश्य दो तरफा था अपनी फिल्मों को गीत-संगीतमय बनाकर मनोरंजन के तत्व में वृद्धि करना पहला उद्देश्य था एवं संगीत प्रेमियों को उस समय लोकप्रिय 'महफिल' संस्कृति से विरक्त कर सिनेमाघरों में ही 'महफिल' का वातावरण बनाना दूसरा उद्देश्य था। इस प्रयोग से तीसरा व्यावसायिक लाभ यह हुआ कि दर्शकों को सिनेमाघरों में अपनी प्रादेशिक संस्कृति से जुड़े संगीत का आनंद मिलने लगा।

इस दौरान विकसित हुए सिने संगीत का स्वरूप शास्त्रीय राग-रागनियों पर आधारित था। लोकप्रिय एवं प्रचलित गीत एवं गजल उपशास्त्रीय बंदिशों में प्रस्तुत किए जाते थे। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में पुनरुत्थान का भी यही काल था एवं इस दिशा में वी. एन. भातखंडे तथा विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के प्रयास काफी उल्लेखनीय रहे। शास्त्रीय संगीत में पुनरुत्थान का प्रभाव फिल्मी संगीत में भी परिलक्षित हुआ। भारतीय संगीत पर पश्चिमी प्रभाव का असर भी इन्हीं दिनों सिने संगीत के माध्यम से प्रकट होने लगा। विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारतीय एवं पश्चिमी संगीत शैली को मिश्रित कर एक नई शैली विकसित की। रवीन्द्र संगीत के नाम से विख्यात इस शैली में कवि ने अपनी कई कविताओं को संगीतबद्ध किया। रवीन्द्र संगीत का प्रभाव भारतीय सिने संगीत पर भी व्यापक रूप से हुआ तथा न्यू थिएटर्स द्वारा निर्मित फिल्मों के पंकज मलिक, के. सी. डे द्वारा गाए गए गीतों में रवीन्द्र संगीत का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है।

इस युग में संगीत और गीत आम जनता या

***भा**रतीय सिनेमा में संगीत की परम्परा 'मूक-युग' से चली आ रही है। उस जमाने में शास्त्रीय संगीतकार अपने अनुशासन की सीमाओं में रहते हुए परदे पर चलती-फिरती परछाइयों के साथ 'एडजस्ट' करते थे। बीस के दशक में किसी भी योरपीय फिल्म के साथ गजल-हारमोनियम-तबला, वायलिन-मृदंगम् या पियानो और क्लेरिनेट की संगत आम बात थी। जब सिनेमा बोलने लगा तो थिएटर के गीत दौड़ते हुए सिनेमा के परदे पर चले आए। कलाकारों से ज्यादा भीड़ गानों की होने लगी। 'इन्द्रसभा' फिल्म में तो ६९ गाने थे। तीस और चालीस के दशक में गीत तथा संगीत ने फिल्मों में अपना अनिवार्य और महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। इस दौर में देश के कोने-कोने से न सिर्फ गायक-गायिका या संगीतकार फिल्माकाश के नीचे एकत्रित हुए, बल्कि वे अपने साथ अपने वतन की माटी की महक और लोकधुनों को भी लेकर आए। १९५० से १९७५ तक का समय भारतीय सिनेमा संगीत का 'स्वर्णकाल' माना जाता है। कुन्दनलाल सहगल, काननबाला, नूरजहाँ, पंकज मलिक, सुरैया, लता मंगेशकर, आशा भोसले, गीता दत्त, मोहम्मद रफी, मुकेश, मन्नाडे, तलत महमूद, किशोर कुमार की जादूभरी आवाज को गुलाम हैदर, मदन मोहन, हेमंत कुमार, खय्याम, जयदेव, नौशाद, सलिल चौधरी, अनिल विश्वास, शंकर-जयकिशन एवं सचिन देव बर्मन जैसे मीठी धुनों के सर्जक संगीतकारों का कोमल स्पर्श मिला, तो गीत-संगीत की सरिता में नहाकर श्रोतागण अपने को पवित्र एवं संस्कारित करने लगे। प्रसिद्ध संगीतकार भास्कर चंदावरकर ने भारतीय संगीत के सफर के तमाम पक्षों का बारीकी से अध्ययन कर उसके इतिहास, विकास और उत्थान-पतन की दिलचस्प दास्तान को लिपिबद्ध किया है, जिसे विशेष रूप से इस विशेषांक में संयोजित किया गया है।*

साधारण लोगों की रुचि के हिसाब से नहीं रचे जाते थे। चूँकि सिनेमाघर चुनिन्दा शहरी इलाकों में ही सीमित थे इसलिए गीत-संगीत भी चुनिन्दा भद्र समाज के रसिकों एवं पारखियों के लिए ही बनाए जाते थे। इस नजरिए में बदलाव तब आया जब ग्रामोफोन रेकॉर्ड और मशीन आम लोगों की पहुँच में आई। रईसों और जमींदारों के जरिए ठेठ देहाती इलाकों में भी ठुमरी और ख्याल गूँजने लगे।

दक्षिण भारतीय ग्रामोफोन कंपनी के मालिक ए. वी. एम. चेट्टियार जब फिल्म निर्माण के व्यवसाय से जुड़े तब उन्होंने संगीत को व्यावसायिक रूप देकर संगीत आधारित फिल्मों का निर्माण कर सफलता पाने का नुस्खा खोज निकाला। इस फार्मूले को गारंटीड बनाने का काम **मैलोडी ऑफ लव** ने किया। यूनिवर्सल पिक्चर्स द्वारा १९२९ में प्रदर्शित की गई यह पहली बोलती फिल्म थी। इस संगीतमय रोमांटिक फिल्म ने भारतीय फिल्म निर्माताओं को व्यावसायिक सफलता का नया बेजोड़ गुर सिखाया। दो वर्ष बाद जब पहली भारतीय बोलती फिल्म आलमआरा बनी, तब से अब तक 'मैलोडी ऑफ लव' या लव ऑफ मैलोडी ही भारतीय संगीत के दिशा निर्देशक बने हुए हैं।

बंगाल और महाराष्ट्र में शास्त्रीय संगीत एवं रंगमंच के संगीत पर किए जाने वाले प्रयोगों का प्रभाव भी उस दौरान बनी फिल्मों के संगीत पर पड़ा। हिन्दुस्तानी खयाल संगीत से प्रेरणा पाकर गोविन्द राव टेम्बे एवं रामकृष्ण वजे ने 'नाट्यसंगीत' की रचना की। इन्हीं गोविंद राव टेम्बे ने प्रभात फिल्म द्वारा निर्मित फिल्म **राजा हरिशचंद्र** में हरिशचंद्र की भूमिका अदा की थी। बोलती फिल्मों के पहले तीन वर्षों के गीत एवं संगीत पर पारसी थिएटर, पश्चिम प्रेरित बंगाली संगीत एवं मराठी रंगमंच संगीत का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

जिस दौरान भारतीय मूक फिल्म युग **आवाज** के युग में प्रवेश कर रहा था उसी दौरान स्वाधीनता की भावना भी आंदोलन का रूप ले रही थी। गाँधीजी का नमक सत्याग्रह, सुभाष चंद्र बोस, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल जैसे नेताओं का उदय भारतीय चेतना के जागरण का संकेत दे रहे थे। १९३४ में जब वी. शांताराम अपनी पहली रंगीन फिल्म **सैरन्ध्री** के प्रदर्शन की तैयारी कर रहे थे तब कांग्रेस पार्टी विभाजन के कगार पर खड़ी थी। अच्युत पटवर्धन, जयप्रकाश नारायण जैसे समाजवादी युवा नेता किसी समझौते के लिए तैयार नहीं थे। इन सभी राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तनों का असर तत्कालीन फिल्मों के गीत और संगीत में देखा जा सकता है। उस दौरान कलकत्ते में **चंडीदास, पूरनभगत** और **देवदास** का निर्माण हुआ था। भाग्यचक्र (धूपछांव) के साथ ही पार्श्व संगीत का युग भी शुरू हुआ। हिमांशु राय एवं देविका रानी ने 'बाम्बे टॉकिज' की स्थापना की। पूना की प्रभात ने अमर ज्योति का निर्माण किया। तमिल में बनी 'वसंत सेना' भी उस युग की सफलतम फिल्म है। सभी फिल्मों के संगीत में उन तीनों प्रभावों को देखा जा सकता है, जिनका जिक्र पूर्व में किया जा चुका है। पारंपरिक संगीत शैली, पश्चिमी प्रभाव तथा रंगमंच या लोकसंगीत इन तीनों तत्वों का महत्व बढ़ने का कारण भारत की बहुभाषी जनता है।

तीसरे दशक के दौरान फिल्म संगीत की लोकप्रियता को दृढ़ आधार मिलना शुरू हो गया। ग्रामोफोन के बढ़ते प्रचलन एवं रेडियो ब्राडकास्टिंग की सुविधा ने श्रोताओं की संख्या में तेजी से इजाफा किया। नए फिल्मी गानों की तर्ज पर श्रोताओं की प्रतिक्रियाओं का शीघ्र पता लगने लगा। नवीन तर्ज एवं गानों के कारण फिल्म की 'रिपीट वेल्यू' बढ़ी। जब दर्शक फिल्म को एक बार देख चुकने के बाद भी सिर्फ 'गाने' सुनने के लिए दुबारा टिकट-खिड़की के सामने खड़े होने लगे, तो निर्माताओं को भी गीत और संगीत में नवीनता लाने के लिए प्रेरणा मिली।

बोलती फिल्मों का निर्माण शुरू होने के बाद से सन १९४० तक के आठ वर्षों में फिल्मी गीतों ने निश्चित आकार पाया। ग्रामोफोन रेकॉर्ड के लिए जरूरी पाबंदियों का पालन करते हुए लगभग तीन मिनट की अवधि में ही एक गाना समाप्त हो जाता था। इसके पहले गानों की कोई निश्चित अवधि नहीं थी तथा वे ग्रामोफोन रेकॉर्डिंग की पाबंदियों का निर्वाह भी नहीं करते थे। तमिल फिल्म **शकुन्तला** में जी. एन. बालासुब्रमण्यम एवं एम. एस. **सुब्बालक्ष्मी** ने मुख्य भूमिका अदा करते हुए 'राग' पर आधारित एक लंबा गीत गाया था। इसी प्रकार 'मदनानगा सुंदर रूपं' नामक फिल्म उत्तर भारतीय राग झिंझोटी पर आधारित गीत की अवधि मात्र एक मिनट और तीस सेकंड थी। ऐसे गीत फिल्मों के अलावा स्वतंत्र रूप से सुने नहीं जाते थे किंतु फिर भी लोकप्रिय थे। ऐसे गानों को दुबारा सुनने के लिए लोग बार-बार फिल्म देखते थे। फिल्मी गानों की इस 'रिपीट वेल्यू' का नकदीकरण कराने में तमिल फिल्में काफी आगे रहीं। जी. एन. बी. और एम. एस. के अतिरिक्त दंडपाणि देसीगर, महाराजपुरम मुसीरी और रत्नाबाई बहनों ने लोकप्रिय गायकी में काफी नाम कमाया। 'संगीत लवकुश' नामक तमिल फिल्म में साठ गीत थे। यदि हिंदी फिल्म 'इंद्रसभा' के सत्तर गानों को कीर्तिमान मानें, तो यह सही नहीं है। उसी काल में बनी एक तेलगु फिल्म में एक सैकड़ा से भी अधिक गाने थे। तेलगु फिल्मों में भाषा के कारण कर्नाटक संगीत आसानी से 'रास' आ जाता था। ऐसी ही एक फिल्म 'रायतु बिट्टा' अपने गानों के कारण काफी चर्चित हुई। इस फिल्म की पहली रील में राग देसी' पर आधारित एक गीत था, साढ़े सात मिनट की अवधि वाले इस गीत में संगीत के लिए मुख्यतः थिएटर में इस्तेमाल किए जाने वाले वाद्य यंत्रों का प्रयोग किया गया था। फिल्म का अगला गीत 'आरती' थी। जो राग तिलक कामोद पर

आधारित थी। उत्तर भारतीय राग-रागनियों के अतिरिक्त प्रादेशिक फिल्में, अन्य प्रदेशों का संगीत भी खुलकर अपनाने लगी थी। उस युग की सफलतम तमिल फिल्म 'हरिदास' में बंगाली एवं मराठी धुनों का इस्तेमाल किया गया था। कानन देवी द्वारा गाए गए लोकप्रिय गीत 'लूट लियो मन धीर' की धुन पर त्यागराज की मर्दानी आवाज में गाया गया तमिल गीत बेहद लोकप्रिय हुआ। इस तरह एक भाषा की फिल्मी धुनों का इस्तेमाल दूसरी भाषा की फिल्मों में किए जाने का सिलसिला भी शुरू हुआ।

हिंदी फिल्मी गीतों को नया रूप एवं आकार देने में न्यू थिएटर्स की फिल्म देवदास (१९३५) का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उस फिल्म के साथ कई महत्वपूर्ण हस्तियों के नाम जुड़े हुए थे। रजतपट पर सुनहरी स्वर लहरी के लिए विख्यात **कुंदनलाल सहगल** ने इस फिल्म में नायक की भूमिका अदा की थी। बिमलराय कैमरामेन थे। पी. सी. बरुआ, जमुना और के. सी. डे ने अन्य महत्वपूर्ण भूमिकाएँ अदा की थीं। गीत केदार शर्मा ने लिखे थे और संगीतकार थे तिमिर बरन। बरन् बाबू मैहर के बाबा अलाउद्दीन खाँ के शिष्य तथा अली अकबर खाँ, रविशंकर और पन्नालाल घोष के गुरु भाई थे। इस फिल्म ने गीत-संगीत और रोमांस की जुगलबंदी के युग का सूत्रपात किया। देवदास में सीमित संख्या के वाद्ययंत्र वाले आर्केस्ट्रा का उपयोग किया गया था। वायलिन, क्लारिनेट और बाँसुरी की प्रमुखता थी। 'बालम आय बसो मेरे मन में' इस गीत का मुखड़ा पहले तो पार्वती गाती है और बाद में सहगल की आवाज में पूरा गीत पर्दे पर आता है। इस गीत का विशिष्ट प्रभाव दर्शकों के मन से हट भी नहीं पाता कि दूसरा गीत 'मत भूल मुसाफिर तुझे जाना ही पड़ेगा' शुरू हो जाता है। इस गीत को एक भिखारी की भूमिका करते हुए के. सी. डे ने गाया था। यह गीत फिल्म की कहानी में 'सूत्रधार' का काम भी करता है। कोठे पर हारमोनियम पर गाई गई चार गजलें उस जमाने की तवायफ संस्कृति के प्रभाव को दर्शाती हैं। सहगल द्वारा गाया गीत 'सुख के दुख के दिन अब बीतत नाहीं' राग देस में इसे ठुमरी की तर्ज पर गाया गया है। चंद्रमुखी द्वारा गाई गई ठुमरी 'नहीं आए घनश्याम' तथा अब्दुल करीम खान की 'पिया बिन नहीं आवत चैन' राग पीलू पर आधारित थी।

देवदास ने फिल्म संगीत को ऐतिहासिक मोड़ दिया। फिल्म संगीत में पारंपरिक आधार कायम रखते हुए एक नई लहर की सृष्टि की और एक स्वतंत्र विधा के रूप में फिल्म संगीत की छवि प्रस्तुत की। फिल्म के गीत 'ठुमरी' पर आधारित होते हुए भी 'ठुमरी' नहीं थे। वे पारंपरिक नौटंकी या रंगमंच के संगीत के प्रभाव से मुक्त थे। साथ ही वे पाश्चात्य संगीत के प्रभाव से भी मुक्त थे। इन गीतों में आम दिलों को छू लेने की क्षमता थी तथा संगीत में विपुल आकर्षण शक्ति थी।

उस जमाने की सीमित रेकॉर्डिंग सुविधाएँ देखते हुए ध्वनि का स्तर बहुत ऊँचा था। आर्केस्ट्रा एवं गायक को एक ही माइक्रोफोन के सामने बैठकर रेकॉर्डिंग करानी होती थी। रेकॉर्डिंग के लिए पृथक से स्टुडियो भी नहीं थे। इस काम के लिए सिनेमाघरों का उपयोग किया जाता था तथा आखिरी-शो के बाद जब सिनेमाघर खाली होते थे, तब ही रेकॉर्डिंग का काम शुरू होता था। गायक की संगत करने वाले लगभग पंद्रह वादक होते थे। इन वाद्यों की ध्वनि के मध्य अपना स्वर प्रमुख बनाए रखने के लिए गायक को काफी ऊर्जा व्यय करनी पड़ती थी। इन परिस्थितियों में भी जब पंकज मलिक की आवाज में 'चले पवन की चाल' जैसे गीतों का सर्जन हो गया तो यह निश्चित ही भारतीय फिल्मी संगीतकारों की अथक कोशिशों का ही नतीजा था।

'न्यू थिएटर्स' एवं 'प्रभात' ने साउंड रेकॉर्डिंग स्टुडियो की शुरूआत की। साउंड रेकॉर्डिस्ट दामले द्वारा जिस साउंड स्टुडियो का निर्माण प्रभात थिएटर्स में किया गया था वह आज भी अपने कुछ उपकरणों सहित पूना के फिल्म संस्थान में सुरक्षित है। इन्हीं उपकरणों की सहायता से प्रभात ने अपनी महान संगीतमय कृति 'संत तुकाराम' प्रस्तुत की थी।

संगीत उपकरणों का प्रयोग करने वाले कलाकारों में अधिकांश स्थानीय प्रतिभाएँ थी। संगीतकार वादकों को विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्रों का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करते थे। तबला वादक को तबला तरंग बजाने के लिए तथा बाँसुरी वादक को क्लारनेट पर आजमाइश करने हेतु प्रोत्साहित किया जाता था। पश्चिमी वाद्ययंत्रों का उपयोग करने के लिए विधिवत् प्रशिक्षण देने वाले प्रशिक्षक उपलब्ध नहीं थे। कई कलाकारों ने स्वयं ही इन वाद्ययंत्रों को बजाना सीखा। **वसंत देसाई** एक ऐसे ही उत्साही कलाकार थे। उन्होंने हारमोनियम और तबले से लेकर उस समय उपलब्ध प्रत्येक वाद्ययंत्र को स्वयं ही सीखकर बजाया।

फिल्म संगीत में नए प्रयोग करने के मामले में बंगाल उन दिनों अग्रणी था। कानन देवी, सहगल, उमाशशि और पंकज मलिक एक प्रादर्श के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। फिल्म संगीत के जरिए युवावर्ग में फिल्मी दुनिया के प्रति 'क्रेज' पैदा

प्रभात स्टूडियो में गीत की रिकॉर्डिंग

आर्केस्ट्रा

आर्केस्ट्रा ग्रीक भाषा का शब्द है तथा इसका अर्थ है स्टेज और दर्शकों के बीच रिक्त रखा जाने वाला निश्चित स्थान। इस अर्द्धवृत्ताकार स्थान में कोरस या नृत्य मंडली अपनी कला का प्रदर्शन नाटक के बीच करती थी तथा नाटक में होने वाली घटनाओं पर टिप्पणी की जाती थी। १७ वीं एवं १८ वीं सदी में जब योरपीय ओपेरा हाउस लोकप्रिय हुए तब इस रिक्त स्थान में संगीतकार एवं वादक बैठने लगे। धीरे-धीरे यहाँ बैठने वाले संगीतकारों के दल को आर्केस्ट्रा कहा जाने लगा। यह नाम इतना अधिक प्रचलित हुआ कि संगीतकार एवं वादकों का बड़ा दल आर्केस्ट्रा कहलाने लगा। यद्यपि बैंड में भी संगीतकार एवं वादक होते हैं, किंतु वह 'आर्केस्ट्रा' नहीं कहलाता। तंतु वाद्य (वायलिन परिवार) के बिना कोई भी दल 'आर्केस्ट्रा' नहीं कहलाएगा वह 'बैंड' ही कहलाएगा।

◆◆◆

हुआ। आज की कई बुजुर्ग फिल्मी हस्तियाँ सहगल के गीतों से आकर्षित हो फिल्मी दुनिया में प्रविष्ट हुई थी। ऐसी ही एक फिल्मी हस्ती मनमोहन कृष्ण ने एक सेमिनार में कहा था कि उस काल में युवा होने वाली पूरी पीढ़ी सैल्यूलाइड की दुनिया के प्रति फिल्मी गीतों के जरिए ही आकर्षित हुई थी। 'ये कौन आज आया सबेरे-सबेरे, 'पिया मिलन को जाना', 'सुख के दिन अब बीतत नाहीं', 'इक बंगला बने न्यारा' 'लूट लियो मन धीर' ऐसे ही अनेक सदाबहार गीतों का सर्जन इस काल में हुआ था। इन गीतों को यदि कालजयी कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। संगीत निदेशकों ने इस दौरान वाद्ययंत्रों के साथ भी अनेक प्रयोग किए। तिमिर बरन, रायचंद बोराल और पंकज मलिक जैसे संगीतकार पश्चिमी वाद्ययंत्रों को भारतीय आर्केस्ट्रा में शामिल करने के लिए निरंतर प्रयोग कर रहे थे। ट्रम्पेट, सेक्सोफोन और पियानो ने एक विशिष्ट माधुर्य का पुट फिल्मी संगीत में दिया था। पश्चिमी वाद्य यंत्रों का बाद में कुछ संगीतकारों ने व्यापक प्रयोग किया। ओ.पी. नय्यर का नाम ऐसे संगीतकारों में प्रमुख है। वाद्य यंत्रों की अधिकता ने बड़े आर्केस्ट्रा दलों का रिवाज डाला। फिल्मी गीतों की लोकप्रियता निरंतर बढ़ने लगी और उसी अनुपात में आर्केस्ट्रा का आकार बढ़ने लगा। कुछ गीतों को संगीतबद्ध करने के लिए सौ से भी ज्यादा संगीतकारों के आर्केस्ट्रा ने संगीत दिया।

विश्व में होने वाली घटनाएँ किसी कला को कैसे प्रभावित करती है यह समझने के लिए दूसरे विश्वयुद्ध एवं उसके बाद भारतीय फिल्मी संगीत में हुए परिवर्तनों का विहंगावलोकन करना प्रासंगिक होगा। विश्वयुद्ध ने अभाव, भूख, कालाबाजारी और अस्थिरता की जो परिस्थितियाँ पैदा की, वे अप्रत्यक्ष रूप से बंबई को एक महानगर एवं फिल्म उद्योग के केंद्र बनाने में मददगार साबित हुई। विश्वयुद्ध के दौरान एक नई बंबइया संस्कृति उदित हुई, भेलपूरीनुमा हिंदी याने बंबइया हिंदी का जन्म हुआ तथा एक नवीन महानगरीय जीवन शैली एवं दृष्टिकोण का उदय हुआ।

भारत के विभिन्न प्रदेशों एवं नगरों से लोग बंबई की फिल्मी दुनिया में किस्मत आजमाने आने लगे, लाहौर, कलकत्ता, कोल्हापुर, हैदराबाद, पटना, कटक और मद्रास से आने वाले कलाकार अपनी आँचलिक सांस्कृतिक धरोहरों को भी साथ लाए। विभिन्न प्रदेशों की संगीत विशिष्टताओं को फिल्म उद्योग ने अपनाया तथा **बंबइया फिल्मी गीत** ने आकार ग्रहण किया। बंबई में रचे और संगीतबद्ध किए गए फिल्मी गीत धीरे-धीरे भारत के शहरी और ग्रामीण इलाकों में सामान्य जनता को कर्णप्रिय लगने लगे। इन गीतों को सुनकर तत्कालीन युवावर्ग बंबई को मायानगरी और सपनों का शहर मानने लगा। विश्वयुद्ध के दौरान बंबइया फिल्मी गीत विधा का विकास संगीत के पारंपरिक ढग से बदलाव के कारण हुआ था। इन गीतों की संगीत रफ्तार तेज थी तथा वाद्ययंत्रों का प्रयोग भी बेहतर योजनाबद्ध तरीके में किया गया था। अठहत्तर आर. पी. एम. की रेकॉर्ड पर सीमित समय तीन मिनट बीस सेकंड का था। अतः लगभग सभी गाने इतनी ही समयावधि के होने लगे। विशेष परिस्थितियों में लंबे गाने तवे के दोनों ओर रिकॉर्ड कर लिए जाते थे। वाद्ययंत्रों की अधिकता एवं संगीत के बढ़ते महत्व के कारण गीत के बोलों का महत्व कम होने लगा। पंकज मलिक, के. एल. सहगल, के. सी. डे., पहाड़ी सान्याल के स्थान पर रफी, मन्ना डे, मुकेश, तलतमहमूद आ गए। अमीर बाई कर्नाटकी, राजकुमारी, शमशाद बेगम को सुरैया एवं नूरजहाँ के लिए स्थान रिक्त करना पड़ा।

यद्यपि पन्नालाल घोष, तिमिर बरन, शंकरराव व्यास तथा मास्टर कृष्णराव जैसे संगीतकार फिल्मों में शास्त्रीय संगीत का अस्तित्व बनाए रखे हुए थे, किंतु साथ ही संगीतकारों की नई पीढ़ी शास्त्रीय संगीत से दामन छुड़ाने के लिए बेताब थी। मीर साहब और झंडे खाँ जैसे संगीतकार नए तरीके का संगीत देने की कोशिश कर रहे थे। संक्रमण के इसी दौर में लाहौर से गुलाम हैदर बंबई आए। उनके साथ पंजाब की ढोलक और ड्रम भी आए। 'खजांची' और 'खानदान' चौथे दशक के प्रारंभिक काल की वे दो फिल्में थी, जिनके गीतों को गुलाम हैदर ने संगीतबद्ध किया था। **सावन के नजारे हैं अहा-अहा** हिट साबित हुआ। लोग ऐसे ही गीत चाहने लगे। इस चाहत के परिणाम स्वरूप पर्दे पर पात्र साइकिल चलाते, बेलगाड़ी हाँकते या घुड़सवारी करते हुए गाने लगे। बंबइया फिल्मी गीत की आधारशिला रखने में बाम्बे टॉकिज की **किस्मत** का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। किस्मत से ही अनिल विश्वास के कैरियर में नया दौर शुरू हुआ। "आज हिमालय की चोटी से फिर हमने ललकारा है", "घर-घर में दिवाली है मेरे घर में अँधेरा'। इन दोनों गीतों में माधुर्य, सहजता और सरलता संगीत का साकार रूप धर कर कानों में रस सा घोल देती है।

कलकत्ते में उन दिनों भी पारंपरिक शैली के संगीत में फिल्मी गीत स्वरबद्ध किए जा रहे थे। मलिक, बोराल और कमलदास गुप्ता ने 'बड़ी बहन', 'वापस' और 'दुश्मन' में शास्त्रीय आधार पर ही संगीत रचा था, किंतु अब अन्य युवा संगीतकार इसे अपना आदर्श नहीं मानते थे। पियानो और तबला की संगत के बजाए वे पंजाबी ढोलक को अधिक वरीयता देते थे। नई और पुरानी दोनों ही पीढ़ी के संगीतकारों ने इस युग में कई सफलतम गीतों की रचना की। कमलदास गुप्ता ने 'हॉस्पिटल' में 'प्रभुजी राखो लाज हमारी' नामक जिस भजन की संगीत रचना तैयार की थी, उसने लोकप्रियता के कई कीर्तिमान स्थापित किए। पी.सी. बरुआ की 'जवाब' में कानन देवी द्वारा गाया गया 'यह दुनिया है तूफान मेल' अपनी नवीनता और मिठास के कारण बेहद लोकप्रिय हुआ था। रेल की सीटियाँ, चलने की ध्वनि तथा बाँसुरी के स्वरों के बीच उभरते मधुर बोल बच्चों तक को प्यारे और मीठे लगते थे। कमलदास गुप्ता के निर्देशन में ही तलत ने 'तस्वीर तेरी दिल मेरा बहला न सकेगी' गाया था।

न्यू थिएटर्स की पुरानी पीढ़ी में दास गुप्ता,

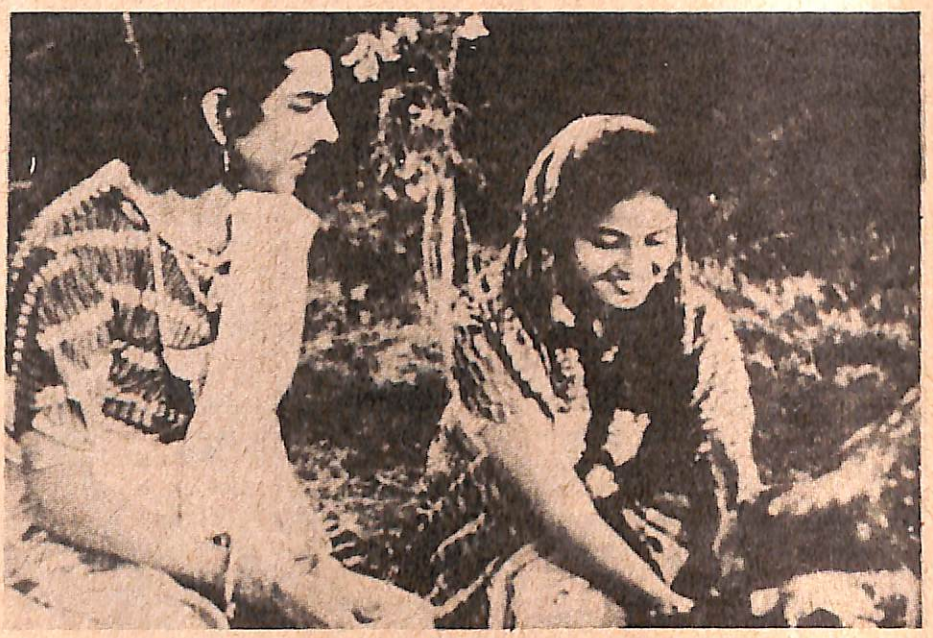

एम.एस. सुब्बालक्ष्मी और जी.एन. बालासुब्रमण्यम फिल्म शकुंतला में

फिल्म मीरा में एम.एस. सुब्बालक्ष्मी

मलिक और बोराल शामिल थे तथा नई पीढ़ी में अनिल विश्वास, हेमंत मुखर्जी एवं एस. डी बर्मन आए। नई पीढ़ी के संगीतकारों में कलकत्ते की पारंपरिक शैली एवं नई बंबइया संस्कृति का मिश्रण देखने में आता है।

रतन के संगीतकार **नौशाद अली** के उदय की कथा काफी दिलचस्प है। कैशोर्य की सीढ़ियों पर कदम रखते ही वे अपने गृहनगर लखनऊ से भागकर बंबई आ गए। यह वह समय था जब दूसरा महायुद्ध अपने प्रारंभिक दौर में था। लखनऊ में वे साज दुरुस्त करने वाली एक दुकान में काम सीखा करते थे। स्थानीय सिनेमाघरों में हारमोनियम बजाने वाले कुछ कलाकारों से प्रेरित होकर बालक नौशाद ने अपने आप ही हारमोनियम बजाना सीख लिया और दुकान में फुर्सत मिलते ही वे हारमोनियम लेकर उसे बजाने लगते थे। एक दिन दुकान के मालिक ने उन्हें ऐसा करते देख लिया। एक कम उम्र बालक की लगन और शौक से खुश होकर मालिक ने हारमोनियम नौशाद को उपहार स्वरूप दे दिया। प्रतिभा एवं संगीत के प्रति नैसर्गिक रुझान के कारण नौशाद शीघ्र ही कुशल संगीतकार बन गए और टूरिंग थिएटर में नौकरी करने लगे। इसी नौकरी के दौरान वे बंबई आए और संगीतकार झंडे खाँ के साथ काम करने लगे। झंडे खाँ मूलतः शास्त्रीय संगीत के कलाकार थे तथा हल्की फुल्की फिल्मी संगीत धुनें बनाने में मुश्किल महसूस करते थे। कंपनी के उसी मालिक ने ऐसी परिस्थिति में एक गाने की धुन बनाने का काम नौशाद अली को सौंपा। इस युवा संगीतकार ने बेहद मधुर और सरल धुन तैयार कर दी। फौरन ही उन्हें तरक्की मिली और वे 'कम्पोजर' बना दिए गए। इस प्रसंग में नौशाद अली को बोध हुआ कि शास्त्रीय संगीत महान तो है मगर 'मालिक' और 'आम आदमी' की समझ से परे है। आम श्रोता भारी शास्त्रीय संगीत नहीं चाहता बल्कि सरल और मधुर कर्णप्रिय संगीत चाहता है। इस यथार्थ बोध से ही वे **शारदा, स्टेशन मास्टर** और **नईदुनिया** के हिट गीतों को सफलतापूर्वक संगीतबद्ध कर सके। 'नईदुनिया' की सफलता ने 'नया संसार', 'नई रोशनी', 'नया तराना', नई कहानी', 'नवयुग', 'नव जीवन' और 'नया जमाना', जैसी फिल्मों के नामकरण को प्रेरित किया। फिल्मी संगीत में नवयुग का यह दौर महायुद्ध के साथ ही चल रहा था। इसी दौर में नौशाद ने 'रफी' और 'सुरैया' को अवसर दिया। नौशाद ने न सिर्फ नए गायकों को अवसर दिया बल्कि नए गीतकारों को भी मौका दिया तथा ढोलक को फिल्मी दुनिया में महत्वपूर्ण वाद्य के रूप में स्थापित किया। उत्तरप्रदेश की अमराइयों के लोकगीतों की मधुरता को भी नौशाद ने ही सर्वप्रथम 'रतन' के माध्यम से प्रस्तुत किया। रतन के गीत सौंदर्य एवं तकनीक दोनों ही पहलुओं से उत्तम सिद्ध हुए। उनमें कहीं भी एकरसता का दोष नहीं है। रतन के गीतों के रेकॉर्डों की बिक्री ने आय का एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। रेकॉर्ड की रायल्टी से मिली रकम फिल्म में लगी कुल लागत से काफी ज्यादा रही। 'अँखिया मिला के' जिया भरमा के' राष्ट्रव्यापी हिट गीत सिद्ध हुआ। यह एक लोकधुन पर आधारित गीत था। 'मिल के बिछड़ गई अँखिया' भी सरलता और मधुरता की दृष्टि से बेहद सफल रहा।

लोकधुनों पर आधारित सरल संगीतमय रचनाओं की सफलता में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उस जमाने में लोगों ने गाँव छोड़कर शहरों में बसना शुरू कर दिया था। गाँव की संस्कृति से अलग होकर भी वे गाँव की स्मृतियों को मिटा पाने में असमर्थ थे। लोक संगीत पर आधारित धुनें कान में पड़ते ही वे अपनी देहाती मिट्टी से जुड़ जाते थे। इस देहाती धुन में उन्हें शहरी नवीनता भी मिलती थी जिसकी सृष्टि पश्चिमी वाद्ययंत्रों के जरिए होती थी।

उस जमाने की गायिकाओं में शमशाद बेगम, मनोरमा, अमीरबाई, राजकुमारी, नूरजहाँ प्रमुख थी। लता उस समय फिल्मी दुनिया में प्रविष्ट नहीं हुई थी। पुरुष गायकों में जी. एम. दुर्रानी, एस. डी. बातिश, खान मस्ताना, श्याम, सुरेंद्रनाथ और के. एल. सहगल चोटी पर थे। नौशाद ने अपनी फिल्मों में सहगल की आवाज भी ली। मगर नौशाद के संगीत के माधुर्य का सार मुकेश और रफी के गाए गीतों में ही मिलता है। नौशाद की सफलता ने लोकसंगीत को फिल्मों में प्रवेश दिलवाया तथा बंबई को भारत के फिल्मी संगीत का केंद्र बना दिया। बंबई के गायकों ने विभिन्न भारतीय भाषाओं में गीत गाने शुरू किए। तमिल और तेलगु फिल्मी गीत भी बंबइया धुनों पर तैयार होने लगे। आर्केस्ट्रा और भी विस्तृत एवं बड़ा होने लगा। स्वयं नौशाद ने भी बैजू बावरा और मुगले आजम में विराट आर्केस्ट्रा का इस्तेमाल किया है।

बड़े आर्केस्ट्रा के इस्तेमाल के चलन ने संगीत संयोजक की आवश्यकता को भी महसूस करवाया। जब किसी गीत की रेकॉर्डिंग के दौरान स्टुडियो में बीस साज एक साथ बज रहे हों तो उनकी लय ताल में समरूपता को नियंत्रित करने के लिए एक संयोजक का होना जरूरी हो गया। इसके साथ ही पूरी धुन का लिखा जाना और लिखित अनुदेशों के मुताबिक वाद्ययंत्रों को बजाना भी जरूरी हुआ। अतः प्रत्येक आर्केस्ट्रा वादक के लिए संगीत के लिखित रूप को पढ़ना-लिखना एवं समझना अनिवार्य बन गया। हमारी भारतीय पृष्ठभूमि में लिखित संगीत की कोई परंपरा नहीं थी। सच तो यह है कि सदियों से हमारे यहाँ संगीत की योजनाबद्ध एवं सुचारु शिक्षा की व्यवस्था का अभाव था। फिल्मी संगीत पर पश्चिमी संगीत के प्रभाव ने इस कमी को उजागर किया तथा शिक्षित संगीतकारों की माँग फिल्म उद्योग में बढ़ने लगी।

यद्यपि महाराष्ट्र अपनी विराट एवं वैभवशाली संगीत परंपरा के लिए विख्यात था, किंतु फिल्मी संगीत के इस दौर में अधिकांश महाराष्ट्रियन संगीतकार असफल रहे। ताम्बे, कृष्णराव, माइनकर, चांदेकर, कारगांवकर तथा अन्य संगीतकार शास्त्रीय सिंहासन छोड़कर सरल और सहज मिट्टी का मैदानी संगीत तैयार करने को प्रस्तुत नहीं हुए। ऐसे में अपवादस्वरूप एक नाम तेजी में उभरा और वह था **रामचंद्र चितलकर** (सी. रामचंद्र)। सी. रामचंद्र में हर नई और दिलचस्प चीज को स्वीकार करने और अपनाने की अपूर्व क्षमता थी। वे मराठी नाट्य संगीत से लेकर लातिन अमेरिकी लोकसंगीत तक को अपनाने को सदैव तैयार थे। 'मैं हूँ एक खलासी', ये जिंदगी उसी की है', 'भोली सूरत दिल के खोटे' इसी बहुमुखी एवं बहुआयामी प्रतिभा के करिश्मे हैं। 'ईना-मीना-डीका' के इस सर्जक ने जब 'जो शहीद हुए है उनकी जरा याद करो कुर्बानी' की धुन तैयार की तो इस धुन को सुनकर तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की आँखों में भी पानी भर आया था। इसी सर्वतोमुखी प्रतिभा के कारण सी.रामचंद्र का स्थान हमेशा महत्वपूर्ण बना रहा।

इस प्रकार चौथे दशक में फिल्मी संगीत को गढ़ने एवं सँवारने में अनिल विश्वास, नौशाद एवं सी. रामचंद्र जैसे संगीतकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्हें अरेंजर्स (व्यवस्थापकों) से उल्लेखनीय मदद मिलती रही। ऐसे अरेंजर्स में मोहम्मद शफी का नाम प्रमुख है। शफी ने अपना कैरियर एक सितारवादक के रूप में शुरू किया था। वे न्यू थिएटर्स में पंकज मलिक एवं आर. सी.

फिल्म डॉक्टर में पंकज मलिक और पत्रा

बोराल के सहायक थे। अरेंजर के रूप में शफी ने गुलाम अली तथा नौशाद जैसे संगीतकारों के साथ साठ फिल्मों में काम किया। 'घर आया मेरा परदेसी' में एक सौ वादकों का आर्केस्ट्रा था। विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्रों से उत्पन्न संगीत को मीठी धुन में तब्दील करने का काम बिना कुशल अरेंजर के संभव ही नहीं था। इसलिए बड़े आर्केस्ट्रा एवं बड़े बजट वाली फिल्मों में 'अरेंजर' और 'कंडक्टर' अपरिहार्य बन गए। फिल्म संगीत के अतिरिक्त अन्य प्रकार की संगीत रचनाओं के लिए अरेंजर की आवश्यकता महसूस नहीं की गई। फिल्म के संगीत कलाकारों एवं वादकों में से जो लोग तकनीकी रूप से प्रतिभाशाली एवं निपुण होते थे उन्हें ही 'अरेंजर' या कंडक्टर बनाया जाता था। 'अरेंजर' के लिए 'संगीत' का लिखित रूप पढ़ना तथा स्वयं संगीत रचना को लिपिबद्ध करने की योग्यता जरूरी थी। ऐसी योग्यता रखने वाले कलाकार उस जमाने में नहीं के बराबर थे। केवल सैनिक बैंड में ही लिपिबद्ध संगीत की जानकारी रखने वाले वादक हुआ करते थे। पुर्तगाल शासित प्रदेश गोआ में ही सरकारी स्कूलों में संगीत लिपि का अध्यापन होता था। इसलिए गोआ से बंबई आने वाले कलाकार और वादक बंबई की फिल्मी दुनिया में काफी सफल रहे। ए. बी. अलबुकर्क, पीटर डोराडो और रामसिंह की तिकड़ी ने ए. आर. पी. पार्टी का गठन किया। अल्बु वायलिन सेलो, पीटर वायलिन तथा रामसिंह सैक्सोफोन बजाने में सिद्धहस्त थे। इस दल ने **तराना** और **आराम** जैसी फिल्मों की मीठी धुनों के निर्माण में महती भूमिका अदा की। ए.आर.पी. पार्टी ने फिल्म संगीत में 'अरेंजर्स' का मार्ग प्रशस्त किया। पश्चिमी वाद्य यंत्रों पर भारतीय राग बजाने के सफलतम प्रयोग भी इसी युग में किए गए। रामप्रसाद शर्मा ने ट्रम्पेट पर राग भैरवी बजाकर उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। वे संगीत लिपि के विशेषज्ञ के रूप में एवं कुशल अरेंजर के रूप में फिल्मी दुनिया में विख्यात रहे। फिल्मी संगीत से व्यावसायिक रिश्ते तोड़ने के बावजूद भी वे युवा कलाकारों को संगीत लिपि की बारीकियों से परिचित कराने एवं उचित प्रशिक्षण देने के लिए सक्रिय रहे तथा इस काम के लिए उन्होंने एक स्कूल भी खोला। उनके पुत्र प्यारेलाल (लक्ष्मी-प्यारे) आज के कुशलतम अरेंजरों में से एक हैं।

रामप्रसाद शर्मा और रामसिंह के अतिरिक्त भी अन्य कई कुशल अरेंजरों ने चौथे दशक में अपना विशिष्ट योगदान दिया। इनमें से अधिकांश गोआनी थे। चिक चाकलेट और जॉनी गोम्स, सी. रामचंद्र के साथ काम करते थे। सैबेस्टियन डी सोजा, शंकर-जयकिशन के सहायक थे। इसके अतिरिक्त फ्रैन्क फर्नेण्डीज, रॉबर्ट एवं चिक कोरिया, मार्टिन पिन्टो, सी. फ्रान्को, अल्बर्ट डी-कोस्टा, आर्थर पैरियेरा आदि कई 'अरेंजर्स' ने संगीत निर्देशकों का काम आसान और सफल बनाने में मदद की। इतना महत्वपूर्ण काम करने के बावजूद उन्हें वह यश, कीर्ति और मान प्राप्त नहीं हुआ, जो संगीत निर्देशकों को मिला। 'अरेंजर्स' आर्केस्ट्रा का संयोजन करते थे, संगीत को लिपिबद्ध एवं वितरित करते थे तथा वादकों के साथ रिहर्सल करते थे, किंतु जब प्रचार या कीर्ति प्राप्ति का मौका आता था, तो सारा श्रेय संगीत निर्देशक लूट ले जाते थे। इस वास्तविकता से भलीभाँति परिचित होने के बावजूद वे संगीत निर्देशक क्यों नहीं बने। इसके दो कारण हैं। प्रथम तो यह कि व्यावसायिक दृष्टि से 'अरेंजर' का पेशा ज्यादा सुरक्षित था, दूसरा महत्वपूर्ण कारण था हिन्दी भाषा से उनका अलगाव। उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि उत्तर भारत से पूर्णतः भिन्न थी। दरअसल वे संगीत कृति के लिए कच्चा माल जुटा पाने में असमर्थ थे। कच्चा माल संगीत निर्देशक उन्हें देते थे और वे उस माल में रंग, मसाले और लय भरकर यादगार लोकप्रिय कृतियाँ तैयार करते थे।

ऐसी कृतियों को तैयार करने में रेकॉर्डिंग की उन्नत तकनीक एवं इस तकनीक के ज्ञान को ठीक प्रकार से अमल में लाना जरूरी था। वाद्यों की मिश्रित ध्वनियों को संतुलित ढंग से रेकॉर्ड करना, ध्वनि के उतार-चढ़ाव, ऊँच-नीच को निर्धारित करना अनिवार्य था। विभिन्न प्रकार के प्रभाव वाले माइक्रोफोन का इस्तेमाल, गायक और वादकों के लिए बूथ की व्यवस्था तथा ऐसे ही अनेक काम करने के लिए 'कंडक्टर' की भी जरूरत पड़ने लगी। खासतौर से समय निर्धारक के रूप में कंडक्टर का नाम महत्वपूर्ण बन गया।

इस प्रकार पूर्वीय संगीत की परंपराओं एवं पाश्चात्य संगीत के प्रशिक्षित कलाकारों के सहयोग से लोकप्रिय सिने संगीत विकास की सीढ़ियों पर चढ़ने लगा तथा लोकप्रियता के सर्वोच्च शिखर तक जा पहुँचा।

न्यू थिएटर्स की फिल्म 'देवदास' में कुंदनलाल सहगल और जमुना

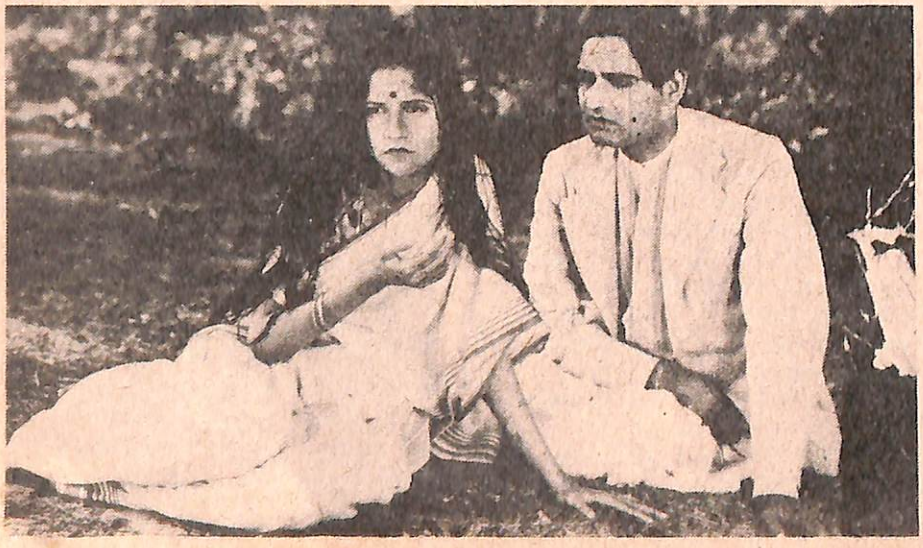

जोसिफ फ्रांसिस नजारेथ मूक फिल्मों के लिए पियानो या हारमोनियम बजाते थे। उनका संगीत फिल्म के साउंड ट्रेक पर नहीं होता था, बल्कि परदे पर चलती फिल्म के साथ-साथ थिएटर में बजाया जाता था। फिल्म तो पूरी तरह गूँगी होती थी। अपने घर पर आराम से बैठे नजारेथ कहते थे-"न मालूम ये लोग लगातार क्या बातें परदे पर करते रहते हैं। मुझे एक भी चीज समझ में नहीं आती। इन बोलती फिल्मों से तो खामोश फिल्में मुझे ज्यादा पसंद थीं। लिखी हुई चीज मुझे समझने में कहीं ज्यादा आसान लगती है।"

बीस के दशक में सिनेमा हॉलों की हालत की आज कल्पना भी नहीं की जा सकती। फिल्म प्रोजेक्टर तथा दर्शक को 'साउंड प्रूफिंग' के द्वारा अलग नहीं किया जाता था। प्रोजेक्टर की निरंतर घरघराहट उन्हें सुननी पड़ती थी। परदे पर रोशनी भी एक जैसी समान नहीं रहती थी। सबसे ज्यादा जो चीज दर्शकों को परेशान करती थी, वह थी लादी हुई खामोशी। हॉल में सिर्फ खाँसने, छींकने, पहलू बदलने और यदा-कदा सीटी बजाने की ही आवाजें सुनने को मिलती थीं। वातावरण में सिगरेट के धुएँ के साथ-साथ एक तरह का भारीपन और बेचैनी भरी रहती थी। इन हालातों के कारण ही निर्माता तथा थिएटर मालिकों ने मूक फिल्मों के लिए संगीत का 'इंतजाम' किया। दरअसल मूक फिल्मों में खामोशी

भारतीय फिल्म संगीत के ऐतिहासिक विकास में वाद्य यंत्रों का खासा योगदान रहा है। वैसे तो संगीत के इतिहास की आधारशिला ही वाद्य यंत्र रहे हैं, इनकी सहायता के बिना संगीत की अभिव्यक्ति संभव ही नहीं थी। वाद्य यंत्रों को देश की भौगोलिक सीमाओं में बाँध कर नहीं रखा जा सकता। जब किसी देश या प्रदेश के लोग प्रवास पर जाते हैं तो अपने वाद्य यंत्र भी साथ रख लेते हैं तथा जिन स्थानों में जाते हैं वहाँ के वाद्य यंत्रों के बारे में भी सहज स्वाभाविक उत्सुकता से जानकारी प्राप्त करते हैं। भारत में योरपीय वाद्य यंत्रों का प्रवेश ग्रीक सभ्यता के प्रभाव के काल में हुआ था। वे अपनी संगीत शैली को भारत में लाए तथा यहाँ की संगीत विशिष्टताओं को भी साथ ले गए। ग्रीक और अरबी संगीत शास्त्र की मिश्रित शैली ने योरपीय संगीत को आधार दिया। इस तरह भारतीय-अरबी और ग्रीक संगीत शैली का मिश्रित स्वरूप बीसवीं सदी की योरपीय संगीत शैली में परिलक्षित होता है। भारतीय फिल्म संगीत शैली पर इसी योरपीय शैली का व्यापक असर पड़ा। योरपीय वाद्य यंत्रों का भारत में आगमन वैसे तो १७ वीं सदी में ही शुरू हो गया था, किंतु फिल्मी संगीत के विकास के दौर में यह आयात काफी बड़े पैमाने पर हुआ। ईसाई मिशनरी १७ वीं सदी में अपने साथ हारमोनियम लेकर आए और तीन शताब्दियों की अवधि में हारमोनियम एक भारतीय वाद्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। अब तो योरप में

गूँगी फिल्में और डबल-प्रोग्राम

कभी भी नहीं रही थी। तरह-तरह की आवाज़ों को कुछ कर्णप्रिय आवाजों से दबाने के लिए थिएटर वालों ने एक-दो 'बाजे वाले' रखना शुरू किए।

देश में उस समय भी शास्त्रीय संगीत की समृद्ध परंपरा थी तथा अल्लादिया खाँ, अहमद जान थिरकवा से लेकर डी. वी. पलुस्कर जैसी हस्तियाँ थीं और मराठी थिएटर की तरफ उनमें से कुछ लोग आकर्षित भी हुए। लेकिन फिल्मों के लिए बजाना बड़ी घटिया बात मानी जाती थी। मगर पैसे के कारण कुछ युवक इस ओर आकर्षित हुए। उत्तर प्रदेश और बंगाल में फिल्मों के साथ मूलत: हारमोनियम तथा तबला ही बजाया जाता था। प्रसिद्ध तबला वादक शामताप्रसाद बतलाते हैं कि उनके गुरु एक सिनेमा हॉल में आठ आने रोज पर तबला बजाते थे और उनके साथ वे भी जाते थे। डगलस फेयर बैंक्स की तलवारबाजी के साथ तबले की तेज रफ्तार गतें बजाई जाती थीं। हार्मोनियम वाला भी ऐसी ही तेज तानों और रागों के द्वारा उसका साथ देकर दर्शकों का रोमांच बढ़ाने की कोशिश करता था।

बड़े शहरों में अँगरेजी फिल्मों के दर्शक इनके साथ पाश्चात्य संगीत सुनना पसंद करते थे। इसके लिए थिएटर वाले आमतौर से एक पियानो तथा एक वायलिन वादक रखते थे। ये संगीतकार आमतौर से गोआ-वासी होते थे। वहाँ छात्रों को विद्यालयों में 'स्टॉफ नोटेशन' (संगीत पाश्चात्य की संकेत लिपि) पढ़ना और बजाना सिखलाया जाता था। पियानो ऐसा वाद्य था, जिस पर घोड़े की टाप से लेकर घड़ी के घंटों की आवाज तक निकाली जा सकती थी। वायलिन स्वर लहरियाँ पैदा करने के काम में आता था।

मगर भारतीय फिल्मों के लिए हारमोनियम तबला वादकों को इसके अलावा और भी अजीबो-गरीब चीजें करनी पड़ती थीं। यदि परदे पर नायक और खलनायक की मारपीट चलती थी, तो उन्हें कई बार पैरों को पटक कर आवाजें पैदा करनी पड़ती थीं, तथा कई बार तो "मारो", "खामोश" तथा "चुप साले" जैसी आवाजें भी करना पड़ती थीं। संगीत बजाने वालों को न केवल संगीत निदेशक का काम करना पड़ता था, बल्कि वे संवाद लेखकों तथा 'डबिंग' की जिम्मेदारी भी निभाते थे। पियानो और हारमोनियम के प्रति फिल्म वालों के इस आकर्षण के अवशेष बोलती फिल्मों के आ जाने के बाद भी नजर आते है। लगभग हर फिल्म में नायक या नायिका को पियानो पर बैठे गाते हुए बतलाया जाता है। 'मुजरों' और भिखारियों के साथ हारमोनियम हमेशा नजर आता रहा। आज भी संगीत-निर्देशक और गायक पियानो या हारमोनियम के साथ अपनी तस्वीरें खिचाना पसंद करते हैं।

नजारेथ पूना के नेपियर और एक्सेलसियर थिएटरों में १९२३ में वायलिन बजाते थे। सिनेमा हॉल आयरिश सिपाहियों से भरा रहता था। उनके साथ पियानो एक एंग्लो-इंडियन महिला बजाती थी। उसे दस रुपए प्रतिदिन मिलता था। वायलिन वादक को आठ रुपए। प्रति दिन दो 'शो' होते थे। उन दिनों के हिसाब से यह काफी बड़ी राशि होती थी। बल्कि कई बार नृत्य के कार्यक्रम भी होते थे और उनके लिए दो घंटे बजाने के बीस रुपए मिलते थे।

क्या फिल्म-कंपनियाँ संगीत के बारे में कोई निर्देश या मुद्रित-संगीत भेजती थीं? नजारेथ ने बताया—"हम लोग अपना संगीत स्वयं चुनते थे। चुनने के लिए बहुत कुछ था। बीटोवन तथा मोजार्ट के शास्त्रीय संगीत के अलावा कई 'मार्च की धुनें' भी थीं। ब्रिटिश साहब लोग इंग्लैंड से मुद्रित संगीत मँगवाते थे। इनमें नृत्य-संगीत और गीत भी होते थे। हम लोग नेपथ्य में बैठकर बजाते थे। परदे पर जो कुछ चलता था, उसमें इस गीत-संगीत का कोई खास संबंध नहीं होता था। दर्शक फरमाइशी गाने या धुनें भी बजवाते थे तथा खुद भी गाने में शरीक हो जाते थे।

हारमोनियम का निर्माण बंद ही हो चुका है। इसी प्रकार वायलिन भी हमारे यहाँ एक सदी पुराना हो चुका है। फिल्म संगीत जब अपने अस्तित्व के प्रारंभिक दौर से गुजर रहा था, तब संगीत निर्देशक ध्वनि में नवीनता और मिठास के लिए नए वाद्य यंत्रों का इस्तेमाल उत्साहपूर्वक करते थे। इसलिए होटलों के बैण्ड वादक, फौजी बैण्ड के कलाकार तथा कुछ विदेशी वादक फिल्मी आर्केस्ट्रा में शामिल हुए। इटली का मैण्डोलिन, क्लारिनेट, हवाइयन गिटार, पियानो एकार्डियन, ड्रम, ट्रम्पेट आदि वाद्य यंत्रों ने भारतीय फिल्म संगीत को सजाने सँवारने और निखारने में काफी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

पश्चिमी वाद्य यंत्रों के साथ-साथ भारतीय वाद्य यंत्रों ने भी फिल्म संगीत के स्वरूप को निर्धारित करने में उल्लेखनीय योग दिया है। पन्नालाल घोष जैसे बाँसुरी वादक तथा रविशंकर जैसे सितार वादक फिल्मों में संगीतकार बने। रविशंकर ने **नीचा नगर** और **धरती के लाल** का संगीत तैयार किया। विख्यात सरोद वादक एवं रविशंकर के गुरुभाई अली अकबर खान ने **'आँधियाँ'** के गीतों को धुन दी। इसी प्रकार निखिल बनर्जी, रामनारायण, विलायत खान आदि कई भारतीय वाद्य यंत्रों के निपुण वादकों ने फिल्म संगीत के विकास में अहम् भूमिका अदा की। कल्याणजी-आनंदजी ने 'नागिन' में बीन का संगीत देकर एक नया इतिहास रचा।

फिल्म संगीत के इतिहास को किसी भी पहलू से देखा जाए तो यही तथ्य सामने आता है कि सभी उपलब्ध प्रभावों को अपनाने के बावजूद फिल्म संगीत ने अपना पृथक अस्तित्व बनाए रखा है।

एक वह भी जमाना था जब ईरानी चाय की दुकानें हुआ करती थी। गोल कुर्सियाँ, संगमरमर की टॉप वाली मेजों वाली इन दुकानों पर बड़े-बड़े पंखे छत पर लटके हुए मंद गति से चला करते थे। इन दुकानों की गाढ़ी चाय का अपना अलग ही स्वाद होता था। चाय के साथ केक (पेस्ट्री) का मजा भी लिया जाता था और अकसर लोग इन्हें चाय में डुबोकर खाते थे। इन दुकानों के नाम भी शानदार होते थे, लाइट ऑफ एशिया, 'वजीरे हिन्द', 'गुलशन' आदि। इन दुकानों पर चाय-नाश्ते के अलावा दूसरा फुटकर सामान भी बिक्री के लिए उपलब्ध रहता था। इन चीजों में डाक टिकट से लेकर ब्रिलक्रीम तक शामिल थी। इन सारे आकर्षणों के साथ एक अन्य आकर्षण था भारी भरकम वाल्व रेडियो सेट। ग्राहक 'सिंगल' चाय की चुस्कियाँ लेते हुए 'रेडियो सीलोन' या 'रेडियो गोआ' से प्रसारित होने वाले फिल्मी गीतों का आनंद लेते थे। इस प्रकार 'दुअन्नी' की लागत में सात-आठ गाने और 'चाय' का मजा उन्हें मिलता था। मुझे याद है अपने बचपन की जब मैंने ऐसे ही एक ईरानी रेस्त्राँ में, "जिन्दा हूँ इस तरह कि—" सुना था। बाद में पूछताछ करने पर पता चला कि यह गीत राजकपूर की फिल्म 'आग' का था और गायक थे मुकेश।

चार दशक के बाद मैं यह विवेचना करने बैठा हूँ कि आखिरकार राजकपूर की फिल्मों के गीतों में क्या खासियत थी। क्या यही खासियत 'आग' जैसी प्रारंभिक फिल्मों के गीतों में भी थी। राजकपूर की फिल्मों के संगीत में कुछ अनूठापन था। यह अनूठापन क्या था और कैसे था। राजकपूर न तो खुद गाते थे और न ही संगीत निर्देशक का कार्य करते थे। वे सिर्फ फिल्मों का निर्देशन करते थे और इन फिल्मों में नए संगीतकार, नए पार्श्वगायक और नए अभिनेता रहते थे पर संगीत पर राजकपूर की विशिष्ट छाप रहती थी। पिछले कई वर्षों लाखों लोग आर.के. के गीतों को गुनगुनाते हुए बचपन से जवानी और जवानी से बुढ़ापे की दहलीज तक पहुँचे। उनके गम और खुशियों के वक्त में आर.के. के गीत सच्चे दोस्त की तरह मन के पास रहे।

'आग' राजकपूर की पहली फिल्म थी और इसके संगीत निर्देशक राम गांगुली पृथ्वी थिएटर्स की संगीत मंडली के वरिष्ठ सदस्य थे। फिल्म का गीत 'जिन्दा हूँ इस तरह' दर्शकों द्वारा पसंद किया गया मगर फिल्म ज्यादा सफल नहीं हुई और राम गांगुली को भी विशेष प्रतिष्ठा नहीं मिल पाई। इसके बाद 'बरसात' ने एक नए तरह के संगीत को प्रस्तुत किया। उस जमाने में शंकर-जयकिशन को ज्यादातर लोग एक ही व्यक्ति मानते थे। वैसे ये दोनों संगीतकार भी पृथ्वी थिएटर्स की ही देन थे। वहाँ एक हारमोनियम और दूसरा ढोलक बजाया करता था। इनके पास शास्त्रीय संगीत की कोई पृष्ठभूमि नहीं थी पर लोक संगीत की खासी समझ और परख थी। यह जोड़ी तेजी से उद्योग पर छा गई और तीस साल तक लगातार छाई रही। आर.के. और शंकर-जयकिशन एक दूसरे को संगीत में प्रभावित करते रहे। राजकपूर की संगीत निर्देशक बनने की चाह अधूरी रह गई थी। इस अधूरी चाह की पूर्ति के लिए वे वाद्ययंत्रों

Gram : "BHARAT" BIRLAGRAM

Phone : 26, 35 & 71 NAGDA

With Best Compliments From :

BHARAT COMMERCE AND INDUSTRIES LIMITED

P. O. BIRLAGRAM : NAGDA (M. P.)

Manufacturers of : Quality 'NAGDA' Staple, Synthetic & Fancy Yarns in the vide range of counts in Grey & Dyed.

Regd.& Head Office : 'Surya Kiran', 5th Floor, 19, Kasturba Gandhi Marg, NEW DELHI – 110 001.

के सामने बैठकर रियाज करते थे तथा कुशल वादक माने जाते थे। शंकर-जयकिशन के साथ मिलकर उन्होंने आधुनिक और लोक संगीत को मिला कर एक नई परम्परा शुरू की।

सामान्य धारणा यह है कि राजकपूर और शंकर-जयकिशन की जोड़ी अटूट थी पर ऐसा है नहीं। कई दूसरे संगीत निर्देशकों ने आर.के. की फिल्मों को संगीत दिया है। अवार्ड अर्जित करने वाली **जागते रहो** एक ऐसी ही फिल्म है। पंजाबी लोक गीत 'की मैं झूठ बोल्या' और शराबी मोतीलाल द्वारा गाया गया, 'जिन्दगी ख्वाब है' सलिल चौधरी का ही ज्यादा लगता है। भैरव राग में गाया गया आखिरी गीत 'जागो मोहन प्यारे' पारम्परिक राग के प्रयोग के साथ ही बरसात के संगीत की याद ताजा कर देता है। राज की सबसे बड़ी कमजोरी 'कोरस' के प्रति उनका गहरा लगाव था। **बूट पालिश** का बच्चों का गीत हो या 'ईचक दाना' हो कोरस के मोह से राज मुक्ति नहीं पाते थे।

श्रोताओं के लिए मुकेश और राजकपूर एक ही व्यक्तित्व बन गए। दोनों एक साथ 'आग' में आए। मुकेश ने १९४५ में 'अनोखी अदा' से अपना कैरियर शुरू किया था 'दिल जलता है तो...' को लोग अकसर सहगल द्वारा गाया समझते थे। दरअसल अनिल विश्वास चाहते थे कि 'मुकेश' की आवाज की हूबहू नकल प्रस्तुत की जाए। इसके बाद धीरे-धीरे अपने निर्दोष उच्चारण और लरजती आवाज के कारण मुकेश ने अपनी पृथक छवि बना ली। मुकेश ने राजकपूर के लिए आखिरी गीत शंकर-जयकिशन के संगीत निर्देशन में गाया था, 'जाने कहाँ गए वो दिन' अपनी मिठास के कारण आज भी मन में हलचल मचा देता है।

राजकपूर की फिल्मों में वाद्ययंत्रों का प्रयोग विविधता एवं बहुलता लिए रहता था। एकार्डियन, बेगपाइप्स, तबला, ट्रम्पेट सभी उसके अपने से लगते हैं। 'बरसात' का वायलिन आर.के. स्टुडियो का स्थाई चिन्ह बन गया। जिस देश में गंगा बहती है में राज ने 'दफ्ती' का इस्तेमाल किया। राजकपूर की फिल्मों में जिन गीतों को महत्व और लोकप्रियता मिली वे सब देश के विभिन्न हिस्सों से लाकर फिल्मों के योग्य बनाए गए थे। चम्बल घाटी का 'जिस देश में...' या गोआ का ना मूँगू सोना (बॉबी) या हिमाचल प्रदेश 'राम तेरी गंगा मैली'। बॉबी में एक पंजाबी लोकगीत 'बेशक मंदिर मस्जिद' भी था। इस गीत ने चंचल को पार्श्वगायन के क्षेत्र में शीर्ष स्थान तक पहुँचा दिया था।

शंकर-जयकिशन द्वारा लिए गए कुछ गीतों में मुकेश की आवाज नहीं जमती थी। इसलिए 'मन्ना डे' की आवाज का इस्तेमाल किया गया। 'आवारा', 'मेरा नाम जोकर', 'श्री चार सौ बीस' में मन्ना डे ने राजकपूर के लिए कुछ गीत गाए। वैसे लता मंगेशकर और मुकेश ने अपने कुछ सर्वश्रेष्ठ गीत 'आर.के. फिल्मस' के लिए गाए। 'दम भर जो उधर मुँह फेरे', 'आवारा हूँ' 'मेरा जूता है जापानी' अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सदाबहार की श्रेणी में आ गए।

पार्श्वसंगीत के मामले में राजकपूर पर हालीवुड का काफी असर रहा है। भावनाओं व संवेगों को प्रदर्शित करने के लिए राजकपूर ने संगीत का खुलकर इस्तेमाल किया है।

पिछले चालीस सालों में भारतीय फिल्मी गीतों को कई धाराओं ने प्रभावित किया है। विस्मय का विषय तो यह है इन चार दशकों में जिस अकेले व्यक्तित्व ने फिल्मी गीतों को सर्वाधिक प्रभावित किया यह व्यक्ति न तो गायक था, न ही संगीतकार बल्कि एक फिल्म निर्माता था। राजकपूर के पास संगीत की जो समझ थी उसने संगीत निर्देशकों का मार्गदर्शन किया। राजकपूर की दृष्टि इतनी व्यापक और सूक्ष्म थी कि वे 'गीत' की फिल्मांकन विधि को एक चित्र की तरह प्रस्तुत कर देते थे। गीत की सिचुएशन, गायक, अभिनेता, वाद्यवृंद इन सबकी कल्पना वे पूर्व से ही कर लिया करते थे।

गीतकार शैलेंद्र और हसरत जयपुरी, मुकेश और शंकर-जयकिशन आर.के. की संगीत इमारत के स्तंभ थे और राजकपूर इनके बीच स्थित

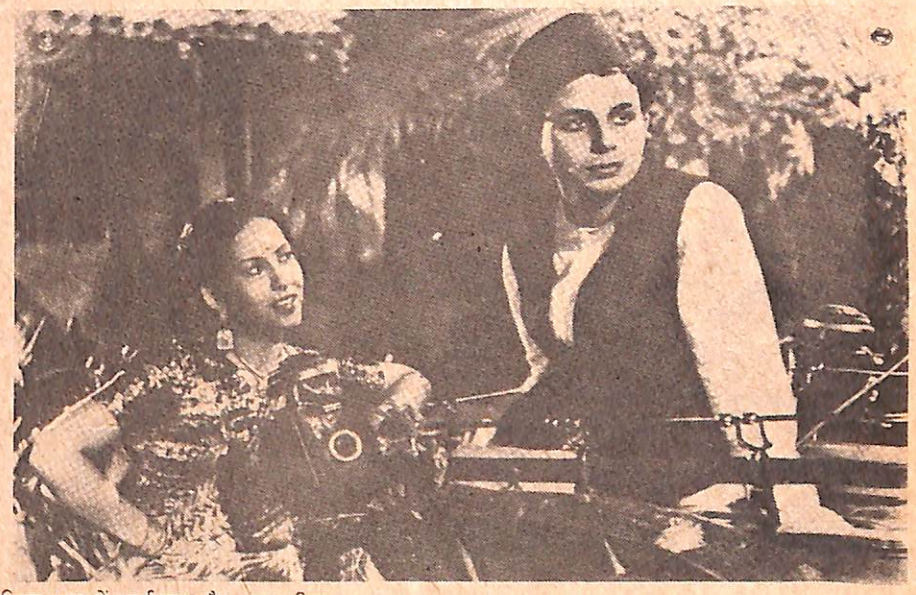

फिल्म रतन में स्वर्णलता और करण दीवान

आधार स्तंभ। अंतिम दशक में ये सारे स्तंभ ढह गए। शैलेंद्र और जयकिशन के निधन से राजकपूर का शरीर चला गया। मुकेश की मृत्यु ने उसकी आवाज और आत्मा छीन ली। 'राम तेरी गंगा मैली' में लता ने अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया सुरेश वाडकर ने मुकेश की आवाज की कमी को पूरा करने का प्रयास किया। राजकपूर के संगीत की परम्परागत मिठास एक बार फिर जीवित हो उठी। मगर फिर... इसके बाद आधार स्तंभ ही ढह गया।

झनक-झनक पायल बाजे का टाइटल गीत अमीर खाँ द्वारा गाया गया तथा इस प्रकार विशुद्ध रूप से शास्त्रीय कहे जाने वाले गायकों का फिल्मों में प्रवेश होने लगा। वैसे हमारी फिल्मों में दुरुह राग एवं ताल से परहेज किया जाता है। लोकप्रिय राग ही इस्तेमाल में लाए जाते हैं। 'बसंत बहार' में ही अक्सर फिल्मी शास्त्रीय संगीत पेश किए जाते रहे। तलत महमूद और मुकेश जैसे गायक तो राग गाने में असफल ही सिद्ध हुए। हमारे फिल्म निदेशक भी ऐतिहासिक एवं महान संतों के जीवन पर आधारित फिल्में बनाते वक्त यह ध्यान नहीं रखते कि उस काल विशेष की क्या परंपराएँ थीं तथा कौन-से वाद्ययंत्र प्रचलित थे। इस कारण चैतन्य, मीरा, ज्ञानेश्वर, सूरदास, तुकाराम आदि फिल्मों में शास्त्रीय संगीत की उपेक्षा हुई और फिल्मी संगीत का वर्चस्व रहा।

शास्त्रीय एवं फिल्मी गायन का रिश्ता सीधा नहीं है। दोनों विधाओं का ढाँचा ही अलग है। शास्त्रीय गायन के अपने नियम हैं, इतिहास है और परम्परा है, पृथक लय और ताल है पर जनाधार नहीं है। यदि शास्त्रीय और फिल्मी गायकों में टक्कर होती है, तो जीत भीमसेन जोशी या अमीर खाँ की नहीं बल्कि मन्ना डे और रफी की होती है। शास्त्रीय संगीत के गायक समृद्ध हैं, रोबदाब वाले हैं, ज्ञानी हैं मगर बेटी के बाप हैं। आम लोगों को न तो समझ में आता है और न ही उन्हें सुख देता है। संगीत की इन दोनों परस्पर विरोधी विधाओं को उन हिन्दी फिल्मों में एकसाथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जो महान भारतीय संगीतकारों के जीवन पर बनीं।

महान भारतीय संगीतकार संगीत सम्राट तानसेन के जीवन पर कई हिन्दी फिल्में बनीं। सोलहवीं सदी का यह महान संगीतकार सम्राट अकबर के नव-रत्नों में से एक था तथा स्वामी हरिदास का शिष्य कहा जाता है। गुरु-शिष्य दोनों ही ध्रुपद धम्मार (गोड़ी बानी) शैली के गायक थे। इस शैली में पिछले चार सौ वर्षों में काफी बदलाव आया है तथा फिलहाल यह जानना संभव नहीं है कि गुरु हरिदास और तानसेन कैसे गाते थे। इस तरह 'तानसेन' फिल्म बनाते समय यथार्थ का दावा कोई कर ही नहीं सकता। तानसेन के जीवन पर पहली फिल्म रंजीत मूवीटोन ने बनाई जिसमें नायक की भूमिका विख्यात गायक के एल. सहगल ने अदा की। उच्चकोटि के पेशेवर फिल्मी गायक द्वारा शास्त्रीय गायक की भूमिका अदा करना अपने आप में एक चुनौती थी। सहगल ने जी तोड़ प्रयास किए मगर उनकी आवाज में वांछित 'गमक' और 'तान'

पैदा न हो पाई। यहाँ तक कि वे सामान्य कोटि के तत्कालीन ध्रुपदिए जैसी धम्मार बंदिश का सृजन भी न कर पाए। इतने पर भी दर्शकों और श्रोताओं ने उनके गीतों को 'क्लासिकल' के रूप में स्वीकार कर लिया। इससे यही सिद्ध हुआ कि लोकप्रिय सितारे ही 'प्रामाणिक' माने जाते हैं यदि उनके बजाए उच्चकोटि के फिल्मी संगीत की आलोचना करने वाले अक्सर यथार्थ की दुहाई देते हुए कहते हैं कि फिल्मी सिचुएशन्स में निर्जन स्थानों पर गीत गाते जाते हुए नायक-नायिकाओं के गाने के साथ सैकड़ों वाद्ययंत्रों वाला आर्केस्टा अटपटा लगता था। ऐसे आलोचकों को करारा जवाब देते हुए अमेरिकी फिल्म संगीतकार डेविड राक्सिन ने कहा था कि यदि ऐसे स्थानों पर दृश्य के फिल्मांकन के लिए कैमरा आ सकता है तो संगीत के लिए वाद्ययंत्र क्यों नहीं आ सकते। दरअसल, 'यथार्थ' की धारणा का रिश्ता स्वीकृति की सीमाओं से है, वास्तविकता से नहीं। उदाहरण के लिए महाभारत काल में, या रामायण के समय हिन्दी नहीं बोली जाती थी, पर राम, रावण, अर्जुन और भीष्म को हिन्दी में वार्तालाप करते हुए देखकर दर्शकों को अटपटा नहीं लगता। यदि ये पात्र बीच-बीच में अँगरेजी या उर्दू के शब्दों का इस्तेमाल करें तो यह स्वीकार्य नहीं होगा। फिल्म संगीत की प्रासंगिकता और औचित्य को तर्कसंगत करार दिए जाने के बाद प्रश्न शास्त्रीय और गैर शास्त्रीय संगीत का उठता है। हिन्दी फिल्मों के गीत मुख्यत: लोकसंस्कृति से जुड़े हैं।यहाँ हमें आम लोगों का दुलारा संगीत मिलता है। यह जरूरी नहीं कि वह पारंपरिक या लोकसंगीत ही हो। जहाँ तक शास्त्रीय संगीत का सवाल है वह उच्च वर्ग तथा समाज के उस तबके से जुड़ा है जिसे अपनी उत्तम अभिरुचि का दंभ है। इसे समझने और सराहने के लिए विशेष प्रशिक्षण और ज्ञान की आवश्यकता होती है। ऐसा संगीत शास्त्रीय गायकों को प्रस्तुत किया जाए, तो दर्शक और श्रोता उन्हें स्वीकार न करेंगे। भारत भूषण, बैजू के रूप में भी प्रामाणिक रहते हैं तथा गालिब के रोल में भी उन्हें प्रामाणिक स्वीकार कर लिया जाता है। शास्त्रीय संगीत के चमत्कारी प्रभावों का भी फिल्मों में चित्रण किया जाता रहा है। अकबर के दरबार में तानसेन (के. एल. सहगल) जब पहली बार ध्रुपद की तान छेड़ते हैं तब वाद्ययंत्र स्वत: ही बज उठते हैं। 'शंकरा' राग के जरिए उन्मत्त हाथी को शांत करना। दीपक राग गाकर दीप जलाना आदि ऐसे ही चमत्कारिक उदाहरण हैं।

एक दशक के बाद नौशाद साहब ने 'बैजू-बावरा' के लिए ऐसे ही कुछ प्रयोग किए। तब तक गायक अभिनेताओं का युग बीत चुका था तथा शास्त्रीय संगीतकारों को स्वाधीन भारत में प्रतिष्ठा एवं लोकप्रियता मिलने लगी थी। अमीर खाँ, भीमसेन जोशी, डी. वी. पुलस्कर जैसे विशुद्ध शास्त्रीय गायक फिल्मी माध्यम को अपनाने के लिए उत्सुक थे। अत: नौशाद साहब ने बैजू- बावरा में 'पक्का' और 'फिल्मी' दोनों ही किस्म के गायन को एकसाथ प्रस्तुत किया। विशुद्ध शास्त्रीय गायन तो डी. वी. पलुस्कर ने किया तथा फिल्मी शास्त्रीय गायक का रोल मोहम्मद रफी ने अदा किया। जब फिल्मों में संगीत स्पर्धा का प्रसंग आया, तब ग्वालियर घराने के गायक पलुस्कर की आवाज को स्पर्धी के रूप में इंदौर घराने के गायक अमीर खाँ से भिड़ना पड़ा। यह टक्कर राग देसी पर सिर्फ आधारित ही नहीं थी, बल्कि सही मायने में राग देसी थी। उन्हें तो फिल्मी और लोकसंगीत के गायकों के आगे झुकना ही पड़ेगा भले ही वे सामान्य हों।

फिल्म संगीत के विकास के इतिहास को राष्ट्र के सामाजिक एवं राजनीतिक इतिहास से पृथक करना मुश्किल है। सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों ने फिल्मों की संगीत शैली को भी परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजारा है। तकनीकी उन्नति ने भी संगीत के स्वरूप को बदलने में खासी भूमिका अदा की है। इन परिवर्तनों को स्वीकारते हुए फिल्मी संगीत को विश्वयुद्ध के पूर्व एवं पश्चात तथा स्वाधीनता के पूर्व एवं पश्चात जैसी श्रेणियों में सूचीबद्ध किया गया है। कुछ इतिहासकारों ने विकास और परिवर्तन की प्रक्रिया को 'दशकों' में भी वर्गीकृत किया है। इस सिलसिले में साठ के दशक में संगीत की दुनिया में उल्लेखनीय उतार-चढ़ावों की चर्चा अप्रासंगिक नहीं होगी। इस दशक में कई महत्वपूर्ण राष्ट्रीय घटनाएँ हुई। गोआ की स्वाधीनता, दो बड़ी सैनिक मुठभेड़ें जिनमें से एक में प्रतिष्ठा कम हुई दूसरी में बढ़ी। दो प्रधानमंत्रियों का निधन, एक युवा प्रधानमंत्री का चयन। इन परिवर्तनों का असर फिल्मी दुनिया पर भी पड़ा।१९६१ में पूना में फिल्म इंस्टीट्यूट प्रारंभ हुआ, एक करोड़ की पूँजी से फिल्म फाइनेंस कार्पोरेशन की स्थापना की गई। दो वर्ष की अवधि में ही 'फिल्म संग्रहालय' बन गया। इन सारी संस्थाओं की स्थापना से यह स्पष्ट हो गया कि सरकार फिल्म उद्योग में सक्रिय दिलचस्पी ले रही है। विमल रॉय, वी. शांताराम, तपन सिन्हा, सत्यजीत रॉय, ऋत्विक घटक को अंतरराष्ट्रीय फिल्मोत्सवों में सम्मान मिला।

अंतराष्ट्रीय पटल पर भी परिवर्तनों की प्रक्रिया तीव्र गति से जारी थी। अमेरिका में जॉन. एफ. कैनेडी का राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचन और फिर उनकी हत्या। मानवाधिकारों के लिए मार्टिन लूथर किंग का संघर्ष। रॉक संगीत, हिप्पी, बीटल्स, रोलिंग स्टोन्स, ड्रग्स, योग, विएतनाम की लड़ाई तथा 'सितार' के प्रति पश्चिमी श्रोताओं की 'क्रेज'। एक नए किस्म के 'जॉज' संगीत का उदय हुआ जिसमें पश्चिमी वाद्ययंत्रों का व्यापक उपयोग था। इस प्रकार पूर्व एवं पश्चिम का संगीत एक-दूसरे को प्रभावित करने लगा तथा एक दूसरे में समाहित भी होने लगा। हॉलीवुड की फिल्मों में सितार, तबला और सारंगी की गूँज सुनाई देने लगी। इसी प्रकार भारतीय फिल्मों में 'रॉक संगीत' भी आने लगा। डेव ब्रूबेक जैसे अंतरराष्ट्रीय स्तर के संगीतकारों ने भारत का भ्रमण किया तथा भारतीय तबला एवं मृदंग वादकों के साथ उनके दल के 'ड्रमर्स' की युगलबंदी भी हुई।

इस दशक में प्रवेश करने से पूर्व भारतीय सवाक् सिनेमा तीस वर्ष बिता चुका था। संगीत निर्देशकों की पहली पीढ़ी चालीस के दशक के मध्य में ही रिटायर हो चुकी थी और इसके बाद वाली पीढ़ी के संगीत निर्देशक भी अपने कैरियर का ढलता सूरज देख रहे थे। पंडित हुस्नलाल और रोशन जैसे संगीत निदेशक गुजर चुके थे तथा नौशाद अपना उम्दा वक्त पीछे छोड़ आए थे। राहुलदेव बर्मन और लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल जैसे नए संगीतकारों की पीढ़ी उभर रही थी। संक्रमण के इस दौर में 'तकनालॉजी' ने भी फिल्मी गीतों के स्वरूप को नए सिरे से गढ़ने में योग दिया। माइक्रोग्रूवर लांग प्लेइंग रिकॉर्ड बाजार में तो पचास के दशक में ही आ गए थे पर उनका व्यापक उपयोग नहीं हो रहा था। इन्हें केवल शास्त्रीय संगीत के रिकॉर्डिंग के लिए उपयोगी माना जाता था। इस डिस्क की मुख्य विशेषता थी हर पहलू पर बीस मिनट की अवधि का संगीत

अनमोल घड़ी में नूरजहाँ और सुरैया

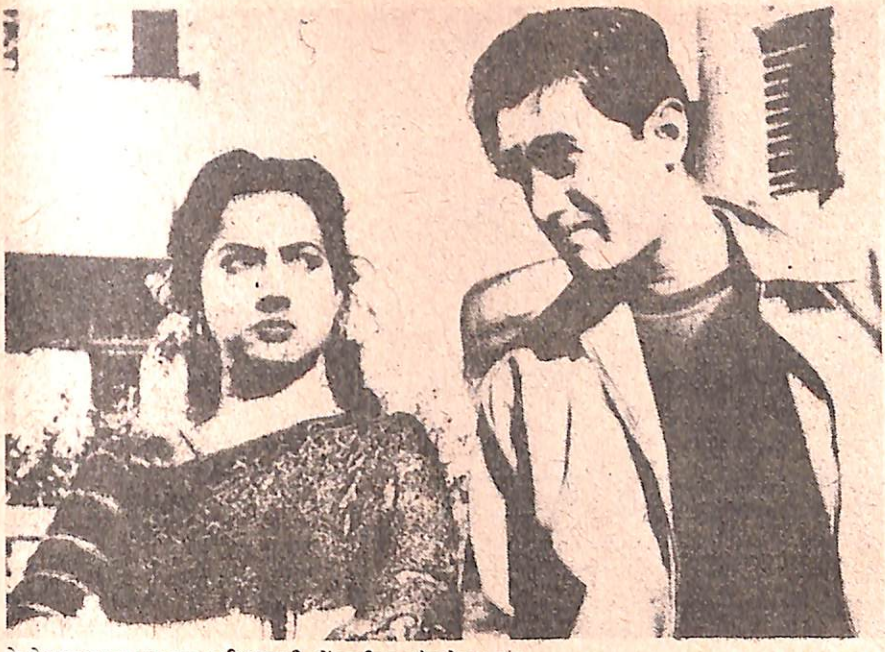

ले के पहला पहला प्यार: सी.आय.डी. में शकीला और देव आनंद

रेकॉर्ड कर सकने की क्षमता। यह अवधि 'राग' को रेकॉर्ड करने की आदर्श अवधि थी। साठ के दशक में रिकार्डिंग कंपनियों ने इन 'तवों' पर फिल्म संगीत का रेकार्डिंग शुरू किया। साठ के दशक की समाप्ति तक लगभग सभी फिल्मी गानों के 'अलबम' इन्हीं डिस्कों पर आने लगे। पिछले तीस वर्षों में जिन फिल्मी गीतों की अवधि साढ़े ३ मिनट तक ही सीमित थी वे ७ मिनट तक के होने लगे। चूँकि 'एल.पी.' की कीमत ज्यादा थी अतः उसकी बिक्री के लिए गुणवत्ता पर विशेष ध्यान दिया जाना जरूरी हो गया। फिल्मी गीतों का पूरा अर्थशास्त्र ही बदल गया। पूँजी बढ़ी, कारोबार बढ़ा, मुनाफा बढ़ा और फिल्मों के गीत फिल्मों के आर्थिक पक्ष के महत्वपूर्ण हिस्से बन गए। आर्थिक फायदे के इस अर्थशास्त्र ने नई प्रतिभाओं को फिल्मी गायन के लिए आकर्षित किया और नई प्रतिभाओं ने श्रोताओं की नई और व्यापक पीढ़ी को तैयार किया। बॉक्स आफिस पर पिटने वाली फिल्मों में से कुछ को आर्थिक सर्वनाश से फिल्मी गीतों की बिक्री ने बचाया। तकनीकी तरक्की तेज रफ्तार से हो रही थी और इस तरक्की से फिल्म संगीत लगातार सँवर रहा था। बेहतर माइक्रोफोन, विद्युतीय वाद्ययंत्र और ऐसी ही अनेक प्रणालियों ने संपूर्ण संगीत उद्योग को नई शक्ल दी। ट्रांजिस्टर रेडियो रिसीवर ने इस बेहतर और आधुनिक संगीत को करोड़ों जन तक पहुँचाया।

इसी काल में संगीत निर्देशकों को गायकों की सर्वाधिक प्रतिभाशाली पीढ़ी का सहयोग मिला। लताजी की ऊर्जा और आत्मविश्वास सर्वोच्च शिखर पर था। मोहम्मद रफी, मुकेश, आशा भोसले, गीता दत्त, सुमन कल्याणपुर, तलत महमूद आदि गायकों का यह सर्वोत्तम काल था। किशोर कुमार की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। मन्ना डे खयाल और ठुमरी जिस सहजता से प्रस्तुत करते थे उसी सहजता से लोकगीत भी गाते थे। हेमंत कुमार और चितलकर का अपना अलग अंदाज था।

शास्त्रीय संगीत को लता मंगेशकर द्वारा 'अनुराधा' के लिए गाए गए चार गीतों ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया। ऋषिकेश मुखर्जी द्वारा निर्देशित इस फिल्म का संगीत पंडित रविशंकर ने तैयार किया था तथा नायिका की भूमिका लीला नायडू ने की थी। राष्ट्रपति पदक द्वारा १९६१ में सम्मानित हुई यह फिल्म बर्लिन महोत्सव में भी प्रदर्शित की गई। इस फिल्म के चार गीत, 'जाने कैसे सपनों...' 'हाय रे वो दिन', 'कैसे दिन बीते', 'सांवरे संवारे' विभिन्न चार रागों पर आधारित थे, तिलक श्याम, जन समोहिनी, मौज खमाज और भैरवी। पंडित रविशंकर का संगीत हवा के ताजे झोंके के मानिन्द था। वाद्ययंत्रों के सीमित उपयोग और राग पर पूर्ण आधारित इस संगीत को व्यापक सराहना मिली। लताजी ने अपनी प्रतिभा से एक गृहिणी की भावनाओं को साकार करते हुए स्वरबद्ध कर दिया। इनमें से एक गीत को तो लताजी के सर्वश्रेष्ठ १० गीतों में स्थान मिला। दशक के प्रारंभ में ही 'गंगा जमुना' रिलीज हुई। नौशाद द्वारा संगीतबद्ध इस फिल्म को १९६१ में बोस्टन महोत्सव में 'गोल्डन बाउल' से सम्मानित किया गया। राग खमाज पर आधारित इस फिल्म का गीत, 'तोरा मन बड़ा पापी सांवरिया' आज भी हृदय को आंदोलित कर देता है। ठुमरी शैली की इस प्रस्तुति में नौशाद की अपनी खास खुशबू है। शंकर-जयकिशन की प्रतिभा भी इस काल में अत्यंत उर्वरक थी। उनके कई गीत भारी आर्केस्ट्रा और भैरवी की थीम में रूपान्तरण के कारण काफी प्रसिद्धि पा गए। आर. के. फिल्मस की 'जिस देश में गंगा बहती है' और 'संगम' का संगीत अपनी अलग पहचान बना गया। शैलेन्द्र की फिल्म 'तीसरी कसम' का गीत 'सजन रे झूठ मत बोलो, खुदा के पास जाना है' सरल शब्दों और मुकेश की आवाज के कारण शाश्वत आनंद का कारण बन गया। इसी बीच 'कल्याणजी-आनंदजी' और 'लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल' की जोडियाँ भी जड़ें जमाने लगीं।

विमल रॉय की फिल्म 'परख' में सलिल चौधरी ने कुछ अभिनव प्रयोग किए। सलिल दा का संगीत लोक से हटकर था। उसमें न तो 'राग' की प्रमुखता थी और न ही पश्चिमी शैली का प्रभाव। परख के गीतों में लोकसंगीत और लोकगीतों की झलक भी नहीं थी। 'मिला है किसी का झूमका', 'ओ पंछी बन मैं गई' तथा 'ओ सजना बरखा बहार आई'। बरखा बहार आई की अनायास कोमलता आज भी ताजगी की अनुभूति दे जाती है।

वास्तव में साठ का यह दशक युवाओं का दशक रहा। अमेरिका में युवा राष्ट्रपति कैनेडी का चयन, फ्रांस में छात्रों का आंदोलन, बीटल्स का उदय और भारत में श्रीमती इंदिरा गाँधी का प्रधानमंत्री के रूप में चयन सभी युवा युग के प्रतीक थे। 'ओ सजना' इसी युवोचित भावना का प्रतीक बना। इसी काल में सईदा खान, कल्पना, साधना जैसी युवा नायिकाएँ लोकप्रिय हुईं। राहुल देव बर्मन की पहली फिल्म 'छोटे नवाब' का गीत 'घर आ जा घिर आए' अपनी मिठास के कारण लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचा। आर.डी. बर्मन ने बंगाल की लोकधुनों, शास्त्रीय रागों और पश्चिमी शैली के संगीत का खुलकर इस्तेमाल किया। 'अमर प्रेम'; 'छोटे नवाब', 'कटी पतंग' का संगीत 'भूत बंगला' और तीसरी मंजिल से अलग था।

युवा पुत्र जब इन प्रयोगों में व्यस्त थे तब साठ वर्षीय 'पिता युवाओं से अधिक सक्रिय और ऊर्जायुक्त होकर संगीत को नई ऊँचाइयाँ दे रहे थे। गाइड के गीत उनकी इसी युवकोचित ऊर्जा का प्रमाण है - 'गाता रहे मेरा दिल', 'वहाँ कौन है तेरा', 'आज फिर जीने की तमन्ना है'। आराधना के गीत, 'मेरे सपनों की रानी', 'रूप तेरा मस्ताना'

फिल्म जोगन में दिलीप कुमार और नरगिस

उज्जैन नगर पालिक निगम द्वारा संचालित

आधुनिक सुविधा से सुसज्जित

ग्रांड होटल

एवं

शहर के मध्य स्थित रेलवे स्टेशन व मोटर स्टैंड के निकट आरामदेह

म्युनिसिपल होटल

नगर पालिक निगम द्वारा प्रदत्त सुविधाओं का लाभ उठाइये।

रामजीतसिंह
आयुक्त,
उज्जैन नगर पालिक निगम

वी. सी. रावत
प्रशासक,
उज्जैन नगर पालिक निगम

* जनसंपर्क विभाग के सौजन्य से *

मध्यप्रदेश निर्यात निगम प्रदेश में प्रगति का प्रतीक है

कृषि उपज, वनोपज, खनिज, रेशमी वस्त्र, हस्तशिल्प वस्तुएँ,
सोयाबीन खली, तकनीकी तथा औद्योगिक

उत्पादनों के निर्यात की नई

ऊँचाइयों की ओर अग्रसर।

कृपया अपनी निर्यात एवं आयात आवश्यकताओं के लिए

सम्पर्क करें:—

एम. के. दीक्षित आई. ए. एस.
प्रबंध संचालक

मनोहर बैरागी
अध्यक्ष

म. प्र. निर्यात निगम मर्यादित

(राज्य शासन का उपक्रम)

पंचानन भवन चौथी मंजिल, मालवीय नगर, भोपाल-462 003

तार : इम्पेक्स, टेलेक्स : 705-279, एमपीईसी,

दूरभाष : 551855, 551856, 551829, 551250

सुनकर विश्वास नहीं होता कि इन गीतों की संगीत रचना किसी वयोवृद्ध व्यक्ति ने की होगी।

मदन मोहन का संगीत साठ के दशक की एक अन्य उपलब्धि रहा। 'अनपढ़', 'वह कौन थी', 'मेरा साया' के गीत हर युग में हर प्रेमी की भावनाओं को मथने का सामर्थ्य रखते हैं। सितार का जादुई प्रयोग मदनमोहन की विशिष्टता थी। रोशन का निधन १९६७ में हो गया और उनके साथ ही फिल्म संगीत की एक शैली का युग समाप्त हो गया। उनके गीत उस युग की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं जब 'माधुर्य' का महत्व सर्वोपरि था। माधुर्य की इसी लहर को लेकर लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल की जोड़ी का अविर्भाव हुआ। इस जोड़ी ने उत्तरी एवं पश्चिमी भारत की लोकधुनों का उपयोग कर फिल्म संगीत में अनूठी मधुरता भर दी। उनकी पहली फिल्म 'पारसमणि' का हर गीत हिट रहा। शंकर-जयकिशन की 'बरसात' की सफलता को दशकों बाद लक्ष्मी-प्यारे ने इस फिल्म में दोहराया। लोकधुन की तर्ज का फिल्मों में इस्तेमाल करने का उनका तरीका असामान्य था 'मिलन' का सदाबहार गीत 'सावन

मेरा मन डोले: फिल्म नागिन की बीन

का महीना पवन करे सोर' बिना किसी वाद्ययंत्रों के उठता है। शब्दों के इस्तेमाल (शोर-सोर) से ही जाहिर कर दिया जाता है कि लोकधुन है।

जब साठ का दशक अवसान के निकट था तब फिल्म उद्योग की कई हस्तियों ने इस असार संसार से बिदा ली। गुरुदत्त, विमल रॉय, एस.एस. वासन जैसी प्रतिभाएँ अनंत में विलीन हो गईं। फिल्म उद्योग के लिए एक चुनौती के रूप में बंबई में दूरदर्शन केंद्र की स्थापना हुई। साठ का दशक फिल्मी गीतों के लिए स्वर्णयुग रहा। इस काल में संगीतबद्ध किए गए गीतों में से अधिकांश शाश्वत काल तक अपना माधुर्य बिखेरते रहेंगे।

(सिनेमा इन इंडिया में प्रकाशित संगीतकार मास्कर चंदावरकर की लेखमाला के आधार पर लोकेन्द्र चतुर्वेदी द्वारा साभार प्रस्तुत)

रंगाराव के संग्रह में २६००० रिकॉर्ड!

● गीता डॉक्टर

आनंद कुमार कृष्ण रंगाराव आंध्रप्रदेश के बोब्बिली राजघराने से ताल्लुकात रखते हैं। रंगाराव शास्त्रीय नृत्य और संगीत के पारखी और रसिक हैं, फिल्मों और प्रदर्शक कलाओं पर लिखते हैं तथा वर्ष में एक बार तिरुपति के पास एक मंदिर में कृष्ण जयंती के अवसर पर भरतनाट्यम-शैली में नृत्य भी प्रस्तुत करते हैं। लेकिन इन बहुमुखी प्रतिभाओं तथा शौकों के धनी रंगाराव की सबसे ज्यादा ख्याति उनके रिकॉर्ड- संग्राहक पक्ष के कारण ही है।

रंगाराव के रिकॉर्ड-संग्राहक बनने की कहानी किसी परी-कथा की तरह अद्‌भुत है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, रंगाराव आंध्रप्रदेश के एक राजघराने से हैं, उनका बचपन अपने परिवार के आत्मीय मगर एकांत परिवेश में गुजरा तथा परिवार बोब्बिली से मद्रास, बंगलौर, मैसूर होते हुए अंततः ऊटी में बस गया। 'हमारा परिवार भरा-पूरा था, लेकिन नौकर-चाकर, कुत्ते-बिल्ली, तोते-मैना सब कुछ होने के बावजूद हमें बातचीत करने के लिए या वैसे भी करने के लिए कुछ नहीं था। तो, हम लोग अपना मनोरंजन करने के लिए सिर्फ ग्रामोफोन में चाभी भरा करते थे।' बक्से के आकार की इस पुरानी मशीन की तरफ इशारा करते हुए रंगाराव कहते हैं। बचपन से ही उनमें इतना गहरा संगीत-बोध था कि लोग अब भी याद करते हैं कि वे मात्र लेबल देखकर रिकॉर्डों को पहचान लेते थे। रिकॉर्ड्स के प्रति उनके आकर्षण को देख लोग अक्सर उपहार में उन्हें रिकॉर्ड ही देते थे और इस तरह उनके संग्रह की शुरूआत काफी कम उम्र में ही हो गई। उनकी मौसी, बोब्बिली की रानी, तो विशेष रूप से उनके लिए ठेठ मद्रास से रिकॉर्डों की ही सौगात लाती थीं। इसी तरह उन्होंने उस जमाने के उनके प्रिय **ज़ंगन, बंधन और झूला** के गीत प्राप्त किए। कभी-कभी हम लोग भंडार-घर या पलंगों के नीचे छुपाकर रखे गए कुछ विशेष रिकॉर्डों को भी सुनते थे, जो भिन्न भाषा के होने के कारण हमारी समझ में नहीं आते थे। बाद में जब हमें बीस और तीस के दशक में लिखे गए इन गीतों का संदर्भ पता चला तो हम उन्हें भी समझने लगे। शास्त्रीय संगीत में उनके कुछ प्रारंभिक पसंदीदा गीतों में चित्तूर सुब्रमण्य पिल्लई द्वारा राग आनंद भैरवी में निबद्ध गीत 'मधुर नागरिलो' भी है। कुल मिलाकर, रंगाराव की स्मृतियाँ बहुत सुखद हैं। जमींदारी-प्रथा समाप्त होने के बाद उनकी जीवन-शैली में काफी परिवर्तन आया, लेकिन उसकी वजह से उनके मन में कोई कड़वाहट नहीं है।

अपने लेखन तथा जिन रिकॉर्डों की एक से ज्यादा प्रतियाँ मेरे पास थीं, उन्हें बेच कर मेरी जो भी आय होती है उसे मैं नए रिकॉर्ड खरीदने पर खर्च कर देता हूँ। रंगाराव को काफी धन कला और संगीत पर लिखी पुस्तकें खरीदने तथा संगीत कार्यक्रम देखने आदि पर भी खर्च करना पड़ता है। मद्रास के पांचईयप्पा कॉलिज में पढ़ते हुए भी वे अपने होस्टल-अलाउंस में से कुछ पैसे बचाकर हर हफ्ते एक-दो रिकॉर्ड खरीदते थे। साल भर बंबई में रहकर उन्होंने एक मोटर-कंपनी में नौकरी की। मगर बाद में उनके पिता ने उन्हें उनके एक सिनेमा थिएटर की व्यवस्था देखने के लिए बुला लिया। इससे उन्हें बड़ी खुशी हुई। उन्होंने चालू, लोकप्रिय फिल्में दिखलाने के बजाए पुरानी, क्लासिक फिल्में प्रदर्शित करना शुरू कर दिया। इससे उनके पिता को काफी निराशा हुई,' लेकिन उन्हें सामान्य तो किसी ने कभी माना ही नहीं था। इन्हीं दिनों उन्हें नृत्य सीखने का भी शौक पैदा हुआ। उन्होंने अपने आप 'नागिन' का नृत्य, 'देवता' में कमला का तथा भानुमति का 'विप्र नारायण' नृत्य सीखा। इन्हीं दिनों आज से बीस वर्ष पूर्व उन्होंने गंभीरता से रिकॉर्ड संग्रह करना शुरू किया। उस समय उनके पास चार हजार रिकॉर्ड थे और अब यह संख्या छब्बीस हजार हो गई है।

रंगाराव के संग्रह में २५ विदेशी तथा २० भारतीय भाषाओं, जिनमें तुलू और पश्तू तथा दक्षिण की चार प्रमुख भाषाएँ भी शामिल हैं, के रिकॉर्ड हैं। "मेरे पास काननदेवी का पहला रिकॉर्ड भी है। ("आपको पता है वे अभी जीवित हैं!") इसके अलावा बेगम अख्तर तथा सुंदरम्माल के भी पहले रिकॉर्ड हैं। कुछ नाटकों के सेट भी उनके पास हैं। महात्मा गांधी, विंस्टन चर्चिल, प्रं. मदनमोहन मालवीय, नेहरू, सुभाष तथा एस. सत्यमूर्ति के भाषणों के अलावा 'एनासिन', 'क्रशन साल्ट', 'कमला बिड़ी' तथा 'नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट' के विज्ञापनों के रिकॉर्ड भी उनके संग्रह में हैं।

रंगाराव का कहना है कि उनका संग्रह वास्तव में एक युग बल्कि कई युगों के सामाजिक इतिहास का दर्पण है। यह रंगारंग दर्पण युग की वास्तविक छवि है। मसलन उनकी तथाकथित कॉमेडी सीरिज के कुछ रिकॉर्डों में किसी मुंसिफ के कोर्ट का जीवन है तो किसी रेलवे स्टेशन के खोमचे वालों की आवाजें हैं, जो मयूर-पंख से लेकर अचार-मुरब्बे तक बेचते हैं और उनसे एक बूढ़ी विधवा मोल-तोल कर रही है। "तीन मिनट के इस रिकॉर्ड से ही हमें उस युग के समाज तथा रेल से यात्रा करने वाले विभिन्न वर्गों के मुसाफिरों के बारे में पता चल जाता है। इसी तरह अशोक कुमार की पुरानी फिल्म 'किस्मत' का गीत 'अब तेरे सिवा कौन मेरा' पूरे देश की तत्कालीन भावनाओं को व्यक्त करता है। वास्तव में इस गीत की देशव्यापी लोकप्रियता सिनेमा की, हमें एक दूसरे से जोड़ने की अद्‌भुत क्षमता का प्रतीक है। "सिनेमा की यह एक ऐसी विशेषता है, जो किसी अन्य माध्यम में नहीं है।" रंगाराव कहते हैं।

इसी तरह व्यक्तिगत स्तर पर भी फिल्म संगीत रंगाराव के जीवन के आत्मीय क्षणों के लिए पार्श्वसंगीत का कार्य करता है। द इंडिया मेगजीन से

बिदासरिया
बिदासरिया
बिदासरिया
बिदासरिया

सुटिंग, शर्टिंग, ड्रेस मटेरियल

हर खुशी में आपके साथ

BIDASARIA

वैज्ञानिक परीक्षण द्वारा प्रमाणित

६० वर्षों से लोकप्रिय
अत्यन्त महीन

1985-86
TRANSWORLD TRADE FAIRS
GOLD MEDAL
SELECTION AWARD

स्वर्ण पदक विजेता

जे.डी.
बिटको®
(काला) दंत मंजन

BYTCO • बिटको • BYTCO • बिटको • BYTCO • बिटको • BYTCO • बिटको • BYTCO

बॉम्बे डाइंग

सूटिंग, शर्टिंग
ड्रेस मटेरियल
साड़ियाँ
मिल्स शोरूम

लिबास

२/५, एम. जी. रोड, कोठारी मार्केट के पास, इन्दौर
मिल्स अप्रुव्हड होलसेल डीलर:-
दयाल कार्पोरेशन
कोठारी मार्केट के पास, इन्दौर

डेल्टा इंजन के साथ.

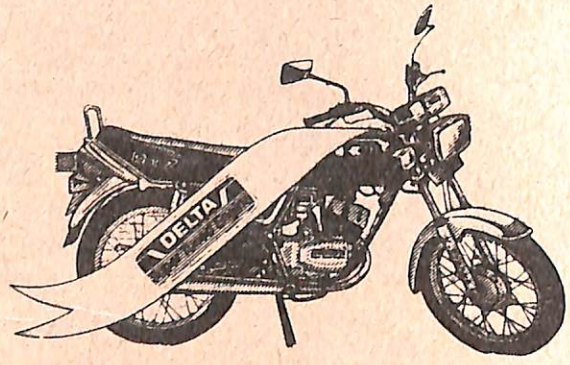

KAWASAKI BAJAJ
KB100 RTZ

अधिकृत विक्रेता:
सांघी ऑटोमोबाइल्स
५७७, एम. जी. रोड, इन्दौर, फोन-३२०७८

गोदाम में रखा है फिल्मों का पार्श्व-संगीत

● जयप्रकाश चौकसे

कॉपी राईट एक्ट के चोर दरवाजों के कारण फिल्म के पार्श्व संगीत में बहुत बेईमानी हो रही है। अधिकांश निर्माता **"स्टॉक संगीत"** के टुकड़ों को अपनी फिल्म में जोड़कर पार्श्व संगीत की व्यवस्था करते हैं। सही तरीका तो यह है कि पूरा पार्श्व संगीत रिकॉर्ड कराया जाए, परन्तु इस कार्य में धन और समय लगता है। आज का निर्माता सृजनशील नहीं है, वह कंजूस डंडी मार बनिया है। किसी भी फिल्म के प्रभाव को बढ़ाने का एकमात्र तरीका पार्श्व संगीत है और इसी पर लोग धन नहीं खर्च करना चाहते।

बंबई के कई संपादकों (फिल्म एडिटर) ने पुरानी देशी-विदेशी फिल्मों के पार्श्व संगीत को पुनः मुद्रित कर अपना स्टॉक बढ़ा लिया है। वे बीस हजार रुपयों में पूरी फिल्म में चोरी के टुकड़े लगा देते हैं। अतः एक ही फिल्म के पार्श्व संगीत में खेमचंद प्रकाश, सचिन देव बर्मन और शंकर-जयकिशन से लेकर मोजार्ट की सातवीं सिम्फनी तक के टुकड़े मौके-बेमौके बजते रहते हैं। यह कार्य अनैतिक भी है और फिल्म के साथ नाइंसाफी भी है।

सृजनशील निर्देशक अपनी फिल्म का पार्श्व संगीत रिकॉर्ड करता है। रिकॉर्डिंग रूम में फिल्म दिखाई जाती है और फिल्म के दृश्यों के मूड के अनुरूप संगीत की रचना की जाती है। सौ-दो सौ फीट फिल्म बार-बार चलाई जाती है और उसी लम्बाई की रचना रिकॉर्ड की जाती है। आज से २५ वर्ष पूर्व किसी भी रिकॉर्डिंग रूम में फिल्म चलाने की व्यवस्था नहीं थी। उन दिनों संगीतकार पूरी फिल्म को एडिटिंग टेबल पर देखकर समय नोट करता था फिर उस लंबाई की रचना तैयार करता था। वह पूरी फिल्म को मूड के अनुसार कई टुकड़ों में बाँटकर पूरा संगीत तैयार करता था और स्टॉप वॉच हाथ में लेकर रिकॉर्डिंग रूम में रचना को रिकार्ड करता था। उस जमाने में संगीतकार एक फिल्म के पार्श्व संगीत के लिए एडिटिंग टेबल पर महीने दो महीने काम करता था। फिर पूरी तैयारी के सात रिकॉर्डिंग रूम में जाता था। क्या आप विश्वास करेंगे कि "मुगले-आज़म" का पार्श्व संगीत सिर्फ तीन रिकॉर्डिंग शिफ्ट अर्थात चौबीस घंटे में रिकॉर्ड हुआ है। इस सफलता के पीछे नौशाद का चार माह का परिश्रम था। रिकॉर्डिंग रूम में फिल्म दिखाने की सुविधा न होते हुए भी ये कार्य हुआ है। इसके विपरीत मनोज कुमार की 'क्रांति' का पार्श्व संगीत ३५ शिफ्टों में अर्थात २८० घंटों में रिकॉर्ड हुआ और यह भी चार माह के अंतराल में। इसी कारण मनोज ने लक्ष्मी-प्यारे के साथ काम बंद कर दिया। आज के संगीतकार के पास एडिटिंग टेबल पर बैठकर काम करने का समय नहीं है। लक्ष्मी-प्यारे में प्रतिभा की कमी नहीं है सिर्फ समय नहीं है, अतः वे रिकॉर्डिंग रूम में ही फिल्म देखते हैं, वहीं रचना करते हैं और फिर रिकॉर्ड करते हैं।

जिन दिनों रिकॉर्डिंग रूम में फिल्म दिखाने की व्यवस्था नहीं थी उन दिनों जयकिशन मन ही मन बीट गिनकर पार्श्व संगीत रिकॉर्ड करते थे। जयकिशन ने कभी हाथ में स्टॉप वॉच नहीं ली। उसे टाइमिंग की ईश्वर प्रदत्त देन थी। 'संगम' जैसी २४ रील की फिल्म का पार्श्व संगीत केवल सात दिन में रिकॉर्ड हुआ था। लक्ष्मी-प्यारे ने राजकपूर की 'प्रेम रोग' के लिए काफी दिन लगाए थे। रिकॉर्डिंग रूम में राजकपूर ने इच्छा जाहिर की कि पार्श्व संगीत के समय ही 'मैं हूँ प्रेम रोगी' के एक इन्टरल्यूड (मुखड़े और अंतरे के बीच का संगीत) को पुनः रिकॉर्ड कर लें, क्योंकि मूल गीत में बहुत मामूली सी गलती रह गई है। प्यारे ने कहा कि 'आजकल सब चलता है। राज साहब।' बस इतना-सा वाक्य और राजकपूर के मन में कोई तार टूट गया। मैं समझता हूँ कि प्यारे ने थकान के कारण यह बात कही थी। राजकपूर को एतराज था '! सब चलता' पर क्योंकि वे एक संपूर्ण और समर्पित सृजक थे। बॉबी, सत्यम और प्रेमरोग तीन महान संगीतमय फिल्मों की जोड़ी टूट गई।

आजकल कुछ निर्माता अपनी फिल्म के महत्वपूर्ण दृश्यों का पार्श्व संगीत रिकॉर्ड करते हैं और बाकी भाग में स्टॉक संगीत के टुकड़े लगाते हैं। लुई बैंक (टी.वी. फेम) एक फिल्म के पार्श्व संगीत का ठेका अस्सी हजार रुपयों में लेते हैं। पंचम के सहायक भी ठेके पर काम करते हैं।

सबसे अधिक दुःख की बात यह है कि आकाशवाणी और दूरदर्शन भी अपने नाटकों में स्टॉक संगीत का प्रयोग करते हैं जो विभिन्न फिल्मों से चोरी किया गया है। राजकपूर की 'जोकर' पहली भारतीय फिल्म थी जिसके पार्श्व संगीत का रिकॉर्ड अलग से एच.एम.वी. ने निकाला था और इसी का प्रयोग आकाशवाणी जी खोलकर करता है। जब सरकार ही रॉयल्टी की चोरी करे तो दूसरों को क्या दोष दें।

सलिल चौधरी ने कुछ फिल्मों का पार्श्व संगीत दिया है जिनके संगीतकार कोई और थे। नौशाद ने भी 'पाकीजा' का पार्श्व संगीत दिया था, क्योंकि पाकीजा के संगीतकार की मृत्यु हो गई थी।

मालदार हैं मुलाणी रिकॉर्डों के मामले में

केतन मेहता की फिल्म 'मिर्च-मसाला' आपने देखी होगी। उसमें ब्रिटिश राज के सूबेदार नसीरुद्दीन शाह चाबी वाले ग्रामोफोन पर रिकॉर्ड बजाते हैं। जिस संगीत रसिक ने यह पचास वर्ष पुरानी रिकॉर्ड केतन मेहता को उपलब्ध कराई उसका नाम है—**नारायण पुरुषोत्तम मुलाणी।** उनके पास पिछले ७५ बरसों के फिल्मी और गैर फिल्मी गीतों के लगभग तीन हजार रिकॉर्ड हैं। जिन दिनों स्व. मोहम्मद रफी अपने कुछ पुराने गीतों के रिकॉर्ड तलाश रहे थे, मुलाणी के पास उन्हें पाकर उनकी आँखों में आँसू आ गए थे।

फिल्म उद्योग की पचहत्तरवीं सालगिरह के अवसर पर रिकॉर्ड बनाने वाली एच.एम.वी. कंपनी ने भी इस अवसर पर पिछले पचास वर्षों के अमर गीतों का एक कैसेट "डाउन मैलोडी लेन" जारी करने का विचार किया। यह काम आसान नहीं था, क्योंकि वे प्रतिवर्ष हजारों की संख्या में रिकॉर्ड जारी करते हैं। इस काम को आसान बनाने के लिए एच.एम.वी. के तुषार भाटिया ने मुलाणी से ही संपर्क किया और "डाउन मैलोडी लेन" का पहला कैसेट जारी हुआ। इस कैसेट में १९३२ में बनी फिल्म 'माया मच्छिंदर' से लेकर १९४५ की 'जीनत' तक के बाईस गीत शामिल किए गए हैं।

प्रचार से दूर, एकांत प्रिय नारायण भाई कच्छ के भुज से चौबीस किलोमीटर दूर निरोड़ा गाँव के मूल निवासी हैं। पिछले कई बरसों से उनका परिवार बंबई में कारोबार कर रहा है। यह परिवार प्रारंभ से ही संगीत प्रेमी रहा है। हिमांशु राय की 'अछूत कन्या' के पार्श्व गायक माधवराव भास्कर नारायण बचपन में उनके घर संगीत सीखने आते थे। जिन दिनों नारायण बंबई की न्यू एरा स्कूल में पढ़ते थे, प्रसिद्ध गुजराती संगीतकार पिनाकिन त्रिवेदी संगीत सिखाने आते थे। उनके बड़े भाई उस्ताद लतीफत हुसैन खाँ से संगीत सीखते थे। घर पर सरस्वती देवी, बेगम अख्तर, बाल गंधर्व, सिद्धेश्वरी, रामकृष्ण बुआ वझे, पं. ओंकारनाथ ठाकुर और हीराभाई बड़ोदेकर उनके घर आ चुके हैं।

मुलाणी के संग्रह में मद्रास, कलकत्ता, पूना और कोल्हापुर से एकत्र किये हुए 'प्रभात फिल्मस्', 'बॉम्बे टॉकीज', मिनर्वा मूवीटोन के रिकॉर्ड क्रमवार, बैनर, गायक आदि के अनुसार वर्गीकृत किए हुए हैं, इनके अलावा शास्त्रीय, नाट्य संगीत, भजन तथा लोक-संगीत के भी दुर्लभ रिकॉर्ड उनके पास हैं। किसी भी रिकॉर्ड को खोजने में उन्हें एक पल भी नहीं लगता। उनकी पत्नी भानुबेन के अनुसार: "इनके दिमाग में कम्प्यूटर है, इन्हें किसी सूची की जरूरत नहीं पड़ती।" मुलाणी दंपति का चौदह गुणा बारह का पूरा बेडरूम रिकॉर्डों से भरा हुआ है।

एच.एम.वी. ने अपने इस कैसेट का शीर्षक उन्हीं के एक सेवानिवृत्त साउंड रिकार्डिस्ट श्री जी.एन. जोशी की संस्मरणात्मक पुस्तक 'डाउन मैलोडी लेन' से ग्रहण किया है।

फिल्म मिर्जा साहिबाँ में नूरजहाँ और त्रिलोक कपूर

आपकी नजरों ने समझा...

- मीर तकी मीर के कलाम से गालिब जितना प्रभावित हुए थे, संगीतकार मदनमोहन की दो गजलों- "है उसी में प्यार की आबरू' तथा 'आपकी नजरों ने समझा'- से संगीतकार नौशाद प्रभावित थे। इन गजलों को सुनते ही नौशाद सीधे मदन मोहन के घर पहुँचे और गालिब के अंदाज में बोले- "मुझे ये दो गजलें दे दो, मेरा सारा संगीत ले लो।"
- संगीत जोड़ी लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल किसी जमाने में मदनमोहन के आर्केस्ट्रा में बहैसियत सांजिदे के काम करते थे।
- राहुल देव बर्मन का यह आज भी विश्वास है कि फिल्म संगीत में मदन मोहन का अपना एक अलग घराना था।

प्रीत किए दुःख होय

- बाम्बे टॉकीज की फिल्म अछूत कन्या (१९३६) के निर्माण के पीछे गाँधीजी का अछूतोद्धार आंदोलन था। अशोक कुमार और देविका रानी की जोड़ी इस फिल्म से सुपरहिट हुई थी। उन दिनों पार्श्व गायन का चलन न होने से इन दोनों ने अपने गीत खुद गाए थे। अछूत कन्या का संगीत निर्देशिका सरस्वती ने दिया था। उनकी बहन चन्द्रप्रभा ने अछूत कन्या में एक मार्मिक भूमिका अभिनीत की थी। जो मैं ऐसा जानती प्रीत किए दुःख होय-गीत भी चन्द्रप्रभा ने अपनी आवाज में गाया था।

सुनो गजर क्या गाए

- फिल्म बाजी (१९५१) के परदे के पीछे की कहानी परदे के बाहर बहुत कम लोगों को मालूम है। अभिनेता बलराज साहनी ने इस फिल्म के जरिए पहली बार पटकथा लिखी। गुरुदत्त पहली बार निर्देशन के मैदान में उतरे। साहिर और सचिन दा की सफल जोड़ी का श्रीगणेश बाजी से हुआ। मोनासिंह को कल्पना कार्तिक नाम इसी फिल्म ने दिया। गीताबाली के साथ देव आनंद की जोड़ी बाजी से हिट रही। किशोर कुमार की आवाज देव आनंद को इसी फिल्म से जमी। गीता दत्त ने बाजी में अपने गले का कमाल दिखाया- *सुनो गजर क्या गाए *तदबीर से बिगड़ी हुई तकदीर बना ले *ये कौन आया ये कौन आया।

जाने वो कैसे लोग थे

- गुरुदत्त की फिल्म प्यासा, संगीतकार सचिन देव बर्मन तथा गीतकार साहिर लुधियानवी की जोड़ी की आखरी फिल्म थी। प्यासा को तो अद्‌भुत सफलता मिली, मगर अचरज की बात यह है कि सचिन दा और साहिर को प्यासा के लिए कोई पुरस्कार नहीं मिला। १९५८ में संगीत नाटक अकादमी ने सचिन दा को और फिल्म क्रिटीक अवार्ड साहिर को मिला। मेट्रो सिनेमा में आयोजित पुरस्कार वितरण में साहिर की जगह शकील को पुकारा गया। वे इनाम लेने मंच पर चढ़ भी गए थे। गलती मालूम होने पर बेचारे खाली हाथ लौटे। पुरस्कार कृष्ण मेनन वितरित कर रहे थे।

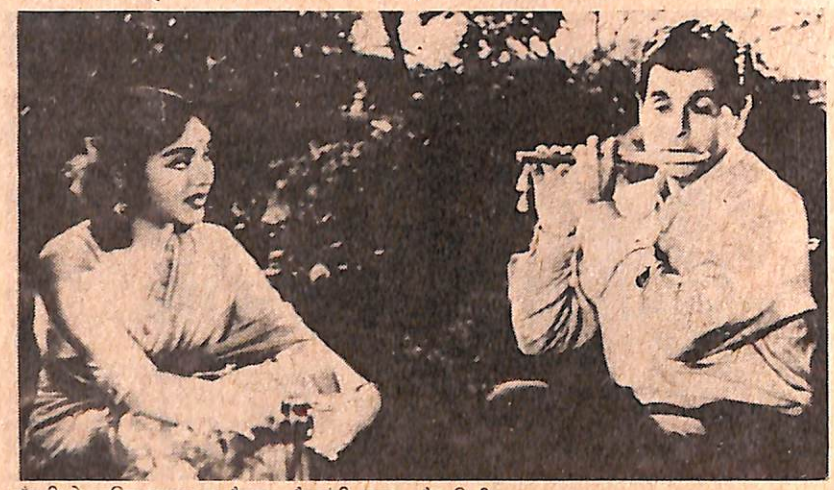

बाँसुरी के जरिए प्यार का पैगाम: वैजयंती माला और दिलीप कुमार

◆◆◆

मैं गीत सुनाता जाऊँ

एक बार अभिनेता मोतीलाल ने अपने बंगले पर अपने जन्म-दिन की पार्टी दी। मोतीलाल और सहगल-दो शरीर, एक जान थे। उन दिनों सहगल बहुत बीमार थे, इसलिए मोतीलाल ने उन्हें नहीं बुलाया। जब सहगल को इस बात का पता चला तो फौरन बिस्तर से उतर पड़े और ड्राइवर से कार लाने के लिए कहा। सबने उन्हें बहुत रोका, मगर वे नहीं माने। कहा, "मेरे यार का जन्मदिन है और मैं न जाऊँ?" मोतीलाल ने लपककर सहगल को गले से लगा लिया। दोनों की आँखें भर आईं। सहगल ने मोती को उलाहना देते हुए कहा-'अरे जालिम, अभी तो मैं जिंदा हूँ, मुझे बुला लिया होता।' मोतीलाल बोले, 'तुम्हारे स्वास्थ्य को देखते हुए मैंने तुम्हें बुलाना ठीक नहीं समझा था।' 'गोली मारो स्वास्थ्य को।' सहगल ने झुँझलाते हुए कहा, 'मैं ठीक हूँ। जरा तानपुरा लाओ। आज मेरे यार का जन्मदिन है। मैं गाऊँगा।'सबने मना किया, मगर वे नहीं माने और सुबह के चार बजे तक गाते रहे। बीच-बीच में खाँसते भी जाते थे। जब कभी मोतीलाल नब्ज देखने लगते तो फौरन अपना हाथ छुड़ा लेते।

भारतीय शास्त्रीय संगीत की समृद्ध विरासत

● शम्भूनाथ मिश्र

आम तौर पर भारतीय शास्त्रीय संगीत को हिन्दुस्तानी और कर्नाटक दो संगीत पद्धतियों में विभाजित किया जाता है लेकिन दोनों संगीत-पद्धतियों के सार-तत्व एक ही हैं। स्वर और लय के व्यवस्थित रूप धारण करने पर जिस कला का प्रादुर्भाव होता है, वही संगीत है।

प्राचीन काल से ही भारतीय संगीत भक्तिमय और धार्मिक अनुष्ठानों से सम्बद्ध रहा है। शिव और सरस्वती को संगीत का आदिप्रेरक मानते हुए कहा गया है कि ब्रह्मा ने सरस्वती को संगीत की शिक्षा दी, सरस्वती ने नारद को और नारद से यह गन्धर्वों तक पहुँचा। संगीत- शास्त्रियों ने दो प्रकार के संगीत का अस्तित्व स्वीकार किया है-मार्गी और देशी। मार्गी अर्थात मोक्ष-प्राप्ति का संगीत और देशी यानी आम लोगों का संगीत। भारतीय संगीत का आदि रूप वेदों में मिलता है। चूँकि वेदों का काल ईसा से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व निर्धारित किया गया है, इसलिए भारतीय संगीत का इतिहास लगभग चार हजार वर्ष पुराना है। विश्व भर में सबसे प्राचीन संगीत सामवेद में मिलता है। वैसे, सभी वेदों के स्वर-पाठ के लिए उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के विशिष्ट चिह्न थे लेकिन सामवेद के गान अर्थात 'सामिक' के लिए ऋषियों द्वारा तैयार की गई एक पूरी स्वरलिपि थी, जो संसार भर में सबसे पुरानी मानी जाती है।

इतिहास

भरत का 'नाट्यशास्त्र' (ईसा पूर्व ५०० से ४०० ईस्वी) भारतीय संगीत का सबसे प्राचीन ग्रंथ है जिसमें श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, जाति और ताल का विशद विवेचन किया गया है। तेरहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में शारंगदेव ने 'संगीत रत्नाकर' में भारतीय संगीत का विस्तृत शास्त्र प्रस्तुत करते हुए पहली बार रागों का सम्बन्ध देवी-देवताओं और ऋषियों से जोड़ा। तेरहवीं सदी तक भारतीय संगीत हिन्दुस्तानी और कर्नाटक में विभक्त नहीं हुआ था। चौदहवीं और पन्द्रहवीं सदी में, मुगलों के प्रभुत्व के कारण, उत्तर भारतीय संगीत पर फारसी- ईरानी संगीत का प्रभाव पड़ने लगा और काफी भ्रम पैदा हुआ। कुछ मुसलमान शासकों ने अपने गवैयों के साथ ही हिन्दू संगीतज्ञों को भी अपने दरबार में रखा और दोनों प्रकार के संगीत के मिश्रण को प्रोत्साहित किया। इससे मुसलमान और हिन्दू संगीतज्ञों में शासक की नजर में बढ़िया उतर कर इनाम पाने की प्रतियोगिता शुरू हुई और पुराने संगीत में फेरबदल तथा नए रागों की रचना का सिलसिला चल निकला।

इस नए 'आधुनिक संगीत' को विशेष रूप से सुल्तान अलाउद्दीन (१२९५-१३१६), उनके प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो (१२५४-१३२५), जोनपुर के सुल्तान इब्राहीम शर्की (१४००-४०), गुजरात के सुल्तान बहादुर (१५२६-३६) और अंततः अकबर महान (१५५६-१६०५) ने प्रोत्साहन दिया।

अमीर खुसरो को उत्तर भारत के संगीत के दिग्विन्यास का सबसे बड़ा श्रेय है। संगीत के अच्छे ज्ञाता होने के नाते उन्होंने कव्वाली-गायन, ख्याल- गायकी का आरम्भ किया और भारतीय एवं फारसी के संगीत-तत्वों का मिश्रण कर कुछ नए राग बनाए। कड़ा (प्रयाग के निकट) के अधिपति मलिक सुल्तान के पुत्र बहादुर मलिक के प्रयत्न से संगीत के विविध मतों पर विचार करके 'संगीत शिरोमणि' नामक एक समन्वयात्मक ग्रंथ लिखा गया। इसके बाद पंद्रहवीं सदी में महाप्रभु चैतन्य के प्रभाव से बंगाल में भक्ति संगीत एवं संकीर्तन को बढ़ावा मिला।

उत्तर भारतीय संगीत का काफी कुछ विकास ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर (१४८६-१५१९) के संरक्षण में हुआ। उत्तर भारत के लगभग सभी संगीतज्ञ उस समय ग्वालियर में इकट्ठा थे। मानसिंह के प्रोत्साहन से ध्रुपद-गायन की एक शक्तिशाली शैली विकसित हुई। उन्होंने 'मान कुतूहल' नामक ग्रंथ रचा जो हिन्दी का संगीत-विषयक पहला ग्रंथ है। उन्होंने गूजरी, बहुला गूजरी, माला गूजरी और मंगला गूजरी नामक चार नए रागों की रचना भी की। अकबर महान के समय हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत अपने शिखर पर पहुँचा। उनके दरबार में कुल पैंतीस संगीतज्ञ थे, जिनमें तानसेन मुख्य दरबारी गायक थे। तानसेन ने ध्रुपद-धमार की रचना के साथ ही कई नए राग भी निकाले- मियाँ की तोड़ी, मियाँ की मल्हार आदि। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के इतिहास में एक और नाम सोलहवीं शती के पुण्डरीक विट्ठल का है जिन्होंने 'सद्राग चंद्रोदय', रागमाला',

नसीरुद्दीन खाँ (गायक)

रेहमत खाँ (गायक)

बालकृष्ण बुआ (गायक)

नाना साहेब पानसे (पखावज)

अल्लादिया खाँ (गायक)

भास्कर बुआ बाखले (गायक)

अलाउद्दीन खाँ (सरोद)

अब्दुल करीम खान (गायक)

रामकृष्ण बुआ वझे (गायक)

हाफिज अली खाँ (सरोद)

फैयाज खाँ (गायक)

बुन्दू खान (सारंगी)

रज्जब अली खाँ (गायक)

बड़े गुलाम अली खाँ (गायक)

अमीर खाँ (गायक)

बेगम अख्तर (गायिका)

केसरबाई केरकर (गायिका)

सवाई गंधर्व (गायक)

'रागमंजरी' और 'नर्तन निर्णय' नामक चार पुस्तकें लिखीं।

संगीतोद्धार

सत्रहवीं सदी के अंत तक हिन्दुस्तानी संगीत के सिद्धांत और व्यवहार के बारे में काफी भ्रम उठ खड़ा हुआ था जिसे सुलझाने के लिए जयपुर के महाराज सवाईप्रताप सिंहदेव ने जयपुर में संगीतज्ञों और संगीतशास्त्रियों का एक सम्मेलन बुलाया था। इसी सम्मेलन में बिलावल को हिन्दुस्तानी संगीत का मानक थाट माना गया। उन्नीसवीं सदी में ब्रिटिश इंडिया कंपनी के समय, जब अधिकांश अँगरेजों ने भारतीय संगीत को 'मारे जाते सूअर की रिरियाती चीख' कहकर नकारा तब भारतीय संगीतज्ञों में नवचेतना का संचार शुरू हुआ।

इस सदी के उत्तरार्द्ध में, संगीताकाश में दो 'विष्णुओं' का उदय हुआ—पंडित विष्णुनारायण भातखंडे और पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर। पलुस्करजी ने देश के कोने-कोने में शास्त्रीय संगीत का प्रचार किया। संगीत की सुव्यवस्थित शिक्षा देने के लिए उन्होंने १९०१ में लाहौर में और १९०८ में बंबई में, गांधर्व महाविद्यालय की स्थापना की। संगीत पर उन्होंने लगभग साठ पुस्तकें लिखीं और सुप्रसिद्ध स्वरलिपियाँ प्रकाशित कीं। इस प्रकार हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का बाकायदा प्रशिक्षण पहली बार शुरू हुआ। भातखंडेजी ने दूर- दूर तक की यात्राएँ कर, देश की तमाम रियासतों में उपलब्ध संगीत-ग्रंथों का अध्ययन कर उस्तादों के घरानों की अप्राप्य गायकी का संकलन किया और रागों के शुद्ध रूप, तथा उनके परस्पर संबंधों को जाना। उन्होंने कई रागों में खुद बंदिशें बनाईं और बंदिशों की एक नई परम्परा की शुरूआत की ताकि रागों की मूल कल्पना श्रोताओं तक पहुँच सके। उन्होंने संगीत-शास्त्र पर 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' नामक ग्रंथ चार भागों में और ध्रुपद, धमार तथा ख्याल का संग्रह करके 'हिन्दुस्तानी संगीत क्रमिक' नामक ग्रंथ के ६३ भाग प्रकाशित किए। बड़ौदा और ग्वालियर में संगीत विद्यालय खोलने के बाद उन्होंने १९२६ में लखनऊ में भातखंडे संगीत महाविद्यालय की स्थापना की। विष्णुद्वय के प्रयासों से संगीत न केवल जन-जन तक पहुँचा बल्कि उनके द्वारा स्थापित संगीत विद्यालयों में दी जा रही निःशुल्क संगीत-शिक्षा से संगीत प्रेमी छात्रों को संगीत सीखने में भी बड़ी मदद मिली। लेकिन यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि संगीत- शिक्षण की अनेक विशिष्ट संस्थाओं के बावजूद देश के अधिकांश वर्तमान ख्यातिप्राप्त संगीतज्ञों ने संगीत का ज्ञान पारम्परिक संगीत घरानों से ही प्राप्त किया। संगीत के ये पारम्परिक घराने

दिल्ली, लखनऊ, जयपुर, बनारस, आगरा, पटियाला, ग्वालियर, मथुरा, रामपुर आदि में मौजूद थे। महाराष्ट्र का इस मायने में विशेष स्थान रहा कि वहाँ मुख्यत: हिन्दू संगीतकार ही हुए जबकि अन्य स्थानों पर मुख्यत: मुसलमान संगीतज्ञों ने संगीत को आगे बढ़ाया।

ध्रुपद और ख्याल

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत ध्रुपद और ख्याल तथा अर्द्धशास्त्रीय संगीत के अंतर्गत ठुमरी, दादरा और टप्पा आते हैं। ध्रुपद प्राचीनतम गायन है जिसमें संगीत का गंभीर स्वरूप अक्षुण्ण बना रहता है। आरंभ में ध्रुपद की चार गायन शैलियाँ (डागुर, खंडहार, नौहार और गौड़ीय) प्रचलित थीं। बाद में, अन्य शैलियाँ विकसित हुई जो कमोबेश इन्हीं बानियों की शाखाएँ थीं। ग्वालियर, आगरा, बिहार के क्षितिपाल मल्लिक घराने और बंगाल के विशुनपुर घराने ने ध्रुपद- गायन में बहुत योगदान दिया। सुप्रसिद्ध ध्रुपद गायकों में नत्थन मीरबख्श, कादर बख्श, इद्दू-हस्सू खाँ, रहमत खाँ, धग्धे खुदाबख्श, डागर-बंधु, रामचतुर मल्लिक, सियाराम तिवारी, लक्ष्मण प्रसाद चौबे आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

एक समय था, अंतिम मुगल बादशाह तक, जब ख्याल को उच्च गायन नहीं समझा जाता था। सदारंग और अदारंग ने सैकड़ों ख्याल बनाए लेकिन वे स्वयं ध्रुपद ही गाते थे। तानसेन स्वयं सुप्रसिद्ध ध्रुपद-गायक थे। ध्रुपद लगभग दो सौ वर्षों तक शीर्ष स्थान पर रहा, उसके बाद धीरे- धीरे ख्याल ने पैर जमाना शुरू किया। ध्रुपद में आलाप, स्थाई, अंतरा, संचारी और आभोग होते हैं जबकि ख्याल में आलाप, स्थाई अंतरा और बोलतान होते हैं। ध्रुपद की बंदिश मुख्यतया भक्तिरस और वीररस से संबंधित होती है जबकि ख्याल की बंदिश में प्रेम, श्रृंगार, विरह और यदाकदा धार्मिक भावनाएँ शामिल होती हैं। ध्रुपद में बोलों की बजाए आलाप को ज्यादा प्रधानता दी गई है। ख्याल गायकों ने श्रोताओं की रुचि को देखते हुए बोलों को प्रधानता दी और ताल-वाद्य संगीत की शुरूआत की। इसीसे विलम्बित और द्रुत ख्याल की शैली विकसित हुई।

राग का स्वरूप

रागों को भारतीय संगीत की आत्मा कहा गया है। प्रत्येक राग दिन या रात के किसी प्रहर या किसी ऋतु से सम्बद्ध होते हैं। इस प्रकार, भारतीय संगीत मनुष्य और प्रकृति के बीच तादात्म्य प्रस्तुत करते हुए दोनों के भावों को एक साथ पिरोता है। हर राग की छह रागिनियाँ मानी गई हैं यानी कुछ प्रमुख रागों के अंतर्गत अन्य राग मिलाए गए हैं, फिर उनके अंतर्गत, राग पुत्रों के समान, कुछ और राग मिलाए गए। पाँचवीं से सातवीं शती के

पन्नालाल घोष (बाँसुरी)

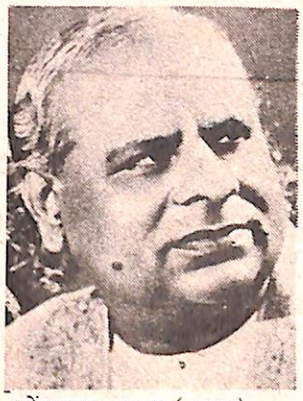
ओंकारनाथ ठाकुर (गायक)

सिद्धेश्वरी देवी (गायिका)

विलायत हुसैन खान (गायक)

मोईनुद्दीन डागर (गायक)

अली अकबर खाँ (सरोद)

बिस्मिल्ला खाँ (शहनाई)

विलायत खाँ (सितार)

भीमसेन जोशी (गायक)

हीराबाई बड़ोदेकर (गायिका)

मल्लिकार्जुन मंसूर (गायक)

गंगूबाई हंगल (गायिका)

गिरिजा देवी (गायिका)

अल्लारखा (तबला)

नसीर अमीनुद्दीन डागर (गायक)

फिरोज दस्तूर (गायक)

जिया मोईनुद्दीन डागर (रुद्र वीणा)

अब्दुल वहीद खान (गायक)

निखिल बनर्जी (सितार)

किशोरी अमोणकर (गायिका)

अमजदअली खाँ (सरोद)

हरिप्रसाद चौरसिया (बाँसुरी)

शिवकुमार शर्मा (संतूर)

पंडित जसराज (गायक)

बीच मतंग लिखित 'वृहद्देशी' में 'राग' शब्द का पहली बार उल्लेख हुआ। फिर नारद कृत 'संगीत मकरंद' (सातवीं से ग्यारहवीं सदी) में रागों के दो समूह बताए गए और रागों को प्रहरों के हिसाब से विभाजित किया गया। सोमेश्वर की 'अभिलाषार्थ चिंतामणि' (११३१) में छह मौसमों के हिसाब से रागों का वर्गीकरण हुआ।

राग एक ऐसा स्वर-संयोजन है जिसके आरोह और अवरोह में कुछ स्वरों पर अधिक जोर दिया जाता है और कुछ स्वरों का बिल्कुल प्रयोग नहीं किया जाता। ये स्वर क्रमशः 'वादी' और 'सम्वादी' कहलाते हैं। आत्मविस्मृति की अवस्था या समाधि की प्राप्ति ही भारतीय शास्त्रीय संगीत की आधारभूत प्रवृत्ति है। यदि आप हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के एक औसत कार्यक्रम पर विचार करें तो यह पाएँगे कि गायक सावधानी के साथ आलाप में बड़े इत्मीनान से धीरे-धीरे आगे बढ़ता है। वह राग से सभी स्वरों का एक ही साथ इस्तेमाल नहीं करता वरन 'मंद्र सप्तक' फिर मध्य सप्तक और अंत में तार सप्तक में जाकर राग की बढ़त करता है।

शास्त्रीय संगीत में मींड़, गमक और श्रुतियों का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। ये ही संगीत को रहस्यमय और स्वप्निल आकर्षण प्रदान करते हैं। इन अलंकरणों के द्वारा राग की बढ़त श्रोताओं को धीरे-धीरे एक ऐसे अनुभव स्तर पर ले जाती है जहाँ केवल स्वर-माधुर्य होता है। पश्चिमी संगीत के ठीक विपरीत, भारतीय संगीत हमेशा एक विशेष भाव पर केंद्रित होता है, जिसकी वह व्याख्या करता है और उसे आगे बढ़ाते हुए श्रोता में आनंदातिरेक की अनुभूति उत्पन्न करता है। संक्षेप में, भारतीय संगीत, भावनाओं से भरपूर होता है और उसका प्रभाव भी काफी गहरा होता है।

वर्तमान स्थिति

यह सर्वविदित है कि काफी समय तक राजे-महाराजों और नवाबों के संरक्षण में संगीत सिर्फ महल-दरबारों और ड्योढ़ियों में ही कैद रहा।

पुराने उस्ताद बड़ी मुश्किल से किसी को शिष्य बनाते और अपनी इच्छा से उसे संगीत दान देते। आम आदमी तक संगीत की पहुँच नहीं थी। जब से राजे- महाराजों का स्थान संगीत-सम्मेलनों, अकादमियों एवं संस्थाओं, आकाशवाणी और दूरदर्शन आदि ने लिया है- संगीत और संगीतज्ञ जनसाधारण के अधिक निकट आए हैं। यह अलग बात है कि संगीत-शिक्षा की गुंजाइश में वृद्धि के साथ ही उसकी गुणवत्ता में उतनी ही तेजी से ह्रास हुआ है।

हालाँकि पिछले लगभग पाँच-छह दशकों में

हिन्दुस्तानी संगीत ने विष्णुद्वय, उस्ताद अल्लादिया खाँ, पंडित बालकृष्ण बुवा इचलकरंजीकर, अब्दुल करीम खाँ, फैयाज खाँ, अल्लाउद्दीन खाँ, बड़े गुलाम अली खाँ, मुश्ताक हुसैन खाँ, विलायत हुसैन खाँ, हाफिज अली खाँ, अमीर खाँ, ओंकारनाथ ठाकुर, डी. वी. पलुस्कर, डागर बंधु, पन्नालाल घोष, श्रीकृष्ण नारायण रातनजंकर, केसरबाई केरकर, रजब अली खाँ, सवाई गंधर्व, वहीद खाँ, सुरेशबाबू माने, रामकृष्ण बुवा बझे, भास्कर बुवा बखले, विनायक राव पटवर्धन, नारायण राव व्यास, कंठे महाराज, बड़े रामदासजी, अहमदजान थिरकवा, गोपाल मिश्र, बुन्दू खाँ, सिरेश्वरी देवी, रसूलन बाई, बेगम अख्तर, निखिल बेनर्जी प्रभृति संगीतज्ञों को खो दिया लेकिन संगीतज्ञों की एक समृद्ध परम्परा अब भी कायम है।

'आफताबे मुसीकी' कहे जाने वाले उस्ताद फैयाज खाँ वस्तुतः हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की परम्परा के प्रतीक थे और उस युग की याद दिलाते थे जब संगीत हमारी आत्मा को गुदगुदाता था और भावुक हृदय को हँसाता एवं रुलाता था। स्वर, राग और रस के एकनिष्ठ साधक ओंकारनाथ ठाकुर के गायन में अद्वितीय सौंदर्य, गहराई और शुद्धता थी। शास्त्रीय संगीत को लोकप्रिय बनाने में उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ एवं उस्ताद अमीर खाँ के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। उन्हें श्रोताओं की पसंद-नापसंद की अच्छी जानकारी थी।

समकालीन संगीतज्ञों में पंडित मल्लिकार्जुन मंसूर, भीमसेन जोशी, कुमार गंधर्व, जसराज, किशोरी अमोनकर, गिरिजा देवी, सुनन्दा पटनायक, प्रभा अत्रे, जितेन्द्र अभिषेकी, राजन-साजन मिश्र, सियाराम तिवारी, रामचतुर मल्लिक, गंगूबाई हंगल, रविशंकर, विलायत खाँ, हलीम जाफर खाँ, अली अकबर खाँ, अमजद अली खाँ, शरण रानी, वी. जी. जोग, बिस्मिल्ला खाँ, हरिप्रसाद चौरसिया, बुद्धादित्य मुखर्जी, ज्योतिन भट्टाचार्य, एन. राजम, शिवकुमार शर्मा, किशन महाराज, गुदई महाराज, अल्लारक्खा, जाकिर हुसैन, लतीफ अहमद खाँ, रमजान खाँ, साबरी खाँ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

आज लगभग हर प्रदेश में संगीत अकादमियाँ, संगीत को बढ़ावा देने वाली दर्जनों संस्थाएँ, संगीत समारोहों के आयोजक, लांग प्लेइंग रिकॉर्ड और कैसेट बनानेवाली कंपनियाँ हैं और नव-धनाढ्य वर्ग है जो संगीतकारों को संरक्षण प्रदान कर रहा है। भारतीय संगीत का प्रचार-प्रसार विदेशों तक में हो रहा है और शास्त्रीय संगीत निर्बाध गति से आगे बढ़ रहा है।

एन. राजम (वायलिन)

किशन महाराज (तबला)

शराफत हुसैन खान (गायक)

गोपालकृष्ण (विचित्र वीणा)

प्रभा अत्रे (गायिका)

जरीन दारुवाला (सरोद)

जाकिर हुसैन (तबला)

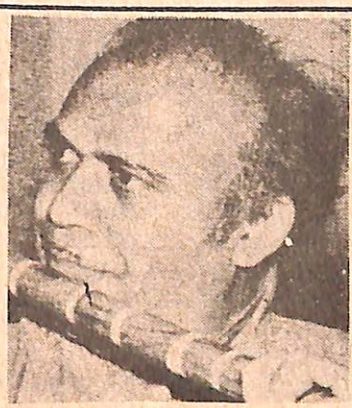

रघुनाथ सेठ (बाँसुरी)

परवीन सुल्ताना (गायिका)

मालिनी राजुरकर (गायिका)

शरण रानी (सरोद)

तेजपाल एवं सुरिन्दरसिंह (गायक

शास्त्रीय संगीत
घराने- दर-घराने

● आचार्य मृत्युंजय

साहित्य में कोई घराना नहीं होता। चित्रकला और मूर्तिकला में शैलियाँ तो हैं, घराने नहीं हैं। लेकिन, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में 'घराना' अर्थात् 'संगीत की सौंदर्य प्रणाली' की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह विशेषता विश्व के किसी संगीत में नहीं पाई जाती। एक ही राग को जब अलग-अलग घराने के गायक गाएँ तब उसका आनंद और अनुभव भी अलग-अलग होगा। घराने वस्तुतः पुरानी गुरुकुल प्रथा के प्रतीक हैं। ह गुरुकुल के विद्यार्थी को अपने आचार्य और आ के प्रति वही श्रद्धा और आस्था होती थी, जो अपनी जननी और कुल के प्रति होती है। इसी आस्था और श्रद्धा का एक सीमित विस्तार 'घराना' प्रथा में मिलता है।

कुछ संगीतज्ञों और विद्वानों के अनुसार, घराना का आदिस्रोत संस्कृत का 'गृह' अथवा हिन्दी का 'घर है। 'घर' व्यक्ति कुटुम्ब का गठबंधन होता है और 'घराना' इसी वैचारिकता का कलात्मक

संगीत सम्राट तानसेन

विस्तार। घराने की परंपरा है तो पुरानी मगर इसे महत्व मिला सोलहवीं सदी के बाद। उस जमाने में उत्तर भारत के अच्छे संगीतज्ञ अलग-अलग रियासतों-राजवाड़ों के संरक्षण में रहा करते थे। इन रियासतों के शासक अपने संगीतज्ञों के दूसरे राज्यों में जाने के खिलाफ थे। इसलिए संगीतज्ञों को एक ही रियासत में कैदी-सा जीवन बिताने को मजबूर होना पड़ा। इसका एक अच्छा प्रभाव यह पड़ा कि उन्हें समय काटने के लिए सिवाय रियाज करने और अपने संगीत को सुमधुर एवं पूर्ण बनाने के अलावा और कोई काम नहीं था। यह परंपरा कई पीढ़ियों तक चलती रही और व्यक्ति के निजी गुण या अन्य प्रभाव के कारण संगीत में संशोधन होता रहा। इसी ऐकांतिक रियाज के फलस्वरूप संगीत की अलग-अलग गायकी और प्रणाली विकसित हुई।

कोई भी संगीत परंपरा उस समय तक 'घराना' नहीं कहलाती जब तक वह परंपरा लगातार कम से कम तीन पीढ़ियों से न चली आ रही हो। दूसरे शब्दों में हर घराने में तीन योग्य कलाकार अवश्य होने चाहिए- गुरु अर्थात संस्थापक, उसके शिष्य और शिष्य का शिष्य। घराना प्रणाली की दो विशेषताएँ हैं- पहली तो यह कि सभी घरानों के आम अनुशासन के अतिरिक्त प्रत्येक घराने का एक अपना कलात्मक अनुशासन होता है। प्रत्येक घराना अपनी बुनियादी परंपरा को कायम रखता हुआ और साथ ही नए सांगीतिक विचारों का समावेश तथा नए आविष्कार करता हुआ आगे बढ़ता तथा पल्लवित होता है। हरेक घराने में आवाज साधने और रियाज का ढंग अलग होता है, जो उस घराने के गुरु पर निर्भर करता है। अलग-अलग घराने के सूत्रधारों ने संगीत के भिन्न-भिन्न पक्षों- तान, ताल, भाव पर जोर दिया। संगीत के प्रमुख घरानों में ग्वालियर, किराना, आगरा, इंदौर, अतरौली-जयपुर, पटियाला, मेवाती, रामपुर, दिल्ली आदि शामिल हैं। घराने ध्रुपद में भी हुए जो 'बानी' कहलाए- डागुर, खंजर, नौहार और गोबरहार।

हालाँकि **ग्वालियर घराना** सबसे प्राचीन तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता रहा है मगर ख्याल और ख्याल-गायकी के रूढ़ अंकण और प्रचार-प्रसार में कव्वाल बच्चे घराना अपने ढंग का पहला घराना कहा जाता है। इसकी शुरूआत सुल्तान शम्सुद्दीन अल्तमश के शासनकाल में मानी जाती है। इस घराने ने मध्य लय में ख्याल गायन में विशिष्टता प्राप्त की। पहली बार राग में फिरत का आरंभ इसी घराने में किया गया जिसकी पूरी नकल बाद में ग्वालियर और अन्य घरानों ने की। इसका आरंभ सबसे पहले उस्ताद बड़े मुहम्मद खाँ ने किया। इस घराने के प्रमुख उस्तादों में शक्कर खाँ, मक्कन खाँ, जद्दू खाँ, रजब अली खाँ, सादिक अली खाँ, हुसैन अली खाँ, भैया गणपत राव आदि रहे हैं। अब यह घराना समाप्त हो चुका है।

ग्वालियर घराने का आरंभ महाराज शिनकु रावजी सिंधिया के शासनकाल में उनके दो दरबारी गायकों अब्दुल्ला खाँ और कादिरबख्श खाँ से हुआ। एक अन्य मतानुसार इस घराने के जन्मदाता कादिर बख्श के पुत्र नत्थन खाँ और पीरबख्श थे। ये सुप्रसिद्ध गायक हद्दू-हस्सू खाँ के दादा थे। हद्दू खाँ के अनेक शिष्य थे। जिनमें पंडित वासुदेवराव दीक्षित, बालागुरु जोशी, बालकृष्ण बुवा, इचलकरंजीकर प्रमुख थे। गायन में सादगी और सुबोधगम्यता इस घराने की विशेषता रही है। इस घराने की गायकी की अन्य विशेषताओं में जोरदार तथा खुली आवाज का गायन, ध्रुपद अंग के ख्याल, सीधी सपाट तानें, बोलतानों में लयकारी, गमक का प्रयोग आदि शामिल हैं। इस घराने के संगीतज्ञों में पंडित ओंकारनाथ ठाकुर, विनायक राव पटवर्धन, नारायणराव व्यास, बी.आर. देवधर, कृष्णराव पंडित, बाला साहब पूछवाले, सुमति मुटाटकर, मालिनी राजुरकर, शरतचंद्र आरोलकर, जितेंद्र अभिषेकी, लक्ष्मण पंडित आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

किराना घराने की शुरूआत बीनकार उस्ताद बन्दे अली खाँ से हुई, लेकिन इसे घराने का दर्जा अब्दुल वहीद खाँ और उस्ताद अब्दुल करीम खाँ ने दिलाया। शुद्ध, स्पष्ट स्वर शैली, रेशम के समान मुलायम स्वराघात और धीमी बढ़त इस घराने की विशेषताएँ हैं। इस घराने की गायकी में बोल-उपज या लयकारी नहीं के बराबर पाई जाती है। इसमें स्वर उच्चारण के वैचित्र्य पर अधिक जोर दिया जाता है और ताल एवं लय के चमत्कार के प्रति एक तरह की उदासीनता देखी जाती है। गायक दो-चार शब्दों को लेकर अपनी बंदिश की बढ़त करता है और स्थाई अंतरे की तालबद्ध बढ़त के अनुशासन से अपने को मुक्त कर लेता है। यह कहना अनुचित न होगा कि ख्याल गायकी के क्षेत्र में जितने उच्च कोटि के कलाकार किराना घराने ने दिए हैं उतने संभवतः किसी अन्य घराने ने नहीं। आज इस घराने की गायन शैली सर्वाधिक लोकप्रिय है। सवाई गंधर्व, सुरेश बाबू माने, हीराबाई बड़ोदेकर, गंगूबाई हंगल, सरस्वती राणे, बासवराज राजगुरु और भीमसेन जोशी आदि संगीतज्ञों ने इस घराने को चार चाँद लगाए हैं।

आगरा घराने की गायकी में एक नई भावुकता, सरलता के साथ ही संयम, संतुलन की भावना और सीमा रहित कल्पना पाई जाती है। लागडांट और एक के बाद एक रोबीली और आक्रामक तानें इसकी अन्य विशेषताओं में से हैं। इस घराने के गायक ख्याल के साथ ही ध्रुपद- धमार गाने में भी कुशल रहे हैं। लयकारी के साथ ही बोल अंग का विस्तार और बोलों के साथ पलटों की बढ़त तथा ताल के विभिन्न खंडों से तान की उपज शुरू करना इस घराने की खास विशेषता रही है। मियाँ तानसेन के जामाता सुजान खाँ अथवा उनके वंश के श्यामरंग और सरसरंग नामक दो भाइयों से आरंभ हुए इस घराने के प्रचार-प्रसार का श्रेय घग्घे खुदाबख्श खाँ को जाता है। इस घराने के संगीतज्ञों में गुलाम अब्बास खाँ, कल्लन खाँ, फैयाज खाँ, अब्दुल्ला खाँ, नत्थन खाँ, दिलीपचंद्र वेदी, एस.एन. रातनजंकर, अता हुसैन खाँ, लताफत हुसैन खाँ, शराफत हसन खाँ, गोविंदराव टेम्बे, भास्कर बुवा बखले, जगन्नाथ बुवा पुरोहित, विलायत हुसैन खाँ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

अतरौली घराने के संस्थापक जूनागढ़ रियासत से सम्बद्ध दो भाई- काले खाँ और चाँद खाँ थे। इस घराने में स्वर और लय का अद्भुत संगम देखने को मिलता है। गायन में मीड़, गमक और कम्पन के साथ ही आलापचारी पर पूरा ध्यान दिया जाता है। इसके अलावा बंदिशों का सही प्रस्तुतिकरण, आलंकारिक तानें, अप्रचलित रागों की प्रस्तुति

और ताल एवं लय पर पूरा-पूरा अधिकार इस घराने की गायकी की अन्य विशेषताएँ हैं। उस्ताद अल्लादिया खाँ इस घराने के एक ऐसे जगमगाते रत्न थे, जिन्होंने अपनी अलग गायन-शैली निकाली। चूँकि अल्लादिया खाँ की संगीत-शिक्षा जयपुर में हुई, इसलिए अतरौली घराना जयपुर घराने के रूप में भी प्रसिद्ध है। इस घराने के संगीतज्ञों में केसरबाई केरकर, मोघूबाई कुर्डीकर, किशोरी अमोणकर, मल्लिकार्जुन मंसूर, निवृत्ति बुवा सरनाइक आदि उल्लेखनीय हैं। यह घराना बीनकारों का भी घराना रहा है। बीनकारों में सबसे प्रसिद्ध उस्ताद रजब अली खाँ रहे हैं।

ख्याल-गायकी का **दिल्ली घराना** सबसे प्राचीन घराना माना जाता रहा है। दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले (१७१९) के जमाने में ख्याल- गायकी का आरंभ हुआ। इसकी स्थापना मियाँ अछपाल ने की। दिल्ली दरबार के शाही गायक कादिर बख्श के बड़े बेटे तीनरस खाँ ने इस घराने को आगे बढ़ाया। मुख्यत: सारंगी वादकों से संबंधित होने के कारण इस घराने में विलंबित लय की चीजों में सूत, मीड़ और गमक का काम ज्यादा मिलता है। मध्यम लय में स्वरों का आपसी लड़-गुंथाव तथा जोड़-तोड़ का काम इस घराने की प्रमुख विशेषता है। इस घराने के संगीतज्ञों में उमराव खाँ, सरदार खाँ, अब्दुल रहीम खाँ, मुराद खाँ, निसार अहमद खाँ, आशिक अली खाँ, मम्मन खाँ, बुंदू खाँ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

पटियाला घराना वास्तव में दिल्ली का ही घराना रहा, लेकिन पटियाला रियासत में पनपने के कारण पटियाला घराना कहलाया। यह घराना उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ के कारण आज देश भर में प्रसिद्ध है। ख्यालों की कलापूर्ण बंदिश, आलंकारिक, वक्र और फिरत की तानों का प्रयोग, ख्याल के साथ पंजाब अंग की ठुमरी गाने में निपुणता, गले की तैयारी इस घराने की गायकी की विशेषता रही है। गमक अंग, तरानों की गायकी और अतिद्रुत लय में सपाट तान के कारण यह घराना अन्य घरानों से अलग ही दिखाई देता है।

स्वर और लय के तालमेल की दृष्टि से **इंदौर घराने** का स्थान पटियाला और किराना घराना के

डी. वी. पलुस्कर

ज.खण्डे

बीचों-बीच आता है। इस घराने की गायकी की शुरूआत मेरूदंड शैली से हुई। इस गायकी की धीमी गति अर्थात् विलंबित ख्याल को सुनकर ऐसा लगता है, मानों कोई व्यक्ति कच्ची नींद से अभी-अभी जागा हो और मौका मिलते ही तुरंत सो जाएगा, लेकिन उसे अपने आसपास की भी खबर हो। इस घराने के मुख्य प्रतिनिधि देवास के उस्ताद रजब अली खाँ माने जाते हैं। उस्ताद अमीर खाँ को भी इसी घराने का माना जाता है। इस घराने में आलापचारी को ज्यादा महत्व दिया गया, क्योंकि यह मूल रूप से वादकों का घराना रहा है।

रामपुर घराने की गायकी और ग्वालियर घराने की गायकी में विशेष अंतर नहीं रहा है। इस घराने के गायकों ने तराना-गायन में विशेषता हासिल की। मियाँ तानसेन के वंशज उस्ताद वजीर खाँ से इस घराने की शुरूआत हुई। इस घराने के संगीतज्ञों में निसार हुसैन खाँ, हफीज अहमद खाँ, सरफराज हुसैन खाँ, गुलाम मुस्तफा, असद अली खाँ आदि शामिल हैं।

सहसवान घराना भी ग्वालियर घराने की ही एक प्रशाखा है। इसकी शुरूआत ग्वालियर घराने के सुप्रसिद्ध गायक हद्दू खाँ के जामाता इनायत हुसैन खाँ ने की। इस घराने के संगीतज्ञों में हैदर खाँ, छज्जू खाँ, नजीर खाँ, खादिम हुसैन खाँ, इमदाद खाँ आदि रहे हैं।

संगीत के अन्य घरानों में सहारनपुर घराना, फतहपुर सीकरी घराना, खुर्जा घराना, मेवाती घराना आदि का नाम लिया जाता है। संचार-साधनों के विकास के साथ ही घरानों की हदबंदी अब लगभग समाप्त होती जा रही है।

बस्ती की लड़कियों में बदनाम हो रहा हूँ: रफीक गजनवी

जिन लोगों ने महबूब की प्रथम स्वतंत्र रूप से निर्मित फिल्म 'नजमा' देखी होगी, उन्हें उस फिल्म में अशोक कुमार और सितारा के द्वारा गाए हुए 'जल जा-जल जा पतंगे...' और 'आजा दिल को नहीं है करार' गीत याद होंगे। ये गीत उस जमाने के प्रतिनिधि हैं। उस जमाने में आज जैसे आधुनिक 'वाद्य' और तकनीक नहीं थी। ऐसे गायक भी नहीं थे। तब फिल्म संगीत कैसा था उसकी एक झलक संगीतकार रफीक गजनवी की इस फिल्म से मिलती है।

सोहराब मोदी की फिल्म 'सिकन्दर' में भी रफीक गजनवी का संगीत था, और उस फिल्म का गीत 'जिंदगी है प्यार से...' की जोशीली धुन के कारण बहुत प्रचलित हुआ था। १९४१ में ए. आर. कारदार के निर्देशन में बनी 'स्वामी' फिल्म में रफीक गजनवी ने राजकुमारी और सितारा से सुंदर गीत गवाए। नजीर की 'कलियुग' और एक दूसरी फिल्म 'सोसायटी' भी गजनवी की थी, जिसमें सितारा से गाने गवाने के उपरांत तीन गीत रफीक गजनवी ने स्वयं गाए थे। १९४३ में मिनर्वा की दो महत्वपूर्ण फिल्में 'पृथ्वी वल्लभ' और 'मेहबूब की तकदीर' आई। 'मेहबूब की तकदीर' फिल्म में शमशाद का गाया हुआ 'बोलो दरोगा जी...' में गजनवी की शैली दिखाई देती है। १९४५ में गजनवी की आखरी फिल्म 'लैला मजनू' और 'एक दिन का सुलतान' आई। नजीर और स्वर्णलता की फिल्मों के गीतों ने बहुत धूम मचाई। जौहराबाई, शांता आपटे और नूरजहाँ से भी उन्होंने गीत गवाए। बी.एम. व्यास की संस्था सनराइस के बैनर में १९४३ में फिल्म 'नौकर' बनी उसमें भी गजनवी का संगीत और नूरजहाँ का पार्श्व गायन था। १९४० से पहले की कुछ फिल्मों में उन्होंने अभिनय भी किया है। ऐसा कहा जाता है कि उनकी धुनों में सेमीक्लासिकल का काफी स्पर्श होता था। मुख्यत: उन्होंने मिनर्वा और महबूब की फिल्मों में ही संगीत दिया। प्रमुख फिल्में थीं: 'सिकन्दर' (१९४१), 'स्वामी' (१९४१), 'कलियुग' (१९४२), 'किस की बीवी' (१९४२), 'सोसायटी' (१९४२), 'दुहाई' (१९४३ में अन्य के साथ), 'नजमा' (१९४३), नौकर (१९४३), पृथ्वी वल्लभ (१९४३ में अन्य के साथ), 'तकदीर' (१९४३), लैलामजनू (१९४५ में गोविन्दराम के साथ) और एक दिन का सुल्तान (१९४५)।

RAJA RAM AND BROTHERS

Mhow-Neemuch Road,
MANDSAUR-458001.

Telephone: 2404, 2419, 2435 Gram: STARCH

Manufacturers of ISI Mark Maize Starch, Thin Boiling Starches, Battery Grade Starch, Yellow/White Dextrines, Liquid Glucose Dextrose Monohydrate, Soyabean Oil, Rice Bran Oil, Gluten Oil, Soya DOC, De Oiled Rice Bran and De Oiled, Maize Gluten.

OFFICES AT:—

BOMBAY, BANGALORE, BHOPAL, CHANDIGARH, CALCUTTA, INDORE & RAJNANDGAON.

मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र की लोकप्रिय

पापुलर ब्रेड

शुद्ध भी और स्वादिष्ट भी

पापुलर ब्रेड फैक्ट्री

लक्ष्मीबाई नगर, इंदौर, फोन : ३३५६४

जिला सहकारी केंद्रीय बैंक मर्यादित,

धार

२० सूत्री कार्यक्रम के अंतर्गत जिले के किसानों, ग्रामीणों, शिक्षित बेरोजगारों तथा विधवा, विकलांगों की आर्थिक सहायता के लिए दृढ़ संकल्पित यह अधिकोष निरन्तर आपकी सेवा में अग्रसर है:—

(१) बैंक में जमा रकम पर अन्य व्यावसायिक बैंकों से १/२ प्रतिशत अधिक ब्याज दिया जाता है।

(२) आभूषण के तारण पर ऋण।

(३) वेयर हाउस की रसीदों पर तारण ऋण।

(४) किसानों को कृषि कार्य हेतु आसान किश्तों व कम ब्याज दर पर ऋण प्रदाय।

(५) जिले में प्रधान कार्यालय के साथ ३१ शाखाएँ नागरिकों एवं कृषकों की सेवा हेतु तत्पर।

(६) प्रधान कार्यालय एवं शाखा मनावर में लॉकर्स सुविधा।

विशेष:—समितियों के सदस्यों से निवेदन है कि आप अपने ऋणों की अदायगी समय पर करके बैंक एवं समिति की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कराने में सहयोग प्रदान करें।

बी. आर. गौड़	मोहनसिंह बुंदेला
प्रबंधक	विधायक एवं अध्यक्ष

एलिफन्ट एक्सिलेन्ट चाय

TOP TEA

सबकी राय यही,
सबसे सही चाय यही

अधिकृत विक्रेता :

श्री टी कम्पनी

४६, सियागंज, इंदौर, फोन: ३६१०७

तिन तिनक तुन तानी ये है वाद्यों की कहानी

● रवीन्द्र राले

बाँसुरी

मंद-मंद पवन जब बाँसों के जंगल से गुजरी तो बाँस लहराने लगे, कठफोड़वा की कारगुजारी ने किसी बाँस को फोड़कर छेद कर दिए थे। पवन उस बाँस से गुजरी और फूट पड़े मधुर-मधुर स्वर। पवन के वेग ने और सुरीला बना दिया उस वातावरण को। किसी लकड़हारे ने यह स्वर सुना और खोज में चल पड़ा। छेद वाला बाँस तोड़ लिया। स्वर बंद हो गए, हारकर बाँस को जमीन पर रख दिया, पुनः अनुकूल पवन के कारण बाँस से स्वर फूटने लगे। लकड़हारे की समझ में आया अरे ये तो हवा का कमाल है। और उसने ओठों से बाँस लगा लिया। फूँका और स्वर फिर फूट पड़े। फिर तो लकड़हारों और गडरियों का प्रिय साज बन गया। बाँस से बाँसी बनी। बाँसी से बंसी और बंसी से अपभ्रंश वंशी। महान संगीतज्ञ कृष्ण के ओठों से लगकर बंसी अमर हो गई। कृष्ण की कल्पना राधा के बिना तो की जा सकती है। बंसी के बिना नहीं। बंसी वादन की परम्परा ईसा के पूर्व शताब्दियों से रही है, प्राचीन चित्रों, शिल्पों, ग्रंथों में इसका उल्लेख इसकी प्राचीनता स्पष्ट करता है। लोक-वादकों की बंसी तीन-चार स्वरों की रही और विकसित होकर सात स्वरों तक पहुँची। कालान्तर में भरत के नाट्य शास्त्र में इसकी रचना और वादन शैली का उल्लेख मिलता है। मतंगऋषि ने इस वाद्य में अनेक सुधार किए और संभवतः धातु से निर्मित बाँसुरी का आविष्कार भी मतंग ने किया। मतंग का लिखा बाँसुरी का पहला ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं है।

तबला

कहा जाता है कि तेरहवीं शताब्दी में अमीरखुसरों ने तबले का निर्माण किया। अमीर खुसरो को मृदंग बडी प्रिय थी। एक दिन किसी कारण से उनकी मृदंग दो हिस्सों में विभाजित मिली। अपने प्रेम के कारण खुसरो ने टूटी मृदंग ही बजाना आरंभ किया। इस टूटी मृदंग से एक अजीब सा स्वर उत्पन्न हुआ। खुसरो के मस्तिष्क में बिजली सी कौंध गई। उन्होंने मृदंग के आधार पर तबले का निर्माण किया। एक और मत प्रचलित है कि दक्षिण भारत में डमरू को विभाजित कर तबले का निर्माण हुआ है। इसके दो भागों में दायाँ यानी तबला, आम, पलास, शीशम आदि की ठोस लकड़ी को खोखला कर बनाया जाता है। जिस पर बकरे की चमड़ी से बनी पूड़ी चढ़ाई जाती है जिसे चमड़े की रस्सी अथवा सूत की रस्सी से कसा जाता है। इसके बीचों बीच स्याही नामक एक पदार्थ लगाया जाता है। वैसे तो इसका निर्माण किसी विशेष स्वर के आधार पर किया जाता है, किंतु बद्दीयों के सहारे इसे कम अधिक किया जा सकता है। दूसरा भाग अर्थात बाँया, इसे डग्गा भी कहा जाता है। मिट्टी का अथवा पीतल, तांबा, लोहे इत्यादि धातुओं का बना होता है। इस पर भी चमड़ा मढ़ा होता है। बीच से थोड़ा हटकर स्याही लगाई जाती है।

सारंगी

घुंघरूओं की झनकार के साथ गायिका की गाई दर्द भरी गजल को दर्द के रंग से सराबोर करता साज है सारंगी। कुछ विद्वानों का मत है कि गायक के सुरों को रंगने का काम करने से उसे 'सुररंगी' कहा गया। कुछ लोगों का कहना है कि इस साज के वादन में सौ रंग प्रतीत होते हैं अतः इसका नाम सौरंगी है। कालान्तर में यह 'सारंगी' बन गया। इसका उदय मध्यकाल है। सन् १३०० के संगीत रत्नाकर में 'शारंगी' वीणा का उल्लेख है। पंडित शारंगदेव द्वारा निर्मित 'शारंगी देवी' वीणा ने ही आगे चलकर सारंगी का रूप धारण किया। इतिहास से प्रमाणित है कि सम्राट अकबर के दरबारी वाद्ययंत्रों में सारंगी के नाम का उल्लेख तक नहीं है। दिखने में ये साज खूबसूरत नहीं है। मगर इसकी रुह (आत्मा) बहुत खूबसूरत है। ये एक मीठा और मानवीय स्वरों का साज है।

गिटार

जंगल का वातावरण तारों की धनक के साथ थिरकते युवा पैर, ताल और स्वरों का संगम। पूर्व और पश्चिम के मेल से बना नखज साज गिटार। इस प्रकार का पहला वाद्य 'ल्यूट' था, दूसरा गिटार। गिटार को गिटारा लेटिना या गिटर्नी कहते थे। इसका जन्म लगभग १२ वीं शताब्दी में स्पेन में हुआ माना जाता है। पाश्चात्य देशों के विएला नामक वाद्य का आकार भी गिटार से मिलता जुलता था। स्पेन में जन्मा गिटार स्पेनिश गिटार कहलाया। सन् १६०० तक इसमें ताँत लगाए जाते थे, जिनकी संख्या पाँच होती थी। ताँत के कारण इसका स्वर मानव स्वर के निकट था। १९ वीं सदी में इसमें पाँच की जगह छह तार लगे और धातु से बने पर्दे भी लगाए गए, जिससे इसको बजाना और भी आसान हो गया। यही आधुनिक गिटार है। २० वी शताब्दी में स्पेनिश गिटार का एक और प्रकार 'हवाई गिटार' प्रचलित हुआ।

सितार

प्रसिद्ध इतिहासकार अबुलफजल ने अकबर के समय में प्रचलित भारतीय और ईरानी साजों का जो उल्लेख किया है उनमें सितार, सारंगी और तबले का जिक्र तक नहीं है। इस साज के उद्‌भव के बारे में तीन मत प्रचलित हैं। पहले मत के अनुसार प्राचीन भारत में 'त्रितंत्री' अर्थात तीन तारों वाली वीणा प्रचलित रही है। उसी का परिवर्तित रूप सितार है। दूसरे मत के अनुसार सितार शब्द पर्शियन 'सेहन्तार' से बना है, जिसका अर्थ तीन तारों वाला साज है। तीसरा और प्रचलित मत ये है कि तेरहवीं शती में अमीर खुसरो ने पर्शियन वाद्य 'ऊद' तथा भारतीय पर्दों-वाली वीणा के आधार पर से साज बनाया। किंवदन्ती है कि खुसरो वीणा वादन में निपुण न हो सके। अतः उन्होंने अपनी सुविधा के अनुसार वीणा और 'ऊद' को मिलाकर सितार का निर्माण किया। उस्ताद विलायत खाँ के दादा उस्ताद इमदाद खाँ ने सुरबहार की शैली पर सितार में सबसे पहले 'तरबे' जोड़ दी इससे सितार के स्वरों की 'अनगूंज' बढ़ गई और साज के बजाने में भराव-सा पैदा हो गया, वर्तमान समय में प्रसिद्ध सितारवादक पंडित रविशंकर ने सितार के तारों में अतिमंद सप्तक के तारों की वृद्धि कर इसे और आधुनिक बनाया है।

वायलिन

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार वायलिन का उद्‌गम 'वायोला' नामक मध्यकालीन वाद्य से हुआ है। 'वायोला' वाद्य स्वयं मध्य एशिया के 'रिबेका' नामक वाद्य का परिवर्तित रूप था। 'रिबेका' को उस समय वाद्यों का राजा माना जाता था। इसी से क्रमशः वायलिन का जन्म हुआ। आज भी वायलिन से मिलते-जुलते 'मेलो', 'वायोला', 'बेबी साइज' तथा थ्री-फोर्थ साज पश्चिम में पाए जाते हैं। इसका भारतीय नाम 'बेला' है। लोक संगीत में उपलब्ध 'सारिन्दा' नामक वाद्य से इसका आकार मिलता है। वायलिन के समान गज से बजाए जाने वाले साज भारत में प्राचीन काल से प्रचलित रहे हैं। इस संबंध में विद्वानों का मत है कि वायलिन मूल रूप से भारतीय साज है। यहीं से विदेश गया और फिर विदेशी मुहर लगवा कर वापस भारत आ गया। इसका प्रमाण दक्षिण के कुछ मंदिरों में अंकित चित्रों से किया जा सकता है। जो पश्चिम में विकसित वायलिन के जन्म से कहीं पहले के हैं। इन चित्रों में वायलिन स्पष्ट दिखाई देता है। ये निश्चित है कि इसका विकास प्राचीन काल से मध्यकाल तक निरन्तर भारत में होता रहा।

गीत-संगीत में प्रदूषण: 'कवर-वर्शन'

● लोकेंद्र चतुर्वेदी

वंदना बाजपेई, दीपा रॉय, प्रसून मुखर्जी, साधना इसरानी, विपिन सचदेव आदि अनेकों ऐसे नाम हैं जिनके गाए गीतों के कैसेट और एल.पी. बिकते तो बहुत हैं मगर यह बिक्री इन गायकों को प्रतिष्ठा नहीं दिलवा पाती। इसका कारण है कि लोकप्रिय फिल्म संगीत के बाजार में इन गायकों की माँग 'कवर-वर्शन' गायक के रूप में है। 'कवर-वर्शन' का तात्पर्य है लोकप्रिय गीतों की पुनः तैयार की गई वे प्रतिलिपियाँ जिन्हें कम प्रसिद्ध गायकों द्वारा दुबारा गाया गया हो। उदाहरण के लिए यदि किसी नए युवक में के. एल. सहगल की आवाज की हू बहू नकल करने की क्षमता है तथा कोई रिकार्ड बनाने वाली कंपनी उस गायक से 'इक बंगला बने न्यारा' गीत गवा कर तथा के. एल. सहगल के कुछ अन्य गीतों को भी इसी नई आवाज में गवा कर एल.पी. या कैसेट जारी करती है, तो यह 'कवर-वर्शन' कहलाएगा। अमेरिका तथा योरप में इस प्रकार 'कवर-वर्शन' तैयार करने की परम्परा पुरानी है तथा वहाँ किसी गीत की लोकप्रियता आँकने का आधार उसके कवर-वर्शनों की संख्या होती है।

लगभग एक दशक पूर्व दिल्ली को केंद्र बनाकर भारत में 'कवर-वर्शन' का व्यापार शुरू किया गया। इस नए प्रयोग को अमल में लाने वाले थे दरियागंज में फलों का ठेला लगाने वाले गुलशन कुमार। फलों का रस बेचने वाले इस व्यवसायी ने फिल्म संगीत के रस को फीते में सजाकर पेश करने में बेहतर मुनाफा देखा। इस दृष्टि ने जन्म दिया टी. सीरिज को। त्रिशूल के निशान वाली इस सीरिज ने संगीत के बाजार को हिला दिया। प्रतिष्ठित रिकार्डिंग कंपनी वाले जब अपनी कैसेट ३५ से ४० रुपयों के बीच बेच रहे थे तब सुपर कैसेट इंडस्ट्रीज की टी सीरिज वाली कैसेट १० से १५ रुपयों के बीच बाजार में उपलब्ध थी।

इसी प्रतिष्ठान से संबंधित अमरजीत कोहली दिल्ली में हर साल नई प्रतिभाओं की खोज के लिए कोई न कोई कार्यक्रम आयोजित करते रहते हैं। इस खोज में वे मौलिकता को कम और प्रतिलिपि (डुप्लीकेट) को ज्यादा महत्व देते हैं। यदि किसी गायक की आवाज रफी की आवाज की हू बहू प्रतिलिपि लगती है तो वे फौरन उससे अनुबंध कर लेते हैं। इसके बाद शुरू होता है 'कवर-वर्शन' का कारोबार। आशा भोसले, लता मंगेशकर, गीता दत्त, हेमंत कुमार, मन्ना डे आदि के डुप्लीकेट कंठ उन्हीं गीतों को दोबारा रिकार्ड कराते हैं जो वर्षों पहले बनी फिल्मों के लिए इन गायकों ने गाए थे। रिकार्डिंग की नई तकनीक बेहतर वाद्ययंत्र और बढ़िया स्टूडियो में हुई इस 'नकल' की गुणवत्ता कभी-कभी असल से बेहतर होती है। इसीलिए ये डुप्लीकेट आवाज वाले कैसेट धड़ल्ले से बिकते हैं। नवीनता तथा रोचकता लाने के लिए कभी-कभी युगल गीतों में गाने का अंदाज बदल दिया जाता था। जो टुकड़ा मौलिक रिकार्ड में पुरुष द्वारा गाया गया था, उसे नकल में महिला द्वारा गवाया जाता है।

खुले-आम डंके की चोट होने वाली इस आवाज की चोरी को रोकने का कोई कानूनी उपाय नहीं है। यदि कोई फिल्म निर्माता या गायक 'कापी राइट' कानून का सहारा लेकर अदालत में जाने की कोशिश करता है तो उसे निराशा ही हाथ लगती है। 'कर्मा' के निर्माता सुभाष घई ऐसा प्रयास कर चुके हैं। आशा भोसले, लता मंगेशकर जैसी गायिकाएँ भी नकली आवाजों के इस व्यावसायिक प्रपंच से पीड़ित हैं। लताजी ने पिछले वर्ष 'नईदुनिया' को दिए गए एक विशेष साक्षात्कार में 'कवर-वर्शन' के नाम हो रहे अनाचार के प्रति गहरी चिंता व्यक्त की थी।

'कवर-वर्शन' की संस्कृति पश्चिमी देशों में भले ही प्रासंगिक और हानि रहित हो पर भारत में यह निश्चित ही फिल्म संगीत को प्रदूषित करने वाली प्रवृत्ति सिद्ध हो रही है। धीरा घोष और आशा भोसले के गाए गीतों में यह जानना आज भी मुश्किल है कि असली और मौलिक कौन है। यही स्थिति लता मंगेशकर और वंदना बाजपेई के मामले में है। साधना इसरानी, गीता दत्त की डुप्लीकेट है तो विपिन सचदेव की आवज रफी की प्रतिलिपि हैं। सच तो यह है कि आज भी यदि लता जी के द्वारा वर्षों पूर्व गाया गया कोई गीत 'कवर-वर्शन' में सुना जाए तो यह पता लगाना मुश्किल होगा कि आवाज लताजी की नहीं बल्कि वंदना की थी।

वर्तमान में ही जब असल और नकल में फर्क करना मुश्किल है तब आने वाली पीढ़ियाँ यदि 'असल को नकल' समझ लेंगी तो दोष किसका होगा। यदि फिल्म संगीत को ऐतिहासिक विकास के विशुद्ध स्वरूप में आने वाली पीढ़ियों को सौंपने का संकल्प हो तब 'कवर-वर्शन' के विष को संगीत के रस से दूर रखने की ठोस कोशिश करनी होगी। ■

सरगम के सारथी

● जयप्रकाश चौकसे

युद्ध हो या कला क्षेत्र, उसका इतिहास केवल उन योद्धाओं का जिक्र करता है जिन्होंने असाधारण वीरता दिखाई हो या वीरगति को प्राप्त हुए हों। किसी भी क्षेत्र का इतिहास पैदल सैनिकों का गुणगान नहीं करता। फिल्मी सरगम के सफर में बुलो सी.रानी से लेकर भप्पी लहरी तक के लोगों का वर्णन होता है परंतु उन 'संयोजकों' के योगदान का वर्णन नहीं होता जिन्हें 'अरेंजर' कहते हैं। इसी दिशा में यह एक लघु-प्रयास है।

फिल्म गीत रिकॉर्डिंग के प्रथम चरण में केवल ८-१० वादकों का प्रयोग होता था और सभी के लिए केवल एक माइक होता था। समय के साथ ही वादकों की संख्या बढ़ती गई। खेमचंद प्रकाश और हुस्नलाल भगतराम ने पाश्चात्य वाद्य यंत्रों की संख्या बढ़ाई और हिंदी गीतों की स्वरलिपि पाश्चात्य हो गई है। 'काउंटर मेलोडी' के वायलिन वादकों के लिए पश्चिमी स्वरलिपि की आवश्यकता पड़ी। उन दिनों अधिकांश वादक गोआ के मूल निवासी थे और केवल पश्चिमी स्वरलिपि ही समझते थे। ठीक उसी समय 'अरेंजर' अर्थात् संगीत संयोजक की आवश्यकता हुई। अरेंजर का काम है कि संगीत निर्देशक से गीत के 'नोटेशन्स' ले और वादकों को समझाए कि कब कौन किस तरह बजाएगा। इन्हीं दिनों मीनू कात्रक की कृपा से रिकॉर्डिंग रूम में एकाधिक माइक की व्यवस्था की गई। इन माइकों का वाद्य यंत्र से दूरी या नजदीकी का दायित्व भी 'अरेंजर' ने संभाला।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि नौशाद जैसे नितांत भारतीय शैली के संगीतकार भी पियानो पर रचनाएँ करते हैं। हारमोनियम या पियानो पर की गई रचनाओं के नोटेशन्स पश्चिमी स्वरलिपि में लेना आवश्यक हो गया क्योंकि अधिकांश वादक उसे समझते थे। आज भी केवल रिद्म सैक्शन, (ढोलक, तबले, मटके, मृदंग, पखावज) में भारतीय स्वरलिपि का प्रयोग होता है और वायलिन, स्ट्रिंग्स, ब्रॉस इलेक्ट्रॉनिक्स तथा कोरस गायकों के लिए पश्चिमी लिपि की नोटेशन्स शीट्स ही बाँटी जाती हैं। दरअसल रिकॉर्डिंग रूम में स्वरलिपि को लेकर कोई विवाद नहीं है। फिल्मी दुनिया में न कोई जातिवाद है और न ही पूर्व या पश्चिम को लेकर कोई विवाद है।

शंकर-जयकिशन के आते ही वादकों की संख्या १०० तक पहुँच गई और रिकॉर्डिंग रूम में अधिक माइक और अधिक रिकॉर्डिंग चैनल की व्यवस्था की गई। वादकों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए अरेंजर का कार्य और महत्व दोनों ही बढ़ गए। उन दिनों सेबेस्टियन और दत्ताराम अरेंजमेंट के कार्य में बहुत निपुण माने गए और उनका नाम सहायक संगीतकार के रूप में दिया जाने लगा। जयकिशन ने वाद्य यंत्रों की जमावट और प्रयोग के कई नए तरीके निकाले। सच तो यह है रिकॉर्डिंग के विज्ञान और सुरताल के सामंजस्य में जयकिशन का कोई मुकाबला नहीं था। सारे अरेंजरों ने अपनी कला जयकिशन से ही सीखी है। कल्याणजी, लक्ष्मी-प्यारे, बासू मनोहारी, उत्तम, जगदीश सभी अरेंजर रह चुके हैं। **स्वतंत्र संगीत निर्देशक बनना हर अरेंजर का सपना होता है और हर संगीतकार एक योग्य अरेंजर की कामना करता है।**

गीतांकन के समय अरेंजर १०० वादकों का सामंजस्य करता है और यह कार्य वैसा ही है जैसे १०० घोड़ों के रथ को चलाना। **अतः गीतांकन के महत्वपूर्ण समय में अरेंजर की भूमिका सारथी कृष्ण की तरह होती है।** संगीतकार का पांडव सारथी कृष्ण की सहायता के बिना गीतांकन की महायात्रा नहीं जीत सकता। वादकों के बीच के सामंजस्य को 'बैलेंसिंग' कहते हैं। गीतांकन के प्रारंभ के चार घंटे तो इसी बैलेंसिंग में लगते हैं। पहले सोलो बजाने वाले को (अर्थात् एक वाद्य और एक ही वादक) कहा जाता है कि वह अपना हिस्सा बजाए। उसके बाद ग्रुप जैसे ४० वायलिन वादक या पाँच चेलो वादक या १० तबला वादक, के कार्य का परीक्षण होता है। अतः सभी विभागों के वाद्यों को अलग-अलग ठीक करके फिर साथ में बजाते हैं। उसी समय पता चलता है कि कहाँ किसको कम या ज्यादा करें या माइक से दूरी ठीक करें ताकि संगीतकार की रचना के साथ पूरा न्याय हो सके। इसी कार्य को बैलेंसिंग कहते हैं।

योरप में जो स्थान कंडक्टर का होता है, वही हमारे यहाँ अरेंजर का होता है— अंतर केवल इतना है कि कंडक्टर मूल रचना का इंटरप्रिटेशन करने के लिए स्वतंत्र है जबकि अरेंजर को यह स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है, परंतु उसके सुझाव की बहुत अहमियत है।

जब फिल्म का पार्श्व संगीत रिकॉर्ड होता है तब अरेंजर की योग्यता और सृजनशीलता उभरकर आती है। चोर-पुलिस के पीछा करने के दृश्य में केवल एक तबले का प्रयोग अरेंजर ही ने किया था। फिल्म 'नागिन' के प्रसिद्ध गीत 'मैं नागिन तू सपेरा' में बीन का स्थान इतनी चतुराई से नियत किया गया कि एक ही बीन होते हुए भी अनेकों बीन का प्रभाव पैदा किया गया। आजकल अरेंजर को यथेष्ठ धन मिलने लगा है और फोटोकॉपी की सुविधा के कारण उसे वादकों की संख्या के अनुसार स्वरलिपि के कागज देने में भी असुविधा नहीं होती। पहले उसे पूरी १०० शीट कॉपी करनी पड़ती थी। इलेक्ट्रॉनिक्स वाद्य यंत्रों के आने के बाद अरेंजर का काम बढ़ गया है। हाथ के हल्के से इशारे पर अनेक ध्वनियों को जन्म देने वाले यंत्रों को सावधानी के साथ प्रयोग करना पड़ता है। अरेंजर को इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि ऑर्केस्ट्रा गायक पर हावी नहीं हो जाए। उसे हर वाद्य यंत्र की ध्वनि को स्पष्ट ढंग से रिकॉर्ड करने के लिए अपने अरेंजमेंट पर ध्यान देना पड़ता है।

अरेंजर संगीत की दुनिया का वह महत्वपूर्ण सिपाही है जिसका नाम नहीं होता, परंतु उसका सृजनात्मक योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। ■

गूंगे ने गुड़ का स्वाद किस तरह बतलाया!

बच्चन श्रीवास्तव

सच पूछिए तो संगीत और सिनेमा का साथ चोली दामन के साथ से भी कुछ अधिक घनिष्ठ है। तभी तो उस जमाने में भी जब सिनेमा को वाणी का वरदान नहीं मिला था और पर्दे पर गूंगी आकृतियाँ अपने मनोभाव संकेत एवं मुद्राओं से अभिव्यक्त करती थीं तब भी संगीत सिनेमा से जुड़ा हुआ था। विदेशी मूक फिल्मों के प्रदर्शन के समय बंबई और कलकत्ता जैसे महानगरों में सिनेमा घर में पर्दे के निकट कोई एंग्लोइंडियन बाला बैठकर प्यानो बजाती और प्यानो पर दृश्य के अनुरूप धुन भी बदलती रहती।

विदेशी फिल्मों के प्रदर्शन के समय तो एक प्यानो से काम चल जाता था। स्वदेशी फिल्मों के प्रदर्शन के समय तो पूरा आर्केस्ट्रा सिनेमा घर में उपस्थित किया जाता था। इस आर्केस्ट्रा में सामान्यत: हारमोनियम, तबला और घुँघरू होते थे। कभी कभार सारंगी आदि भी शामिल कर ली जाती थी। ये वादक जो पेटी मास्टर और तबला मास्टर कहलाते थे, कथानक के अनुरूप बाजे बजाते। नृत्य प्रसंगों में नर्तकी पर्दे पर थिरकती और स्टेज के पास बैठा वादक घुँघरू खनखनाता। घोड़े पर्दे पर दौड़ते तो तबला मास्टर थाप देकर टापों की आवाज निकालता।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद सिनेमा का विस्तार शीघ्रता से होने लगा। फिल्मवालों में आपसी स्पर्धा बढ़ी। दर्शकों को आकर्षित करने के लिए नए-नए प्रयोग होने लगे। परिणाम यह हुआ कि कुछ बड़े निर्माताओं और प्रदर्शकों ने फिल्मों के प्रदर्शन के बीच नृत्यांगनाओं को पेश करना शुरू कर दिया। इसका एक बड़ा कारण यह भी था कि उन दिनों सिनेमाघर एक ही प्रोजेक्टर से काम चलाते थे। एक बड़े स्पूल पर एक साथ तीन चार रीलें चढ़ा कर प्रदर्शित की जातीं। उनकी समाप्ति पर पहला स्पूल हटाकर दूसरा स्पूल चढ़ाते। फलस्वरूप सिनेमाघरों में कम से कम तीन या चार इंटरवल होते थे। कुछ बड़े सिनेमाघरों ने इस अंतराल के समय नृत्य-संगीत के कार्यक्रम प्रस्तुत करने आरंभ कर दिए। आरंभ में निचले दर्जे की मुजरा करनेवाली नर्तकियों को बुलाया गया। धीरे-धीरे ऐसी नृत्य मंडलियाँ गठित हो गई, जो नगर- नगर जाकर सिनेमाघरों में नाच-गाने पेश करने लगीं। जिन फिल्मों के साथ इस प्रकार के नाच-गाने प्रस्तुत किए जाते उनके विज्ञापनों और प्रचार सामग्री में फिल्म के नाम के साथ मोटे अक्षरों में यह भी लिखा होता—**"साथ में जिन्दा नाच और गाना।"**

उन दिनों सिनेमाघरों में प्रस्तुत 'जिन्दा नाच-गाने' के कार्यक्रम ने कुछ गीतों को बड़ा लोकप्रिय किया। इन गीतों में एक था—**राजा जानी न मारो रे नैनवा के तीर रे** या फिर—**छोटा सा बलमा मोरे आँगना में गिल्ली खेले।**

इस संदर्भ में रोचक बात यह है कि जिस प्रकार टॉकी के आगमन के बाद भी कई वर्ष तक 'साइलेंट' फिल्में बनती रहीं उसी प्रकार सवाक चित्रों के प्रदर्शन के साथ भी जिन्दा नाच गाने का यह सिलसिला कई वर्षों तक चलता रहा।

पर्दे पर बिन बोले हाव भाव पात्रों को वाणी का वरदान मिल जाए, इसका प्रयास इस शताब्दी के साथ ही आरंभ हो गया था। प्राप्त तथ्यों के अनुसार १९०२ के अंत में पेरिस में फ्रेंच फोटोग्राफिक एसोसिएशन की बैठक १२ दिसंबर को गेमाउंट ने एक लघु फिल्म दिखाई जिसके पात्र बाकायदा बोलते थे। इस अजूबे के लिए उन्होंने रिकार्ड का प्रयोग किया था। गेमाउंट इस दिशा में प्रयास और प्रयोग करते रहे और आखिर १९१७ की २ दिसंबर को उन्हें एक सवाक फिल्म के सार्वजनिक प्रदर्शन करने में सफलता मिल गई।

परंतु अगले १६ वर्ष तक इस दिशा में प्रयोगों से अधिक कुछ और न हो सका। ऐसा संभव भी नहीं था कारण अभी तक मूक सिनेमा का ही विकास नहीं हो पाया था, तब टॉकी के क्षेत्र में अधिक क्या हो पाता। विश्व की प्रथम सवाक फिल्म 'डॉन जॉन' १९२६ में अमेरिका में प्रदर्शित हुई। इसका निर्माण

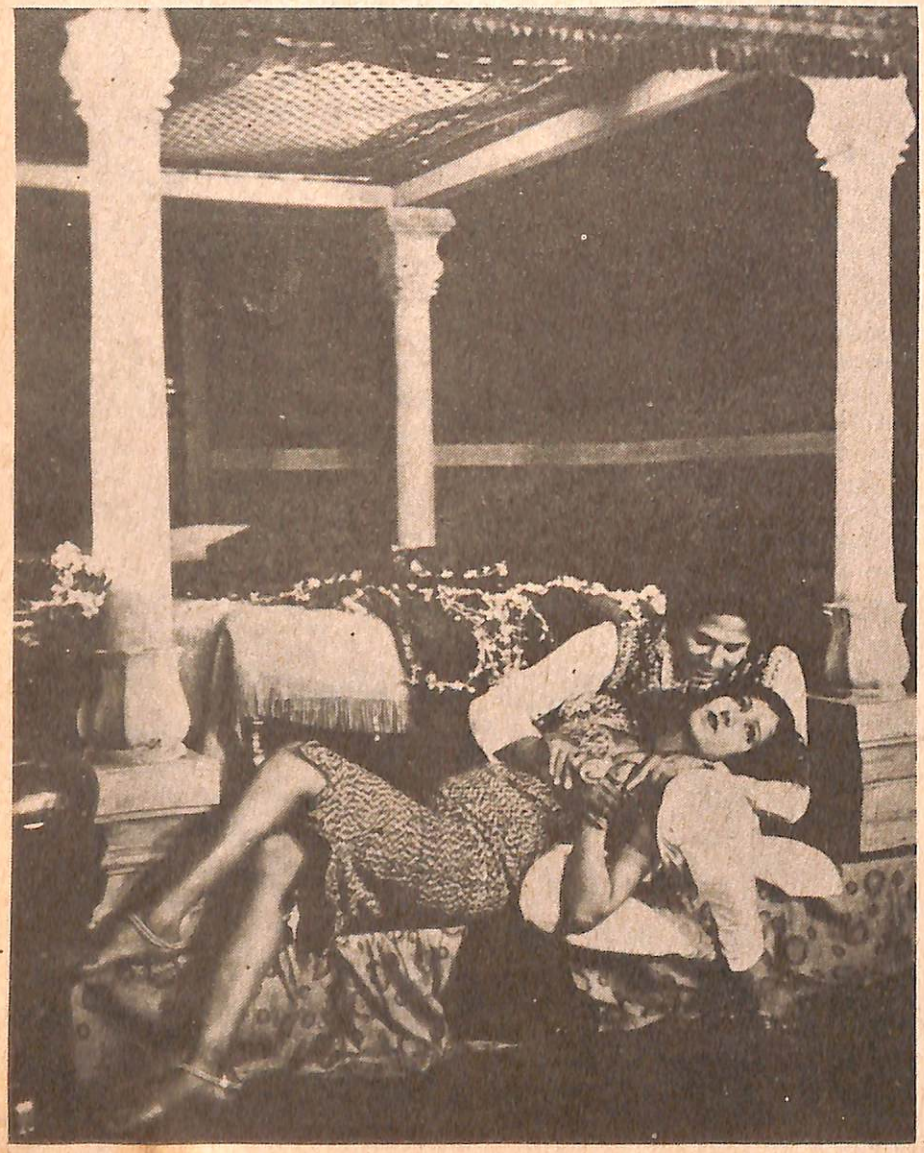

पहली बोलंती फिल्म: आलमआरा (१९३१) मास्टर विट्ठल और जुबेदा।

फिल्मों को सफलता गीतों से मिलती है या गीतों की लोकप्रियता के कारण फिल्में सफल होती हैं, इस बारे में फैसला करना बड़ा मुश्किल है। इतना निश्चित है कि गीतों ने फिल्म के दौरान विशिष्ट 'मूड' को प्रस्तुत करने में अहम् भूमिका अदा की है। कुछ प्रसंगों में निर्देशक 'गीतों' के जरिए वह सब कुछ आसानी से दर्शा देता है, जो मध्यमवर्गीय-मानसिकता को सामान्य संवादों में सुनना भी गवारा नहीं होता।

वार्नर ब्रदर्स ने किया था। दर्शकों ने इस फिल्म का दिल खोलकर स्वागत किया। पर वार्नर ब्रदर्स की अगली फिल्म **'द सिंगिग फूल'** देख कर तो दर्शक दीवाने हो गए। कारण इस संगीत प्रधान फिल्म में अमेरिका के लोकप्रिय गायक अल जान्सन के कई गाने थे।

पश्चिम में टाकी के आगमन का परिणाम यह हुआ कि भारतीय निर्माताओं ने भी इस दिशा में प्रयास आरंभ कर दिए। इम्पीरियर फिल्म कंपनी का **'आलमआरा'** प्रथम भारतीय सवाक कथा चित्र माना जाता है। वास्तव में वह है भी। परंतु इम्पीरियल के इस सफल प्रयास से पूर्व भारत में एक महत्वपूर्ण विफल प्रयास भी हुआ।

बंबई की शारदा फिल्म कंपनी के भोगीलाल दवे ने प्रसिद्ध मराठी साहित्यकार मामा वरेरकर से **'संत तुकाराम'** के जीवन पर एक फिल्म लिखाई। इसमें तुकाराम के भजन रखे। विदेश से उपकरण आयात कर फिल्म शूट की। परंतु दुर्भाग्य कि भारत की जलवायु में फिल्म का नेगेटिव नष्ट हो गया और इस सब किए कराए पर पानी फिर गया।

उधर कलकत्ता की प्रमुख निर्मात्री संस्था मदन थिएटर ने एक सवाक लघुचित्र बनाया। वैरायटी प्रोग्राम के समान इसमें नृत्य, संगीत और नाटक के अंश थे। सन ३१ की ४ फरवरी को यह बोलती गाती रील बंबई के एम्पायर थियेटर में दिखाई गई। इसमें मुन्नीबाई का गाया एक गीत **'अपने मौला की मैं जोगन बनूँगी'** बहुत लोकप्रिय हुआ। संगीत प्रेमी इस गीत को सुनने कई बार सिनेमाघर गए।

भारत के प्रथम सवाक चित्र 'आलमआरा' का निर्माण और निर्देशन इम्पीरियल फिल्म कंपनी के संचालक आर्देशिर ईरानी ने किया था। यह निर्माण ट्रेलर पद्धति से किया गया था। इस पद्धति में फिल्म का कुछ अंश रेकार्ड पर भरा जाता है और कुछ फिल्म में सिंग्रोनाइज हो जाता है। इस कार्य के लिए श्री ईरानी ने विदेश से उपकरण आयात किए थे। जिस दिन यह मशीन बंबई पहुँची दैनिक टाइम्स ऑफ इंडिया ने मुख्य पृष्ठ पर इसका सचित्र समाचार दिया। बोरीबंदर से स्टूडियो तक इस मशीन को एक जुलूस की शक्ल में सजधज के साथ ले जाया गया।

'आलमआरा' का संगीत फीरोज शाह मिस्त्री तथा बी. ईरानी ने दिया था। फिल्म में कई गाने थे परंतु सर्वाधिक लोकप्रिय गीत डब्ल्यू. एम.खान ने गाया था। वह एक फकीर बने थे और उनके गीत के बोल थे–

दे दे खुदा के नाम पर
गर हिम्मत है देने की

नायिका जुबेदा द्वारा गाए गीत
बदला दिलाए यारब
तू सितमगरों से...
ने भी जुबेदा के लाखों प्रशंसक पैदा कर दिए थे।

'आलमआरा' के संगीतकारों ने केवल हारमोनियम, तबला तथा वायलिन का इस्तेमाल किया था।

सवाक युग में प्रथम स्टार-सिंगर का श्रेय अभिनेता मास्टर निसार और अभिनेत्री मिस कज्जन को दिया जा सकता है। मास्टर निसार उस जमाने में स्टेज के माने हुए कलाकार थे। कलकत्ता में उनकी धूम थी। मदन थिएटर ने **'शीरी फरहाद'** बनाने का निर्णय किया तो फरहाद की भूमिका के लिए मास्टर निसार को अनुबंधित किया और उन्हीं को अपनी शीरी को ढूँढ लाने का उत्तरदायित्व सौंपा।

निसार ने सुन रखा था कि बहू-बाजार में कई अच्छी गायिकाएँ हैं। वह उसी बाजार में पहुँचे। किसी ने कज्जन की माँ से उन्हें मिलाया। माँ ने बड़ी खुशामद की। निसार ने कज्जन को देखा तो उन्हें वह आकर्षक लगी। अगले दिन मदन थिएटर्स ने कज्जन को रख लिया। पारिश्रमिक पूरी फिल्म का ५०० रुपए निश्चित हुआ। उस समय निसार को दो हजार रुपए मासिक वेतन मिलता था। पर कज्जन ५०० रुपए में भी प्रसन्न थी।

'शीरी फरहाद' क्योंकि आर.सी.ए. सिस्टम पर शूट हुई इसलिए यह तकनीकी दृष्टि से 'आलमआरा' से कहीं श्रेष्ठ थी। इसका संगीत बृजलाल वर्मा ने दिया था।

टॉकी के आगमन पर जहाँ दुनिया के अधिकांश फिल्म बनाने वालों ने हर्ष अभिव्यक्त किया था वहाँ विश्व विख्यात फिल्म जीनियस चार्ली चैप्लिन ने कहा था–'आवाज के शोर में फिल्म कला का गला घुट कर रह जाएगा।' चैप्लिन की यह भविष्यवाणी सवाक युग के विकास के साथ-साथ काफी हद तक सच साबित हुई।

भारत में भी 'आलमआरा' की सफलता के

नसीम-चंद्रमोहन *कृष्णचन्द्र डे*

शोभना समर्थ

डब्ल्यू. एम. खान

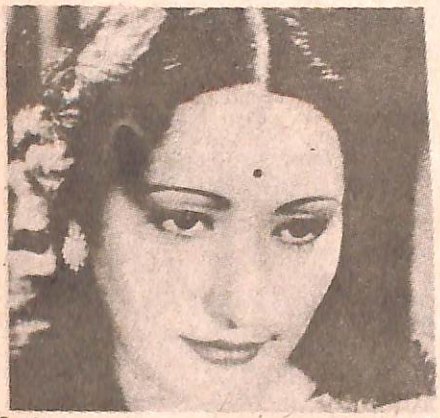

बिब्बो

शांता आप्टे

पश्चात जो फिल्में बनी उनमें गानों की संख्या बढ़ने लगी। उस युग की सामान्य फिल्मों में बीस-बाईस गाने होते थे। परंतु सन '३२ में कलकत्ता की मदन थिएटर्स ने 'इन्दर सभा' बनाकर एक कीर्तिमान स्थापित कर दिया। इस फिल्म में जिसका संगीत नगीनदास नायक ने दिया था, ६९ गाने थे। मास्टर निसार, कज्जन और मुख्तार बेगम ने अपनी बात केवल सुर-ताल में ही अभिव्यक्त की। पूरी फिल्म में इन पात्रों ने एक संवाद भी नहीं बोला।

सवाक युग के पहले दशक के आरंभिक पाँच वर्षों में अधिकांश फिल्में थिएटर से प्रेरित होकर बनाई गईं। इनका संगीत भी थिएटर से ही प्रेरित होता। तब तक पार्श्वगायन की पद्धति का आविष्कार नहीं हुआ था इस कारण फिल्मों में कलाकारों को स्वयं ही गाना पड़ता था।

सिनेमा में संगीत के इस बढ़ते महत्व का परिणाम यह हुआ कि ऐसे लोगों की फिल्म क्षेत्र में माँग बढ़ने लगी जिनका कंठ मधुर था। मूक युग में रूप-रंग और व्यक्तित्व महत्वपूर्ण था। अब आवाज भी महत्वपूर्ण हो गई। ऐंग्लो-इंडियन बालाओं का, जिनका उच्चारण साफ नहीं था, माँग गिरने लगी। उनकी जगह उन युवतियों का स्वागत होने लगा जो गाती थीं। जिन्हें स्टेज पर गाने या मुजरों और महफिलों में अलापने का अनुभव था।

कज्जन, बिब्बो, मुश्तरी, जुबेदा। पुरुषों में मास्टर निसार, मास्टर विट्ठल, के.सी. डे, पहाड़ी सान्याल, पंकज मलिक, असित बरन जैसे कलाकारों की माँग उनकी आवाज के लिए बढ़ी। कानन बाला, राजकुमारी, उमाशशि और शांता आप्टे, खुर्शीद का स्वागत उन दिनों इसीलिए हुआ कि वे अच्छा गाती थीं।

परंतु जो नहीं भी गा पाते थे उन्हें भी फिल्मों में गाना पड़ता था। देविका रानी, सुलोचना, गौहर, माधुरी और दुर्गा खोटे ने भी गीत गाए और मोतीलाल, ईश्वरलाल, बिलमोरिया और अशोक कुमार को भी गाना पड़ा।

सिनेमा का मुख्य प्रेरणा स्रोत पारसी थिएटर था इसलिए उसका संगीत भी उसी से प्रेरित था। परंतु कलकत्ता के न्यू थिएटर्स को इस बात का श्रेय जाता है कि उसने ऐसे स्वर साधकों को अपनाया जिन्होंने फिल्म संगीत को अपनी अलग पहचान दी। इन संगीतकारों में रायचंद्र बोराल, तिमिर बरन, पंकज मलिक, ने अपनी रचनाओं के द्वारा ऐसे सुगम संगीत की रचना की जिसमें भारतीय संगीत का रस था परंतु शास्त्रीय संगीत की क्लिष्टता नहीं थी। ऐसे गीत स्वर-बद्ध किए जिन्हें दर्शकों ने खूब गुन-गुनाया। उनके संगीत को जीवंत करने में कुंदनलाल सहगल, के.सी.डे, पहाड़ी सान्याल, उमाशशि, कानन बाला और राजकुमारी के मधुर कंठ ने उल्लेखनीय सहयोग दिया।

कुंदनलाल सहगल और कानन बाला भारतीय फिल्म जगत की ऐसी उपलब्धि हैं जो कभी भी भुलाई नहीं जा सकतीं। कारण 'देवदास' में गाए गीत **'बालम आन बसो मोरे मन में'** या कानन बाला का 'विद्यापति' में गाया गीत **'मोरे अंगना में आए आली मैं चाल चलूँ मतवाली'** आज ५५ वर्ष बाद भी गुन-गुनाए जाते हैं। ये तो मात्र उदाहरण हैं। सहगल और कानन के साथ दर्जनों ऐसे गीत जुड़े हुए जिनका माधुर्य कभी फीका नहीं होगा।

न्यू थिएटर्स की जिन फिल्मों का संगीत विशेष रूप से सराहा गया उनमें 'देवदास' (सहगल-जमुना), 'चण्डीदास' (उमाशशि-सहगल), विद्यापति (कानन बाला-पहाड़ी सान्याल-के.सी. डे), कपाल कुण्डला (पंकज मलिक) के नाम से सदा स्वर्ण अक्षरों में जगमगाएँगे।

जहाँ कलकत्ता में गायक-गायिकाओं को महत्व मिला वहाँ बबंई में अलग-अलग निर्माण संगठनों ने अपने-अपने कलाकारों ही से गवाया। बॉम्बे टॉकीज की **'अछूत कन्या'** में अशोक कुमार और देविका रानी का गाया गीत 'मैं बन की चिड़िया बन के बन-बन डोलूँ रे' खूब लोकप्रिय हुआ। मिनर्वा के 'पुकार' में नसीम बानो का गाया गीत **'जिंदगी का साज भी क्या साज है...** तथा शीला का गाया 'तुम बिन हमरी कौन खबर ले गोवरधन गिरधारी' खूब सराहे गए। पर प्रथम दशक में बंबई के फिल्म उद्योग ने जिस गायिका, अभिनेत्री को प्रतिष्ठित किया उनमें सबसे महत्वपूर्ण खुर्शीद थीं। खुर्शीद को बंबई की हिन्दमाता सिनेटोन ने ढूँढा था तथा 'मिर्जा साहिबाँ' नामक उस फिल्म में हीरोइन बनाया था जो पंजाबी भाषा की पहली फिल्म मानी जाती है।

पुणे की प्रभात फिल्म कंपनी की खोज शांता आप्टे मानी जा सकती है। शांता आप्टे जिन्हें दर्शकों ने 'गोपाल कृष्ण' और 'अमर ज्योति' में देखा था, बहुत अच्छी गायिका थीं। शास्त्रीय संगीत में उनकी गहरी पैठ थी। इनके अतिरिक्त

सुशीलारानी पटेल

सुलोचना (रूबी मायर्स)

हजारों रंग बदलेगा जमाना

पापी और शीरी फरहाद जैसी फिल्मों के संगीतकार एस. मोहिंदर ने अपनी पहली फिल्म 'सेहरा' (४८) में स्वयं एक गीत गाया था। कारवाँ, नाता जैसी फिल्मों में उनका संगीत उल्लेखनीय था। शीरी फरहाद उनकी उत्तम फिल्म थी। लता का गाया 'गुजरा हुआ जमाना' तथा रफी का गाया 'हजारों रंग बदलेगा जमाना' बहुत ही लोकप्रिय हुए थे। फिल्म सूचीः सेहरा (४८), जीवन साथी (४९), श्रीमतीजी (५२), नाता, सौ का नोट, शहजादा (५५), कारवाँ, शीरी फरहाद (५६), नया पैसा, सुन तो ले हसीना (५८), भगवान और शैतान, खूबसूरत धोखा (५९), महलों के ख्वाब (६०), एक लड़की सात लड़के (६१), सरफरोश (६४), बेखबर (६५), पिकनिक, प्रोफेसर एक्स (६६)।

विष्णुपंत पागनीस ने 'संत तुकाराम' और बाद में रणजीत की 'संत तुलसीदास' में अपने भजनों से भक्त दर्शकों का हृदय जीत लिया था।

सवाक युग के आगमन के कई वर्ष बाद तक गीतों की रेकॉर्डिंग शूटिंग के साथ होती थी। फलस्वरूप साजिंदे शूटिंग स्थल पर ही उपस्थित होते थे। उन्हें पेड़-पौधों या पहाड़ियों के पीछे छुपाकर बैठाया जाता था या ऊपर पेड़ पर। शूटिंग के दौरान संकेत मिलते ही साजिंदे साज छेड़ देते थे। अभिनेता-अभिनेत्री अलापना शुरू कर देते थे और कैमरामैन और साउण्ड रेकॉर्डिस्ट उसे शूट करते जाते थे।

भरसक प्रयास के बावजूद साजिन्दे पर्दे पर दिखाई न दें, कभी-कभार किसी का सर तो किसी का साज कैमरे की पकड़ में आ जाता था, पर तब के दर्शक इस तरह की भूल को नजरअंदाज कर देते थे।

सवाक सिनेमा के प्रथम पाँच वर्षों में कलाकारों को स्वयं गाना पड़ता था। अच्छा या बुरा जैसा भी उनका गला हो, उन्हें अलापना ही पड़ता था। यह उनकी विवशता थी। बिना गीतों की फिल्म बनती नहीं थी और गला उधार उन दिनों मिलता नहीं था।

इस विवशता को एक दिन दूर कर दिया बॉम्बे टॉकिज की संगीत निर्देशिका सरस्वती देवी ने। सरस्वती देवी पारसी थीं। उनका वास्तविक नाम खुर्शीद होमीजी था। वह लखनऊ के मेरिस कॉलेज में संगीत की शिक्षिका थीं। बॉम्बे टॉकिज के संचालक हिमांशु राय के आग्रह पर वह आई थीं। कुछ समय वे संगीतकार एस. एन. त्रिपाठी की सहायक रहीं फिर 'जीवन नैया' में उन्होंने स्वतंत्र रूप से स्वर संयोजन किया।

जब वे 'अछूत कन्या' का संगीत निर्देशन कर रही थीं तो उन्होंने मजबूरी में पार्श्व गायन का सहारा लिया। हुआ यह कि उनकी बहन मानक होमीजी, जो चंद्रप्रभा के नाम से इस फिल्म में एक रोल कर रही थी, एक गीत गाना था। पर शूटिंग के दिन उसका गला खराब हो गया। सरस्वती देवी ने वह गीत स्वयं गाया और अपनी आवाज को बाद में फिल्म में भरवाया। इस गीत के बोल थे **'कित गए हो खेवनहार।'**

इन दोनों पारसी बहनों को लेकर पारसी संप्रदाय ने काफी शोरशराबा किया। श्री हिमांशु राय को धमकियाँ भी दीं, परंतु वह अपने निश्चय पर अडिग रहे। उन्होंने सरस्वती देवी को संगीतकार बनाया और चंद्रप्रभा को अभिनेत्री। इस तरह भारतीय सिनेमा के इतिहास में सरस्वती देवी को प्रथम महिला संगीत निर्देशिका कहलाने का गौरव मिला और चंद्रप्रभा को प्रथम पारसी अभिनेत्री बनने का।

कुछ लोग यह भी मानते हैं कि **पंडित सुदर्शन** के नाटक पर आधारित फिल्म 'धूप छाँव' में संगीत निर्देशक कमल बोस ने पार्श्व संगीत का सफल प्रयोग किया था।

आने वाले वर्षों में सरस्वती देवी और कमल बोस के ये प्रयोग फिल्म संगीत में एक क्रांति ला देंगे, इसकी तो शायद उन्होंने कल्पना भी नहीं की होगी। पर इसमें संदेह नहीं कि पार्श्व गायन का आविष्कार 'टाकी' के बाद फिल्म जगत की सबसे बड़ी क्रांति थी। इस आविष्कार ने जहाँ अभिनेता-अभिनेत्रियों को गाने की विवशता से मुक्ति दिला दी वहाँ पार्श्व गायक-गायिकाओं के एक पृथक वर्ग की शुरूआत हो गई।

इस प्रकार सवाक युग के प्रथम दशक की समाप्ति तक फिल्म संगीत ने अपना विशिष्ठ स्वरूप विकसित कर लिया। जन साधारण में फिल्मी गीत सहृदयता से अपनाए जाने लगे। कुन्दनलाल सहगल, सुरेन्द्र, पंकज मलिक, के.सी. डे, पहाड़ी सान्याल, कमलदास गुप्ता के गाए गीत तथा काननबाला, खुर्शीद, कज्जन राधारानी,

खुर्शीद

कुंदनलाल सहगल

देविकारानी

राजकुमारी

गौहर

मेहताब

जी. एम. दुर्रानी

शान्ता आप्टे, राजकुमारी, पारूल घोष और उमा शशि के गाए भजन, गीत और गजलें घर-घर गुनगुनाए जाने लगे।

जिन संगीतकारों ने फिल्म संगीत को सँवारा, निखारा उनमें रायचंद्र बोराल, पंकज मल्लिक, तिमिर बरन, एस.एन. त्रिपाठी, मास्टर कृष्णराव, उस्ताद झंडे खाँ, केशवराव भिडे, गोविन्दराव तेम्बे, गुलाम हैदर, रफीक गजनवी, अनिल विश्वास, पन्नालाल घोष के नाम प्रमुख हैं।

गायक अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के अतिरिक्त ऐसे कलाकारों ने भी लोकप्रिय गीत गाए जो वास्तव में गायक-गायिका नहीं थे। ऐसे कलाकारों में अशोक कुमार, ईश्वरलाल, मोतीलाल, शाहू मोडक तथा अभिनेत्रियों में देविका रानी, लीला चिटनिस, दुर्गा खोटे, वासन्ती, गौहर और माधुरी ने खासा नाम कमाया और बिना सुर ताल के, बिना सुरीली आवाज के गाकर भी दर्शकों का प्यार पाया।

आरंभ में केवल गाने का महत्व था। परंतु जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता गया, शब्द योजना और धुन का माधुर्य भी महत्व पाने लगा और देखते-देखते फिल्म संगीत में ऐसा जादू पैदा किया कि प्रदेश, भाषा की सीमा को भी वह लाँघने लगा। कारण इस फिल्म संगीत में शास्त्रीय संगीत का सौंदर्य भी था, लोक संगीत का माधुर्य भी। इतना ही नहीं, वाद्यवृंद के प्रयोग ने इसके प्रभाव को और भी असरदार बना दिया। आरंभ में फिल्म निर्देशक हारमोनियम, तबला जैसे दो-चार साजों ही का इस्तेमाल करते थे, पर पंकज मलिक, रायचंद्र बोराल, अनिल विश्वास जैसे उत्साही संगीतकारों ने आर्केस्ट्रा का प्रयोग करके फिल्म संगीत को नया स्वरूप प्रदान किया, और प्रथम दशक की समाप्ति तक पहुँचते-पहुँचते उसे ऐसा रस प्रदान किया कि उसने इस देश की सीमा को लाँघकर विदेशों में भी मुग्ध कर दिया।

**लेखक दैनिक जागरण के विशेष संवाददाता तथा दैनिक हिन्दुस्तान के फिल्म समीक्षक हैं। भारतीय फिल्मों का इतिहास पहली बार आपने लिखा। राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह के सलाहकार एवं निर्णायक मंडल में आप अनेक बार सदस्य रहे हैं।*

◆◆◆◆◆

गायक-गायिकाओं का एक दुर्लभ चित्र (बाएँ से)—जौहराबाई, शैलेष मुखर्जी, राजकुमारी, तलत मेहमूद, अमीरबाई कर्नाटकी, मोहम्मद रफी, जी. एम. दुर्रानी, गीता दत्त, किशोर, लता, मुकेश, मीना कपूर।

हजारों ख्वाहिशें ऐसी : दुर्रानी

◆◆◆

जी. एम. दुर्रानी का पूरा नाम **गुलाम मुस्तफा दुर्रानी** है। १९१९ की जनवरी में पेशावर में उनका जन्म हुआ था। वे पहले आकाशवाणी पर गाते थे। सोहराब मोदी ने 'सैयदे-हवस' के लिए उन्हें चुना और संगीतकार बुनियाद खाँ के निर्देशन में 'मस्तों को एहम फर्ज है पीना शराब का' यह गजल उनसे गवाई। दुर्रानी को मेकअप करने से बेहद नफरत थी। इसके कारण फिल्मी दुनिया छोड़कर फिर से रेडियो का माइक्रोफोन संभाल लिया। १९४० में फिर से सिनेमा का ग्लैमर खींच लाया। संगीतकार नौशाद ने उन्हें मदद की और स्टेशन मास्टर, शारदा में चल पड़े। संगीतकार फिरोज निजामी की फिल्म उस पार में 'पंछी भूला कल का गाना' बेहद लोकप्रिय हुआ था। शमा (१९४६), मिर्जा गालिब (१९४७) में भी उन्होंने उम्दा गीत गाए थे। १९४७ से रफी की तूती बोलने लगी। १९५१ तक दुर्रानी को मैदान से हटना पड़ा।

जी.एम. दुर्रानी की आवाज में मिठास तो थी, लेकिन आवाज को ऊँचाई पर नहीं ले जा सकते थे। उन्होंने अपने जमाने की मशहूर तारिका ज्योति के साथ शादी की थी। **प्रमुख गीत:** * हजारों ख्वाहिशें ऐसी (घायल) * इक याद किसी की (शमा) * बरस गई राम बदरिया (स्टेशन मास्टर) * काया की रेल निराली (स्टेशन मास्टर) * कितना भुलाओगे (नखरे) * इत, आवे उत जावे नगरिया (शारदा)।

बस एक बार मेरा कहा मान लीजिए: उमराव जान (रेखा)

देखिए फिर प्यार से आपने देखा मुझको: खय्याम

● **स्वतंत्र कुमार ओझा**

अपनी धुनों में फूलों जैसी ताजगी और खुशबू बिखेरने वाले संगीतकार खय्याम उन कुछ संगीतकारों में से हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं को हमेशा सुरीली और मीठी धुनों से सँवारा है, नवाजा है–१९५२-५३ के आसपास लोगों ने उनका **'शामे गम की कसम'** सुना। बिल्कुल नए अंदाज की धुन, नई टेक्नीक से उसकी प्रस्तुति। शायद इन्हीं दिनों या इसके बाद इंदौर के ही एक उभरते गायक सुनील कुमार की आवाज में जाँ निसार अख्तर की गैर फिल्मी गजल **'जब गम के अंधेरे इस दिल पर'** खय्याम सा. ने कोलंबिया की डिस्क पर रेकॉर्ड की थी। वह भी सुनने को मिली थी, तब से ही लोगों के साथ मैं भी उनका प्रशंसक हो गया था। मुझे लगा धुनों में नयापन, सुरीलापन और साथ ही नए कलाकारों को उनकी प्रतिभा और रेंज के अनुसार मौका देने वाले कुछ संगीतकारों में खय्याम भी प्रमुख हैं। तब से ही उनकी बनाई धुनों को ध्यान से सुनता रहा हूँ और ये सिलसिला आज तक जारी है। आज भी हालाँकि बहुत कुछ बदल गया है, उनकी धुनों का वो ही आलम है, वही मिठास है उनमें।

खय्याम से मेरी भेंट पिछले ही दिसंबर में हुई थी। फिल्मी धुनों को इल्मी बनाने के लिए बेहद जरूरी है कि फिल्म के हर पक्ष को याने कहानी पात्र गीत आदि की स्थिति को बारीकी से समझा जाए। धुन के साथ अच्छे शब्द हों तो मणिकांचन योग हो जाता है। फिल्म छोटी हो बड़ी हो संगीत इसका एक अहम् पक्ष होता है। इस पर भी उतनी ही मेहनत करना होती है। कई बार फिल्में चलती नहीं लेकिन उसके गीत श्रोताओं को हमेशा याद रहते हैं।

फिल्म **फुटपाथ** में शामे गम की कसम एक नयापन लेकर आई। गीत से पहले उभरता संगीत जैसे एक उदास सिम्फनी हवा में तैरती हुई उदास शाम का आभास देने लगती है। खय्याम साहब बताने लगे "नयापन यूँ है कि इस गीत में तबला ढोलक आदि ताल वाद्यों के स्थान पर स्पेनिश गिटार और इबल बैस से रिदम दी गई है और सोलो बाक्स का इस जमाने में पहली बार प्रयोग किया गया। इससे एक अलग प्रभाव पैदा हुआ, कामयाब रहा।" इस गीत को सुनकर किसी का भी मन भाव विभोर हो उठता है। सोलो के अलावा खय्याम ने कुछ युगल गीतों को भी लाजवाब धुनें दीं **'राज सीने में मोहब्बत का छिपाए रखना'** और **'फिर न कीजे मेरी गुस्ताख निगाहों का गिला'** इनकी धुनें तो मीठी और सुरीली हैं ही, लेकिन सारंगी सितार का इतना खूबसूरत कॉम्बीनेशन बहुत कम देखने को मिलता है।

हाल ही के कुछ वर्षों में फिल्म बाजार की गजल–**'बात फूलों की'** में समय के अंतराल के साथ, स्थाई अंतरे के संगीत में जो परिवर्तन आया है, इसका भी ध्यान रखा गया है। उनका सोचना था स्थाई और अंतरे के संगीत की भी अपनी एक

हम "रचना" प्रकृति की एक समान
क्यों न इसे मिल, दें सम्मान ?

chhabi advtg SI 03

ज़रा सोचिए—
प्रकृति की सुन्दर व सर्वश्रेष्ठ रचना है—मानव,
और इस रचना में निश्चय ही समानता है।
इसे शारीरिक व बौद्धिक—दोनों ही शक्तियाँ प्राप्त हैं।
हमारी बौद्धिक शक्ति अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक विकसित है
सद्भावना की कमी के बावजूद,
एक जाति का पशु अपनी जाति का हनन नहीं करता।
न तो शेर-शेर को मारता है और
न ही चींटियाँ चींटी का हक छीनतीं।
तो आखिर क्यों ?
हम मानव, एक दूसरे के रक्त-पिपासु बनें,
सौहार्द्रता से दूर रहें और एकता खंडित करें।

हम सब सहृदयता लायें,
राष्ट्र को अखण्ड अटूट बनायें।

सहारा इण्डिया

ग्रुप ऑफ कम्पनीज
झोनल कार्यालय,
ई ४/१८०, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल—१६
फोनः ६१३४९, ६३८४३

हमें जागरुक होना है, और अवश्य होना है!

भाषा है। गीत की धुन के साथ उसकी स्वर रचना का भी उतना ही ध्यान रखना आवश्यक है। प्रयोग में लाए जा रहे वाद्यों पर किस तरह के टुकड़े बजाए जाएँ जिससे नवीनता तो पैदा हो ही उनकी अपनी एक अलग पहचान भी कायम हो, ये देखा जाना भी बहुत जरूरी है'। मोहम्मद रफी की आवाज में कुछ गैर फिल्मी भजन उन्होंने रिकॉर्ड किए थे। उस पर उनकी एक अलग ढंग की टिप्पणी थी। बताते हैं कि उस जमाने में भजन की जो पारंपरिक शैली थी, उससे हटकर मैंने बिल्कुल नए तरीके से अपने को अभिव्यक्त करने की कोशिश की। गिटार के बजने में ऐसी कुशलता वापरी जैसे स्वर मंडल बज रहा हो हाँ ऐसा आभास हो। रिद्मिक पैटर्न बदला, या फिर सारंगी सितार आदि के साथ ये भजन रिकॉर्ड किए और लोगों ने पसंद किए। **"तेरे भरोसे हे नंदलाला' 'श्याम से नेहा लगाए'** आदि भजन इसके उदाहरण हैं। गजल पर बात करते हुए वे अक्सर गंभीर हो जाते हैं। कहते हैं गजल बड़ी हसीन और नाजुक चीज है-यहाँ भी मैंने ट्रेडीशनल गजल से हटकर कुछ कहने की कोशिश की।शायर ने क्या कहा है शेर के किस लफ्ज पर 'स्ट्रेस' देना है। छोटी-छोटी तान मुरकी हो लेकिन शेर खराब न हो आदि खास मुद्दों पर ध्यान दिया। पहले इसमें ट्रम्पेट क्लेरियोनेट का इस्तेमाल होता था। भला गजल जैसी हसीन चीन में क्रूड आर्केस्ट्रा की क्या जरूरत? यहाँ भी मैंने इसको बदलने की कोशिश की और सितार,सारंगी, बाँसुरी, तानपुरा स्वरमंडल के साथ धुनें बाँधी। 'दर्द मिन्नत कशे दवा न हुआ' इसी तरह की गजल है—पूरिया धनाश्री के स्वर और इन वाद्यों का प्रयोग। ये गजल भी काफी पसंद की गई।

हाल ही के वर्षों में उमराव जान में जिन गजलों का संगीत उन्होंने तैयार किया वे पारंपरिक मुजरा गीतों से हटकर कहानी की मर्यादा के अनुसार एक नयापन लिए हुए थी...। शास्त्रीय संगीत की बात चली तो कहने लगे "पंडित अमरनाथजी से इसकी तालीम हासिल की। जब कोई धुन बनानी होती है तो सात स्वरों के अथाह सागर में से नई धुन ढूँढना कितना मुश्किल काम है। लाखों करोड़ों धुनें हैं, उनसे अलग कुछ बनाने में काफी वक्त,धैर्य और लगन होनी चाहिए और फिर आम लोगों को पता भी नहीं चलना चाहिए कि धुन किस राग या रागिनी पर आधारित है याने इतनी आसानी पैदा कर दी जानी चाहिए कि लोग इसे गुनगुनाएँ-गाएँ या सुनकर लुफ्त उठाएँ।"

वे इस बात को लेकर गहरे चिंतित दिखाई देते हैं कि पिछले कुछ वर्षों से फिल्मी धुनों की कोई पहचान नहीं बन पाती। "अच्छी धुन संगीतकार, गीतकार, गायक और निर्देशक के आपसी तालमेल और गहरी आंतरिकता से तैयार होती है। हुआ ये कि कुछ बरस पहले दो तीन एक्शन फिल्में हिट हो गईं। तब से उसी थीम की पिक्चरों का माहौल चल रहा है। अब इस तरह की फिल्मों में मेलोडी कहाँ से आएगी? कोई क्या करेगा? अब मैं थोड़ा खुशकिस्मत हूँ कि मुझे अच्छे किस्म की पिक्चरें मिलती रहीं कभी-कभी, उमरावजान, थोड़ी सी बेवफाई, रजिया सुल्तान जैसी पिक्चरों की थीम हटके थी इसलिए मैं भी कुछ करके दिखा सका।"

जाहिर है कि खय्याम कम फिल्में लेते, सोच समझकर लेते या बाज वक्त उन्हें इस तरह की फिल्में कम मिलीं या मिलीं ही नहीं। बहरहाल वे हमेशा अपने काम में अनुशासित ढंग से जुटे रहे। धुनें बनती रहीं और उनकी अपनी एक अलग सुरीली पहचान होती रही।

खय्याम जैसे गंभीर संगीतकार का मौजूद होना फिल्म संगीत की भीड़भाड़ में एक सुकून देता है।

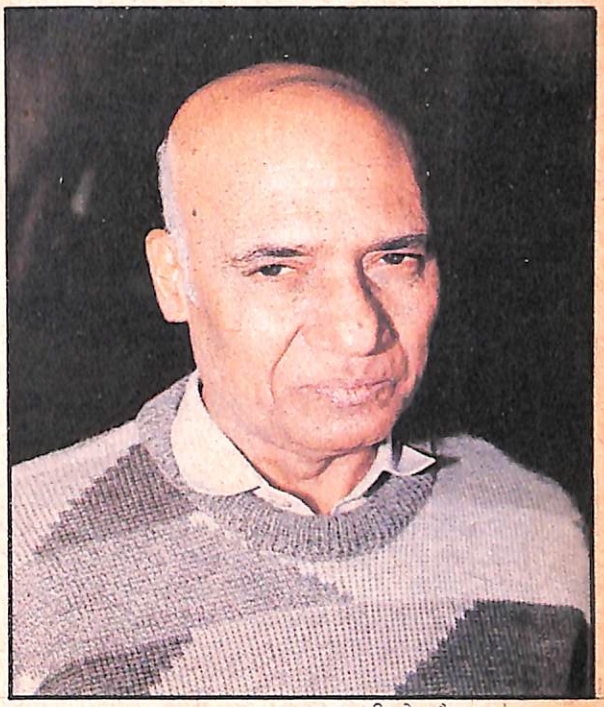

छाया : पी. के. जैन

उनकी मुसलसल उपस्थिति से लगता है कि **'वो सुबह कभी तो'** जरूर आएगी हाँ कुछ देर जरूर हो सकती है। खय्याम की धुनें उसी अतीत को पुकारती हुई लगती हैं, जिसे भागती व्यवसायी फिल्मी दुनिया ने अपने तेज रफ्तारी से कुचल डाला है। समय की पर्तों में दबी रुचियाँ मरती नहीं, फिर से जीवित होती हैं और एक नए रूप में आती हैं।

■

गाता रहे मेरा दिल: सुरेश चौधरी

संगीत की दुनिया में **सुरेश चौधरी** का नाम अनसुना और अचर्चित है। होना भी यही चाहिए, क्योंकि शाजापुर जिले की शुजालपुर तहसील का यह युवक पिछले दो दशकों से ऑस्ट्रेलिया में रह रहा है। ऑस्ट्रेलिया में सुरेश चौधरी का प्रवास संगीत से कतई संबंधित नहीं है। वे पेशे से डॉक्टर हैं और ऑस्ट्रेलिया में रहने वाले भारतीय मूल के डॉक्टरों में सर्वाधिक संपन्न और सफल हैं। सफलता और सम्पदा की ऊँचाइयों को छू लेने के बाद इस डॉक्टर का मन उन दिनों की ओर मुड़ गया जब वह इंदौर के महात्मा गाँधी चिकित्सा महाविद्यालय में होने वाले हर सांस्कृतिक कार्यक्रम की जान हुआ करता था। उनकी आवाज में वही पिछली लरज और मिठास कायम थी और दिल में संगीत की दुनिया में वापस लौटने की तमन्ना जाग उठी थी। ऑस्ट्रेलिया में ही उनकी मुलाकात सुशीला जॉन से हुई जो तमिल भाषी होते हुई भी हिन्दी के हल्के- फुल्के गीत गाने को लालायित थीं। सुशीला जॉन के पति फ्रांसिस जॉन खुद भी संगीत में दिलचस्पी रखते थे इसलिए उन्होंने अपनी पत्नी को सुरेश चौधरी के साथ युगल गीत गाने को प्रोत्साहित किया। इस तरह इस जोड़ी ने ऑस्ट्रेलिया में बसे भारतीयों के लिए भारतीय गीत-संगीत की पहली डिस्क सन् १९८४ में पेश की। विदेशों में यह अपने ढंग का अनूठा प्रयास था और इसे काफी सफलता मिली। डॉक्टर चौधरी के पास धन की कोई कमी नहीं थी और जरूरत थी एक ऐसे

स्टूडियो की, जहाँ वे आधुनिकतम तकनीक की सहायता से अपने गीत रिकॉर्ड करा सकें। इसलिए उन्होंने सिडनी में अपना खुद का रिकॉर्डिंग स्टूडियो खोल दिया। जब वे चिकित्सा की दुनिया छोड़कर संगीत की दुनिया में वापसी के कदम बढ़ा रहे थे तब उनकी मुलाकात एक इटालियन युवती मारिया से हुई। मारिया को खुद भी भारतीय संस्कृति और संगीत में गहरी दिलचस्पी थी इसलिए दोनों हम-सफर बन गए और धुनें तैयार करने की धुन में सारी दुनिया को भुला बैठे, लेकिन ऑस्ट्रेलिया में सबसे बड़ी दिक्कत थी भारतीय वाद्य यंत्रों वाले ऑर्केस्ट्रा की उपलब्धि की। अतः उन्होंने फैसला किया कि अपनी कृतियों का एक एलबम भारत आकर रेकॉर्ड कराएँ और उसे सबसे पहले भारत में ही जारी करें। इस सिलसिले में प्रतिष्ठित भारतीय रिकॉर्डिंग कंपनियों से चर्चा के लिए उन्हें अपने व्यय पर कई बार भारत आना पड़ा। अंततः सी.बी.एस. से अनुबंध हुआ और जनवरी १९८८ में आठ गानों का एलबम तैयार हो गया। इस एलबम की पूर्व तैयारियाँ ऑस्ट्रेलिया में ही हो गई थीं और चौधरी ने अपने निजी स्टूडियो में इनकी धुनें भी तैयार कर ली थीं। इस काम में फ्रांसिस जॉन एक सक्रिय सहयोगी के रूप में उनके साथ बने रहे। एलबम के आठ गानों में तीन युगल गीत हैं, भजन हैं और सबसे प्यारा एक गीत, बेटी के जन्म पर खुशियों के इजहार का है। बेटी के जन्म पर खुशियों की अभिव्यक्ति विदेशों में बसे भारतीयों की बदलती मानसिकता की सूचक है। यद्यपि कड़ी कसौटी और संगीत के उच्च मापदंडों पर यह एलबम चौबीस कैरेट खरा न उतर पाएगा, मगर लोकप्रियता की कसौटी पर इसका खरा उतरना निश्चित है। ऐसा होना जरूरी भी है, क्योंकि यदि यह प्रयोग सफल हो जाता है तो विदेशों में बसी भारतीय प्रतिभाएँ गीत-संगीत के क्षेत्र में अपना योगदान देने को नि:संकोच आगे आएँगी।

रेशमी सलवार कुरता जाली का : ओ.पी. नय्यर

स्वरूप बाजपेयी

खाली वक्त में होमियोपैथ के डॉक्टर, हरे राम हरे कृष्ण से संबंध रखने वाले तथा एक दौर के शीर्ष संगीतकार ओ.पी. नय्यर की फिलहाल तेलुगु फिल्म **'नीराजनम'** से वापसी हुई है। पी. सुशीला तथा बाला सुब्रमण्यम ने नीराजनम में अपने स्वर दिए हैं। ओ.पी. का सक्रिय दौर गुजरे यद्यपि काफी अर्सा हो गया है, पर अपनी मधुर धुनों के साथ वे आज भी श्रोताओं के दिलो-दिमाग पर हावी हैं।

छठे दशक के प्रारंभिक वर्षों में पंजाब से एक युवक जो पटियाला में पैदा हुआ तथा आकाशवाणी केंद्र जालंधर से सरनाम हुआ मायानगरी बंबई पहुँचा। तमन्ना फिल्म संगीत के माध्यम से श्रोताओं के दिलो-दिमाग पर छा जाना था।प्रारंभिक संघर्ष के पश्चात दलसुख एम. पंचोली से मुलाकात हुई। फिल्म 'आसमान' मिली। पंचोली ने ही आज के चरित्र अभिनेता तथा कल के प्रसिद्ध खलनायक प्राण को भी अपनी फिल्म यमला जाट में बतौर नायक ब्रेक दिया था। 'आसमान' के एक गीत के प्रारंभिक संगीत से ही किसी समय 'बिनाका गीतमाला' का आगाज होता था। यह युवक था ओंकारप्रसाद या ओ.पी. नय्यर। वही ओ.पी., जिसने आशा भोसले की एक विशिष्ट शैलीगत पहचान बनाई।

प्रारंभिक फिल्मों–आसमान, बाज, छम छमा छम से फिल्मी लोगों ने उन्हें जाना और जब गुरुदत्त ने अपनी संस्था के तहत 'आर पार' के निर्माण की योजना बनाई, तो संगीत निर्देशन का भार ओ.पी. को सौंपा। यहाँ यह भी बता दूँ कि फिल्म 'बाज' से दोनों का परिचय हो चुका था और यह भी कि गुरुदत्त प्रोडक्शंस ने आर पार, मि. एंड मिसेस- ५५, सी.आय.डी. और बहारें फिर भी आएँगी में ओ.पी. को साथ रखा। आर पार के गीतों ने १९५४ में धूम मचा दी थी और वे गीत आज भी प्यारे लगते हैं– कभी आर कभी पार (शमशाद), ये लो मैं हारी पिया (गीतादत्त)।

बस, ओ.पी. ने पीछे मुड़कर नहीं देखा। १९५४ से १९६२ तक अर्थात ८ वर्षों तक फिल्म संगीताकाश में छाए रहे। उन्हें पाश्चात्य संगीत में भी महारत हासिल थी और भारतीय संगीत में भी। विशेष रूप से पंजाबी लोकधुनों का तो ओ.पी. के पास खजाना था।

उस दौर में एक बॉस हुआ करता था (आज भी होता है) और एक डांसर, जो उसके क्लब या होटल में डांस किया करती थी। ऐसे क्लब-डांस उस समय प्रचलित थे। नय्यर साहब ने इस तरह के भी कई लोकप्रिय गीत दिए हैं–मेरा नाम चिन चिन चू (हावड़ा ब्रिज), अरे तौबा (१२ बजे), हूँ अभी मैं जवाँ (मि. एंड मिसेस-५५), चोर, लुटेरे, डाकू और ये समाँ फिर कहाँ (उस्ताद) आदि।

सवाल यह है कि उनमें ऐसा क्या था जिसकी वजह से शंकर-जयकिशन, नौशाद, सचिन दा, मदन मोहन, रवि, रोशन जैसे सिद्धहस्त संगीतकारों के होते हुए भी ओ.पी. ने अपने नाम का लोहा मनवाया। उनके संगीत का विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि मधुरता ही उनके संगीत का प्रमुख आकर्षण था। सितार, संतूर, क्लेरनेट, सारंगी तथा सबसे बढ़कर घुँघरुओं की मिठास उनके गीतों में रची- बसी थी। सबसे ऊपर थी रिद्म। ताल वाद्य की रिद्म। तबले एवं ढोलक का जितना खूबसूरत और सही इस्तेमाल नय्यर ने किया, उतना किसी ने नहीं। इन गीतों को सुनिए, आप स्वयं मेरे कथन से सहमत हो जाएँगे–तू लागे मोरा बालमा (श्रीमती ४२०), रेशमी सलवार कुरता जाली का (नया दौर), यूँ ही बातें न बना तू (कैदी), लेके पहला-पहला प्यार (सी.आय.डी.), जादूगर साँवरिया (ढाके की मलमल), पिया पिया ना लागे मोरा जिया (फागुन), ये देश है वीर जवानों का (नया दौर)। एक लंबा सिलसिला है ऐसे गीतों का।

प्रेमी मन के उत्साह को प्रकट करने वाले गीतों में प्रेम का एक अनूठा संसार आँखों के सामने उतर आता है। गीत के बोल या शब्द नायक-नायिका को परिभाषित करते प्रतीत नहीं होते और संगीत केवल उनके हृदय का संगीत नहीं होता। श्रोता स्वयं भी उनसे जुड़ जाता है। मसलन–झुका-झुका के निगाहें मिलाए जाते हैं (मिस कोकाकोला), आँखों ही आँखों में इशारा हो गया (सी.आय.डी.), यूँ मुस्कुरा के सामने आया न कीजिए (कैदी), मैं सोया अँखियाँ मींचे या तुम रूठ के मत जाना (फागुन), दीवाना हुआ बादल (कश्मीर की कली)।

ताँगे का चलना तथा घोड़ों के टापों को संगीतमय आधार ओ.पी. नय्यर ने दिया और यह भी एक परंपरा बन गई। बाप रे बाप, तुमसा नहीं दिखा, नया दौर, दो दिलों की दास्ताँ, हावड़ा ब्रिज तथा सावन की घटा में ऐसा एक-एक गीत मिलता है। साजों का माधुर्य एवं गंभीर रूप भी नय्यर के गीतों में है। कुछ गीत तो साजों की अपनी नफासत की वजह से ही मकबूल हुए, जैसे–बेकसी हद से जो गुजर जाए (कल्पना) में सारंगी का प्रयोग, मेरी

ओ.पी. नय्यर के दस श्रेष्ठ गीत

*कभी आर, कभी पार (शमशाद बेगम/आरपार) *ले के पहला-पहला प्यार (शमशाद-रफी/सीआयडी) *यह देश है वीर जवानों का (रफी-बलबीर/नया दौर) *एक परदेसी मेरा दिल ले गया (आशा-रफी/ फागुन) *रात भर का है मेहमाँ अँधेरा (रफी/सोने की चिड़िया) *सुरमा मेरा निराला (किशोर कुमार/कभी अँधेरा कभी उजाला) *अपना तो जमाने में (किशोर कुमार/नया अंदाज) *चल अकेला, चल अकेला (मुकेश/संबंध) *मन मोरा बावरा (रफी/रागिनी) *यूँ तो हमने लाख हँसी (रफी/तुमसा नहीं देखा)।

जान तुझ पे सदके (सावन की घटा) में सितार, जब सावन लहराया (छूमंतर) एवं तोम ताना देरे ना देरे ना (ढाके की मलमल) में घुँघरू का सुंदर प्रयोग, पिया पिया ना लागे मोरा जिया (फागुन) में बाँसुरी के स्वर, बहुत शुक्रिया बड़ी मेहरबानी (एक मुसाफिर एक हसीना) एवं ख्यालों में मेरे आए हुए (दो उस्ताद) में हारमोनियम की मिठास मिलती है।

पंजाबी लोक धुनों और विशेष रूप से भाँगड़ा का अनोखा प्रयोग नय्यर की कुछ फिल्मों में मिलता है। एक बात और है, इस क्षेत्र में उस दौर के कुछ और संगीतकारों ने भी जोर-आजमाईश की है, पर वे नय्यर की छाँह भी नहीं छू सके।

ओ.पी ने अपने वक्त में जो सफलताएँ अर्जित की, वे काबिले-तारीफ हैं तथा उनका महत्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि ओ.पी. बुलंदियों पर पहुँचे और वह भी लता मंगेशकर के सहयोग के बिना। नय्यर के संगीत में लताजी का एक भी गीत नहीं है। इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती, पर यह सच है। वैसे ओ.पी. के अधिकांश गीतों को रफी ने अपनी बुलंदियाँ प्रदान की हैं अथवा आशा भोसले की तराशी हुई खनकती आवाज मिली है। आशाजी को तराशने तथा शीर्ष पर पहुँचाने में नय्यर की रचनाओं का बहुत हाथ है।

किशोर कुमार ने नय्यर के संगीत में गीत उन्हीं फिल्मों में गाए हैं जिनमें वे स्वयं नायक थे—भागम भाग, नया अंदाज, कल्पना, रागिनी, कभी अँधेरा कभी उजाला, छम छमा छम, बाप रे बाप इत्यादि। नय्यर के संगीत में किशोर अपने स्वाभाविक अंदाज में हैं। नई आवाजों में दिलराज कौर भी कुछ गीत गा चुकी है। सबसे प्रमुख तो यह कि तलत महमूद भी उनकी फिल्म सोने की चिड़िया में थे।

माया नगरी बंबई ने यद्यपि उन्हें भुला दिया है, पर उनके बनाए गीतों पर अभी समय की जंग नहीं लगी है, वे आज भी उतने ही मधुर एवं ताजा हैं जितने बीते दौर में थे।

◆◆◆

तितली उड़ी... शारदा

शंकर-जयकिशन जैसे संगीतकारों की बेजोड़ जोड़ी के बीच जब **शारदा** अपनी बारीक आवाज लेकर आई, तो जोड़ी के जोड़ खुल गए। शंकर को भा गई थी शारदा और उसे गायिका बनाने के चक्कर में मीठी धुनें कड़वी हो गई। गुमनाम, स्ट्रीट सिंगर, सूरज जैसी फिल्मों में शारदा ने गाया। तितली उड़ी, उड़ जो चली उसका पहला गीत था। इसके गाने के बाद तितली वापस नहीं लौटी। उसके तमाम रंग, बदरंग हो गए। सब कुछ बिखरता चला गया। प्रतिभा हो तो व्यक्ति चलता है, धक्का लगाने से ज्यादा दूर तक नहीं जाया जा सकता इस सच को शारदा ने साबित कर दिया है।

गीतों का गोवर्धन पर्वत उठाया है हरमन्दिर सिंह ने

जो काम इस देश में किसी गीतकार, गायक, संगीतकार, ग्रामोफोन कम्पनी, आकाशवाणी या सरकारी मशीनरी ने नहीं किया, उसे एक साधारण श्रोता ने सम्भव बना दिया। गीत-संगीत को अपने जीवन में सबसे अधिक प्यार करने वाले कानपुर के **हरमन्दिर सिंह हमराज** ने हिन्दी फिल्म गीतकोश के चार खण्ड प्रकाशित कर पूरे देश के संगीत-प्रेमियों की सराहना प्राप्त की है। १८ नवंबर १९५१ को जन्मे हरमन्दिरसिंह हमराज विज्ञान में स्नातक हैं और इस समय भारतीय स्टेट बैंक (कानपुर) में सेवारत हैं। लिस्नर्स बुलेटिन का बखूबी सम्पादन कर देश के संगीत श्रोताओं को आपस में जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य भी कर रहे हैं। रेडियो सीलोन से गीतों की फरमाइश करते समय उन्हें इस बात की परेशानी हमेशा होती थी कि फलाँ गीत किसने गाया है या उसके संगीतकार कौन हैं, या फिल्म कौन सी है? इस कमी को दूर करने के लिए उन्होंने गीतकोश की कल्पना की और देश भर का दौरा कर नए-पुराने गीतकारों, संगीतकारों, गायकों से मिले और दुर्लभ जानकारी एकत्रित की। १९३१ से लेकर १९७० तक के समय को उन्होंने दस-दस साल के चार खंडों में विभाजित किया और अकारादि क्रम से फिल्मों के नाम और उनके गीतों के मुखड़े-गायक, गीतकार, संगीतकार सहित-कोश की शक्ल में प्रकाशित किए। इन कोशों के प्रकाशन के बाद ही संगीत प्रेमियों को यह मालूम हुआ कि कुल कितनी फिल्में बनी हैं और कुल गीतों की संख्या कितनी है। इतना बड़ा काम अपने निजी प्रयास, लगन एवं निष्ठा से हरमन्दिरसिंह ने पूरा किया है। उनका शोध कार्य जारी है। १९७१ से आज तक के गीतकोश का प्रकाशन वे और उनके सहयोगी मित्र विश्वनाथ चटर्जी (नागपुर) कर रहे हैं।

* **१९३१ से १९७० तक कुल फिल्मों की संख्या: ४,४००।**
* **इसी अवधि के कुल गीतों की संख्या: ३६,०००।**
* **१९३१ से १९४० के गीतकोश खंड एक में ९३१ फिल्मों के ९००० गीतों के मुखड़ों का संकलन है।**
* **१९४१ से १९५० के खण्ड दो में १२३६ फिल्मों के ११००० गीत।**
* **१९५१ से १९६० के खण्ड तीन में ११६३ फिल्मों के ९००० गीत।**
* **१९६१ से १९७० के खण्ड चार में १००७ फिल्मों के ७००० गीत।**

ये प्रॉविन्स आपका नहीं

अनमोल घड़ी फिल्म का संगीत तैयार करने का दायित्व मेहबूब ने नौशाद के जिम्मे किया। नूरजहाँ द्वारा गाया हुआ गीत, जवाँ है मोहब्बत हसीं है जमाना, तब खूब लोकप्रिय हुआ था। गाँने की रिकार्डिंग सुनकर मेहबूब ने नौशाद को दो-चार जगहों पर कुछ परिवर्तन का सुझाव दिया। मन ही मन नौशाद को बुरा लगा। दो-तीन दिन बाद स्टूडियो में हो रही शूटिंग को मेहबूब कैमरे से देख रहे थे। नौशाद वहाँ उपस्थित थे। विनम्रतापूर्वक उन्होंने मेहबूब से कैमरे से झाँकने की अनुमति माँगी और मेहबूब की ही शैली में नौशाद निर्देश देने लगे। स्पष्ट ही मेहबूब इस अप्रत्याशित हस्तक्षेप से नाराज हो गए। उन्होंने नौशाद से कहा, आपको इसमें क्या समझता है? ये प्रॉविन्स आपका नहीं। आप तो अपना का कीजिए। नौशाद ने क्षमायाचना की और कहा, फोटोग्राफी जैसा मेरा प्रॉविन्स नहीं, उसी तरह से संगीत भी आपका प्रॉविन्स नहीं है। मेहबूब जो समझना था, समझ गए। फिर कभी उन्होंने नौशाद के प्रॉविन्स में दखलंदाजी नहीं की।

फिल्मों में सुगम शास्त्रीय संगीत

(कौनसा गीत किस शास्त्रीय राग पर आधारित है)

राग भीमपलासी

* हसरतें खामोश हैं और आह बेतासीर है (तदबीर)
* राग द्वेष को छोड़ के मनवा (वाल्मीकि)

राग बागेश्वरी

* जाग दर्दे इश्क जाग (अनारकली)
* नैन सो नैन नहीं मिलाओ (झनक झनक पायल बाजे)
* जा जा रे जा बालमवा (बसंत बहार)
* कागा रे जारे जारे (वफा)
* बदली-बदली दुनिया है मेरी (संगीत सम्राट तानसेन)
* कोई हमदम न रहा (झुमरू)
* जूड़े में गजरा मत बांधो (तू पायल मैं गीत)
* चाह बरबाद करेगी (शाहजहाँ)
* जाओ जाओ नंद के लाला (रंगोली)
* जाओ न सताओ रसिया (रूप की रानी चोरों का राजा)
* खुद तो बदनाम हुए (चंदा और बिजली)

राग केदार

* पंछी बावरा चांद से प्रीत लगाए (भक्त सूरदास)
* हम को मन की शक्ति देना (गुड्डी)
* मैं पागल मेरा मनवा पागल (आशियाना)
* बेकस पे करम कीजिए (मुगले आजम)

राग सोहनी

* जिया ले गयो री मोरा सांवरिया (अनपढ़)
* प्रेम जोगन बन जाऊँ (मुगले आजम)
* खुदा निगहबाँ न हो तुम्हारा (मुगले आजम)

राग दरबारी कानड़ा

* घूंघट के पट खोल रे (जोगन)
* तोरा मन दर्पण कहलाए (काजल)
* ओ दुनिया के रखवाले (बैजू बावरा)
* बुलबुलों मत रो यहाँ (जीनत)
* चाँदी की दीवार न तोड़ी (विश्वास)

झनक-झनक पायल बाजे

मुगले आजम

* कोई मतवाला आया मोरे द्वारे (लव इन टोकियो)
* मन मोरा बावरा (लाडली)
* झनक झनक तोरी बाजे पायलिया (मेरे हुजूर)

राग तिलंग

* सखी री सुन बोले पपीहा (मिस मेरी)
* मैं तारों की ओढ़ चुनरिया (रुक्मिणी स्वयंवर)
* बता दो सखी कौन गली गए श्याम (मधु)

राग नट विहाग

* झन झन झन झन पायल बाजे (बुजदिल)

राग हंसध्वनि

* जा तोसे नहीं बोलू (परिवार)

राग देसी

* आज गावत मन मेरो झूमके (बैजू बावरा)

राग तिलक कामोद

* अब राजा भये मोरे बालम (तानसेन)
* मोरे बालापन के साथी छैला (तानसेन)
* बिंदिया मोरी चमकन लागी (खिलौना)
* जाने कैसे सपनों में (अनुराधा)

राग पहाड़ी

* कहाँ है तू मेरे सपनों का राजा (अफसाना)
* पत्ता पत्ता बूटा बूटा (एक नजर)
* बहारों मेरा जीवन भी संवारो (आखरी खत)
* जाने क्या ढूँढती रहती है (शोला और शबनम)
* तुम अपना रंजो गम अपनी परेशानी (शगुन)
* पर्वतों के पैरों पर शाम का बसेरा (शगुन)

राग आसावरी

* मैं किस्मत का मारा भगवान (तदबीर)
* कह दो कोई ना करे यहाँ प्यार (गूँज उठी शहनाई)

राग दीपक

* दिया जलाओ जगमग जगमग (तानसेन)

राग बहार

* राधे राधे बंशी रही पुकार (कंगन)
* पवन दीवानी न माने (डाक्टर विद्या)
* बाग लगा दूँ सजनी (तानसेन)
* झूमती चली हवा (संगीत सम्राट तानसेन)
* कुहू कुहू बोले कोयलिया (स्वर्ण सुंदरी)

राग बसंत बहार

* लपक झपक तू आ रे बदरवा (बूट पालिश)
* मन की बीन मतवारी बाजे (शबाब)
* आई मधु रितु बसंत बहार री (हमदर्द)
* सुर ना सधे क्या गाऊँ मैं (बसंत बहार)
* केतकी गुलाब जूही चंपक बन फूले (बसंत बहार)
* छम छम नाचन आई बहार (छाया)

राग अडाणा (कान्हरा)

* मनमोहन मन में हो तुम्ही (कैसे कहूँ)
* जा तो से नहीं बोलूँ (सौतेला भाई)
* झनक झनक पायल बाजे (झनक झनक पायल बाजे)

राग मल्हार

* झूलो झूलो रे झुलना झुलाऊँ (एकादशी)
* चंदा रे जारे जारे पिया से संदेशा (जिद्दी)
* गरजत बरसत सावन आयो री (बरसात की रात)
* देखो जादू भरे मोरे नैन (आसमान)
* जाओ रे जोगी तुम जाओ (आम्रपाली)
* मन मोर हुआ मतवाला रे (अफसर)
* बोले रे पपिहरा (गुड्डी)
* काहे अकेला डोलत बादल (ग्रामोफोन सिंगर)

राग मेघ मल्हार

* बरसो रे बरसो रे (तानसेन)

बूट पॉलिश.

फिल्मों में सुगम शास्त्रीय संगीत

राग काफी

* जलते हैं जिनके लिए (सुजाता)
* बालम आय बसो मोरे मन में (देवदास)
* काया का पिंजरा डोला रे (सत्य की खोज)
* होली खेलत नंदलाल (गोदान)
* प्रेम की नैया चली (भाग्य चक्र)
* गरीबों की सुनो (दस लाख)
* छुप गए सारे नजारे होय क्या बात हो गई (दो रास्ते)
* बिगड़ी बनाने वाले बिगड़ी बना दे (मुलतानी काफी) (बड़ी बहन)
* नाचे मन मोरा मगन (मेरी सूरत तेरी आँखें)
* चली गोरी पी के मिलन को चली (एक ही रास्ता)
* बाट चलत नई चुनरी रंग डारी (लड़की)
* अजहूँ न आए बालमाँ (सांझ सवेरा)
* इतने दूर हुजूर हैं (प्यार की जीत)
* बिंदिया चमकेगी (दो रास्ते)
* प्रिय प्राणेश्वरी (हम तुम और वो)

राग विहाग

* मेरे जनम जनम के साथी (कृष्णलीला)
* ऐ दिल बेकरार झूम (शाहजहाँ)
* ऐ माँ तेरी सूरत से अलग (दादी माँ)
* हमको तुम्हारा ही आसरा (साजन)

राग सारंग

* अंबवा पै कोयल बोले (मूर्ति)
* जादूगर सैंया (नागिन)
* अंबवा की डाली डाली (मुक्ति)

राग जौनपुरी

* मदभरी अँखिया मतवारी (संस्कार)
* मेरी याद में तुम ना आँसू बहाना (मदहोश)

राग देश

* साँवरिया मन भाया रे (मुक्ति)
* उड़ी हवा में जाती है गाती चिड़िया ये राग (अछूत कन्या)
* कदम चले आगे मन पाछे भागे (भक्त सूरदास)
* बने चाँदनी का पलना झूले चंदा सा ललना (जीवन प्रभात)
* मैं सोते भाग जगा दूँगा मैं जागे भाग सुला दूँगा (लगन)
* जो हम पै गुजरती है सितारों से पूछिए (मुमताज)
* दुख के दिन अब बीतत नाहीं (देवदास)
* जारी सखी मोरे पी को सुना दे (जमींदार)
* वो न आएँगे पलटकर उन्हें लाख हम बुलाएँ (देवदास)

राग यमन कल्याण

* कित जावोगे कन्हैया मन के बसैया (इज्जत)
* सुनो सुनो ऐ वन के प्राणी (अमर ज्योति)
* जारे बदरा जारे जारे (बहाना)

राग मांड

* किसे करता मूरख प्यार प्यार (अछूत कन्या)
* रखियाँ बंधावो भैया सावन आया रे (छाया)
* तेरी गठरी में लागा चोर (भाग्य चक्र)
* मतवाले नैनों वाली (इज्जत)
* दुनिया कहती मुझको पागल (जन्मभूमि)

दुनिया की बेहत्तरीन
किचिन मशीन...
अब मुफ्त
कलेक्शन बाऊल
GOPI
...एक नये
अंतर्राष्ट्रीय
पैक में
घंटो चीजें गर्म या ठंडी
रखने के लिये
पिकनिक बॉक्स,
इन्सुलेटेड कंटेनर
के रूप में दुबारा
इस्तमाल के काबिल.
9 IN 1
आजही
गोपी घर
ले आइये
* रेटिंग ६० मिनट
* १८००० आर पी एम
* ४५० वॉट
अंतर्राष्ट्रीय स्तर की
गोपी
किचिन मशीन
भारतभरमें सेवा केन्द्र
कंपनीकी सेल्स और सर्विस आफिस:
सुपर डोमेस्टिक अप्लायन्सेस प्रा.ली.
५२ होटेल ताज, हमिदीया रोड, भोपाल ४६२००१
फोन ७४७१८, ग्राम: SHIVALI
SYMBOL OF SERVICE
-प्रकाश-
Bidhan-SDA-1-HIN

आधुनिकतम आणि सर्वोत्तम
गैस स्टोव
IS 4246
Mayur
अधिक टिकाऊ,
सर्वोत्तम ताप क्षमता आणि किफायती.
Mayur
SUPREME
STAINLESS
STEEL
अधिक चालणारे विशेष ब्रास बर्नर सहित

ZENITH
Refrigerators
रवि
हॉकिन्स
FEDDERS LLOYD
BPL-TV
VCR
डायनोरा
उषा
Hylex
SHRIRAM
उचित मूल्य
ग्राहक सेवाओं के लिये IMM-BAJAJ गोल्ड अवार्ड से सम्मानित संस्थान
के संग
पी.डी.व्यास
उत्कृष्ट उत्पादन -
VOLTAS
Refrigerators
UPTRON
Prince-TV
रेमी
आकाश
तत्काल सेवा
Promoting Excellence In Marketing
पी.डी.व्यास
एण्ड कम्पनी
राजवाड़ा, इन्दौर
फ़ोन : 37155 ; 37151
Ankit-2481

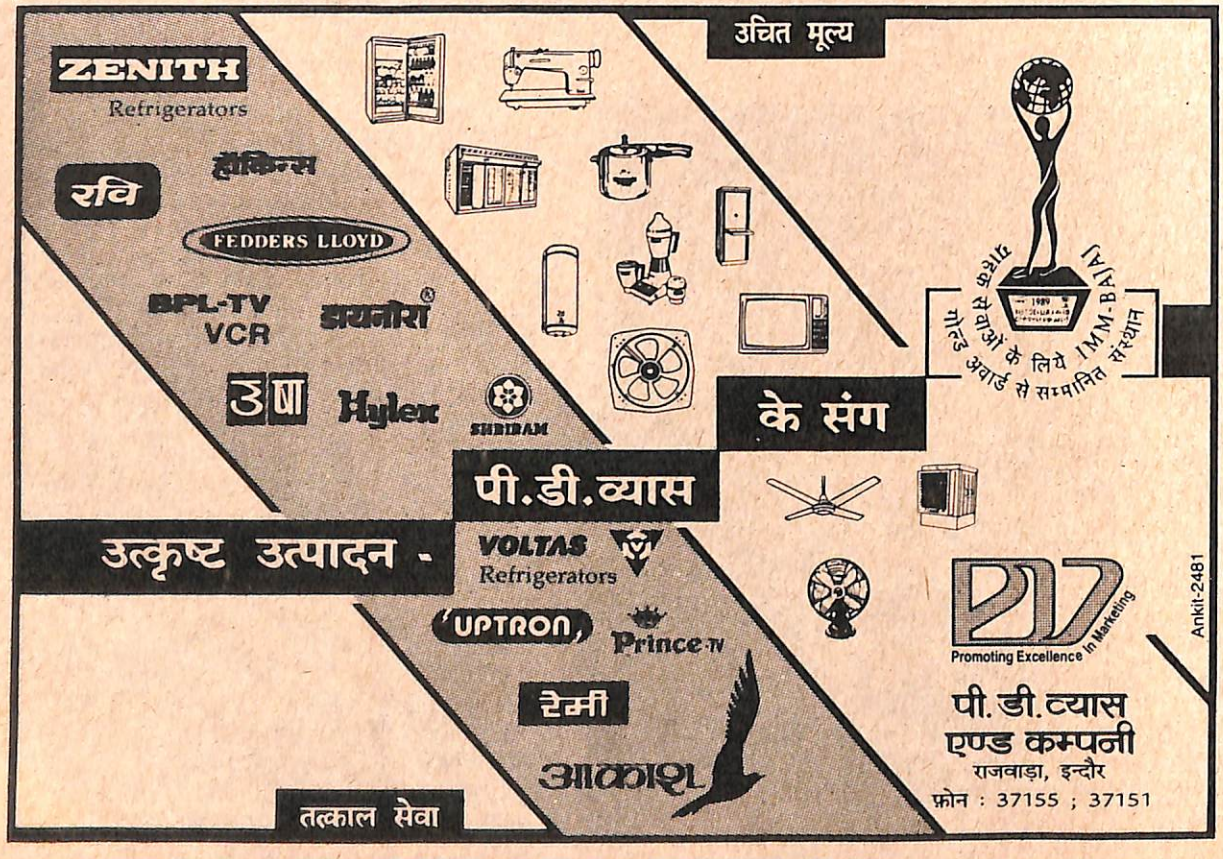

जो मिल गया उसी को मुकद्दर समझ लिया : जयदेव

● स्वतंत्रकुमार ओझा

जयदेव हिन्दी फिल्म संगीत की दुनिया का एक ऐसा नाम है, जो अपनी मधुर और कर्णप्रिय धुनों के कारण संगीत प्रेमियों के जहनों में वर्षों तक अपनी जगह बनाए रखेगा। यदि कहा जाए कि सुगम संगीत की अधिकतम 'मेलोडियस' धुनें उनके खाते में आती हैं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। जयदेव की धुनों की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि जहाँ एक ओर वे शास्त्रीयता की जनप्रिय होने की सीमा तक जाती थीं, दूसरी ओर वे लोकप्रियता के लिए कोई समझौता नहीं करती थीं। उनका समझौता होता भी था, तो सिर्फ सुनने वाले के कान से।

जयदेवजी से मेरी सबसे पहली मुलाकात मीनू कात्रक के रिकॉर्डिंग स्टूडियो में हुई थी। वे एस.डी. बर्मन व किशोरकुमार के साथ कोई रिकॉर्डिंग करवा रहे थे। पंचम अर्थात् राहुल देव बर्मन माउथ आर्गन बजा रहे थे। जयदेव के संगीत में एक गहरा आकर्षण था, खासकर उन लोगों के लिए जो सोलो, को लेकर उत्साहित रहते हैं। मेरा ख्याल है कि उनकी धुन का एक अलग ही अंदाज है, सोलो गाने के लिए वे अद्‌भुत म्युजिकल- सिन्क्रोनाइजेशन रखते हैं। आज सुगम संगीत में गायकी छितरा गई है। जब जयदेवजी आए थे, उन दिनों सुगम गायकी के एक किस्म से तलत महमूद, हेमन्त कुमार, मोहम्मद रफी आदि अपने आप में 'घराने' थे। उनकी आवाज का 'कल्चर' और 'पैटर्न' उन दिनों एक 'मानक' स्थिति में था। आज एक भारी-भरकम आर्केस्ट्रा और छः छः मिनट के लम्बे गीतों में भी बाँध लेने वाली ताकत नहीं रह गई है, जबकि जयदेव सिर्फ तीन मिनट के गीत से आपको एक ऐसी तन्मयता के धरातल पर लिए जाते हैं कि आपका भौतिक परिवेश पीछे छूट जाता है। संगीत की सबसे बड़ी विशेषता भी इसे कहा जाता है। हमारी इस दुनिया का एक रिवाज है कि वह प्रथम श्रेणी की प्रतिभाओं को हमेशा पृष्ठभूमि में कर देती है। कारण है कि 'सफलता' को सब कुछ समझने वाली दुनिया से वे कोई समझौता करने को तैयार नहीं होते। जयदेवजी की जिन्दगी का एक लम्बा वक्त मुजस्सम बेकसी के आलम में गुजरा। फिल्म की व्यावसायिकता में उन्हें अपनी पहचान बनाने और उसे बचाए रखने में बड़ी खासी जद्दो-जहद करना पड़ी। क्योंकि उनकी रुचि मूलतः संगीत के स्वरूप को सँवारने की थी-भ्रष्ट कर पैसा कमाने की नहीं।

अली अकबर खाँ से उन्होंने सरोद सीखा। इसीलिए उनकी धुनों में जहाँ- तहाँ उसके स्वर तथा घराने के 'कण' 'मुरकी' खटके दिखाई देते हैं। फिल्म 'गमन' की 'आपकी याद आती रही रातभर' संगीत-रचना इसका सबसे अच्छा उदाहरण है।

भैरवी का उपयोग जिस तरह जयदेवजी ने किया, कदाचित् इतनी सुंदर भैरवी किसी ने अपने सुगम संगीत रचना में समाहित नहीं की है।

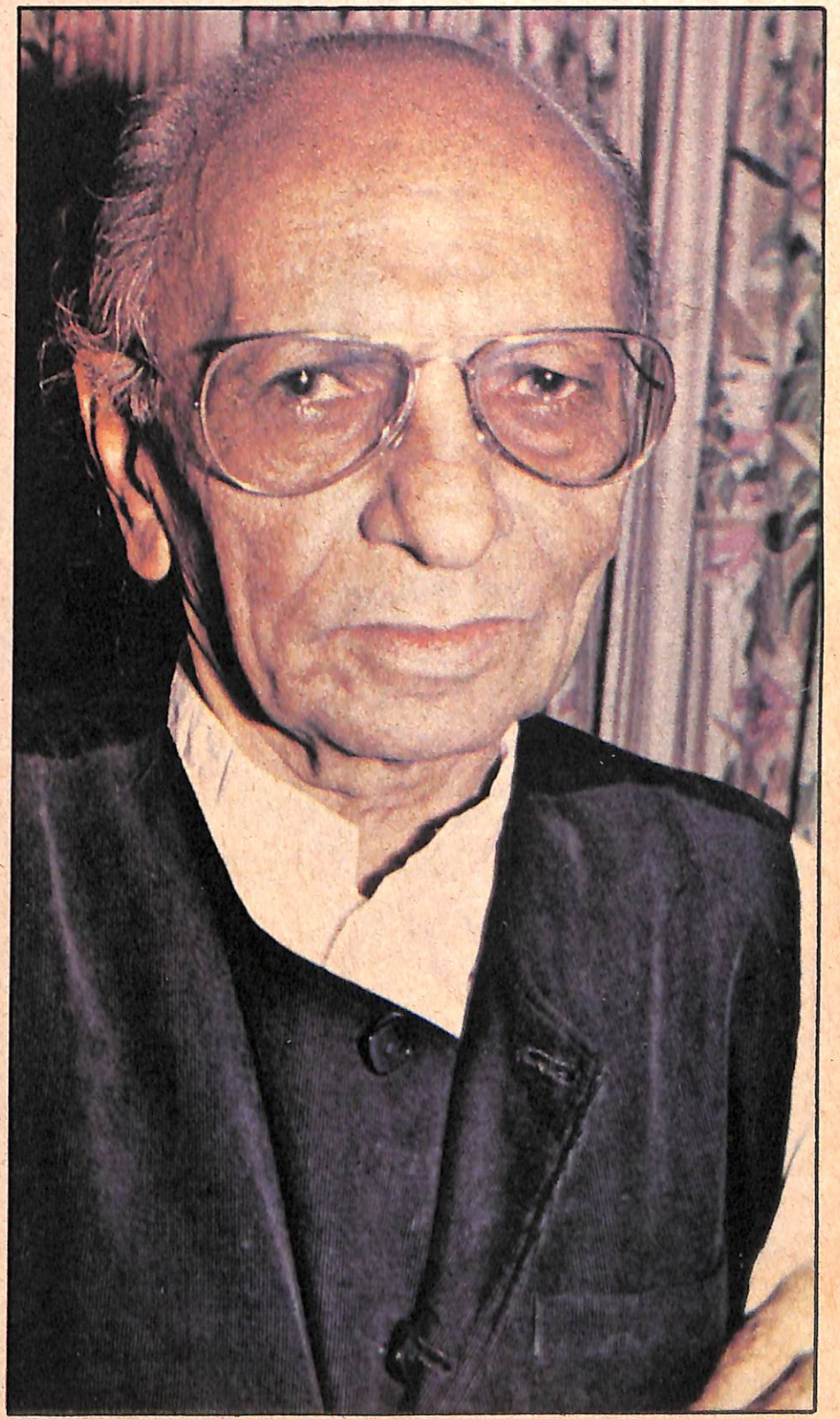

हालाँकि उनका सबसे प्रिय राग बिलावल था। उनके ही व्यक्तित्व की तरह शान्त और सौम्य। उसे वे समुद्र की गहन गंभीरता से जोड़कर देखते थे। देवानंद की फिल्म 'किनारे- किनारे' के सभी गीत उनकी संगीत की समझ का सुंदर मानचित्र प्रस्तुत करते हैं। भैरवी में उन्होंने एक बिदागीत कम्पोज किया था, एक भोजपुरी फिल्म के लिए। फिल्म तो नहीं चली, लेकिन 'बाबुल मोरा नैहर छूटो जाए' आज हरेक की स्मृति में दर्ज है।

फिल्म हम दोनों में रफी साहब की वह गजल जो साहिर साहब ने लिखी, **'कभी खुद पे कभी हालात पे रोना आया'** इस गजल के बाजार में आने के बाद लगा, जैसे रफी साहब की गायकी का एक नया अंदाज सामने आया हो। हालाँकि अलग-अलग संगीत-निर्देशकों के निर्देशन में उनकी गाई गई सुन्दर रचनाएँ भी लोकप्रिय थीं, किन्तु इस गजल में एक नयापन था। फिर बरसों बाद वह मजा, सुरेश वाडेकर की गाई गजल **'सीने में जलन'** में यह बात नजर आई। सीधी- सादी बात 'इस शहर में हर शख्स परेशान क्यूँ है' को उतनी ही मासूमियत से गाकर पूछा जा रहा है। हैरानगी है, लाचारी है, लेकिन बात कितने सीधेपन से कही गई है। इसे ही 'धुन को जमाकर बाँधना' कहा जा सकता है। यही कारण है कि जितना सरल उनका व्यक्तित्व था, उतनी ही सादगी उनकी धुनों में भी नजर आती है।

रे ग म और **प ध नी** इस स्वरसमूह का आदि और अंत'सा' है। अनादिकाल से इन सात स्वरों के स्थान, गुणधर्म और भावनात्मक अभिव्यक्ति की जो प्राण प्रतिष्ठा की गई है, वह शाश्वत है। गंधार लगाते समय ये मालूम हो जाना चाहिए कि तोड़ी का गंधार है या काफी का, मध्यम केदार का है या मालकौंस का। जयदेवजी की अनेकों रचनाओं में इस प्रतिबद्धता की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। इनकी रचना **ये दिल और उनकी निगाहों के साये'** का आरम्भ शुद्ध गंधार से होता है और कहीं आभास होता है कि कल्याण थाट के स्वर समूह से स्वरों का चयन कितनी कुशलता से किया गया है या फिर **आपकी याद आती रही** का आरम्भ भी गंधार से ही एक सुन्दर नज्म को कितने मीठे स्वरों में बाँधा गया है, जैसे एक शायर पारम्परिक धुन में अपनी नज्म या गजल सुना रहा हो। आखरी अंतरे से पहले लय शुरू होती है-धीमा कहरवा और फिर समापन। चूँकि जयदेवजी खुद सरोद बजाना जानते थे, इसलिए इसका कितना खूबसूरत प्रयोग उन्होंने अपने गीतों में किया है। और ऐसी अनेकों रचनाएँ हैं, जिसमें इस बात का खास तौर पर ध्यान रखा गया है कि उनमें स्वरों का लगाव और माधुर्य हो-फिर चाहे शास्त्रीय संगीत हो, लोकसंगीत हो या मेलोडी रचना हो। उनमें अनावश्यक उत्तेजकता नहीं है। वह तो एक धुन है-आप सुनिए और, आपको लगेगा, इसे फिर सुनें, याद कर लें। गा सकें तो गाएँ-राजस्थान मांड को विविध आयामों के साथ **तू चँदा मैं चाँदनी** में सुनिए-या मीरा के मैं जाण्यो नहीं और **महादेवी जी** की कैसे उनको पाऊँ आली जिसे आशा भोसले जी की मधुर आवाज मिली, रचनाओं को सुनिए, वो ही धुन का सुरीला मीठापन नजर आएगा। जयदेव अपनी धुन के पक्के थे और इसीलिए हमेशा अच्छी ही धुन बनाते थे। लेकिन वे साथ ही शब्द और उसके वजन को खूब परखते थे। उस पर कवि या शायर से बहस करते थे। उनका सोचना था शब्द पहले है, उसका अर्थ गड़बड़ाना नहीं चाहिए।

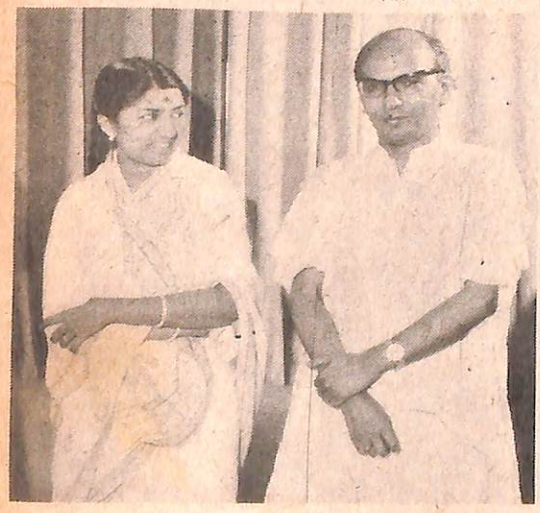

लता के साथ जयदेव

अनकही फिल्म में गायन के लिए पं. भीमसेन जोशी को राष्ट्रपति पदक प्राप्त हुआ था। संगीतकार थे जयदेव।

छाया : ओम तिवारी

अपनी इस लम्बी संगीत यात्रा में कई तरह के अनुभव आपको हुए होंगे-मैंने एक बार बातों ही बातों में उनसे पूछा। उनकी आँखों में जैसे एक चमक सी दिखाई दी, दूसरे ही क्षण जैसे अनंत क्षितिज के इस पार कुछ खोजती थकी आँखें, उन्होंने हारमोनियम अपने पास खींच लिया, अँगुलियाँ सप्तक पर कुछ ढूँढती सी/धीमे से बोले (बहुत धीमा बोलते थे)-अख्तर शीरानी की एक लंबी नज्म है, इसमें से तुम्हें कुछ सुनाता हूँ- और वो तन्मय होकर गाने लगे-अपनी उसी विशिष्ट शैली में, जो उनकी अपनी थी और जिसमें इस गुणी संगीतकार के स्वर में कोमल और तीव्र स्वरों का प्रवाह जैसे उमड़ रहा था। वो नज्म थी-यूँ ही शबे तनहाई में/कुछ देर पहले नींद से/गुजरी हुई नाकामियाँ/बीते हुए दिन रंज के/बनते हैं शम्मए बेकसी और डालते हैं रोशनी/उन हसरतों की कब्र पर/आ देख इस दिल में मेरे/उन हसरतों का खून है/ जो गर्दिशे अय्याम से/या किस्मते नाकाम से या ऐश गम अंजाम से/खुद दिल में मेरे मर गई।

मराठी फिल्म संगीत कल, आज और कल

शशिकांत किणीकर

भारत में चित्रपट माध्यम से पहले हरेक प्रदेश में अपना पारंपरिक प्रादेशिक संगीत था। उस संगीत के जरिए सदियों से अनगिनत लोग संगीत के बारे में जानते रहे। सीखते रहे। घर-घर में वह संगीत गूँजता रहा। उस प्रादेशिक संगीत को बाद में जोड़ मिली शास्त्रीय संगीत की और घर-घर में बजने वाला संगीत सिर्फ गिने-चुने व्यक्तियों के हाथ में गया। उसे उस घर की गिनी-चुनी हस्तियों ने सँवारा और संगीत के घराने पैदा हुए। कुछ सालों के बाद संगीत ने और एक मोड़ लिया। प्रादेशिक तथा शास्त्रीय संगीत को थोड़ा मोड़कर उसे ज्यादा गेम तथा मनोरंजक बनाकर रंगमंच पर पेश किया गया, जहाँ उसे और भी कामयाबी मिली। भारत की अन्य जगह पर संगीत धारा ने जिस तरह के मोड़ लिए उसी तरह महाराष्ट्र में भी संगीत ने इसी प्रकार धीरे-धीरे छलाँग मारते हुए हर गली कूचे में अपना स्थान बनाया।

सन् १९३२ में जब पहली सवाक फिल्म 'आलमआरा' प्रदर्शित हुई तब सारा चित्र संसार चौंक कर जाग उठा। फिल्म को आवाज मिलने के काल कथा के साथ-साथ संवाद, गीत तथा संगीत का अंतर्भाव भी होने लगा। धीरे-धीरे फिल्मों में प्रादशिकता भी आने लगी। सन् १९३२ में महाराष्ट्र में पहली मराठी फिल्म "संत तुकाराम अर्थात जय विट्ठल" बनी जो शनिवार ३० जनवरी १९३२ को पूना के आर्यन सिनेमा में पहली बार प्रदर्शित हुई। मराठी चित्रपट संगीत का इतिहास इसी फिल्म से शुरू होता है।

दुर्भाग्यवश मराठी की इस पहली फिल्म के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं है। यह एक स्टेज टॉकी थी जिसे उस जमाने की मशहूर नाट्य संस्था राजापुरकर नाटक मंडली ने पेश किया था। उस नाटक कंपनी के प्रमुख कलाकार शुक्लजी ने उसमें तुकाराम की भूमिका निभाई थी। उस फिल्म में उन्होंने 'जय हरी विट्ठल' नाम का भजन गाया था। इस फिल्म के बाकी कलाकार कौन थे, संगीत किसने दिया, रिकॉर्डिंग किसने किया यह सारी बातें इतिहास के अँधेरे में खो गई हैं। इसके पश्चात चंद दिनों में बंबई में प्रभात की पहली सवाक फिल्म "अयोध्या का राजा" (हिंदी) तथा "अयोध्या चा राजा" (मराठी) प्रदर्शित हुई। ये फिल्म आज भी मौजूद है तथा उसके बारे में बहुत कुछ मालूम किया गया है। अतः महाराष्ट्र में मराठी चित्रपटों का युग "अयोध्या चा राजा" से शुरू माना जाता है।

"अयोध्या चा राजा" बंबई में ८ फरवरी १९३२ को प्रथम बार प्रदर्शित हुई। इस फिल्म को संगीत से सँवारा था स्व. गोविन्दराव टेंबे ने। जिन्होंने इस फिल्म में मुख्य भूमिका भी निभाई थी। वे खुद उच्च दर्जे के गायक-अभिनेता थे और उन्होंने मराठी रंगमंच पर अदाकारी भी की थी। इस फिल्म के आदि पुरुष नारायण (गायक मा. विनायक), बाकी झोंप येईना (गायिका- दुर्गा खोटे) तथा अन्य और गीत कामयाब हुए थे। इस फिल्म के ध्वनि मुद्रक थे स्व. विष्णुपंत दामले।

प्रभात की फिल्म संत तुकाराम (१९३६) में विष्णुपंत पागनीस

गोविन्दराव टेंबे ने मराठी की इस फिल्म के बाद अग्नि कंकण, मायामच्छिद्र, सैरंध्री, सिंहगढ़ आदि फिल्मों का संगीत भी सँवारा। महाराष्ट्र के जनमानस पर नाट्य संगीत का प्रभाव अधिक था, इसलिए प्रभात की फिल्मों में गोविंदराव टेंबे ने करीबन सारा संगीत शास्त्रीय ढंग पर ही रचा।

प्रभात के पश्चात मराठी में आण्णा साहेब माईणकर, बापूराव केतकर, भूर्जी खाँ, प्राण सुख नायक, गुंडोपंत वालावलकर, दीनानाथ मंगेशकर जैसे संगीतकार आए। गायक गायिकाओं में ज्योत्स्ना भोले तथा शालीग्राम, शांता आपटे, पंडितराव नगरकर, गणपत मोहिने (मा. अविनाश), मा. दीनानाथ मंगेशकर, हीराबाई बड़ोदेकर जैसी हस्तियाँ थीं। इनका रंगमंच से गहरा संबंध होने के कारण फिल्मों में ज्यादा सफलता नहीं मिली। शांता आपटे जैसी अदाकारा छोड़कर और कोई ज्यादा प्रभाव पैदा नहीं कर सका।

मराठी फिल्म संगीत ने धीरे-धीरे मोड़ लिया। प्रभात फिल्म कंपनी के केशवराव भोले तथा मास्टर कृष्णराव जैसे महान संगीतकार आ पहुँचे। केशवराव का संगीत हमेशा अभ्यासपूर्ण रहा। कृष्णरावजी का संगीत ज्यादातर मनोरंजक तथा विविधता से परिपूर्ण रहा। प्रभात फिल्म कंपनी की संत तुकाराम, कुंकू, माझा मुलगा, संत ज्ञानेश्वर, दहा वाजता, राम शास्त्री जैसी फिल्में केशवराव भोले के संगीत से अमर हो गईं। इसी के साथ ही साथ मा. कृष्णराव ने धर्मात्मा, गोपाल -कृष्ण, माणूस, शेजारी फिल्मों को अपनी अनोखी शैली से तथा कर्णप्रिय संगीत से सदाबहार कर दिया। दोनों ही संगीतकार महान थे। अपनी-अपनी फिल्मों में अच्छे से अच्छा ऑर्केस्ट्रा लेने की कोशिश करते थे। संगीत

के साथ प्रयोग करते थे। अतिसुलभ तथा सहजता इनके संगीत में हमेशा दिखाई देती थी। मजे की बात यह है कि एक तरफ "संत तुकाराम" जैसी फिल्म में उन्नीस गाने रखे गए तो दूसरी ओर "नामाचा महिमा" फिल्म में बाइस गाने थे। इसके विपरीत "ठकीचे लग्न" फिल्म में एक भी गीत नहीं था। हालाँकि यह फिल्म १९३५ में आई। शायद यह पहली सवाक फिल्म होगी जो गीत सहित थी। प्रभात की "कुंकू" (१९३७) में पार्श्व संगीत के बजाय सिर्फ पार्श्व ध्वनि प्रयोग किया गया था। जिसका सारे भारत वर्ष ने स्वागत किया। "कुंकू" के इस अनोखे प्रयोग में संगीतकार भोले बहुत ही कामयाब हुए थे। इसके बाद "कुंकू" के ही निर्देशक व्ही. शांताराम ने इस प्रकार की पार्श्व ध्वनि का उपयोग "चानी" में चालीस साल बाद किया। मगर "कुंकू" जैसी वास्तविकता "चानी" में नहीं आ पाई।

बंगाल की प्रसिद्ध फिल्म कंपनी न्यू थिएटर्स ने संगीतकार रामचंद्र बोराल तथा पंकज मलिक के साथ-साथ निर्देशक नितिन बोस तथा ध्वनि लेखक मुकुल बोस के सहारे पार्श्व गायन की नींव डाली।

कुबेर (१९४७) फिल्म की शूटिंग के समय हारमोनियम पर पी. एल. देशपांडे

इस नई खोज के जरिए अन्य गायक तथा गायिकाओं की आवाज पर्दे पर अभिनीत किए जाने वाले दृश्य को देने की सुविधा प्राप्त हुई। इस नए प्रयोग का प्रथम उपयोग मराठी फिल्म में किया सन् १९३७ में मा. विनायक ने। उनकी कामेडी फिल्म "प्रेम वीर" कथा, संवाद, गीत और अभिनय के लिए मशहूर हो गई। वैसे ही यांत्रिक दृष्टि से प्रथम पार्श्व गायन का इस्तेमाल करने वाली यह पहली मराठी फिल्म हो गई। आगे चलकर मास्टर विनायक ने ब्रह्मचारी, ब्रँडीची बाटल, देवता, अर्धांगिनी जैसी महान फिल्मों का निर्माण किया। उन्हें संगीत से सँवारा दादा चांदेकरजी ने। प्रभात के पश्चात सुंदरता से गीत-संगीत से कामयाबी पाने वाली मशहूर फिल्म कंपनी का नाम था हँस पिक्चर्स जिसके संस्थापक थे निर्माता-निर्देशक मा. विनायक, अभिनेता बाबूराव पेंढारकर तथा छायाकार पांडुरंग नाईक। दादा चांदेकर का संगीत तथा आचार्य अत्रे और वि.स. खांडेकर के संवाद और गीत की भी काफी सराहना हुई।

आगे चलकर मा. विनायक ने नवयुग चित्रपट नामक संस्था बनाने की चेष्टा की और अमृत, संगम जैसी फिल्में बनाई। "अमृत" में मराठी रजत पट पर पहला कोली गीत फिल्माया गया जिसे विष्णुपंत जोग ने खुद गाया था और अदाकारी भी की थी।

शुरू से ही भारतीय फिल्म संसार में मराठी लोग ज्यादा से ज्यादा आ गए। उन्होंने मराठी के साथ-साथ हिन्दी तथा उर्दू भाषा में भी अपनी फिल्मों के संस्करण बनाए। लिहाजा संगीतकारों का खास तौर पर बनाया हुआ मराठी संगीत हिंदी/उर्दू संस्करणों के ज़रिए सारे भारत वर्ष में गूँज उठा। उनकी दिन-ब-दिन तरक्की देखकर अन्य गैर मराठी कंपनियों ने भी अपने मूल हिंदी/उर्दू आवृत्तियों के साथ-साथ मराठी चित्रपटों का भी निर्माण किया। बंबई की शारदा, इंपीरीयल, मिनर्वा, जनरल फिल्म्स, रणजीत, नैशनल वगैरह कंपनियाँ इस काम में आगे थीं। इन कंपनियों में हमेशा गैर मराठी संगीतकार हुआ करते थे जिनकी वजह से मराठी फिल्मों में संगीत में अधिक विविधता आ गई। प्रकाश पिक्चर्स ज्यादातर हिंदी/गुजराती फिल्में बनाने वाली कंपनी के निर्देशक थे विजय भट्ट। मगर उनके साथ काम करने वाले महान संगीतकार थे पं. शंकरराव व्यास जिन्होंने "भरत मिलाप" (१९४२) और "राम राज्य" (१९४३) फिल्मों के ज़रिए काफी कामयाब संगीत दिया। अमीरबाई कर्नाटकी के गाए गीतों को अपार लोकप्रियता मिली। वे गीत श्रोता आज तक भूल नहीं सके हैं।

सन् १९४२ के साल में और एक अतिमहत्वपूर्ण घटना हो गई। बलवंत संगीत मंडली के मालिक मा. दीनानाथ का देहान्त हो गया और उनकी बड़ी लड़की के सिर पर घर का सारा भार आ गया। उस दिन मा. विनायक अपनी नवयुग चित्रपट कंपनी में "पहिली मंगलागौर" फिल्म का निर्देशन कर रहे थे। उन्हें पता चला की दीनानाथ की लड़की जिसके गले में काफी रोचक और अनोखा तेज है बहुत ही कठिनाइयों में हैं। स्वर्गीय दादा सालवी तथा सुप्रसिद्ध गायक अभिनेता विष्णुपंत जोग ने उस लड़की की मुलाकात विनायकजी से कराई और उन्होंने उसे कंपनी में नौकरी पर रख लिया। उस लड़की का नाम था लता मंगेशकर जिन्होंने आगे चलकर अपनी सुरीली और मधुर आवाज से सारे चित्र संसार में चहल- पहल मचा दी। पार्श्व गायन में भारतीय फिल्म जगत में अपना असाधारण स्थान बनाया।

मा. विनायक ने लता मंगेशकर को न सिर्फ फिल्म में अदाकारी करने का मौका दिया, बल्कि उसे फिल्म में गाने का भी अवसर दिया। फिल्म नायिका स्नेह प्रभा के साथ लताजी ने पहली बार गाया।

इस फिल्म के दौरान मा. विनायक का नवयुग कंपनी के अन्य डायरेक्टरों के साथ झगड़ा हो गया और वे कंपनी को छोड़कर कोल्हापुर चले गए। वहाँ उन्होंने प्रफुल्ल पिक्चर्स की नीव डाली। उनके साथ मीनाक्षी जिन्हें विनायकजी ने ही १९३८ में "ब्रह्मचारी" फिल्म में पहली बार पर्दे पर पेश किया था और नायिका तथा गायिका के रूप में नाम रोशन हो गया था वह भी कोल्हापुर चली आई। साथ में दामुअन्ना मालवणकर, विष्णुपंत जोग, दादा सालवी वगैरह उनका निजी स्टाफ भी चला गया। लताजी ने भी कोल्हापुर का रास्ता पकड़ लिया। प्रफुल्ल पिक्चर्स में उन सारे अदाकारों ने एकत्रित होकर माँझ बाल, चिमुकला संसार, गजाभाऊ फिल्मों में काम किया। तमाम फिल्मों में लताजी ने मा. विनायक का सहारा लिया और एक से बढ़कर एक गीत गाए, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण है "प्रेमस्वरूप आई! वात्सल्य सिंधु आई!

असल में इस गीत को मराठी के महान कवि तथा प्राध्यापक माधव जुलीएन ने लिखा था और वह अपने आप ही पॉपुलर हो गया था। उसकी लोकप्रियता देखकर उसे विनायकजी ने अपनी तसवीर में लेने का निश्चय किया और संगीत निर्देशक दत्ता डावलेकर को उसकी धुन बनाने को कहा। लताजी ने इस दर्द भरे गीत को अपने ढंग से इतना अच्छा गाया कि फिल्म में उस सीन को

पचास और साठ के दशक की बहुचर्चित त्रिवेणी: राजा परांजपे (निर्माता-निर्देशक), जी.डी. माडगुलकर (गीत-संवाद लेखक एवं अभिनेता) और संगीतकार सुधीर फड़के

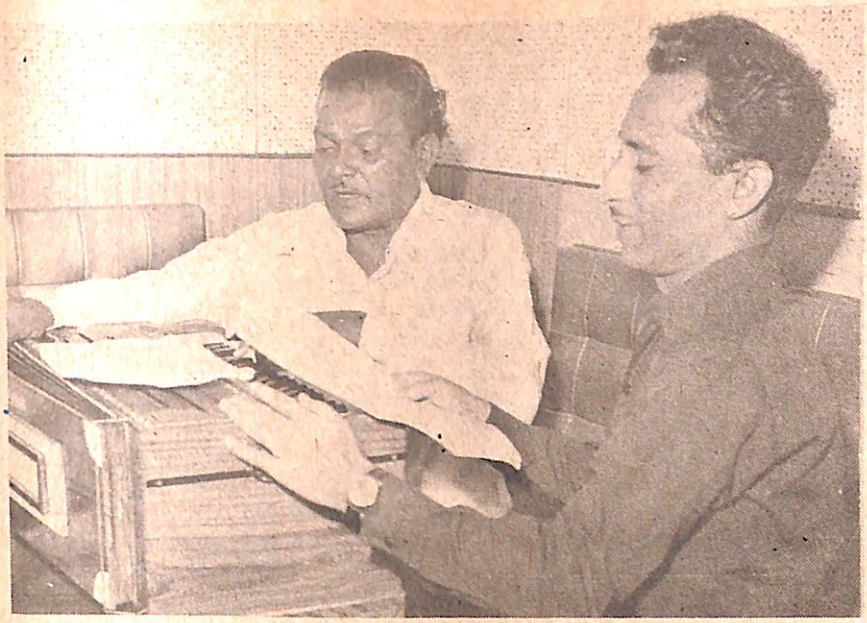

सत्तर के दशक में संगीतकार राम कदम और गायक जयवंत कुलकर्णी

देखते समय दर्शकों की आँखों में आँसू टपकते थे। लताजी ने अपनी आवाज के जरिए श्रोताओं को अपनी ओर आकर्षित किया।

"संत तुकाराम" (१९३२) से लेकर "राम शास्त्री" (१९४३) तक मराठी फिल्में हिंदी, बंगला तथा अन्य भाषा की फिल्मों के साथ स्पर्धा करती रहीं। टेक्निक, फॉर्म, वाद्यवृंद, संगीत रचना में विविध प्रकार से हमेशा नए- नए प्रयोग होते रहे। नए-नए चेहरे फिल्मों में आए जिनसे गाने गवाए जाते थे। वो एक जमाना था जब बंबई फिल्म इंडस्ट्री के लोग प्रभात की फिल्में प्रदर्शित होने वाली है ऐसी खबर सुनते थे तो अपनी फिल्मों का प्रदर्शन रोक दिया करते थे। मगर यह बात आगे चलकर बदली और मराठी चित्रपटों का महत्व सिर्फ प्रादेशिक फिल्म की सीमा में सिमट कर रह गया।

मराठी गीत-संगीत का दूसरा महत्वपूर्ण कारण था दूसरा महायुद्ध। इसके कारण स्टूडियो प्रथा बंद हो गई और कलाकार तथा तकनीशियनों ने फ्रीलान्सिंग प्रथा शुरू कर दी। कच्ची फिल्म तथा अन्य वस्तुओं के दाम इतने बढ़ गए की सिर्फ मराठी भाषा में फिल्में बनाना एकदम मुश्किल हो गया। लिहाजा १९४५ में एक भी मराठी फिल्म नहीं बनी और उसके पश्चात १९४६ में सिर्फ दो ही फिल्में बनीं, जिसमें एक थी "रुक्मिणी स्वयंवर" और दूसरी भगाजी पेंढारकर निर्देशित "सासूरवास"। रुक्मिणी स्वयंवर फिल्म से सुप्रसिद्ध संगीतकार सुधीर फड़के पहली बार मराठी फिल्मों में आए। उसके पहले उन्होंने प्रभात की "गोकुल" फिल्म में स्वतंत्र रूप से संगीत दिया था। वह सिर्फ हिंदी भाषा में ही बनी थी।

गायक, संगीत दिग्दर्शक दोनों हैसीयत से सुधीर फड़के ने अपना अलग स्थान मराठी चित्रपट जगत में निर्माण किया है। उन्होंने संगीत की शिक्षा कोल्हापुर में पाध्ये गुरुजी से पाई थी। अलग ही ढंग का उतार- चढ़ाव पाने वाली आवाज उन्होंने हासिल की। अनोखे ढंग का संगीत उन्होंने पेश किया जो ज्यादा सहज था। उसमें रोचकता भी थी और विविधता थी। अतः उन्हें एक के बाद एक हमेशा संगीत देने के लिए तथा पार्श्व गायन करने के लिए फिल्में मिलती चली गई। आगे चलकर उन्होंने गीत लेखक ग.दि. माडगूलकरजी के साथ अपनी बैठक जमा ली। निर्देशक राजा परांजपे, कथा-संवाद- पटकथा और गीत लेखक ग.दि. माडगूलकर तथा संगीतकार और गायक सुधीर फड़के इस त्रिमूर्ति ने मराठी फिल्मों में चार चाँद लगाए। सुधीर फड़के ने करीबन सौ फिल्मों में संगीत दिया जिसमें अंतिमहत्वपूर्ण फिल्मों के नाम हैं- सीता स्वयंवर, माया बाजार, पुढचं पाऊस, जिवाचा सखा, विठ्ठल रखुमाई, लाखाची गोष्ट, इन मिन साढ़े तीन, ऊनपाऊस, गंगेन घोडंहाले, सुवासिनी। जैसा की हिन्दी फिल्मों में दिलीप कुमार-नौशाद, राजकपूर-शंकर जयकिशन, देव आनंद-एस.डी. बर्मन का समीकरण हो गया था उसी तरह राजा परांजपे और सुधीर फड़के की जोड़ी दर्शकों को रास आती थी। उनके गीत-संगीत लोकप्रिय हो गए, कई फिल्मों ने रजत जयंतियाँ मनाई। सुधीर फड़के ने ही किराना घराने के ख्याल गायक भीमसेन जोशी से फिल्मों में गँवाया और उन्होंने अपने पारंपारिक किराना घराने की संगीत की बौछार फिल्मों में की।

सुधीर फड़के के समकालीन संगीतकार थे पु.ल. देशपांडे। वैसे देखा जाए तो देशपांडे ने मराठी चित्र संसार में क्या कुछ नहीं किया? सन् १९४८ में वे पहली बार फिल्मों में आए। नव झंकार निर्मित 'वंदे मातरम्' चित्र के जरिए। "भाग्य रेखा" में उसी साल ही उन्होंने सहायक अभिनेता की भूमिका निभाई। उससे पहले उन्होंने कुबेर फिल्म में पार्श्व गायन भी किया। मंगल चित्र की फिल्म "मोठी माणस" में वह पहली बार संगीतकार बने। मगर उन्हें संगीतकार की हैसियत से कामयाबी मिली मंगल पिक्चर्स के ही 'देव पावन' चित्रपट से। माणिक वर्मा के गाए हुए इस फिल्म के 'जा मुली शकुंतले सासरी' तथा 'काविराचे विणनो शेले कौसल्येचा राम' गीतों के सुर बहुत ही लोकप्रिय हो गए। "गोकुल चा राम" तथा "नवरा- बायको" में उन्होंने कथा, पटकथा, संवाद लेखन का काम किया तो "पुढचं पाऊस" में वे कृष्णा महार बनके देहातसे अपनी काम दिखाने के लिए (सिनेमा में) बंबई आए। इस तरह दिन-ब-दिन तरक्की करते हुए वे स्वाति चित्र "गुळाचा गणपति" में कथा, पटकथा, संवाद, संगीत, निर्देशन के साथ-साथ मुख्य अभिनेता भी बन गए। उस जमाने में उनकी लोकप्रियता इतनी बढ़ चुकी थी कि उस फिल्म के निर्माता विनायक राजगुरु फिल्म की कामयाबी पर जान की बाजी लगा बैठे थे। मगर इन सारी बातों के बावजूद यह फिल्म बॉक्स ऑफिस पर एकदम फेल हो गई। कहा जाता है कि शुरू से ही पु.ल. देशपांडे का साथ भूप राग ने ही दिया (जिसमें म और नी- याने की मनी वर्ज था) और उन्हें फिल्मों में सिर्फ नाम और शोहरत मिलती गई "मनी" (याने की पैसा) नहीं। अतः मराठी लोगों की इस प्रवृत्ति से ऊबकर उन्होंने फिल्मों के साथ सरोकार ही छोड़ दिया। वैसे तो पुलजी एक उत्तम प्राध्यापक, संगीतज्ञ, लेखक, गायक, रंगमंच के अभिनेता (जिन्होंने कई कामयाब एक पात्री प्रयोग सादर किए हैं) वगैरह कई अन्य कारणों से भी

सांगत्ये एका (१९५९) मराठी फिल्म में हंसा वाडकर

प्रसिद्ध हैं। मराठी फिल्म संगीत के बारे में अगर चर्चा की जाए तो उनका संगीत काफी स्तर पर शास्त्रीय रहा। भीमसेन जोशीजी का उनके संगीत में बद्ध किया हुआ गीत इतना लोकप्रिय हो गया कि आगे चलकर शास्त्रीय संगीत की बैठक में जोशीजी को इस गाने को पेश करने की फरमाइश होती रही। इसके अलावा "देव पावला हणमंता रे" (फिल्म देव पावल), सखुबाई सालुबाई बारशाल चान (फिल्म नवरा बायको), सांगते ऐका पैशाल दोन बायका (फिल्म दूध-भात), बशी कपाय लगीन (फिल्म धरधनी), ओलख तरीही नवखी (फिल्म अम्मलादार), नाचरे मोरा आंब्याला बनात (फिल्म देवबाला), ही कुणी छेडली नार और "श्रीहरि विदुरा घरी पाहुजा" (फिल्म गुलीया गणपति) ये उनके संगीत में बद्ध हुई रचनाएँ अमर हो गई। दुर्भाग्यवश उनको मराठी फिल्म जगत का व्यवहार नहीं भाया और दर्शक एक असाधारण कलाकार, कथा, पटकथा, संवाद, गीत, लेखक तथा निर्देशक की अन्य फिल्में नहीं देख सकें। मराठी फिल्म जगत से पुलजी का नौ दो ग्यारह होना फिल्म जगत की असीमित क्षति थी और वह आज भी हो रही है।

जाने-माने संगीतकार वसंत देसाई, जिन्होंने प्रभात फिल्म कंपनी में केशवराव भोले तथा मा.

naa/D/TX-88

कृष्णरावजी के साथ काम किया था, स्वतंत्र रूप से खिल उठे। राजकमल चित्रमंदिर में निर्माता/निर्देशक वी. शांताराम के साथ। वैसे तो प्रभात में वाद्यवृंद में काम करने के बावजूद उन्होंने काफी अच्छे-अच्छे गाने भी गाए थे मगर स्वंतत्र रूप से संगीत देने का पहला मौका उनको वाडिया मूवीटोन की हिंदी फिल्म "शोभा" (१९४२) से मिला। आगे चलकर उन्होंने वी. शांताराम के साथ "शकुतला", "पर्वत पे अपना डेरा" तथा अन्य फिल्मों में संगीत दिया। १९४७ में वी. शांताराम तथा बाबूराव पेंटर दिग्दर्शित फिल्म "लोक शाहीर रामजोशी" में उन्होंने पहली बार संगीत निर्देशन किया और पोवाड़ा, लावणी, भजन, सवाल-जवाब जैसे मराठी के अनूठे संगीत को बड़े ऊँचे स्तर पर फिल्म में स्थापित किया। मराठी में पहली लावणी जयतूनबाई ने "पुंडलिक" (१९३६) में गाई थी मगर उसका ज्यादा असर नहीं पड़ सका था। वसंत देसाई का रामजोशी का संगीत दर्शकों को इतना विभोर करता गया कि सारी की सारी फिल्म संगीतमय हो गई। रामजोशी, जो जन्म से ब्राह्मण होते हुए भी, तमाशा जैसे उस जमाने में गोणरूप से मंच पर आकर अपनी कलाकृतियाँ पेश करते थे, एक नृत्यांगना के साथ अपना सरोकार रखते थे। उनके पिताजी ने उनको घर से निकाल दिया था। उसका असर यह हुआ कि वे रात-दिन तमाशे की सेवा करने लगे। हमेशा अर्थपूर्ण तथा प्रवाही काव्य पंक्तियाँ रचते गए और उनके नाम की चर्चा समाज में होने लगी। बाद में पूना के पेशवा ने उनको राजदरबार में आमंत्रित किया और उनका सम्मान किया। इसका उन पर बहुत ही बुरा परिणाम हुआ और वे मदिरा के कक्ष में जा पहुँचे। उनका ध्यान कविता से विचलित हो गया। इनमें श्रेष्ठतम कवि मोरोपंत ने उनसे मिलकर सिर्फ श्रृंगार रस में डूबे हुए कवच को छोड़ परमेश्वर की भक्ति रूप में भजन लिखने/गाने की सलाह दी और लोकशाहीर रामजोशी ने, जो केवल श्रृंगार रस में अपनी कलम बढ़ाते रहे, भक्ति रस की शरण ली।

इस पहली ही मराठी फिल्म में असाधारण संगीत देकर वसंत देसाई ने मराठी चित्रपट संगीत में अपना स्थान बहुत ही ऊँचे स्तर पर रखा। उसके बाद सन् १९५१ में शांतारामजी ने "अमर भूपाली" नाम की फिल्म बनाई और राजकमल कला मंदिर के स्टॉफ आर्टिस्ट होने के नाते वसंत देसाई ने एक बार फिर अपने संगीत के नारे चारों दिशाओं में लगाए। रामजोशी में गायक, अभिनेता थे जयराम शिलेदार। अमर भूपाली में शांतारामजी ने पंडितराव नगरकर को आमंत्रित किया था। जैसा कि इस फिल्म का शीर्षक सूचित करता है, "अमर भूपाली।" यह फिल्म भी संगीत को श्रेष्ठता देने वाली फिल्म थी, जिसमें कवि होनाजी का जीवन चित्रित किया था। महाराष्ट्र में पेशवा का राज्य प्रस्थापित हो चुका था और सामान्य लोग अपनी लड़ाकू प्रवृत्ति को भूलकर काव्य रचने में मशगूल हो गए थे। इसका फायदा अँगरेजों ने उठाया और मराठी राज्य को अपने काबू में ले लिया। इस दौरान कवि होनाजी, जो तमाशे के लिए अपना सारा जीवन बिताते रहे थे, कौम की जरूरत देखकर उन्होंने अपने काव्य को भी मोड़ लिया और शौर्य गान की रचना करने लगे जिसके सहारे लोग प्रभावित हो गए। मगर देर हो चुकी थी। अँगरेज अपनी कुटिल नीति में कामयाब हो गए थे।

अमर भूपाली बन गई जिसे आज तक महाराष्ट्र का कोई आदमी भूल नहीं सका है।

इन दोनों फिल्मों के साथ ही साथ वसंत देसाई ने और भी कई फिल्मों में संगीत दिया। साखर पुड़ा, माझी जमीन, शामची आई, कांचन गंगा, उभाजी नाईक, मोलकरीण, स्वयंवर झाले सीतेचे वगैरह। गिनी-चुनी फिल्मों में ही उन्होंने संगीत दिया मगर उनका संगीत हमेशा स्थायी बना। जिस निर्माता/निर्देशक के साथ उन्होंने पहली बार मराठी चित्रपट में संगीत दिया था उसी निर्माता/निर्देशक के साथ यानी वी. शांताराम के साथ उन्होंने १९६५ में "इये, मराठी चिये नगरी" फिल्म का संगीत निर्देशन किया। शायद वो उनके संगीत से सजी आखिरी फिल्म थी। उनकी असाधारण संगीत रचना के कारण भारत सरकार ने उनको पद्मश्री प्रदान की थी।

वसंत पवार एक गुणी संगीतकार थे जिन्होंने लावणी, सवाल-जवाब, वग, नांदी तथा अन्य प्रकार के लोक संगीत का सहारा लेकर अपने संगीत में विविधता कायम की। उनका खास गुण यह ही था कि एक ही बैठक में वे दसं-दस गानों की धुनें भी बना सकते थे। इसमें साजिंदों की आवश्यकता नहीं होती थी। आवश्यकता महसूस होती थी सिर्फ एक शराब की बोतल की। जैसे ही शराब उन पर असर करती जाती थी, उनकी प्रतिभा खिल उठती थी और गाने के बाद गाने की धुन तैयार हो जाती थी। मराठी चित्रपट निर्माताओं ने उनके इस गुण का नाजायज फायदा उठाया और अपने जीवन के अंत में वे कोल्हापुर में अत्यंत दुरावस्था में चल बसे।

तमाशापट का संगीत वसंत पवार की विशेषता थी। अनंत माने निर्देशित "सांगत्ये ऐका" इस फिल्म को उन्होंने इतना बेहतरीन संगीत दिया कि उस फिल्म ने पूना में एक ही चित्रगृह में लगातार १३१ सप्ताह चलकर रेकॉर्ड कायम किया था। आज तक वह किसी ने तोड़ा नहीं। पंचारनी, लोक शाहीर, अंनत फंदी, धाकरी जाऊ, प्रीतिसंगम, पसंद आहे मुलगी, अबोली मानिनि, वैजयंता, प्रीति विवाह, रंगल्या रात्रि अशा तथा अन्य महत्वपूर्ण चित्रपटों को संगीत देकर अपनी संगीत प्रतिभा का अनोखा परिचय दर्शकों को करा दिया।

वसंत पवार के संगीत का प्रवाह रामकदम ने अपने कंधों पर लिया और मराठी चित्रपट संगीत क्षेत्र में उतरे। रामकदम का सौभाग्य यह था कि उन्हें मा. कृष्णराव तथा केशवराव भोले जैसे महान संगीतकारों के साथ काम करने का मौका मिला। वे ट्रंपेट बजाने में एकदम निपुण हैं। अतः अन्य संगीतकारों के साथ भी उन्होंने साथ निभाया। चित्रपट संगीत के क्षेत्र में पिछले चालीस साल से अधिक से कार्यरत हैं और उन्होंने आज तक १०६ मराठी फिल्मों में संगीत दिया है। शायद इतनी बड़ी संख्या वाले मराठी फिल्म जगत में सिर्फ रामकदम ही एकमात्र ऐसे संगीतकार हैं।

रामकदम ने स्वतंत्र रूप से संगीत फिल्म गावगुंड (१९५१) में दिया और उसी वक्त से उनके नाम का बोलबाला मराठी चित्रपट संसार में होने लगा। मगर उस जमाने में सुधीर फड़के, वसंत प्रभु, स्नेहल भाटकर, वसंत पवार, पु. ल. देशपांडे जैसे बुजुर्ग संगीतकारों ने अपनी कला की छाया

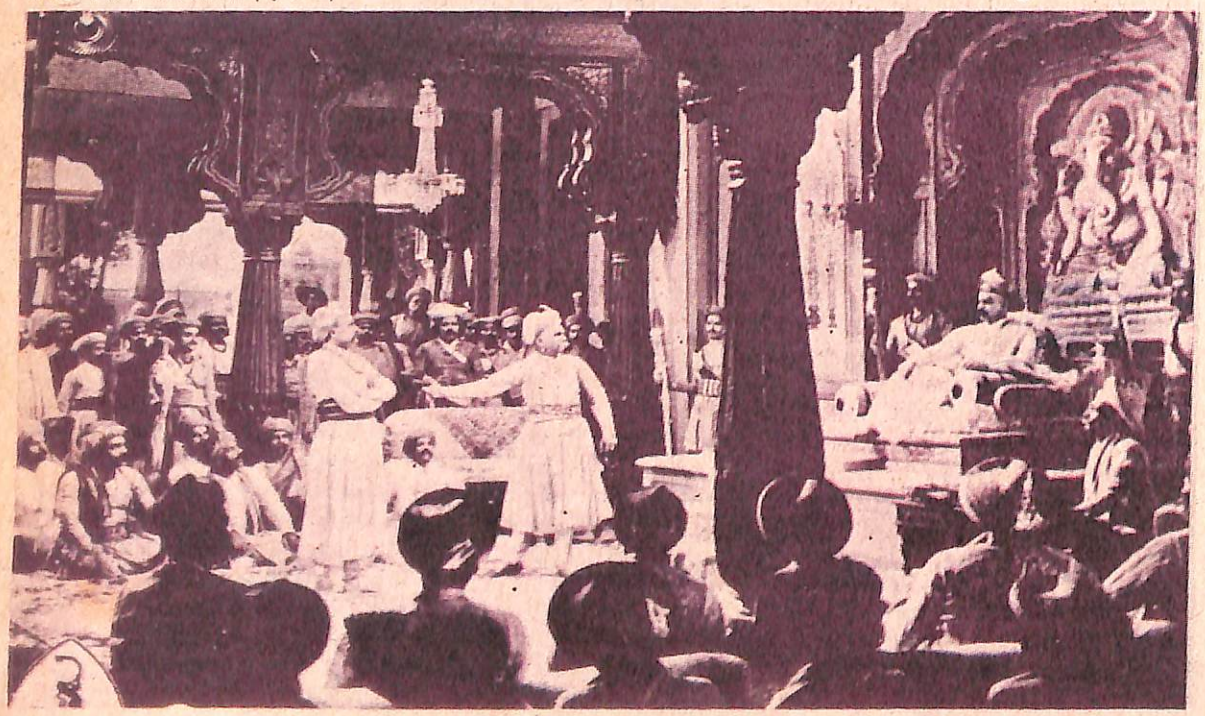

मराठी फिल्म रामशास्त्री (१९४४)

उदयशंकरः फिल्म कल्पना (१९४८)

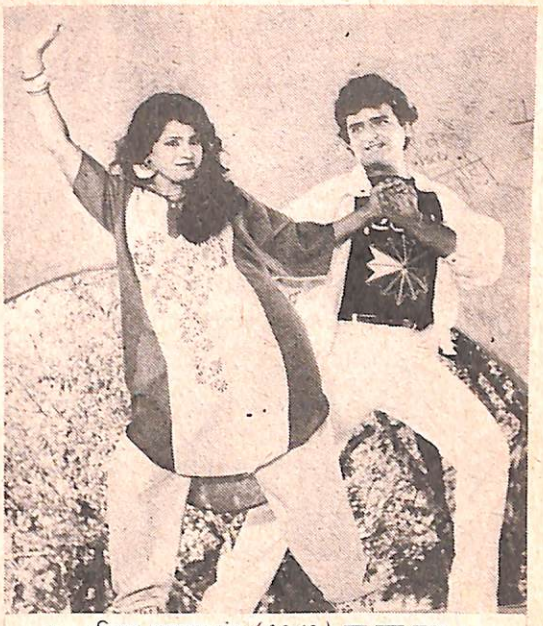

फिल्म गावरन गंगू (१९८९) का एक दृश्य

मराठी चित्र संसार में डाली थी। अतः उनकी संभावना शुरू-शुरू में धीमी गति से चली। फिर भी सहायक संगीतकार की दृष्टि से वे हमेशा परिश्रम करते रहे और उन्हें उसका फल बाद में मिला। "सांगत्ये ऐका" इस फिल्म के निर्माण के वक्त प्रमुख संगीतकार वसंत पवार किस कारणवश एक गाना ठीक तरह तैयार नहीं कर सके। अतः रामकदम को खास तौर पर बुलावा भेजा गया और उस गाने ने उनके संगीत जीवन का द्वार खोल दिया। राजमान्य राजश्री, सलामी, सख्या सावरा मला वगैरह चित्रपट आए और गए मगर उनका ज्यादा असर उसमें नहीं पड़ सका। इतने में ही अंनत चित्र की अमोल भेंट 'रंगपंचमी' का उनका दिया हुआ संगीत खूब बेहतर रहा और तब से रामकदम ने कभी पीछे मुड़कर देखा ही नहीं। 'केला इशारा जाता-जाता' इस तमाशा संगीत से भरा हुआ संगीत काफी लोकप्रिय हुआ। देवा तुझी सोन्याची जेजुरी, एक गाँव बारा भानगड़ी, गल गौलण, मुक्काम पोस्ट ढेबेवाड़ी, सोंगाड्या, एकटा जीव सदाशिव, पिंजरा, सुगंधी कहा, देवकीनंदन गोपाला तथा अन्य कई फिल्मों का संगीत अत्यंत कुशलता से उन्होंने निभाया। उनका संगीत हमेशा लोक संगीत से प्रभावित दिखाई देता है और लोक संगीत में भी उन्होंने अनेक प्रयोग कर सादगी बनाए रखी है।

हृदयनाथ मंगेशकर, भास्कर चंदावरकर, आनंद मोडक इन संगीतकारों की तरफ अन्य दृष्टि से हमेशा के लिए देखा गया। उनका संगीत हमेशा प्रयोगधर्मी रहा। जैत-रे जैत में हृदयनाथ मंगेशकर ने आर्केस्टा, पार्श्व गायन, पार्श्व संगीत के प्रति जो अनेक प्रयोग किए उनकी चर्चा हरदम होती रही। उसी तरह घाशीराम कोतवाल फिल्म में भास्कर चंदावरकर का दिया हुआ प्रयोगधर्मी संगीत हमेशा के लिए सराहा गया। हालाँकि हिंदी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओं की तरह मराठी भाषा में ज्यादातर प्रयोगशील फिल्में बनी नहीं। अतः ऐसी फिल्मों की तथा संगीतकारों के प्रयोग की छवि दर्शक श्रोताओं के सामने नही आ पाई।

मराठी संस्कृति के बावजूद आजकल जो धमाका मच रहा है, उसमें अस्वाभाविकता तथा कर्णकटुता आ गई है। यह संगीत मराठी चित्रपटों का है या नहीं इसका आभास होने में शंका होने लगती है। आज के मराठी संगीत में अपनापन नहीं है। यह संगीत मराठी परंपरा का प्रतिनिधित्व नहीं करता। इसीलिए आजकल कभी-कभी फिल्में पॉप्युलर हो जाती है मगर उसका संगीत नहीं।

पुराने जमाने में संगीत के आधार पर फिल्मों का निर्माण किया जाता था जैसे कि भैरवी, मी तुलस तुझ्या अंगणी, पतिव्रता, पुढचं पाऊल, रंगल्या रात्रि अशा वगैरह, उस तरह आजकल संगीत प्रधान फिल्में बनती ही नहीं। पुराने जमाने में बीस-बीस संख्या में गाने हुआ करते थे उनकी संख्या आज केवल चार-पाँच-छह तक सीमित हो गई है। गीतों की कामयाबी, रेकॉर्डस या कैसेट की बिक्री से लगाई जा सकती है मगर उसी क्षेत्र में भी मराठी फिल्में हार मान रही हैं। इसलिए कभी-कभी ऐसा विचार मन में आता है कि मा. कृष्णराव, वसंत देसाई, वसंत प्रभु, आनंदधन, सुधीर फड़के, रामकदम जैसे अपने जमाने के गुणी संगीतकार फिर से एक बार मराठी चित्रपट संस्था में कार्यरत हों और उनसे फिर एक बार अच्छा संगीत, अच्छी मेलोडी सुनने का मौका मिले और मराठी चित्रपट संगीत को फिर से एक बार अच्छी इज्जत तथा शोहरत मिले। मगर कल की बात कौन जाने?

करण दीवान

*बॉम्बे टॉकिज के दफ्तर में १५०० आवेदन पत्र हीरो बनने के लिए आए थे। उनमें से सिर्फ करण दीवान उर्फ दीवान करण चोपड़ा का चयन हुआ। लेकिन, किस्मत की बात यह रही कि वे बॉम्बे टॉकिज की एक भी फिल्म में कभी नहीं आए। जेमिनी दीवान के छोटे भाई होने की वजह से करण दीवान को फिल्मों में सफलता जल्दी मिली हालाँकि हीरो की काबिलियत उनमें कभी नहीं रही। गोलमटोल भावहीन बुझा-सा चेहरा और दबी-सी जनाना आवाज उनकी स्थाई पहचान थी। परदे पर उन्हें देखते ही लगता था, जैसे कहीं से मार खाकर आ रहे हों। १९४१ में पूरन भगत (पंजाबी) में उन्होंने काम किया। दूसरी फिल्म मेरा माही (पंजाबी) लाहौर में बनी। चिमनलाल त्रिवेदी ने तमन्ना (हिंदी) में काम देकर बंबइया फिल्मों के दरवाजे उनके लिए खोले। तमन्ना में लीला देसाई उनकी नायिका थी। शोभा (सुलोचना), घर की शोभा (स्वर्णलता), स्कूल मास्टर (माया बनर्जी) जैसी फिल्मों के फ्लॉप होने से वे 'अनलकी स्टार' कहे जाने लगे। फिल्म 'गाली' के दौरान नायिका मंजू, उनकी घरवाली बन गई। शादी के बाद उनकी किस्मत चमक उठी। रतन, जीनत और भाईजान फिल्मों ने जुबली मनाई। रतन ने तो सफलता के तमाम रेकॉर्ड तोड़ दिए। 'जब तुम ही चले परदेस' गीत गाकर दुखांत गीतों की नई परंपरा चल पड़ी। तमाम उम्दा नायिकाओं के साथ करण दीवान आए हैं जैसे–छोटी भाभी (नरगिस), दहेज (जयश्री), दुनिया (सुरैया), राखी (कामिनी कौशल), परदेस (मधुबाला), पिया घर आजा (मीना कुमारी), बहार (वैजयंती-माला)। १९५३ में करण दीवान ने एक साथ अठारह फिल्मों में काम किया है। तीन बत्ती चार रास्ता, मुसाफिर खाना, जलवा, आग का दरिया, सौ का नोट, दादी माँ, शहीद भगतसिंह, जीने की राह उनकी विविध भूमिकाओं की गवाह हैं। ६ नवंबर १९१७ को जन्मे करण दीवान का निधन २ अगस्त १९७९ को हुआ। उनके यादगार गीत हैं–*सावन के बादलों *जब तुम ही चले परदेस (रतन) *दुनिया हमारे प्यार की (लाहौर)।*

naa/D/TX-88

"संगीत इन्सान को ईश्वर के निकट लाता है।"

–सेंट पायॅस स्कूल,
खंडवा

सरगम के सफर का विश्वसनीय साथी

व्हि. टी. इलेक्ट्रॉनिक्स्

5, महेतानी मार्केट, एम.टी.एच. कम्पाउन्ड के पीछे (वाईन शॉप के सामने) इन्दौर-7 ✆ 67958

थोक भाव में उपलब्ध

नाकूड़ा, डिक्सन, एम.सी., लिडर, कॅपरी प्रेस्टिज, डिकॉन्स, डिस्क वायर, ऐंटिना ट्राली इत्यादि

Nidhi Advt.

वीडिओकोन

प्यास मेरी जो बुझ गई होती, जिंदगी फिर न जिंदगी होती

खालिद समी

संगीतकार नौशाद अली का जन्म २५ दिसंबर १९१९ को लखनऊ में हुआ था। कुलीनता के पालने में पले एवं बड़े हुए नौशाद को सद्व्यवहार एवं जीवन के परिष्कृत तौर तरीके विरासत में मिले थे। उनके पिता वाहिद अली लखनऊ राज-दरबार में एक मुंशी थे। उन्हें भी परम्परागत रूप से शिक्षा दी गई, लेकिन इसके लिए उन्होंने न तो कोई रुचि और न ही कोई योग्यता प्रदर्शित की। इसकी बजाय नौशाद को संगीत सुनने से खासा लगाव था। उस समय कौन यह भविष्यवाणी कर सकता था कि अपने घर के समीप स्थित सिनेमा की ओर मौका मिलते ही भागकर मूक सिनेमा (चलचित्र) के प्रारंभिक दौर में भी घंटों तक वादक-दल (आर्केस्ट्रा) के संगीत को सुनने वाला यह छोटा लड़का बड़ा होकर भारतीय फिल्मों के संगीत में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करेगा। कौन सोच सकता था कि भारतीय फिल्म संगीत में एक गौरवशाली स्थान पाने वाले नौशाद अपने फिल्म संगीत के ५० वर्षीय जीवन में एक अविस्मरणीय योगदान देने में भी सफल होंगे। जिन ६४ फिल्मों में उन्होंने संगीत दिया, उनमें से २६ फिल्मों ने सिल्वर जुबली, ८ फिल्मों ने गोल्डन जुबली एवं तीन फिल्मों ने डायमंड जुबिली मनाई है। संगीत की दृष्टि से उनकी लगभग प्रत्येक फिल्म एक हिट फिल्म रही। बॉक्स-ऑफिस पर यह सफल रही हो अथवा असफल रही हो। समान रूप से सुप्रसिद्ध एवं सम्मानित नौशाद अली को लगभग प्रत्येक सम्माननीय पुरस्कार मिल चुका है। इन पुरस्कारों में १९८२ में दादा साहेब फालके पुरस्कार मिला, जो कि भारतीय फिल्म संगीत के क्षेत्र में एक संगीत निर्देशक के रूप में उनके विशिष्ट योगदान का उचित मूल्यांकन है। भारतीय फिल्म संगीत के क्षेत्र में उनकी व्यक्तिगत उपलब्धियाँ भी कम नहीं हैं। उनके ही प्रयासों का फल था कि गायन के क्षेत्र में उमा देवी (टुनटुन), महेन्द्र कपूर, सुरैया, हृदयनाथ मंगेशकर, शांति माथुर जैसी प्रतिभाओं को फिल्मी संगीत में प्रतिभा दिखाने का मौका मिला। इसके अलावा उन्होंने प्रतिभाशाली गायकों जैसे मोहम्मद रफी एवं बाद में लता मंगेशकर को लोकप्रिय बनाने में अपना योगदान दिया। उन्होंने उर्दू शायरों जैसे शकील बदायूँनी, मजरूह सुल्तानपुरी, खुमार बाराबंकवी, तनवीर नकवी एवं अंजुम पीलीभीती को भी लोकप्रिय बनाया। फिल्मों के वे ऐसे पहले संगीत निर्देशक थे, जिन्होंने पार्श्व संगीत को आवश्यक महत्व दिया। उन्होंने पार्श्व संगीत को फिल्मों में एक ऐसी विधि के रूप में प्रयोग किया, जिससे दर्शकों को प्रत्येक दृश्य की समूची भावनाओं एवं वातावरण को चरित्रों की मानसिकता एवं उनकी आन्तरिक अनुभूतियों को उनके (चरित्रों के) चुप रहते हुए भी संप्रेषित किया जा सके। वे ही ऐसे पहले संगीत निर्देशक थे, जिन्होंने मेहबूब खान की फिल्म 'आन' के पार्श्व संगीत के लिए सौ वाद्य-यंत्रों के वादक-दल (आर्केस्ट्रा) का प्रयोग किया था।

वे ऐसे पहले संगीत निर्देशक हैं, जो स्वरबद्ध किए गए प्रत्येक गाने की स्वर-लिपि को भी रखते थे। इससे उन्हें गानों का पुनर्ध्वन्यांकित (रि-रिकॉर्डिंग) करने में सहायता मिली थी। इसी सुविधा का लाभ उठाकर लंदन के आर.सी.ए. में 'आन' के पार्श्व-संगीत को रि-रिकॉर्ड किया गया था, जिसे बी.बी.सी. लंदन के वादक दल ने भी बजाया था। अमेरिका में तो 'आन' की पूरी संगीत स्वर-लिपि की एक पुस्तक प्रकाशित की गई थी। उस समय एक भारतीय के लिए यह एक अभूतपूर्व उपलब्धि थी। उन्हें लंदन में ध्वन्यांकन करने की विधियों एवं रिकॉर्डिंग की पद्धतियों पर आयोजित पूर्वी एवं पश्चिमी संगीत सभा में सम्मान सहित बुलाया गया था। वहाँ भी इनके योगदान की सराहना की गई। शायद वे एकमात्र ऐसे भारतीय फिल्म संगीत निर्देशक हैं, जिनके वाद्ययंत्रों एवं पार्श्व संगीत की स्वर लिपियों को रिकॉर्डिंग कम्पनियों द्वारा रिकॉर्डों के रूपों में दोबारा तैयार किया गया। नौशाद अली इस मामले में सबसे पहले संगीत निर्देशक थे, जिन्होंने भारतीय फिल्मों के संगीत की रिकॉर्डिंग विधि को पूरी तरह बदल दिया था। जबकि इससे पहले एक गायक और एक आर्केस्ट्रा की आवाज को रिकॉर्ड करने में कोई अंतर नहीं किया जाता था। उन्होंने पहली बार रिकॉर्डिंग के लिए वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया, ताकि और अधिक स्पष्टता एवं अधिक ध्वनि प्रभाव के लिए भिन्न- भिन्न संगीतिक अंगों का कुशलतापूर्वक प्रयोग किया जा सके। आज यह विधि सभी संगीत निर्देशकों द्वारा अपनाई जाती है। भारतीय फिल्मी संगीत की दुनिया को नौशाद की सबसे बड़ी देन उनके फिल्मी गीतों की संगीत रचना में शास्त्रीय संगीत का प्रयोग है। फिल्मी गीतों की उनकी संगीत रचनाएँ विभिन्न रागों, ध्रुपद, ख्याल व तरानों पर आधारित हैं। इस बात को भारतीय शास्त्रीय संगीत के उस्तादों एवं पंडितों ने भी स्वीकारा है। बहुत से प्रसिद्ध शास्त्रीय गायकों एवं संगीतज्ञों ने तो यहाँ तक कहा कि नौशाद अली ने भारतीय शास्त्रीय संगीत को देश के जन-सामान्य लोगों तक पहुँचाने का असाधारण कार्य किया है। वह संगीत जो अब तक दरबारों एवं कुलीन परिवारों की शोभा था एवं जो अन्य किसी तरीके से जन सामान्य तक नहीं पहुँच सकता था, उन्होंने अपने संगीत में पूर्व की शास्त्रीय भावना को सदैव ही जिंदा रखा। पर यह भी नौशाद अली के ही बूते की बात थी कि भारतीय संगीत को सर्वाधिक समृद्ध बनाने के साथ- साथ इसमें श्रेष्ठतम पश्चिमी संगीत के उपकरणों का भी उपयोग किया। आज के संगीत के आर्केस्ट्रा में हम

छाया : पी. के. जैन

naa/D/TX-88

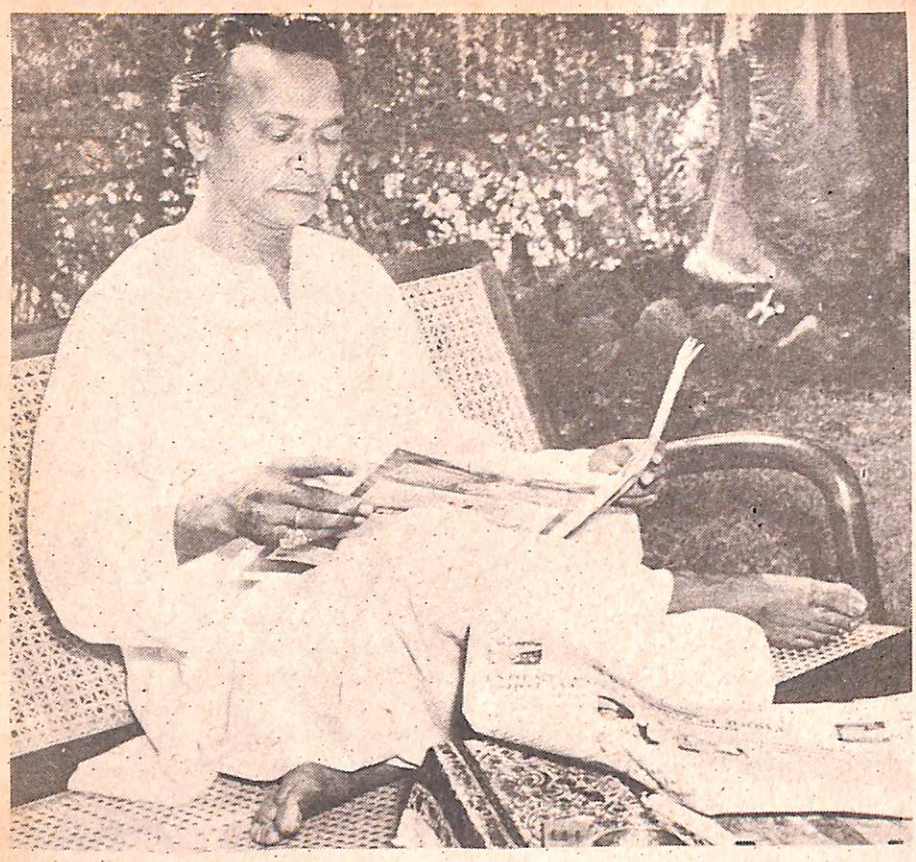

जितने भी वाद्य यंत्र देखते और सुनते हैं, उन सभी का प्रयोग नौशाद ने बहुत पहले ही कर लिया था। उदाहरण के लिए उन्होंने १९५१ में ही 'बैजू बावरा' के एक गीत 'मोहे भूल गए साँवरिया' के लिए परम्परागत भारतीय उपकरणों जैसे- बाँसुरी, सितार, सरोद, जलतरंग, ढोलक, मटका, डफ एवं अन्य के साथ बाइब्रोफ़ोन का भी प्रयोग किया था। उनकी सभी संगीत रचनाओं में इन सभी उपकरणों का सदैव ही सर्वोत्तम उपयोग किया। अभिजात्य वर्ग के संगीत होने के भी साथ-साथ नौशाद अली का संगीत मूल रूप से जन सामान्य का संगीत है। इस वास्तविकता को-कि नौशाद का संगीत सदाबहार एवं लोकप्रिय है-इसी बात से जाना जा सकता है कि एच.एम.वी. को आज भी मात्र उनकी ही संगीत रचनाओं की रॉयल्टी से एक करोड़ रु. का वार्षिक लाभ होता है। फिल्में आती हैं, चली जाती हैं, सितारे भी गुमनामी के अँधेरे में चले जाते हैं। समय भी बदलता रहता है। लेकिन नौशाद का संगीत, संगीत- प्रेमियों के दिलों में युगों तक समाया रहेगा। इसके बावजूद नौशाद अली की रचनात्मक संतुष्टि की ललक अभी भी बनी हुई है। वे आज भी अनुभव करते हैं कि उनका सर्वश्रेष्ठ संगीत अभी भी आना बाकी है। अपनी भूतकालीन उपलब्धियों से ही संतुष्ट न रहने वाले नौशाद अली का अपने काम के प्रति दृष्टिकोण उन्हीं के द्वारा लिखे गए एक शेर से भलीभाँति समझा जा सकता है-**"प्यास मेरी जो बुझ गई होती,/जिंदगी फिर न जिंदगी होती।"**

◆◆◆

साक्षात्कार

सबसे पहले संगीत की दुनिया से आपने कब लगाव अनुभव किया?

संगीत की दुनिया से मेरा लगाव बचपन के दिनों से ही प्रारंभ हो गया था, जब मैं घर के पड़ोस में बने सिनेमा में बजने वाला आर्केस्ट्रा सुनने के लिए चुपके से घर से भाग जाता था। उन दिनों मूक फिल्में हुआ करती थीं, अतः प्रत्येक सिनेमा को फिल्में चलाने के साथ-साथ एक आर्केस्ट्रा भी बजाना पड़ता था। इस तरह दस वर्ष की आयु में ही मैं भारतीय संगीत का ऐसा भक्त बन गया था जिसके लिए और किसी चीज की आवश्यकता नहीं थी। मुझे पढ़ने की जरूरत नहीं थी। मैं बिना खाने के भी बना रह सकता था। मुझे किसी साथी अथवा खेलों से कोई भी लगाव नहीं था। मैं केवल संगीत के लिए तरसता था एवं इसे सुनते हुए कभी न थकता था। हालाँकि मैं इसके बारे में तब बहुत थोड़ा ही समझता था। लेकिन फिर भी मैं इसकी सूक्ष्म विशेषताओं को टटोलने की कोशिश करता। इस तरह सीखने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई।

फिल्मों में आने से पहले आपने कैसे और कब संगीत रचना तैयार करने अथवा संगीत बजाने का एक अवसर प्राप्त किया?

यह तब सम्भव हुआ, जब मेरे कुछ बड़े साथियों ने एक तरह का जूनियर नाटक क्लब बनाने का निश्चय किया। मैं भी इसका सदस्य हो गया और मेरी रुचि को पहचानते हुए मुझे नाटकों में संगीत देने का काम सौंपा गया। मुझे क्लब के पहले मंचन में यह काम करना था। बाद में यह काम मेरे खून में ही मिल गया। एक वर्ष के बाद मैंने स्वयं ही एक नया क्लब बनाया एवं इसका नाम विंडसर म्यूजिक एंटरटेनर्स रखा। विंडसर नाम रखने का कोई विशेष कारण नहीं था, सिवाय इसके कि यह नाम उस समय लखनऊ के नामपट्टों (साइनबोर्ड्स) के मामले में काफी लोकप्रिय था।

फिल्मों में आपको प्रवेश कैसे मिला?

लखनऊ में मैं 'आइडियल स्टडीज' के लिए संगीत निदेशक को जानता था। अतः मैंने उनके संस्थान में एक संगीतकार के काम के लिए आवेदन किया। लेकिन चूँकि मैं इस काम की दृष्टि से अधिक योग्य था। मेरे निदेशक मित्र ने मुझे काम देने से इंकार कर दिया। इस कारण मैं १९३७ में यह सुनकर बंबई आया कि यहाँ की सड़कें सोने से मढ़ी हुई हैं। उस समय मैं इक्कीस वर्ष का था। बंबई में केवल एक ही आदमी को जानता था। वह व्यक्ति थे अंजुमन-ए- इस्लामिया हाईस्कूल के प्रधान अध्यापक, जिनके साथ रहकर मैंने बंबई में काम की तलाश में एक स्टूडियो से दूसरे स्टूडियो में जाते हुए महीनों बिता दिए। मुझे सफलता न मिली और मैं किसी भी आर्केस्ट्रा में एक वादक (प्लेयर) का भी काम न पा सका। मैं निराश होकर काम की अपनी तलाश बंद करने ही वाला था। संयोग से मेरी जान-पहचान नैरी डैरोविट्स से हो गई, जो उस समय 'जमींदार' शीर्षक से एक फिल्म बना रहे थे। उनकी एवं कुछ मित्रों की सहायता से मैं कलकत्ता के एक संगीत निर्देशक मुश्ताक हुसैन के अंतर्गत आर्केस्ट्रा में चालीस रुपए मासिक पर एक पियानो वादक का काम करने लगा। वे न्यू थिएटर्स के ए.आर. कारदार के साथ ताड़देव की फिल्मसिटी में काम करने बंबई आए थे। इस तरह फिल्मों में मेरा प्रवेश संभव हुआ।

आपको स्वतंत्र रूप से एक संगीत निर्देशक बनने का पहला अवसर कब मिला?

वास्तव में इस स्थिति तक पहुँचना एक कड़ी कठिन यात्रा थी। यह स्थिति तब आई, जबकि हरिशचन्द्र बाली नामक एक सुप्रसिद्ध निर्देशक ने, जिन्हें फिल्मसिटी के 'पति-पत्नी' नामक प्रोडक्शन के लिए स्वर-लिपि तैयार करनी थी, एकाएक बीच में ही काम बंद कर दियां एवं वे अपना अनुबंध तोड़कर चले भी गए। (उल्लेखनीय है कि इस फिल्म में शोभना समर्थ, वस्ती एवं याकूब जैसे सितारे काम कर रहे थे)। इस निर्माणाधीन फिल्म में इस तरह का व्यवधान मेरे लिए एक अच्छा अवसर था। अवसर दिए जाने पर मैं इस फिल्म की यह कमी पूरी कर सकता था। ठीक इसी समय पर 'चित्रलेखा' से प्रसिद्धि पाने वाले उस्ताद झंडे खान, मुश्ताक हुसैन एवं ए.आर.कारदार के सम्मिलित प्रयत्नों से मुझे बाली के अधूरे काम को साठ रुपए प्रतिमास के वेतन पर पूरा करने की जिम्मेदारी मिली। मैंने फिल्म के कार्य को निर्धारित समय पर पूरा किया। लेकिन मैंने मुश्ताक हुसैन के ऐसे सहायक होने की ख्याति पाई, जिसके काम के ऊपर उनके नाम की मोहर थी। पर इसी समयावधि में फिल्मसिटी का काम भी बंद हो गया। मैं फिर एक बार बेरोजगार हो गया। तभी मुझे एक और नए मित्र मिले, जिनका नाम मनोहर कपूर था। वे उस समय एक पंजाबी फिल्म 'मिर्जा साहिबाँ' के लिए स्वर लिपि लिख रहे थे, जिसका निर्देशन रणजीत मूवीटोन के लिए एक प्रसिद्ध गीतकार डी.एन. मधोक कर रहे थे। कपूर ने मुझे पचहत्तर रुपए

मासिक वेतन पर अपने सहायक बतौर रखा। उन्हीं के साथ रहते समय मुझे स्वर्गीय चन्दूलाल शाह के सम्पर्क में आने का मौका मिला। उनमें प्रतिभा को पहचानने की गहरी समझ थी। जिस उत्साह से मैं काम करता था, वह उन्हें पसंद आया। जब 'मिर्जा साहिबाँ' बहुत अधिक सफल हुई, तो उन्होंने मुझे अपने रणजीत मूवीटोन में एक संगीतकार के रूप में पचहत्तर रुपए मासिक पर स्थाई रूप से रख लिया। इस अनुबंध को मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। उस समय रणजीत मूवीटोन में ज्ञानदत्त संगीत निर्देशक थे और मैं किसी दिन उनके स्थान पर आने का सपना देखा करता था। तभी मेरे लिए एक सौभाग्यशाली परिवर्तन हुआ। ज्ञानदत्त के स्थान पर कलकत्ता के एक संगीत निर्देशक खेमचन्द्र प्रकाश आए। उन्हें चन्दूलाल शाह कलकत्ता से लाए थे। खेमचन्द्र प्रकाश ने आते ही मुझे पसंद किया और मुझे अपना सहायक बना लिया। मैंने उनके संरक्षण में तीन फिल्मों में काम किया। उसके बाद मैं बीमार पड़ गया। उन दिनों यदि कोई कर्मचारी एक सप्ताह तक अनुपस्थित रहे तो उसे निकाल दिया जाता था। इस व्यवहार की बात सोचकर मैं पूरी तरह ठीक होने के बाद भी रणजीत स्टूडियो नहीं लौटा। लेकिन मुझे जल्दी एक दूसरा काम मिल गया। और इस बार मुझे भावनानी ने काम दिया था। वे अपनी फिल्म 'प्रेमनगर' के लिए संगीत निर्देशक का काम देना चाहते थे, जिसे वे जल्दी ही शुरू करने वाले थे। लेकिन कुछ प्रारंभिक बातचीत के बाद उन्होंने काम के बारे में मेरी सामर्थ्य के बारे में शंकाएँ पैदा कीं। सौभाग्य से यह बात डी.एन. मधोक को पता हुई, उन्होंने मेरे काम के बारे में संतुष्ट करते हुए भावनानी से मुझे अनुबंधित करने के लिए सिफारिश की। इसके लिए उन्होंने अपनी व्यक्तिगत जमानत भी दी। इस तरह भावनानी ने मुझे सौ रुपए मासिक वेतन पर रख लिया। उनके साथ अनुबंधित होने के बाद मैंने अपनी योग्यता एवं डी.एन. मधोक के सहयोग को सार्थक सिद्ध करने के लिए 'प्रेमनगर' का संगीत रात-दिन परिश्रम करके तैयार किया। इस कारण फिल्म का सारा संगीत मात्र तीन महीने में तैयार हो गया। यह पहली फिल्म थी। मुझे एक स्वतंत्र संगीत निर्देशक बनने का मौका मिला।

उसके बाद क्या हुआ?

प्रेमनगर के बाद मुझे ग्वालानी की एक फिल्म 'कंचन' का संगीत निर्देशन का काम मिला। इस बार भी डी.एन. मधोक की सिफारिश काम में आई थी। यह फिल्म ग्वालानी के अपने बैनर 'चित्रा प्रोडक्शन्स' के अन्तर्गत रणजीत स्टूडियो में प्रस्तुत की गई थी। इसी के साथ मुझे प्रकाश स्टूडियोज ने अनुबंधित किया था, मैंने उनकी तीन फिल्मों 'माला', 'दर्शन' एवं 'स्टेशन मास्टर' का संगीत दिया। इनमें स्टेशन मास्टर ऐसी पहली फिल्म थी, जिसमें सुरैया ने अपनी उपस्थिति एक गायक कलाकार के रूप में दर्ज कराई थी। इस समय तक काफी सफलता एवं प्रसिद्धि प्राप्त करने के कारण मुझे ए.आर. कारदार द्वारा उनकी सर्सो प्रोडक्शन्स की फिल्म 'नईदुनिया' में संगीत देने के लिए बुलाया गया। इस फिल्म में संगीत के लिए कारदार द्वारा पहले एक अन्य संगीत निर्देशक को अनुबंधित किया गया था। लेकिन उसके काम से असंतुष्ट होने पर उन्होंने उसकी स्वर-लिपियों को नष्ट कर दिया था एवं मुझसे पूरी तरह से नई स्वर-लिपि तैयार करने को कहा। लेकिन उसके (पूर्ववर्ती संगीत निर्देशक) अनुबंध के साथ उत्तरदायित्वों से बँधे होने के कारण कारदार इस फिल्म के संगीतकार की हैसियत से मेरा नाम फिल्म में न जोड़ सके। मैंने स्वर-लिपियों को घर पर लिखा एवं इन्हें कारदार के पास भेज दिया। उन्होंने इनकी पंडित बद्रीप्रसाद द्वारा रिहर्सल कराई एवं स्टूडियो में रिकॉर्ड कराया, जहाँ मैं बिल्कुल भी नहीं गया। हालाँकि फिल्म 'नईदुनिया' समय पर रिलीज न हो सकी, लेकिन अंततः मुझे फिल्म का संगीत निर्देशक होने का श्रेय मिल ही गया। इसके बाद कारदार ने मुझे अपनी नई संस्था कारदार प्रोडक्शन्स का नियमित संगीत निर्देशक बना दिया। हम दोनों ने मिलकर कुछ प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय फिल्मों की रचना की, जो कि संगीत की दृष्टि से हिट फिल्में थीं। अपनी फिल्मों में संगीत रचना के लिए कारदार ने मुझे पूरी छूट दी थी। इसके अलावा उन्होंने मुझे अन्य प्रोडक्शन्स की फिल्मों में भी काम करने की छूट दी, जिसके कारण से मुझे 'रतन' में संगीत देने का मौका मिला। संगीत की दृष्टि से इस फिल्म ने असाधारण लोकप्रियता प्राप्त की। इसी फिल्म की लगभग एक करोड़ की राशि इसके भाग्यशाली वितरकों के हाथ आई। बाद में इसकी लगभग आधी धनराशि इसके संगीत की चमत्कारिक बिक्री से भी प्राप्त हुई, लेकिन इतनी सफलता के बाद मुझे सम्पूर्ण पारिश्रमिक के तौर पर केवल आठ हजार रुपए मिले। इसके बाद मैंने कुछ प्रसिद्ध निर्देशकों जैसे मेहबूब खान, नितिन बोस, एस.यू. सन्नी, विजय भट्ट के साथ काम किया एवं उस समय की सबसे बड़ी म्यूजिकल हिट फिल्मों को पेश किया।

१९४५ से १९७५ की समयावधि में भारतीय फिल्मों ने संगीत की नई-नई ऊँचाइयों को छुआ है। इस काल में प्रत्येक भारतीय संगीत निर्देशक ने अपनी खुद की एक विशिष्ट एवं व्यक्तिगत शैली विकसित की थी, जो खूबी दुर्भाग्य से आज के अधिकांश संगीत निर्देशकों में नहीं है। ऐसा क्यों हुआ?

सबसे प्रमुख एवं पहली बात तो यह है कि पिछली पीढ़ी के संगीतकारों को उनकी कला की अत्यधिक जानकारी थी। विभिन्न लय व रागों की सम्पूर्ण जानकारी होती थी। जब कभी मैं अपने एक समकालीन निर्देशक की रचना सुनता तो मुझे (विभिन्न फिल्मों में गानों की स्थिति एक होने के बावजूद) एक विभिन्न राग एवं विभिन्न लय पर आधारित एक अलग रचना बनाने का प्रयास करना पड़ता था। इस तरह से हमें अपना संगीत बनाने के लिए एक बिल्कुल अलग स्रोत का ही सहारा लेना पड़ता था। आजकल अधिकतर संगीत निर्देशक एक हिट पश्चिमी संगीत की धुन सुनते हैं एवं उसी पर अपनी रचना तैयार कर लेते हैं। इस तरह से आपको एक सामूहिक स्रोत मिल जाता है। इसमें आप थोड़ा-सा फेरबदल कर अपनी रचना तैयार कर लेते हैं। यही कारण है कि आज अधिकतर गाने एक-दूसरे से मेल खाते हैं। आज भी ऐसे संगीत निर्देशक हैं, जो अपनी कला को बड़ी गंभीरता से जानते हैं एवं संगीत रचनाओं में अपनी व्यक्तिगत शैली रखते हैं। लेकिन, कुल मिलाकर जहाँ संगीत निर्देशकों की अंतिम पीढ़ी का प्रश्न है, वे संगीत की अपनी जानकारी और उसका अपनी रचनाओं में प्रयोग करने के लिए आते थे। जबकि आज के संगीत निर्देशक पश्चिमी हिट रचनाओं की ऑडियो कैसेट्स के अपने संग्रह के कारण जाने जाते हैं। उन दिनों हम संगीत रचना करते थे, आज वे बनी बनाई रचना को अपनी आवश्यकताओं के ही अनुकूल ढाल लेते हैं। अतः आज के संगीत में व्यक्तिगत रचनात्मकता कैसे आ सकती है?

आज हम पाते हैं कि बड़े-बड़े आर्केस्ट्रा का प्रयोग किया जाना एक आम बात हो गई है, इस बारे में यह भी विचार नहीं किया जाता कि किस तरह का गाना रिकॉर्ड किया जाना है। इस तरह से वाद्य यंत्रों का प्रयोग करने वाले चूँकि आप पहले

मुगले ए आजम

संगीत निर्देशकों में से एक समझे जाते है, अतः इस विषय पर आपके क्या विचार हैं?

मैं सोचता हूँ कि गुलाम हैदर ऐसे पहले संगीत निर्देशक थे, जिन्होंने सबसे पहले हिन्दी फिल्मों में अपने गानों के लिए एक आर्केस्ट्रा सुनियोजित रूप से प्रयोग किया था। हाँ, मैंने भी अपने गानों की रिकॉर्डिंग में अधिक बड़े आर्केस्ट्रा का प्रयोग किया एवं इसे बढ़ाया भी। वास्तव में बड़े आर्केस्ट्रा रखने वाले गानों को रिकॉर्ड करने के लिए मैंने एक नई विधि का भी एक नया प्रयोग किया था। इससे पहले आर्केस्ट्रा एवं गायक की आवाज रिकॉर्ड करने की कोई दूसरी विधि नहीं थी। मैंने सबसे पहली बार ध्वनि की उच्चस्तरीय गुणवत्ता एवं स्पष्टता प्राप्त करने के लिए रिकॉर्डिंग की ऐसी वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया था, जिससे सभी भिन्न-भिन्न वाद्य यंत्रों की ध्वनियों को स्पष्ट रूप से उपयोग में लाया जा सके। यह विधि आज भी प्रत्येक संगीत निर्देशक द्वारा उपयोग में लाई जाती है। लेकिन जहाँ तक मेरे गानों में एक बड़े आर्केस्ट्रा प्रयोग करने का प्रश्न है, तो मैं कहूँगा कि मैंने इसका प्रयोग गाने की लय को सुधारने के लिए ही प्रयोग किया, इसे बिगाड़ने के लिए नहीं। इसके अलावा, संगीत रचना की अपनी व्यक्तिगत शैली को पैदा करने के लिए मैंने बड़े आर्केस्ट्रा का उपयोग किया था न कि किसी को प्रभावित करने के लिए। मेरा उद्देश्य कोई सनसनीखेज समाचार को पैदा करना भी नहीं था। इसके अलावा न मेरा उद्देश्य मात्र एक बड़े संगीत निर्देशक की पदवी को इस तरह से पाना था। वास्तव में प्रयोग से यह गीत 'मेरे सैंयाजी उतरेंगे पार, नदिया धीरे बहो' मेरी विशेष उपलब्धि का बन सका था, क्योंकि इस गाने में मैंने आर्केस्ट्रा का प्रयोग नहीं किया था। उपरोक्त गीत मैंने १९५३ में 'उड़न खटोला' नामक फिल्म के लिए स्वरबद्ध किया था। इस गीत में सामूहिक गान को एक विशेष प्रभाव दिया गया था एवं इसमें पर्याप्त रूप से सुर बदलने व ऊँचा-नीचा रखने का भी ध्यान दिया गया था। इस गाने के इसी प्रभाव से आर्केस्ट्रा की भी कमी पूरी हो गई थी। इस गीत से मुझे बहुत संतुष्टि मिली। यह बिल्कुल नया प्रयोग था। इसकी सफलता भी बहुत अधिक प्रोत्साहित करने वाली थी। ठीक इसी तरह से काफी समय बाद भी फिल्म 'मेरे मेहबूब' का शीर्षक गीत मोहम्मद रफी ने गाया था, जिसमें आर्केस्ट्रा का न्यूनतम उपयोग किया गया था। आप समझ सकते हैं कि गानों की प्रकृति के ही अनुसार मैंने हल्के अथवा भारी आर्केस्ट्रा का प्रयोग किया है। मैंने आर्केस्ट्रा का प्रयोग कभी भी शोरगुल बढ़ाने के लिए नहीं किया।

एक गाने की संगीत रचना करते समय क्या आप पहले एक धुन बनाते हैं एवं बाद में गीतकार से इसके अनुसार गीत लिखने का कहते हैं अथवा आप पहले एक लिखा हुआ गीत प्राप्त करते हैं एवं बाद में इसके अनुसार धुन बनाते हैं?

मैंने सदैव ही गीतकार को गीत की स्थिति पहले समझाई है। गीत प्राप्त करने के बाद ही मैंने गाने की धुन तैयार की। इस तरीके से एक गीतकार को एक बेहतर अभिव्यक्ति देने का अवसर मिलता है और इसी कारण से वह ऊँची श्रेणी के गीत लिख सकता है। इसके अलावा गाने की प्रत्येक लाइन के शब्दों का बहाव ही धुन के बहाव को निर्धारित करता है। इसी विधि से एक संगीत निर्देशक को भी ज्ञात होता है कि किन शब्दों पर अधिक जोर देना है और कहाँ एक लाइन विशेष में आवश्यकतानुसार काट-छाँट की जा सकती है। यदि आप पहले धुन बना लेंगे तो इससे आप एक गीतकार के लिए सीमाएँ निश्चित कर देते हैं। उसके बाद एक शब्द विशेष पर जोर देना पूर्व निर्धारित कर अथवा इसे गलत उच्चारित कर धुन छंदों में जबर्दस्ती बाँध देते हैं। कभी- कभार एक पंक्ति के गायन में बिल्कुल गलत तोड़ दिया जाता है, इससे लिखे गए गीत का अर्थ समुचित प्रवाह के साथ व्यक्त नहीं हो पाता है। इस कारण से मैं यह बात बेहतर समझता हूँ कि गीत पहले लिखा जाना चाहिए। उसके बाद पूरी क्षमता के साथ इन्हें धुनों में ढाला जाए। लेकिन आजकल यह प्रक्रिया पुरानी एवं अनुपयोगी समझी जाती है, क्योंकि आज के संगीत निर्देशक जितनी फिल्में संभाल नहीं पाते हैं, उससे अधिक फिल्मों का संगीत वे देते हैं। परिणाम यह होता है कि वे संगीत के अंतिम परिणाम की बिल्कुल चिन्ता नहीं करते हैं। इनके नतीजों को आप प्रतिदिन देख व सुन सकते हैं।

एक संगीत निर्देशक के रूप में आपने एक समय में कितनी फिल्मों में संगीत दिया है?

एक समय पर मैंनें कभी एक अथवा दो फिल्मों से अधिक फिल्में नहीं कीं। मेरी तो बिल्कुल समझ में नहीं आता कि कैसे एक संगीत निर्देशक एक समय में तीस से चालीस फिल्में कर लेता है। मैंने ५२ वर्ष के अपने समूचे फिल्मी संगीत जीवन में केवल ६३ फिल्मों का संगीत ही स्वरबद्ध किया है। आजकल मैं सुनता हूँ कि संगीत निर्देशक तीन-चार वर्षों में ही सौ फिल्में कर लेते हैं। हालाँकि मुझे भी एक समय पर एक से अधिक फिल्मों में संगीत देना पड़ा, लेकिन मैंने हर संभव तरीके से एक समय पर केवल एक विशेष फिल्म करने का लक्ष्य रखा। मैंने हरेक गाने की स्वर रचना पर कड़ी मेहनत की और कभी-कभी तो परिपूर्णता लाने के लिए मुझे सारी स्वर-लिपि को बदलना पड़ता था। एक बिल्कुल नई धुन तैयार करनी पड़ती थी। ध्यान दीजिए कि उन दिनों की फिल्मों में दस से बारह तक गाने हुआ करते थे। इसके अलावा प्रत्येक फिल्म का पार्श्व संगीत भी रिकॉर्ड करना पड़ता था, क्योंकि उन दिनों आज की तरह स्टॉक म्यूजिक की व्यवस्था नहीं थी। उन दिनों एक संगीत निर्देशक एक फिल्म में ही इतना अधिक काम करता था, जितना कि आज का एक संगीत निर्देशक तीन फिल्मों में भी नहीं करता है।

जहाँ तक पार्श्व-संगीत का प्रश्न है, इस क्षेत्र में आप आज भी एक सिद्धहस्त जानकार समझे जाते हैं। आप ऐसा क्यों अनुभव करते हैं कि हमारे संगीत निर्देशकों में से अधिकांश लोग फिल्मी संगीत रचना के इस विशेष पहलू पर विशेषता पाने में असमर्थ हैं?

सच बात तो यह है कि यह एक श्रमसाध्य कार्य है। इसके लिए, सबसे पहले आपको संगीत और आर्केस्ट्रेशन तथा भिन्न-भिन्न मनोभावों एवं भावनाओं को पर्दे पर चित्रित करने हेतु प्रयोग करने की गहरी समझ होनी चाहिए। इसके साथ ही इसके प्रत्येक हिस्से को सही-सही समयबद्ध करने एवं एक ऐसी लय तैयार करने हेतु समय होना चाहिए ताकि समूची फिल्म के संदर्भ में प्रत्येक दृश्य के विकास की रूपरेखा, चरित्रों की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं पर वाँछित जोर एवं समुचित पृष्ठभूमि को समेटने वाली एक लयात्मकता पैदा हो सके। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ कि यह वास्तव में एक बहुत कठिन काम है।

म्यूजिक अरेंजर कौन होता है? इसका सही-सही क्या काम होता है?

मैंने अरेंजर शब्द का उपयोग उस अर्थ में कभी नहीं किया, जिन अर्थों में आज इसका प्रयोग किया जाता है। मैंने सदैव ही एक गाने की धुन व इसकी समस्त स्वरलिपि को अपने सहायक को सौंपा है। लेकिन आजकल के संगीत निर्देशक केवल गाने की धुन बनाते हैं, जबकि आर्केस्ट्रा की समस्त रचना का काम इन्हीं तथाकथित अरेंजर का होता है। मुझे यह जानकर बड़ा दुख भी होता है। आज ऐसे संगीत निर्देशक भी हैं, जो कि रिकॉर्ड की जाने वाली धुन एवं इसके साथ के संगीत को जाने बिना ही उस दिन रिकॉर्डिंग थिएटर में चले जाते हैं। इन अरेंजर्स के फलने-फूलने की वजह यह है कि फिल्मों के अधिकतर संगीत निर्देशकों को कला के बारे में बड़ी सीमित जानकारी है, जो कि इस क्षेत्र की दुर्दशा बताने के लिए काफी है।

किसी फिल्म में संगीत देने की स्वीकृति देने से पहले आप किन-किन बातों पर विचार करते हैं?

सबसे पहले मैं फिल्म की कहानी सुनता हूँ। इसके बाद इस प्रस्ताव से जुड़े लोगों, डायरेक्टर, प्रोड्यूसर एवं लेखक पर विचार करता हूँ। इस मामले में प्रोड्यूसर की इच्छाएँ भी काफी महत्वपूर्ण होती हैं। इसके अलावा यह जानना भी महत्वपूर्ण होता है कि वह केवल आर्थिक लाभ के लिए ही फिल्म बना रहा है अथवा वह फिल्म में रचनात्मक पक्ष को भी रखना चाहता है। और अंत में, इस फिल्म में मेरी मेहनत के बदले में मुझे क्या पैसा मिलेगा। काम चुनने की मेरी वरीयताओं में पैसा सबसे निचले स्थान पर आता है। इस कारण से मैंने कई अवसरों पर आकर्षक प्रस्ताव भी ठुकरा दिए, क्योंकि इन फिल्मों के विषय मेरी दृष्टि से पर्याप्त आकर्षक नहीं थे। मैं जानता हूँ कि हिंसा, बलात्कार एवं अन्य विकृतियों से भरी फिल्मों में मैं संगीत के साथ न्याय नहीं कर सकता हूँ।

भारतीय फिल्म संगीत में आज जो गिरावट आई है, उसके लिए आप किसे दोष देंगे?

चली कौन से देश गुजरिया तू सजधज के

शैलेन्द्र

यदि गीतकार शैलेन्द्र फिल्मों में न आए होते, तो हिन्दी साहित्य का गीत-संसार उन्हें सिर आँखों पर बैठाता। एक निरंतर संघर्षशील जीवन रहा है शैलेन्द्र का। लेखन के लिए भागता हुआ सिलसिला। १९४४-४५ में प्रगतिशील पत्रिकाओं नया साहित्य, जनयुग तथा नयापथ में शैलेन्द्र लिखते थे। वे रेलवे में इंजीनियर थे। लेकिन ट्रेड यूनियन गतिविधियों के कारण तीन साल की नौकरी चली गई। राजकपूर ने 'बरसात' फिल्म के लिए शैलेन्द्र से गीत लिखने के लिए आग्रह किया था। पहले तो 'एग्री यंगमेन' ने प्रस्ताव ठुकरा दिया। बाद में आर्थिक दबाव बढ़े और वे फिल्मों में लिखने के लिए राजी हो गए। हसरत के साथ उनकी जोड़ी ऐसी जमी कि उसकी दूसरी मिसाल नहीं मिलती। शैलेन्द्र-हसरत, शंकर-जयकिशन और मुकेश मिलकर एक 'पूरा राजकपूर' बनता है बरसात में 'हमसे मिले तुम' गीत रचकर शैलेन्द्र राजकपूर को सुनाना चाहते थे, मगर तीन दिन तक बिजली गुल और आँधी-तूफान के कारण वे आर. के. स्टूडियो नहीं पहुँच सके।

उनका एक्टर बनने का तो कतई इरादा नहीं था, मगर फिल्म 'बूट पॉलिश' में राजकपूर ने उन्हें अंधा गायक बनाकर एक चौपाल पर बैठा दिया। चली कौन से देश गुजरिया तू सजधज के। अपने ही गीत को उधार की आवाज लेकर उन्होंने ओठ हिलाए थे। कवि नागार्जुन के परम मित्र और पंत, प्रसाद, बच्चन के साथ रत्नाकर, बिहारी, जायसी जैसे प्राचीन कवियों की रचनाओं का गहरा अध्ययन उन्होंने किया था। शुद्ध तथा सरल हिन्दी को फिल्मी गीतों की भाषा बनाकर उन्होंने कमाल किया था। 'नन्हें मुन्ने बच्चे तेरी मुट्ठी में क्या है', तुम्हारे हैं तुमसे दया माँगते हैं (बूट पॉलिश), मेरा जूता है जापानी (श्री ४२०),ऐ रे मेरे दिल कहीं और चल (दाग), तू प्यार का सागर है (सीमा),बहुत दिया देने वाले ने तुझको (सूरत और सीरत), सब कुछ सीखा हमने न सीखी होशियारी (अनाड़ी), हम उस देश के वासी , हैं (जिस देश में गंगा बहती है),ओ जाने वाले हो सके तो लौट के आना (बंदिनी)—जैसे गीत उनकी अमर रचनाएँ हैं। फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी मारे गए गुलफाम पर उन्होंने 'तीसरी कसम' नाम से राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त फिल्म बनाई थी। यही फिल्म उनके लिए जानलेवा सिद्ध हुई।

स्वभाव से मस्तमौला शैलेन्द्र की गीत रचना प्रक्रिया बड़ी दिलचस्प रही है। फिल्म 'आवारा' की कहानी सुने बगैर उन्होंने— आवारा हूँ— लिख दिया था। शंकर-जयकिशन से किसी बात पर अबोला चल रहा था, तो उन्होंने लिखा— छोटी सी ये दुनिया पहचाने रास्ते हैं, तुम कभी तो मिलोगे कहीं तो मिलोगे, तो पूछेंगे हाल। बाद में इस गीत को फिल्म रंगोली में फिट किया गया था। एक गीत की स्थिति को लेकर राज साहब से भिड़ गए। भिड़ंत के दौर में लिखा—तुम भी हो हम भी हैं दोनों हैं आमने-सामने।फिल्मी गीतकारों ने जब भेड़ चाल शुरू कर दी और संगीतकारों ने शोर-शराबे का संगीत बैण्ड मास्टर की तरह देना शुरू कर दिया, तो उन्होंने व्यंग्य करते लिखा था— टीन कनस्टर पीट पीट कर गला फाड़कर चिल्लाना, यार मेरे मत बुरा मान यह गाना है न बजाना है (लव मैरेज)। शैलेन्द्र का विश्वास था कि गीतकार को संगीत की थोड़ी समझ है, तो वह बेहतर गीत लिख सकता है।

३० अगस्त १९२३ को रावलपिंडी में जन्मे शैलेन्द्र १९४२ में भारत छोड़ो आंदोलन में जेल गए थे। मथुरा की गलियों में उन्होंने यौवन को संगीतमय बनाया। मुक्त छंद लिखे। गद्य शैली में नए प्रयोग किए। दो बार उन्हें फिल्म फेयर अवार्ड मिले फिल्म अनाड़ी तथा यहूदी के गीत लिखने पर। कुछ और लोकप्रिय गीत *राजा की आएगी बारात (आह) * भैया मेरे राखी के बंधन को निभाना (छोटी बहन), *हरियाला सावन ढोल बजाता आया (दो बीघा जमीन), * चढ़ गयो पापी बिछुआ (मधुमति), * जानू रे काहे खनके तोरे कंगना (इंसान जाग उठा)। १४ दिसंबर १९६६ को यह फिल्म गीताकाश का नक्षत्र टूट गया। ■

मुख्य रूप से फिल्मों की कहानियाँ इस गिरावट के लिए जिम्मेदार हैं। जब नई-नई थीम्स के लिए हमारे फिल्म निर्माताओं ने पश्चिमी देशों की फिल्मों की नकल की, तो इससे हमारी फिल्मों की पहचान समाप्त होने लगी है। चूँकि फिल्मों की थीम्स पश्चिमी देशों की हैं, अतः संगीत भी पश्चिमी देशों का आने लगा है। अब तो बदला लेने एवं हिंसा के दृश्यों से भरी फिल्मों में सुरीले गीतों की बजाय कानफोड़ू संगीत ने ले ली है। हमारी फिल्मों में शोरगुल ही अधिक बढ़ा है। जिस दिन हमारी फिल्मों का 'सबजेक्ट मैटर' सुधर जाएगा, ठीक उसी समय से हमारी फिल्मों का संगीत भी मधुर एवं कर्णप्रिय होने लगेगा।

भारतीय फिल्म संगीत के क्षेत्र में जो नवोदित प्रतिभाएँ हैं, उनके बारे में आपकी क्या राय है?

मुझे दुःख है, इनमें से अधिकांश के पास मौलिकता का अभाव है। इनमें से अधिकांश अपने पूर्ववर्ती गायकों की नकल करते हैं। जबकि इन्हें स्वयं की एक गायन शैली विकसित करनी चाहिए, क्योंकि केवल नकल करके आज तक कोई भी महान गायक नहीं बन सका है।

क्या आप सोचते हैं कि किसी भी सफल फिल्म में अपने काम के लिए किसी संगीत निर्देशक को समुचित आदर सम्मान मिलता है?

फिल्म एक ऐसा विशिष्ट माध्यम है, जिसमें एक सच्चे क्रियाशील को शायद ही कभी सम्मान मिलता हो। फिल्में सफल होती हैं, तो सितारे चमकते हैं एवं संगीत के लोकप्रिय होने पर गायकों को श्रेय दिया जाता है। संगीत चाहे कितना ही लोकप्रिय क्यों न हुआ, बहुत कम लोग ही संगीत निर्देशक अथवा एक गीतकार के बारे में जानते हैं। मैंने इसी कारण से भारत सरकार द्वारा पद्म श्री पुरस्कार को भी ठुकरा दिया था। मैं यह पुरस्कार कैसे स्वीकार करता, जो कि मुझसे पहले मेरे कनिष्ठ सहयोगियों एवं उन गायकों को मिल चुका था, जो मेरे ही संगीत निर्देशन में गाकर लोकप्रिय बने थे।

भारतीय फिल्म संगीत के भविष्य के बारे में आपका क्या कहना है?

मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि इसका भविष्य उज्ज्वल है। अच्छा संगीत सत्य की तरह होता है, यह कुछ समय के लिए छिप सकता है, लेकिन पूरी तरह से समाप्त नही हो सकता है। कुछ समय के बाद निश्चय ही वास्तविक भारतीय संगीत की सुखद वापसी होगी।

naa/D/TX-88

निरोगधाम कार्यालय में
सदाबहार अभिनय सम्राट श्री अशोक कुमार

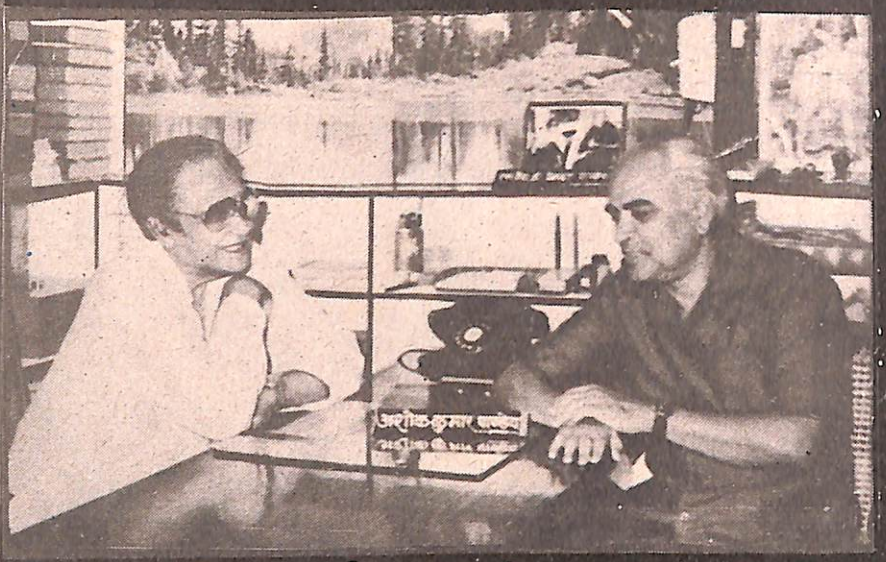

दादा मुनि और डॉ. प्रेमदत्त पाण्डेय प्रसन्न मुद्रा में

निरोगधाम के विषय में
दादामुनि कहते हैं –

मुझे यह पत्रिका इसलिये पसन्द आई
कि इसमें बहुत ही सरल व रोचक शैली में
कई प्रकार के विषयों पर बड़ी अच्छी सामग्री
दी जाती है। मैं सभी पाठक भाई बहिनों से
कहना चाहूंगा कि इस पत्रिका को पढ़ें, और
इससे लाभ उठायें। यह एक श्रेष्ठ स्तर
की पारिवारिक स्वास्थ्य पत्रिका है,
जिसे देश के हर घर में, हर परिवार
के प्रत्येक छोटे बड़े सदस्य को पढ़ना
चाहिये, और अपने मानसिक, शारीरिक,
एवं आत्मिक स्वास्थ्य की रक्षा और
उन्नति करना चाहिये।
मैं इस पत्रिका के उज्ज्वल
भविष्य की कामना करता हूं।

अशोक कुमार

निरोगधाम पढ़िए ! निरोग रहिए !!

सारे देश में
घर घर लोकप्रिय
पारिवारिक स्वास्थ्य पत्रिका
निरोगधाम

Navjyoti Ads.

निरोगधाम फ़ोन: ६८२५०
११९, जावरा कम्पाउण्ड, इन्दौर - ४५२००१

फिल्मी गीतों का सफर
आठ आने से सवा लाख तक

यह विवाद १९५२ से चला आ रहा है कि आकाशवाणी से फिल्म संगीत प्रधानता के साथ प्रसारित किया जाए अथवा शास्त्रीय संगीत। उस दौर में भारत के घर-घर में रेडियो सीलोन बडे चाव से सुना जाता था। गोया वह सीलोन रेडियो न होकर भारत का घरेलू रेडियो केंद्र हो। सीलोन रेडियो ने अपने तमाम कार्यक्रमों को फिल्मी संगीत का आधार देकर इतना लोकप्रिय बना दिया था कि श्रोता सम्मोहित होकर रेडियो से कान लगाए बैठे रहते थे। पान की दुकान हो या होटल, सीलोन स्टेशन से रेडियो की सुई हटती नहीं थी। तमाम उत्पादनों के विज्ञापन और उन पर आधारित कार्यक्रम/प्रतियोगिताएँ सीलोन की मुट्ठी में थीं। बंबई में बाकायदा उनका विशाल दफ्तर था, जो रात-दिन दोनों हाथों से पैसा उलीच रहा था। अरब सागर का ज्यादा पानी जब हिन्द महासागर की ओर बहने लगा तो सरकार की आँख खुली और **विविध भारती** का जन्म हुआ। हालाँकि रेडियो सीलोन के व्यापार विभाग को घाटे में उतारने और खुद को मालामाल करने के फेर में विविध भारती को बरसों तक पापड़ बेलना पड़े।

रेडियो सीलोन हो या विविध भारती या ऑल इंडिया रेडियो की उर्दू सर्विस इन तमाम केंद्रों ने फिल्मी गीतों को लोकप्रिय बनाने में जबरदस्त भूमिका अदा की है। दूरदर्शन का भारत में देर से आना भी इसका एक कारण रहा है कि श्रोता 'दृश्य' के बजाय 'श्रव्य' पर अधिक आश्रित रहे। जब गूंगा सिनेमा 'आलमआरा' फिल्म से बोलने लगा तो दर्शक गीत-संगीत सुनकर सिनेमा हॉल में मारे खुशी के नाच उठे। डब्ल्यू.एम. खान ने गाया- दे दे खुदा के नाम पर प्यारे और जुबेदा ने गाया- बदला दिलाए यारब तू सितमगरों। इस फिल्म से गीतों का चलन बढ़ता ही चला गया। मदन थिएटर ने अपनी तीन फिल्मों का निर्माण आनन-फानन में किया और उन्हें गीत- संगीत की चासनी में डुबो दिया। शीरी फरहाद (७ गीत), लैला-मजनू (२२ गीत) और शकुंतला फिल्म में ४१ गीत रखे गए थे। जिसमें 'बचाओ-बचाओ सखी को बचाओ' गीत काफी मशहूर हुआ था। पढ़ा-लिखा तबका भी गीत-संगीत के आकर्षण से नहीं बच सका और सिनेमा घरों के सामने टिकट लेने वालों की कतारें लग गईं। इसका नतीजा यह हुआ कि उम्दा संगीतकारों ने सिनेमा के आँगन में कदम रखे। मसलन आर.सी. बोराल, के.सी. डे, पंकज मलिक, खेमचंद प्रकाश और अनिल विश्वास। इन लोगों ने गानों की संख्या के स्थान पर गुणवत्ता पर जोर दिया। फिल्म देवदास (**बालम आय बसो मोरे मन में**), चंडीदास (**प्रेम नगर मैं बनाऊँगी**), अछूत कन्या (**मैं बन की चिड़िया**), विद्यापति (**पनघट पे कन्हैया आता है**), पुकार (**जिंदगी का साज भी क्या साज है**), कपाल कुंडला (**पिया मिलन को जाना**), धूप-छाँव (**बाबा मन की आँखें खोल**) और स्ट्रीट सिंगर जैसी फिल्मों में **बाबुल मोरा नैहर छूटो जाए** जैसे सदाबहार गीत हमें सुनने को मिले हैं। देवकी बोस जैसे निर्देशक ने चंडीदास तथा विद्यापति के संगीत पक्ष को इतना सँवारा था कि इन फिल्मों के गीत **सैल्योलाइड पर कविता** के नाम से पुकारे गए।

इस स्वस्थ परंपरा को सचिन देव बर्मन ने आगे बढ़ाया। शास्त्रीय तथा लोक धुनों का सहारा लेकर सचिन दा ने फिल्म संगीत को समृद्ध किया। मदन मोहन ने गजलों पर जोर दिया और एक नई विधा से श्रोताओं को परिचित कराया। शंकर-जयकिशन, सी. रामचंद्र, ओ.पी. नय्यर फिल्म संगीत के सर्जक रहे हैं। लेकिन जब गीतों की लोकप्रियता बढ़ी तो अनेक सस्ते गीतकार इस मैदान में आ गए। कहा तो यहाँ तक जाता है कि उन दिनों **आठ आने** (पचास पैसे) में गीतकार गीत लिखकर चलते बनते थे। अश्लील गीतों की भरमार का एक उदाहरण है-

जरा नयनों से करदो इशारा मेरी जों
बोसों से कर दूँ तेरे गाल लाल-लाल
चुम्बन का स्वाद ले लीजै...।

ऐसे गीतों के साथ सस्ते किस्म की धुनें भी दी गई और गीत-संगीत को पथभ्रष्ट करने की कोशिशें जारी रहीं। दूसरी ओर हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ गीतकार भी फिल्मों में गीत लिखने की ओर आकर्षित हुए थे। जैसे कविवर **सुमित्रानंदन पंत** ने 'कल्पना' और **भगवती चरण वर्मा** ने 'चित्रलेखा' के लिए गीत लिखे थे। पंडित नरेन्द्र शर्मा तथा कवि प्रदीप जैसे गीतकार उस समय फिल्मी दुनिया में मौजूद थे। बंगाली फिल्मों में **रवीन्द्रनाथ ठाकुर** तथा काजी **नजरूल इस्लाम** की कविताओं का उम्दा उपयोग किया जा रहा था। हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों की आम शिकायत यह रही कि फिल्मी दुनिया में घोड़ा, गाड़ी को खींचता है, इसलिए उनकी पटरी नहीं बैठ सकती। शायद यही वजह रही होगी कि जबलपुर के **सेठ गोविन्ददास** के साथ फिल्मों में गीत लिखने गए म.प्र. के स्वर्गीय मुख्यमंत्री **पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र** उल्टे पाँव लौट आए थे।

आरंभ के दो दशक में फिल्मों में श्रेष्ठ गीतकार आए। **मजरूह सुल्तानपुरी** जो कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य रहे हैं, को उर्दू भाषा और व्याकरण पर पूरी पकड़ थी। उनके गीत उनकी फिल्मों से अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं। एक हकीम की योग्यता रखते हुए उन्होंने शायर बनना गवारा किया। पिछले चवालीस बरसों से वे फिल्मी दुनिया में डटे हुए हैं। शाहजहाँ (जब दिल ही टूट गया) उनकी

कैफी आजमी

पहली फिल्म थी। लगभग एक हजार गीत मजरूह ने लिखे हैं। सुजाता फिल्म के गीतों को वे सर्वश्रेष्ठ मानकर पहले क्रम पर रखते हैं। रहें ना रहें हम (ममता), तेरे मेरे मिलन की ये रैना (अभिमान) बाद की पसंद है।

शकील बदायूंनी की शायरी में साहिर जैसी तेज धार नहीं है, उसके बावजूद वे बेगम अख्तर के प्रिय शायर रहे हैं। हमेशा पान चबाने वाले शायर का प्रति रूप रहे हैं शकील। 'प्यार किया तो डरना क्या (मुगले आजम) उनका पसंदीदा गीत है। **कैफी आजमी** का नाम लेते ही मन में आदर की भावना जाग जाती है। रंगमंच और साहित्य में ज्यादा व्यस्त रहने से फिल्मी गीतों की ओर कैफी का ध्यान कम गया है। आजमगढ़ से बंबई आए कैफी नारी स्वतंत्रता के उस समय से पक्षधर रहे हैं, जब यह शब्द अखबारों में उछला भी नहीं था। गुरुदत्त

ज्योति कलश छलके: पं. नरेन्द्र शर्मा

पण्डित नरेन्द्र शर्मा जैसे स्तरीय कवि फिल्मी दुनिया में इक्के-दुक्के ही आए हैं। बाम्बे टॉकीज जब दो भागों में विभाजित हो गई और कवि प्रदीप शशधर मुखर्जी के साथ फिल्मिस्तान में चले गए तो खाली जगह भरने के लिए भगवती चरण वर्मा के सुझाव पर पण्डित नरेन्द्र शर्मा को बनारस से बंबई बुलाया गया। फिल्म 'हमारी बात' बन रही थी। अमिय चक्रवर्ती के चौथे सहायक राजकपूर (उम्र १८ साल) थे। उस फिल्म के गीत पण्डित नरेन्द्र शर्मा ने लिखे थे, जो काफी लोकप्रिय हुए—'मैं उनकी बन जाऊँ रे, इन्सान क्या जो ठोकरें नसीब की न सह सके, ऐ वादे सबा इठला के न जा, मेरा गुंचाए दिल तो टूट गया। इसके बाद 'ज्वार भाटा' फिल्म बनी। 'सांझ की बेला, पंथी अकेला, सरसों पीली, धान सुनहले जैसे शुद्ध कविता के सात्विक-साहित्यिक गीत पंडितजी की कलम से फूटे और अनिल विश्वास का संगीत पाकर निहाल हो गए।

आजादी के आसपास लोकप्रियता की अंधी दौड़ प्रारम्भ हो गई। पाश्चात्य धुनों पर हल्के-फुल्के चुलताऊ गीत लिखे जाने लगे। फिल्म गीतकार दो धाराओं में बँट गए। पण्डित जी धीमे बहने वाली अपनी संस्कृति से जुड़ी धारा के साथ हो गए। उन्होंने कम लिखा मगर उम्दा लिखा- नरसिंह अवतार (सोहराब मोदी), मतवाला शायर (वी. शांताराम), मेरा सुहाग (बाबूराव पई), अहिल्या (वसंतराव पेंटर), नंदकिशोर (वसंत जोगलेकर), भाभी की चूड़ियाँ (शांताराम आठवले) और शिवेन्द्र सिन्हा की फिल्म 'फिर भी' के लिए गीत लिखे हैं। राजकपूर ने सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के लिए उनसे गीत लिखाए। बी.आर. चोपड़ा की दूरदर्शनीय महाभारत के गीत तथा कथावस्तु में परामर्श पण्डितजी का है। वे आकाशवाणी के बरसों सलाहकार रहे। फरवरी '८९ में आपका निधन हुआ। भाभी की चूड़ियाँ के गीत ज्योति कलश छलके के समान आपका व्यक्तित्व था।

की फिल्म कागज के फूल, ऋषिकेश मुखर्जी की अनुपमा और चेतन आनंद की फिल्म हकीकत में कैफी के श्रेष्ठ गीत हैं।

जयपुर से बंबई आकर **हसरत जयपुरी** ने गीत लिखने की अपनी इच्छा पूरी कर ली और राजकपूर के स्टूडियो में स्थाई रूप से तम्बू गाड़ दिया था। शैलेन्द्र के साथ उनकी जोड़ी आखिरी समय तक जमी रही और सफल हुई। हसरत का कहना है कि उन्होंने अब तक चार सौ गाने लिखे हैं। तेरी प्यारी प्यारी सूरत को (ससुराल), बहारों फूल बरसाओ (सूरज), जिंदगी एक सफर है सुहाना (अंदाज), जाने कहाँ गए वो दिन (मेरा नाम जोकर), ये मेरा प्रेम पत्र पढ़कर (संगम) उनकी पसंद के गीत हैं। फिल्मों के अलावा भी उन्होंने गजलें लिखी हैं और किताबे प्रकाशित हुई हैं। **साहिर लुधियानवी** शायरी के मैदान के बाहर भी काफी चर्चित रहे हैं। उनका नाम अमृता प्रीतम के साथ काफी जोड़ा गया था। गायिका सुधा मल्होत्रा को आगे बढ़ाने में भी उन्होंने काफी दिलचस्पी ली थी। फिल्मी गीतकारों को सम्मान का दर्जा मिले, इसके लिए साहिर ने कामयाब लड़ाई लड़ी थी। उनकी पसंद के गीतों में-जिन्हें नाज है हिन्द पर (प्यासा), पाँव छू लेने दो (ताज महल), रात भी है कुछ भीगी भीगी (मुझे जीने दो), ये रात ये चाँदनी फिर कहाँ (जाल) और कभी- कभी के गीत शामिल हैं।

इंदीवर का नाम श्यामलाल है और वे अपने को 'झाँसी का बनिया' कहते हैं। किशोरावस्था में आजादी के आंदोलन में कूद पड़े और जेल गए। गाँधीजी के नागपुर आश्रम में रहे। आजादी की खातिर उन्होंने अपनी सारी संपत्ति राष्ट्र को समर्पित कर दी थी। बंबई आकर बस गए और लगातार गीत लिख रहे हैं। आरंभ में अच्छे साहित्यिक गीत लिखे, बाद में 'जैसा बाजार वैसा माल' के फारमूले पर उतर आए। उनकी पसंद के गीत हैं- ताल मिले नदी के जल में (अनोखी रात), बड़े अरमानों से रखा है बलम (मल्हार), दुल्हन चली पहन चली तीन रंग की चोली (पूरब और पश्चिम), चंदन सा बदन (सरस्वती- चंद्र)। इंदीवर ने रॉक एंड रोल के गीत भी लिखे हैं। आप जैसा कोई मेरी जिन्दगी में आए (कुरबानी) लिखकर उन्होंने समझौता वक्त से किया है। **राजेन्द्र कृष्ण** तो संवाद-पटकथा-गीत लिखने की मशीन माने जाते थे। अड़तालीस लाख की लॉटरी महालक्ष्मी घुड़दौड़ में जीतकर वे 'राजा' बन गए थे। दक्षिण भारत की फिल्मों में उन्होंने बरसों तक एकछत्र राज किया। उनकी पसंद के गीत हैं- ये जिंदगी उसी की है जो किसी का हो गया (अनारकली), इना मीना डिका (आशा)।

तेरे बिना जिंदगी से कोई शिकवा नहीं: गुलजार

मध्यप्रदेश के सांसद एवं गीतकार बालकवि बैरागी

आनंद बक्षी को 'जनता का कवि' माना जाता है। सेना की नौकरी छोड़कर फिल्मों में गीत लिखने वाले आनंद बक्षी ने मशीनगन से छूटती गोलियों की तरह गीत लिखे हैं। लक्ष्मी-प्यारे से उनकी पटरी ठीक बैठी। एस.डी. और आर.डी. बर्मन के लिए भी उन्होंने बेहतर शब्दावली की जमावट की है। आनंद बक्षी के गीत नवयुवक-युवतियों को अधिक रास आते हैं, क्योंकि उनमें **'रोमांस के कीटाणु'** हवा में तैराने की ताकत होती है। बिंदिया चमकेगी (दो रास्ते), मेरे सपनों की रानी (आराधना) उनके श्रेष्ठ गीत हैं। आकाशवाणी के किसी न किसी स्टेशन से हर दूसरा-तीसरा गीत उन्हीं का होता है। अस्सी के दशक में फिल्मी गीतकारों में आनंद बक्षी का दर्जा अमिताभ बच्चन के बराबर हो गया था। उनका कहना था कि जब अमिताभ को एक फिल्म के एक करोड़ रुपए देना बताया जाता है तो फिर गीतकार को सवा लाख रुपए क्यों नहीं मिलना चाहिए। उनका यह भी तर्क है कि 'खइके पान बनारस वाला' गीत यदि नहीं लिखा गया होता तो **डॉन** फिल्म को इतनी सफलता शायद ही मिल पाती।

गुलजार पूरी तरह से शायर तबियत के व्यक्ति हैं। उन्होंने फिल्मी गीतों में मुक्त छंद का प्रयोग कर बहुत उम्दा शब्दावली से संजोया है। किसी भी साहित्य की टक्कर में गुलजार के गीत रखे जा सकते हैं। ध्वनि के साथ माहौल बनाने का काम उनके गीत करते हैं। फिल्मों में आने से पहले गुलजार बंबई के बायकुला इलाके में एक गैरेज में काम करते थे। लेमिंगटन रोड की पेंट की दुकान पर भी उन्होंने नौकरी की है। दिल्ली की सब्जी मंडी में गुलजार का बचपन बीता है, इसलिए वहाँ की यादें, लोग और दृश्यों को अक्सर शब्दों के जरिए कागज पर उतारकर फिल्माते रहते हैं। बिमल राय के सहायक से उन्होंने फिल्मी करियर शुरू किया। बंदिनी में लिखा उनका पहला गीत- मोरा गोरा अंग लई ले बहुत पसंद किया गया था। अब तक सौ से अधिक गीत गुलजार ने लिखे हैं। उनके गीतों का एल.पी. रिकॉर्ड भी जारी हुआ है। गुलजार न सिर्फ कवि हैं बल्कि संवाद, पटकथा लिखने के अलावा उन्होंने खूबसूरत फिल्में भी बनाई हैं- परिचय, कोशिश, आँधी, किताब, लिबास, मेरे अपने, मीरा और इजाजत।

शैलेन्द्र यदि फिल्मों में नहीं होते तो हिन्दी साहित्य के 'लीजेंड कवि' बन गए होते। उनका पूरा नाम शैलेन्द्र शंकर था, लेकिन 'शंकर' कहलाना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। सरल हिन्दी को फिल्मी गीतों में प्रयोग कर उन्होंने ऐसे भावपूर्ण गीत लिखे हैं कि उनका अर्थ गहरी मानवीय संवेदना लिए होता है। देश में ही नहीं विदेशों में भी उनके गीत गूँजे हैं। 'तीसरी कसम' जैसी प्यारी फिल्म उन्होंने बनाई थी और फिल्मी दुनिया से कहा था- सजन रे झूठ मत बोलो।

आज नरेंद्र शर्मा, शैलेन्द्र, शकील, साहिर, संतोषी, राजेन्द्र कृष्ण जैसे गीतकार नहीं रहे हैं। प्रेम धवन, गुलशन बावरा और योगेश ने गीत लिखने के प्रति उदासीनता अपनाली है। नीरज वापस लौट गए हैं। हसरत -मजरूह को बहुत कम 'ऑर्डर' मिल रहे हैं। शहरयार ने 'उमरावजान' के बाद कोई कमाल नहीं दिखाया है। निदा फाजली, वसंत देव जैसे गीतकार फिल्मों में एक्शन तथा हिंसा बढ़ जाने से आहत हैं। वर्मा मलिक, इंदीवर, आनंद बक्षी ऑर्डर के मुताबिक माल 'सप्लाय' कर रहे हैं। कुल मिलाकर फिल्मी गीतों की बगिया उजड़ गई है। जावेद जैसे लोग गिनती को फिल्मी गीतों में ढालकर एक-दो-तीन-चार का पहाड़ा बच्चों से रटवा रहे हैं। संगीत से मेलोडी चली गई, गीतों से भाव। शायद इसी वजह से आज की फिल्में **'अस्थि पंजर'** बनकर रह गई हैं।

केदार शर्मा

पण्डित केदार शर्मा-एक सम्मानित नाम है फिल्मी दुनिया का। राजकपूर को चाँटा मारकर फिल्म नीलकमल में नायक बनाने का श्रेय भी इन्हें है। पिछले पाँच दशकों में आपने पचास से अधिक फीचर फिल्में निर्देशित कीं और अनेक ऐसे कलाकार दिए, जिनकी बदौलत फिल्मी दुनिया आपकी ऋणी बनी है। केदार शर्मा ने कहानी लिखने से फिल्म केरियर शुरू किया था। इसके भी पहले कलकत्ता के न्यू थियेटर में स्टील- फोटोग्राफर थे। फोटोग्राफर से पेन्टर बने। पेन्टर से रायटर और रायटर से डायरेक्टर। न्यू थिएटर की फिल्म देवदास में गाने तथा संवाद लिखने का अवसर मिला। फिल्म ने देशभर में धूम मचाई। १९४० में हिन्दी के प्रतिष्ठित साहित्यकार भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास चित्रलेखा पर जब फिल्म बनाई, तो केदार शर्मा की पताका सबसे ऊँची आसमान में फहराई। इसके बाद उन्होंने पीछे मुड़कर कभी नहीं देखा। जोगन, गौरी, सुहागरात, बावरे नैन, जलदीप, हमारी याद आएगी और भीगी पलकें उनकी स्मरणीय फिल्में हैं। कागज की नाव नाम से एक टेली फिल्म भी पिछले दिनों दूरदर्शन पर दिखाई गई थी। केदार शर्मा को अपने देश में भले ही कम सम्मान मिले हों, मगर डायरेक्टरी ऑव इन्टरनेशनल बायोग्राफी में दुनिया भर के एक सौ पचास फिल्मकारों में उनका नाम दर्ज है।

ऐ मेरे वतन के लोगों : प्रदीप

रामचंद्र द्विवेदी नाम के कवि को आप पहचानते हैं क्या? ऐसा प्रश्न यदि आपसे कोई करे तो संभव है आप अपनी याददाश्त को टटोलने हेतु सिर खुजलाने लग जाएँ किंतु यदि कवि प्रदीप कहते ही 'ऐ मेरे वतन के लोगों', 'दे दी हमें आजादी', 'देख तेरे संसार की हालत क्या हो गई भगवान' आदि अनेक देशभक्ति और देवभक्ति के गीतों की याद ताजा हो जाती है।

◆◆◆

प्रदीपजी का जन्म ६ फरवरी १९१५ को उज्जैन जिले के बड़नगर शहर में हुआ था। बी.ए. तक की शिक्षा उन्होंने इलाहाबाद से पूर्ण की। दो वर्ष का शिक्षक प्रशिक्षण भी लिया मगर मास्टरी उन्होंने नहीं की। गर्मियों में वे अक्सर अपने मित्र के यहाँ मथुरा जाया करते थे। वहाँ गुजरात के कला गुरु रविशंकर रावल से उनकी पहली मुलाकात हुई। रामचंद्र द्विवेदीजी ने उन्हें अपनी कविताएँ सुनाई। १९३८ में रविशंकर रावले स्वयं उन्हें अपने साथ अहमदाबाद ले आए और कुमार के छापाखाने में ले गए। रविशंकरजी का पुत्र बंबई में बीमार हुआ तो वे रामचंद्र द्विवेदी को लेकर बंबई चले गए। बंबई पहुँचने पर रामचंद्रजी ने कई जगह अपनी कविताओं को प्रस्तुत किया। ऐसी ही एक गोष्ठी में दिग्दर्शक एन. आर. आचार्य भी मौजूद थे। अगले ही दिन में हिमांशु राय की गाड़ी में आए और द्विवेदीजी से कहा कि चलिए आपको बॉम्बे टॉकिज के मालिक ने बुलाया है, उन्हें अपनी कविताएँ सुनाइए। रामचंद्रजी की कविताएँ सुनकर हिमांशु राय खुश हुए और उन्होंने तुरंत दो सौ रुपए प्रतिमाह के पगार पर रामचंद्रजी को फिल्मों में गीत लिखने हेतु अनुबंधित कर लिया। साथ ही दो सौ रुपए पेशगी अदा की। रामचंद्र द्विवेदी इस सारी घटना से चकित रह गए। उनकी कल्पना शक्ति के बाहर की यह आकस्मिक घटना थी। उन्हें फिल्मी गीत लिखने का अनुभव नहीं था किंतु एन. आर. आचार्य के आग्रह पर वे यह कार्य करने पर राजी हो गए। हिमांशु राय ने संकेत किया कि फिल्मी दुनिया में रामचंद्र द्विवेदी जैसा पंडिताई नाम नहीं चलेगा; प्रदीप उपनाम लगाइए। बस तभी से रामचंद्र द्विवेदी का नामांतरण प्रदीप हो गया। कवि प्रदीप। १९३९ में उन्होंने **कंगन** फिल्म के लिए पहली बार चार गाने लिखे। उनमें से तीन गानों को स्वयं ने स्वर भी दिया। इस फिल्म ने रजत जयंती मनाई। इस प्रकार कवि प्रदीप का फिल्मी दुनिया में जोरदार प्रवेश हुआ।

१९४० में उन्होंने **बंधन** फिल्म के बहुत से गाने लिखे। पुनर्मिलन फिल्म के दो गाने भी उन्होंने लिखे। बंधन के सभी गीत काफी लोकप्रिय और प्रचलित हुए। इस फिल्म ने स्वर्ण जयंती मनाई। 'चना जोर गरम', 'मनभावन लो सावन आया', 'चल चल रे नौजवान', 'अपने भैया से कैसे छिपोगे', 'हम तो अलबेले', 'पियु पियु बोल', 'रुक न सको तो', आदि गानों ने धूम मचा दी। प्रदीप गीत लिखने के साथ-साथ उनकी बंदिश भी किया करते थे। गुजराती के मारो छे मोर इस गीत के आधार पर उन्होंने पियु पियु बोल यह गाना लिखा। १९४१ में कंगन, नया संसार, झूला फिल्मों के गीत प्रदीपजी ने ही लिखे थे। झूला और नया संसार के सभी गीत उन्हीं के लिखे हुए थे। झूला के जाने किधर आज, आज मौसम सलोना, मेरे बिछड़े हुए साथी, इन गीतों को बेहद लोकप्रियता मिली।

देविका रानी की यूनिट में अमिय चक्रवर्ती थे। उन्होंने बसंत फिल्म बनाई परंतु एस. मुखर्जी द्वारा निर्मित चित्र सफल होते थे। १९४९ की किस्मत फिल्म से प्रदीप के गीत और अनिल विश्वास का संगीत घर घर गूँजने लगा। 'दूर हटो ऐ दुनिया वालों हिन्दुस्तान हमारा है' इस गाने पर तो दर्शक झूम उठते थे और टाकिज में कुर्सियों पर खड़े होकर नाचना शुरू कर देते थे। उस जमाने में यह फिल्म साढ़े तीन साल चली थी। इस फिल्म के 'धीरे-धीरे आ रे बादल', अब तेरे सिवा, पपिहारे, ऐ दुनिया बता आदि गीतों को संगीत प्रेमी अभी तक भूले नहीं हैं। देविका रानी की लोकप्रियता बढ़ती जा रही थी। प्रदीपजी जिस यूनिट में थे, उसकी सफलता उन्हें अनसही हो रही थी। अंततः प्रदीप और अन्य चौदह व्यक्ति बॉम्बे टॉकिज छोड़कर बाहर निकले। उस वक्त उनका वेतन पंद्रह सौ रुपए था। इन सभी व्यक्तियों ने फिल्मीस्तान में प्रवेश किया। १९४४ में फिल्मीस्तान ने चल चल रे नौजवान फिल्म बनाई। उस समय के नियमानुसार फिल्म की लंबाई को ग्यारह हजार फीट में सीमित करने के लिए काफी कैंची चलानी पड़ी। फिल्म फ्लॉफ रही। फिल्मीस्तान के साथ जुड़ने के बाद भी प्रदीपजी को गाने लिखने का अवसर नहीं मिला था। उन्होंने नंदलाल जयवंतलाल की चार फिल्मों के गीत मिस, कमल, बी. ए. इस तखल्लुस के साथ लिखे। वे फिल्में थीं-कादंबरी १९४०, आम्रपाली १९४५, सती तोरल १९४७ और वीरांगना १९४७। देश भक्ति पर आधारित गाने लिखने वाले प्रदीपजी ने सती तोरल में 'मेरी नई है जवानी, पुरानी चोली ना पहनू' जैसा शृंगारिक गीत लिखा। १९४९ में उन्होंने ज्ञान मुखर्जी और अमिय चक्रवर्ती के साथ मिलकर लोकमान्य प्रॉडक्शन नामक संस्था स्थापित की और गर्ल्स स्कूल नाम की फिल्म बनाई। इस फिल्म के चार गानों को अनिल विश्वास ने संगीतबद्ध किया था। इस फिल्म का

naa/D/TX-88

हार्दिक शुभकामनाएँ !

पूजा इलेक्ट्रॉनिक्स

लक्ष्मीगंज, गुना, फोन : २३२७

अधिकृत विक्रेता एवं स्टॉकिस्ट: *गोपी किचन मशीन *पोलर एवं खेतान पंखे *अपट्रॉन *टेक्सला टी.वी. *केल्वीनेटर रेफ्रिजरेटर *जेनलेक (जी.ई.सी.) *एंकर, लीडर फिटिंग्स *पूजा, देवास केबल्स *एयर कंडीशनर्स *डी. एण्ड एच., अडवानी इलेक्ट्रोड्स *वुल्फ टूल्स *टुल्लू पंप *उषा वाटर कूलर *वोल्टास फिल्टर।

कीड़ों, मच्छरों से सुरक्षा

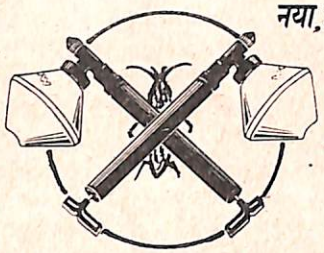

नया, प्रेशर से चलने वाला.... कॉडर स्प्रे

गरिमा

Courser

Marketing (P) Ltd.
1st Floor, Phadnis Complex,
88 M.G. Road, Near
Kothari Market. INDORE (M.P.)

भारत की हृदयस्थली

"अमरकंटक"

(शहडोल)

पधारने का स्नेहिल आमंत्रण।

विनीत:- **विशेष क्षेत्र विकास प्राधिकरण, अमरकंटक**
(शहडोल) म.प्र.

सुविधा किचन मशीन

जिन्होंने बाजार में आते ही,
शोर मचाने वाली मिक्सियों की छुट्टी कर दी!
अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का एक राष्ट्रीय उत्पादन

☐ रेटिंग - १ १/२ घंटा
☐ आर.पी.एम. - २१०००
☐ क्षमता - १.५ लीटर
☐ ४५० वाल्ट की मोटर

गरिमा

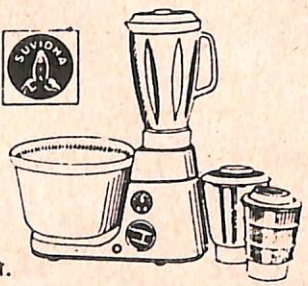

इन्दौर एवं उज्जैन क्षेत्र के वितरक

दूरदर्शन
राजवाड़ा इन्दौर ✆ 30123

समय कीमती है. सुविधा मिक्सी के साथ बचाइये.

एक सुखद अनुभव ...

रूपा
ब्रा एण्ड पेन्टीज़

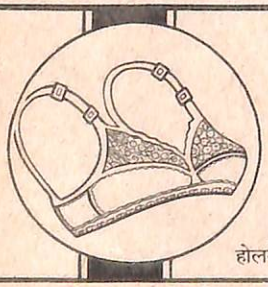

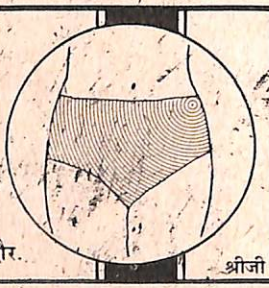

होलसेल डिपो: सुपर सेल्स एजेन्सीज़ 17, रिव्हर साइड रोड, (प्रकाश टॉकिज के पास), इन्दौर.

श्रीजी

लता द्वारा गाया गया 'कुछ शरमाते हुए..... तुम ही कहो मेरा मन' गीत बड़ा लोकप्रिय हुआ था। किंतु फिल्म असफल रही। इसमें प्रदीपजी को काफी घाटा हुआ और उन्होंने फिल्म निर्माण से स्वयं को अलग कर गीत रचना पर ही ध्यान केंद्रित किया। १९५० में प्रीत का गीत और मशाल फिल्म के गीत उन्होंने लिखे। सचिन दादा बर्मन द्वारा संगीतबद्ध किया गया तथा मन्नाडे की मधुर आवाज में गाया 'ऊपर गगन विशाल' यह गाना बहुत हिट हुआ। इसी समय सचिन दादा ने प्रदीपजी को एक आत्मीय सलाह दी, कि आप गीत लिख सकते हैं, गाते हैं, संगीतबद्ध भी कर सकते हैं। अतः संगीतकार आपसे दूरी रखने लगेंगे। यदि आपने रचना सहित गीत को लयबद्ध किया तो बड़े संगीत निर्देशक आपको आमंत्रित नहीं करेंगे। प्रदीपजी को सचिन दा की यह बात जँच गई। बैजू बावरा के गीत शुरू में प्रदीपजी ही लिखने वाले थे परंतु नौशाद ने शकील बदायूंनी से लिखवा लिए। संभव है इस घटना के पीछे सचिन दा की कही हुई बात की सत्यता छुपी हुई हो। १९५४ में सी. रामचंद्र के संगीत से सँवरी नास्तिक फिल्म का प्रदर्शन हुआ। प्रदीपजी द्वारा लिखे गए इस फिल्म के सभी गीत हिट हुए। प्रदीपजी ने इसमें पहली बार गरबा को प्रचलित किया और मेंदी ते वावी पर से उन्होंने कान्हा बजाए बाँसुरी लिखा। उनकी स्वयं की आवाज में गाया गया इस फिल्म का 'देख तेरे संसार की हालत क्या हो गई भगवान' यह गीत बेहद जनप्रिय हुआ। इसी वर्ष उन्होंने चक्रधारी, बाप बेटी, और जागृति के गीत लिखे। जागृति का आओ बच्चों तुम्हे दिखाएँ, दे दी हमें आजादी, हम लाए हैं, आदि गानों ने धूम मचा दी थी। आइना फिल्म का माँ प्यारी माँ इस गीत के आधार पर उन्होंने जागृति में चलो-चलें माँ यह गीत लिखा। जागृति का संगीत हेमंत कुमार का था। नास्तिक के गीतों ने उनकी पहचान धार्मिक रचनाकार के रूप में स्थापित की। इस 'टाइप्ड' का उन्हें लाभ और हानि दोनों हुई। १९५५ में उन्होंने वामन अवतार के लिए 'तेरे द्वार खड़ा भगवान' लिखा जिसे अविनाश व्यास ने संगीत में ढाला था। १९५६ में ललकार का एक और बसंत पंचमी तथा दशहरा के कई गाने उन्होंने लिखे। दशहरा में उनका लिखा 'दूसरों का दुखड़ा दूर करने वाले यह गीत स्वयं ने गाया। इसके संगीतकार थे एन. दत्ता। १९५७ में प्रदीपजी ने चंडी पूजा और नागमणि इन धार्मिक फिल्मों के गीत लिखे। चंडी पूजा का 'कोई लाख करे चतुराई' (संगीत-अजीत मर्चेंट) और नागमणि का 'पिंजरे के पंछी रे' (संगीत- अविनाश व्यास) को उन्होंने स्वयं सुर में ढाला। १९५८ में तलाक फिल्म में सी. रामचंद्र की धुन पर सँवारा गया। 'बिगुल बज रहा है आजादी का' यह गीत लोगों की जुबान पर छा गया। १९५९ में पैगाम, दो बहनें, स्कूल मास्टर इन फिल्मों की गीत रचना प्रदीपजी की ही थी। दो बहनें का 'मुखड़ा देख रे प्राणी' उन्होंने गाया था। १९६० में उन्होंने आँचल के गीत लिखे। इसमें सुमन कल्याणपुर का गाया गया 'ओ सांवरिया रे अपनी मीरा को भूल न जाना' और सुधीर फड़के के स्वर में गाया गया 'तू मुसीबत का मुकाबला कर ले' उल्लेखनीय था। १९६२ में चीन ने भारत पर आक्रमण किया। हिन्दी-चीनी भाई-भाई के नाम पर दगा हुआ। २९ जनवरी १९६३ को दिल्ली के लाल किले के प्राचीर पर सैनिकों की याददाश्त में राष्ट्र को समर्पित एक विशेष कार्यक्रम आयोजित किया गया। सी. रामचंद्र की अमर संगीत रचना में प्रदीप के शब्दों 'ऐ मेरे वतन के लोगों' को लता मंगेशकर ने अपनी आवाज में कुछ इस ढंग से गाया कि पंडित जवाहरलाल नेहरू की आँखों में आँसुओं की धारा फूट पड़ी। पंडितजी ने यह गीत अपने हस्ताक्षर में लिख लिया। १९६४ में वीर भीमसेन, १९६५ में शंकर सती अनुसुइया, श्रीराम-भरत मिलन, १९६६ में बलराम- श्रीकृष्ण और हर हर गंगा इन फिल्मों के गीत उन्होंने लिखे। १९६९ में संबंध के गीतों ने धूम मचाई। मुकेश की दर्द भरी आवाज में गाया गया 'चल अकेला' पूरे देश में लोकप्रिय हुआ। फिल्म का संगीत ओ.पी. नैयर का था। १९७१ में कभी धूप कभी छाँव, तुलसी विवाह, १९७२ में हरि दर्शन, १९७३ में अग्नि रेखा, बाल महाभारत, महासती सावित्री, १९७४ में हर हर महादेव, किसान और भगवान इन फिल्मों की गीत रचना उन्होंने की।

१९७५ में छोटे बजट की जय संतोषी माँ फिल्म परदे पर आई। संगीत सी. अर्जुन का था। इस फिल्म ने देश भर में धूम मचा दी। उषा मंगेशकर द्वारा स्वर बद्ध किया गया 'आरती उतारूँ रे' यह गीत देश की सीमा से बाहर भी लोकप्रिय हुआ। इसके बाद की फिल्मों के उनके गीत अधिक प्रसिद्ध नहीं हुए। १९७६ में रक्षा बंधन, बजरंगबली, १९७७ में आँख का तारा, बोलो हे चक्रधारी, १९७९ में छठ मैया की महिमा, कृष्ण-सुदामा, नागिन, सुहागन, १९८०

चल-चल रे नौजवान

फिल्म का कोई गीत देश में तूफान खड़ा कर सकता है, इस बात पर आज भले ही विश्वास न हो, लेकिन फिल्म बंधन (१९४०) के गीत 'चल-चल रे नौजवान' ने अँगरेजी हुकूमत को परेशानी में डाल दिया था। कड़े सेंसर के बावजूद कवि प्रदीप का यह गीत अपने समय में देश भर में गूँजा था। इस गीत में प्रदीप ने शब्दों का ताना बाना कुछ इस प्रकार बुना था कि देश के युवक इसे अपने मन की भाषा मानते थे। पंजाब तथा सिंध के युवकों को इस गीत ने मंत्र की तरह मोहित किया, तो उन्होंने असेम्बली में प्रस्ताव रखवा दिया कि इसे राष्ट्रीय गीत का दर्जा दिया जाए। वंदे मातरम् के स्थान पर चल-चल रे नौजवान को राष्ट्र गीत बनाने के लिए बाकायदा आंदोलन चलाया गया था। अहमदाबाद में कांग्रेस की एक महती सभा में एक बालक ने बोल दिया चल-चल रे नौजवान। इतना सुनते ही पूरी सभा इस गीत को गाने लगी। महादेव भाई देसाई ने इस गीत की उपमा उपनिषद् के मंत्र से की। बलराज साहनी उन दिनों बी.बी.सी. लंदन में थे। इस गीत को सुनकर उन्होंने लंदन से प्रसारित कर दिया। दिल्ली के मैजेस्टिक सिनेमा में परदे पर जब यह गीत खत्म हो गया तो दर्शकों ने 'वंस मोर' की इतनी जबरदस्त माँग रखी कि सिनेमा मालिक को दूसरी बार फिल्म चलाकर गीत दिखाना पड़ा। कवि प्रदीप ने बॉम्बे टॉकिज के लान में एक पेड़ की छाया तले बैठकर यह गीत रचा था। गीत की धुन बनाने के लिए सरस्वती देवी और रामचंद्र पाल कई दिनों तक सिर खपाते रहे। अशोक कुमार ने हारमोनियम उठाकर पहली पंक्ति की धुन तो बना दी, मगर आगे नहीं जा सके। आखिर में वे इस गीत को अपनी बहन सती देवी (एस. मुखर्जी की पत्नी) के पास ले गए। उन्हें संगीत का अच्छा अभ्यास था। उन्होंने कोशिश की और अशोक कुमार की पहली पंक्ति की धुन को आखिर तक ले गई। स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने बचपन में बंधन फिल्म देखी थी। उन्हें आगे चलकर फिल्म तो याद नहीं रही लेकिन चल-चल रे नौजवान गीत का जिक्र उन्होंने 'जश्ने किशनचंदर' में किया था।

में तारकनाथ, करवा चौथ, १९८१ में मंगलसूत्र, ८२ में अनमोल सितारे, गीत गंगा, सती और भगवान, श्रवणकुमार १९८३ में जयबाबा अमरनाथ, १९८५ में सामरी, वीर भीमसेन, बदला नागिन का वगैरा फिल्मों के गीत उन्होंने लिखे। उनके द्वारा गाए गए गीतों की एल.पी. रिकार्ड भी निकली है। एक विदेशी संगीत प्रेमी ने उनके धार्मिक गीतों की आधा दर्जन एल.पी. रिकार्ड बनाई है।

कवि प्रदीप हिन्दी फिल्मों के गीतकारों के इतिहास का एक स्वतंत्र अध्याय है। उन्होंने अपने गीतों में हिन्दी की मिठास और काव्य को समाहित किया। प्रासादिकता, माधुर्य, शब्द लालित्य यह उनकी विशपेता थी। उन्हें अपनी गीतों के लिए अश्लीलता का सहारा कभी नहीं लेना पड़ा। देश भक्ति, शौर्य और भक्ति इन विषयों के गीतों से उनका नाम अखंड रूप से जुड़ा रहेगा। कार्यकाल के अंतिम दौर में उनकी सारी शक्ति सिर्फ धार्मिक गीतों के बंधन में लग गई किंतु इसके लिए हिन्दी फिल्मों की प्रवृत्ति ही जिम्मेदार है। भाव मधुर और तेजपुंज गीतों के लिए ही प्रदीपजी का नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

◆◆◆

कजरा मोहब्बत वाला: एस.एच. बिहारी

संगीतकार अनिल विश्वास को अच्छा संगीत देने के अलावा अच्छे गीतकारों की भी सदा तलाश रहा करती थी। रेडियो से एक मीठी गजल सुनी, तो उसके गीतकार एस.एच. बिहारी को खोज लाए, जो एक रबर फैक्ट्री में सहायक प्रबंधक थे। बिहारी का पहला गीत एक खलनायिका ने गाया था-मैं एक छोटी सी चिंगारी हूँ, मचलती हूँ हवाओं में। यह गीत हिट हुआ। दूसरा मौका हेमंत कुमार ने दिया। फिल्म शर्त का यह गीत बेहद लोकप्रिय हुआ था-न ये चाँद होगा न तारे रहेंगे। ओ.पी. नय्यर की धुनों पर बिहारी के गीत खूब जमे और हर किसी की जबान पर चढ़े हैं। एक मुसाफिर एक हसीना, काश्मीर की कली, सावन की घटा, ये रात फिर ना आएगी, उनके गीतों से सँवरी यादगार फिल्में हैं। कजरा मोहब्बत वाला आँखों में ऐसा डाला, कन्हैया-कन्हैया पनघट पै तेरी राधा अकेली खड़ी, कहाँ से लाई हो जानेमन ये किताबी चेहरा ये गुलाबी आँखें जैसे रूमानी और सरस गीतों के लिए एस.एच. बिहारी सदैव याद किए जाएँगे।

अब राजा भए मोरे बालम: डी. एन. मधोक

फिल्मी गीतों में दिलचस्पी रखने वाला शायद ही कोई ऐसा श्रोता हो, जो गीतकार **डी.एन. मधोक** को नहीं जानता हो। अनेक सिल्वर-जुबली फिल्मों के साथ उनका नाम जुड़ा है। उनका अपना जमाना था। व्यस्तता के कारण मधोकजी टेलीफोन पर गीत लिखाया करते थे। फिल्म 'रतन' के गीत आपको याद होंगे-मिलके बिछड़ गई अँखियाँ, सावन के बादलों, आई दिवाली, अब राजा भए मोरे बालम, पीछे रहा है बचपन मेरा, तू कौनसी बदली में मेरे चाँद है आजा, मेरे लिए जहान में न चैन है न करार है, रातें न रही वो न रहे दिन वो हमारे, सुबह हुई और पंछी जागे, कदम चले आगे मन पाछे भागे-जैसे दो हजार से अधिक गीत दीनानाथ मधोक ने लिखे हैं। उनकी पहली फिल्म कमला मूवीटोन की 'राधेश्याम' थी। उसकी पटकथा भी आपने लिखी थी। गीत के साथ पटकथा लिखने का चलन आपने ही चलाया था, जिसे बाद में राजेन्द्रकृष्ण ने जारी रखा। २२ अक्टूबर १९०२ को गुजरांवाला (अब पाकिस्तान) में आपका जन्म हुआ था। प्रथम श्रेणी के पोस्टमास्टर थे उनके पिता। लाहौर से बी.ए. करने के बाद रेलवे की नौकरी की और १९३१ में

बंबई आ गए। 'थीफ ऑव बगदाद' फिल्म का उन्होंने निर्देशन भी किया था। उनके गीत-पटकथा से सँवरी फिल्मों के नाम हैं-तानसेन, सूरदास, शादी, परदेसी, नदी किनारे, शारदा, कानून, संजोग, इशारा, परवाना, कुड़माई, दासी, खानदान, जमाना, शाप मुक्ति, प्यास। रतन एवं दो दिल नामक फिल्मों का निर्माण उन्होंने किया था।

दूर पपीहा बोला, रात आधी रह गई: नेपाली

गोपालसिंह नेपाली ने बंबई की फिल्मी दुनिया में तब कदम रखा, जब बंगाल फिल्म पत्रकार संघ ने उन्हें सर्वश्रेष्ठ गीतकार के रूप में पुरस्कृत किया। ११ अगस्त १९११ को कलकत्ते में जन्मा, पढ़ा, बढ़ा यह कवि कई फिल्मों में गीत लिखकर जब मशहूर हो गया, तो पी.एल. संतोषी, पटेल, रामानंद ने उन्हें बंबई बुला लिया। फिल्मिस्तान ने

चार साल के अनुबंध की बेड़ियाँ पाँव में डाल दी। वे फिल्मों में अपनी योग्यता से आए थे, सिफारिश से नहीं। उनके आरंभिक मशहूर गीत हैं-***कभी याद करके, गली पार के, चली आना हमारे अंगना। *कह के भी न आए तुम, अब छुपने लगे तारे, दिल ले के तुम्हीं जीते, दिल ले के हमीं हारे। *दूर पपीहा बोला रात आधी रह गई, तेरी-मेरी मुलाकात बाकी रह गई।** उन्होंने लगभग पाँच दर्जन फिल्मों में गीत लिखे होंगे, जिनमें से मजदूर, सफर, लीला, गजरे, शिवरात्रि, शिवभक्त, तुलसीदास, नागपंचमी, गौरी पूजा, नागचम्पा, नरसी भगत, जय भवानी और नई राहें उल्लेखनीय हैं।

उन्होंने नजराना, सनसनी तथा खुशबू नाम से तीन फिल्में भी बनाई थीं। दिल्ली चलो नामक उनकी कविता पर फिल्मिस्तान ने समाधि नाम से हिट फिल्म भी बनाई है। फिल्मी गीत-संगीत के क्षेत्र में फैली गुटबाजी से उन्हें सख्त विरोध था। हिन्दी-उर्दू के नाम पर लोगों को अलग-अलग खानों में बाँट दिया गया था। बैजू बावरा के निर्माता प्रदीपजी से गीत लिखाना चाहते थे, मगर संगीतकार नौशाद शकील को छोड़ने को कभी राजी नहीं हुए। जबलपुर के एक मुसलमान सज्जन ने 'गजरे' फिल्म के लिए नौशाद-नेपाली की जोड़ी जमाई थी, मगर नौशाद पाँच गीत शकील से और पाँच नेपाली से लिखाने को राजी हुए थे। ऐसे में नेपालीजी अड़ गए। नौशाद पीछे के दरवाजे से खिसक लिए और अनिल विश्वास ने संगीतकार का भार संभाला। पहली बार हिंदी कवि जीत गया था। किशोर साहू के साथ नेपालीजी ने इसलिए गीत नहीं लिखे कि उन्होंने बाईस गीतकारों की बेइज्जती की थी।

हिन्दी गीतकारों में महत्वपूर्ण स्थान बनाने वाले गोपालसिंह नेपाली के प्रमुख गीत हैं-*संध्या ने सिन्दूर उड़ाया (तुलसीदास) *ओ नाग कहीं जा बसियो रे (नागपंचमी) *शमा से कोई कह दे कि तेरे रहते-रहते अंधेरा हो रहा (जय भवानी) *कहाँ जाके नैना लड़े कि हम तो रह गए खड़े के खड़े (शिवभक्त) *भगवान तेरे घर का सिंगार जा रहा है (नागपंचमी)।

तसव्वुर में लाखों दीए झिलमिलाए : साहिर

संगीत, विशेषकर फिल्मी संगीत की सफलता के लिए गायक और गीतकार दोनों का योगदान बेहद महत्वपूर्ण रहता है। सार्थक शब्दों और पुरसोज आवाज के बिना धुन बेमानी होती है। भारतीय फिल्मी संगीत की सफलता में गीतकारों की भूमिका अहम् रही है। साहिर, शकील और शैलेन्द्र की तिकड़ी ने हिन्दी फिल्मों को सदाबहार गीतों के कई शतकों से अलंकृत किया है।

साहिर को विद्रोही शायर भी कहा जाता है। पिता से तिरस्कृत हो माँ के प्यार तले अभावों से घिरी दुनिया में पले बढ़े भावुक युवक में विद्रोह के अंकुर फूट पड़ना अस्वाभाविक भी नहीं था। पूँजीपतियों और शोषकों के खिलाफ आवाज बुलंद करने वाले इस शायर ने 'विद्रोह' की खासी कीमत अदा की। आग उगलती रचनाओं के कारण उन्हें कॉलेज से निकाल दिया गया। दमन के दाँवपेंचों से अपराजित रहते हुए साहिर की रचना प्रक्रिया जारी रही और छब्बीस वर्ष की उम्र में 'तलखियाँ' शाया हो गई। समाज के विष को बरसों तक पीने के बाद स्मृतियों के कोश में बसी कड़ुआहट को शब्दों में सजा कर साहिर ने समाज को सौंप दिया–

"वो टीले पे कोई एक आँचल सा झलका,
तसव्वुर में लाखों दीए झिलमिलाए।"

उर्दू की पारंपरिक इश्क, हुस्न और विरह मिलन की कविता को साहिर ने यथार्थ की कठोर जमीन पर उतार कर खड़ा कर दिया। जोश मलीहाबादी जैसे शायर जो फिल्मों में नारी का जिक्र करते हुए "देखो मेरे जोबना का उभार" लिखा करते थे, खुद को उस वक्त बेहद बौना महसूस करने लगे, जब साहिर ने लिखा, "मैं वो फूल हूँ कि जिसको गया हर कोई मसल के, मेरी उम्र बह गई है मेरे आँसुओं में ढल के" (देवदास)।

वामपंथ की ओर साहिर का झुकाव नया दौर के इस गीत में झलकता है–

"अपना सुख भी एक है साथी,
अपना दुख भी एक ।
अपनी मंजिल सबकी मंजिल,
अपना रस्ता एक।"

'प्यासा' के प्रदर्शन के बाद तो साहिर यश और कीर्ति के शिखर पर जा पहुँचे। यह पूरी फिल्म ही साहिर की लिखी और गुरुदत्त द्वारा कही 'नज्म' लगती है।

"जाने वो कैसे लोग थे, जिनके प्यार को प्यार मिला", निजी पीड़ा को व्यक्त करने वाले शब्द थे, मगर

"जरा हिन्द के रहनुमा को बुलाओ...
ये गलियाँ ये कूचे उनको दिखाओ...
जिन्हें नाज है हिन्द पर वो कहाँ है..."

ये पंक्तियाँ एक पुरातन कुटिल सामाजिक अभिशाप के प्रति व्यवस्था के प्रति क्रूर मौन पर तीखा व्यंग्य थीं।

भोगे हुए यथार्थ को सार्थक अभिव्यक्ति देने वाली साहिर की शायरी की तीन प्रमुख विशेषताएँ हैं–अनुभव की गहरी क्षमता, मौलिक अभिव्यक्ति और शब्दों को शस्त्र में बदल देने की जादुई ताकत।

साहिर की शायरी ने फिल्म संगीत को रोमांस के कुएं से निकाल कर समाज की रोजमर्रा की समस्याओं के साथ जोड़ दिया। निराशा के अँधेरे में भटकती पीढ़ी को साहिर ने सांत्वना का संदेश दिया–

"रात के राही थक मत जाना,
सुबह की मंजिल दूर नहीं है।" (बाबला १९५२)

साहिर की शायरी में देश काल, पतित महिलाएँ और सर्वहारा वर्ग की जीत जैसे विषय विशेष रूप से मुखरित हुए हैं। उन्होंने फिल्मों में शायरी को कानूनी आवाज देकर अन्याय के खिलाफ खड़ा किया। नारी की दलित अवस्था को लेकर उन्होंने जो गीत लिखे, उन्हें सुनकर समकालीन नामी हीरोइनें साहिर के साथ अपनी तस्वीर उतरवाने में गौरव का अनुभव करती थीं। १९५७ में फिल्म 'प्यासा' बंबई के मिनर्वा सिनेमा में रिलीज हुई थी। जब परदे पर गीत–यहाँ पीर भी आ चुके हैं जवान भी–आया, तो हॉल में बैठे सारे दर्शक एकाएक खड़े हो गए और तालियाँ बजाकर पूरे समय तक गीत सुनते रहे। भारतीय सिनेमा के इतिहास की यह अनोखी घटना है।

*साहिर के यादगार गीत हैं– *ठंडी हवाएँ लहरा के आएँ (नौजवान), *तुम न जाने किस जहाँ में खो गए (सजा), *जाएँ तो जाएँ कहाँ (टैक्सी ड्रायवर), *मैंने चाँद सितारों की तमन्ना की थी (चंद्रकांता), *न तो कारवाँ की तलाश है (बरसात की रात), *आज सजन मोहे अंग लगा लो (प्यासा)।*

◆◆◆

न गंगा में डूबा: न जमुना में डूबा: अनजान

पीपरा के पतवा सरीखे मोर मनवा कि जियरा में उठत हिलोर-जैसा गीत लेकर गीतकार **अनजान** ने फिल्मी दुनिया से अपनी पहचान बढ़ाई थी। काशी विश्वविद्यालय के वाणिज्य स्नातक अनजान कद से नाटे, शरीर से गठीले रहे हैं। उनके दादा राज-ज्योतिष थे। दूसरे सदस्यों ने नौकरी या किसानी की। कवि होने का पता दूर-दूर तक नहीं था। बनारसी पान से ओठों को रंगने वाले अनजान की कविता में शृंगार-रस प्रधान है। अनजान का आगमन फिल्मों में प्रेमचन्द की कृति 'गोदान' से हुआ। उसके निर्माता त्रिलोक जेटली बनारस के थे। वहीं से जान-पहचान का सिलसिला चल पड़ा। पण्डित रविशंकर लोक धुनों को टेपांकित करने के लिए 'गोदान' के गाँव गए थे। अनजान से सम्पर्क हुआ, जो सिफारिश में बदल गई और वे बंबई आ गए। पिछले २८ - सालों में सौ फिल्मों में दो सौ के आसपास अनजान ने अपने शब्दों से श्रोताओं को परिचित कराया है। बंधन, हीरा तथा कब, क्यूँ, कहाँ तीन फिल्मों ने सिल्वर जुबली मनाई, तो अनजान की भी पूछपरख बढ़ी। गोदान तो बुरी तरह फ्लॉप रही। फिल्म डाक बंगला का गीत -'पलक हिण्डोले चढ़ी रे निंदिया' बहुत पसंद किया गया था। हेराफेरी, दो अनजाने, खून पसीना, डॉन, गंगा की सौगंध उनकी यादगार फिल्में हैं। अमिताभ की फिल्मों में गीत लिखने के मौके उनका द्वार खटखटाते आए हैं।

मजरूह सुल्तानपुरी

फिल्मों में गीत लिखने की कला को मजरूह सुल्तानपुरी कलम का कमाल मानते हैं। वह दिल का काम तो बिलकुल नहीं है, क्योंकि निर्माता-निर्देशक गीतों के बारे में कुछ भी नहीं जानते, मगर आखिरी फैसला वे ही करते हैं। उत्तर वर्षीय वामपंथी विचारधारा का यह गीतकार पिछले तिरयालीस सालों से फिल्मों में गीत लिख रहा है। मूल नाम असरार हुसैन खान है। उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ में पुलिस इंसपेक्टर पिता के घर जन्मे मजरूह ने अँगरेजी के बजाए परसियन और अरेबियन पढ़ी है। लखनऊ के यूनानी कॉलेज में तालीम प्राप्त कर एक साल तक हकीमी भी कर चुके हैं। मिस कोकाकोला फिल्म के पाँच गीत एक दिन में लिखे थे। तीन घंटे के आर्डर पर एक गीत आज भी लिख सकते हैं। फैज अहमद फैज आपके आदर्श हैं। जिगर मुरादाबादी ने प्रेरणा देकर गजलें लिखवाई थीं। १९४५ में बंबई में एक मुशायरे में गजलें सुनकर ए.आर. कारदार ने शाहजहाँ फिल्म का ऑफर दिया। के.एल. सहगल ने मजरूह की यह गजल परदे पर गाई है–कर लीजिए चलकर मेरी जन्नत के नजारे। सी.आय.डी., पेइंग गेस्ट, तुमसा नहीं देखा, सुजाता, कालापानी, बंबई का बाबू, आरपार, चलती का नाम गाड़ी, काली टोपी लाल रूमाल, फिर वही दिल लाया हूँ, अंदाज, आरजू जैसी फिल्मों में मजरूह के गीत गूँजे हैं। अच्छे-बुरे सभी प्रकार के गीत उन्होंने लिखे हैं।

कोई किसी का दीवाना ना बने

फिल्मों का मामला ही अजीब है। जब वह किसी को मालामाल करने का तय कर ले तो छप्पर फाड़कर देता है। देने वाले तब हजारों हाथ से देते हैं और लेने वाले के सिर्फ दो हाथ ही होते हैं। किंतु फिल्मी दुनिया यदि 'फैयाज' है तो वह 'मनहूस' भी है। उसकी मर्जी खफा हो जाए तो अमृत पीने वाले को पानी भी नसीब नहीं होता। तब वहाँ 'दया' दवा के लिए भी नहीं मिलती।

फिल्मी दुनिया के ये दो भिन्न रूप पी. एल. संतोषी ने बहुत नजदीक से देखे। जिस जमाने में इंसान और रुपए की कद्र हुआ करती थी, उस जमाने में सिर्फ मेट्रिक तक शिक्षित बहुगुणी और हरहुन्नरी पी. एल. संतोषी ने एक-एक फिल्म के लिए लाख-लाख रुपए गिन-गिनकर लिए। 'मारी कटारी मर जाना' जैसे दिलफेंक और 'तुम क्या जानो तुम्हारी याद में हम कितना रोए' जैसे मुलायम-तरल और आर्त गीत एकसाथ लिखने में संतोषी की कलम समर्थ थी और उनके शब्दों को शहद में डुबोने के लिए सी. रामचंद्र जैसा दिग्गज संगीतकार तथा पब्लिक को घायल करने के लिए रेहाना जैसी नटखट सौंदर्यशाली अभिनेत्री भी उपलब्ध थी। स्पष्ट ही उस जमाने में पी. एल. संतोषी की 'पाँचों अँगुलियाँ घी' में थीं। इस तिकड़ी के नाम पर तब फिल्में 'हॉटकेक' की तरह बिकती थीं और पैसों की बेशुमार बरसात होती थी। 'शहनाई', 'सरगम' 'खिड़की' फिल्में धन की खदान साबित हुईं। सौ से कम मूल्य के नोट और चिल्लर भी हुआ करती है, इसे तब संतोषी जैसे भूल गए थे। गाना सुनने संतोषी कोठे पर जाते और गाने वाली पर नोटों की बरसात करते। दो प्याली चाय का मूल्य भी वे सौ के नोट से चुकाते थे। बचे हुए पैसे वापस लेना उन्हें स्वीकार ही नहीं था। रेहाना पर संतोषी ने फूल और नोट दोनों बरसाए। शूटिंग के लिए खरीदे गए हजारों के गहने रेहाना हड़प लेती और उसके दाम संतोषी अपनी जेब से देते रहे। फिर जब संतोषी कफल्लक हो गए तो दामन झटकने की तरह रेहाना ने संतोषी को झटक दिया। एक बार तो फट से दरवाजा ही बंद कर दिया। और ये पीर रात भर देहलीज पर ही सोते रहे।

लाखों का लेनदेन करने वाले निर्देशक, लेखक और गीतकार पी. एल. संतोषी बसों की लाइन में घंटों खड़े प्रतीक्षा करते हुए देखे गए। नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि श्री साउंड स्टूडियो के कैंटिन मालिक की दया पर संतोषी दिन गुजारने लगे। एक जमाना था जब संतोषी दो-दो कारों के मालिक थे और एक समय ऐसा भी आया कि टैक्सी किराए के लिए वे यहाँ-वहाँ याचना करने लगे। किसी जमाने में अभिनेता मेहमूद संतोषी के ड्राइवर थे और किस्मत ऐसी बदली कि मेहमूद के व्यंग्य सीन लिखने के काम पर संतोषी को मेहमूद की नौकरी करनी पड़ी।

'म्युजिकल कॉमेडी' पद्धति को संतोषी ने ही लोकप्रिय बनाया। अनोखे बोलों के गीत (टिका लई कली दई-शिनशिना की बुबलाबू) की शुरूआत भी संतोषी ने की। 'बाप भला न भैया' और 'मैं हूँ एक खलासी' जैसे फड़कते गीत भी संतोषी ने ही लिखे और कोई किसी का दीवाना ना बने, महफिल में जल उठी शमा जैसे आर्त-गंभीर गीत भी संतोषी ने ही दिए। जीनत के बाद विस्मृत हुई कव्वाली को संतोषी ने खिड़की और बाद में बरसात की रात फिल्मों से पुनर्जीवित किया। उनकी फिल्म 'हम पंछी एक डाल के' को राष्ट्रपति का स्वर्णपदक मिला था। 'दिल ही तो है' यह उनकी आखिरी चर्चित फिल्म रही। किंतु उसके गीत साहिर लुधियानवी ने लिखे थे। संतोषी की उपस्थिति में ही निर्माता रवेल ने साहिर से कहा था, "यार वो संतोषी के संडे के संडे जैसा कोई फड़कता गाना लिखो।" इस हद तक संतोषी विस्मृति की गर्त में धकेले गए थे।

बड़ा जोर है सात सुरों में, बहते आँसू जाते हैं थम की सांत्वना शब्दों के माध्यम से देने वाले संतोषी थे। किस्मत हमारे साथ है, जलने वाले जला करें, ललकार कहने का जमाना भी संतोषी का था। फिर किस्मत बदल गई। जो रेहाना उनके लिए वरदान थी, वह बाद में शाप बन गई।

◆◆◆

कारवाँ गुजर गया नीरज

फिल्मों में नीरज का आना अचानक हुआ वरना वे तो अपनी कविताओं तथा कवि सम्मेलनों के मंच से पढ़ रहे थे-दुनिया से कह दो कि आज नीरज गा रहा है। ट्रेन में बैठे यात्री की तरह फिल्म से मुलाकात और गहरी दोस्ती में बदलने जैसी बात गोपालदास नीरज के साथ घटित हुई। ९ फरवरी १९६० को नीरज एक कार्यक्रम के सिलसिले में बंबई आए थे। कवि मनहर के घर एक तरुण ने प्रणाम गुरुदेव कहा। वह आर. चंद्रा थे। 'बरसात की रात' बना चुके थे। अलीगढ़ में नीरज के छात्र रह चुके थे। बस यहीं से 'नई उमर की नई फसल' के गीतों की रचना शुरू हुई और नीरज का कारवाँ अलीगढ़ से दिल्ली होता हुआ बंबई आ पहुँचा। आरंभ में नीरज को उनके स्तर के निर्माता-निर्देशक तथा संगीतकार मिलते रहे। फिल्म चा चा चा में 'पालकी बहार की' तथा 'सुबह न आई शाम न आई' लोगों की जबान पर चढ़े। देवआनंद के संपर्क में आने पर 'प्रेम पुजारी' फिल्म में नीरज का कवि महान हो गया था। फूलों के रंग और दिल की कलम से उन्होंने प्यारे-प्यारे गीत लिखे। हिन्दी कविता की शब्दावली को फिल्मी गीतों पर सोने की परत जैसा उन्होंने चढ़ाया-भँवरे की गुँजन है मेरा दिल। राजकपूर की फिल्म 'जोकर' के बाद वे लगातार पीछे हटते चले गए। बाद में उनका कारवाँ जहाँ से आया था, वहीं लौट गया। घर की खूँटी पर एक फिल्मी कोट टँगा होकर रह गया है उनका फिल्मी गीतकार।

गाए जा गीत मिलन के: शकील बदायूँनी

शकील का जन्म बदायूँ में हुआ था, इसलिए जब शायरी करने लगे, तो शकील बदायूँनी कहलाए। अलीगढ़ विश्वविद्यालय में उनकी शिक्षा पूरी हुई। यहीं पर नीरज से मुलाकात हुई। जिगर मुरादाबादी से वे काफी प्रभावित थे। मुशायरों के सिलसिले में बंबई आए, तो निर्माता-निर्देशक कारदार ने उन्हें फिल्म दर्द (१९४६) में गीत लिखने का निमंत्रण दे दिया। नौशाद की धुन पर सवार होकर उनके गीत गली-गली में गूँजने लगे-अफसाना लिख रही हूँ, दिले बेकरार का, आँखों में रंग भरकर तेरे इंतजार का। इस फिल्म से शकील-नौशाद की जोड़ी जमती चली गई। दीदार, बाबुल, मेला, आन, मदर इंडिया, बैजू बावरा, मुगले आजम और मेरे मेहबूब के गीतों को कोई भला कैसे भूल सकता है।

शकील के साथ सबसे बड़ी कमजोरी यह रही कि उन्होंने नाम तो खूब कमाया, दाम कमाना भूल गए। चौदहवीं का चाँद हो या माहताब हो गीत (१९६०) के श्रेष्ठ गीतकार के रूप में उन्हें फिल्मफेअर पुरस्कार मिला। १९६१ में घराना (संगीत-रवि) १९६२ में बीस साल बाद (संगीत हेमंतकुमार) के लिए भी उन्हें यही अवार्ड मिला। किसी गीतकार ने लगातार तीन साल तक फिल्मफेअर अवार्ड आज तक नहीं जीते हैं। जिन्दगी के हर रंग को उन्होंने अपने गीतों में शब्दों से उभारा है। गाए जा गीत मिलन के, नसीब दर पे तेरे आजमाने आया हूँ, ओ दूर के मुसाफिर हमको भी साथ ले ले रे, अगर ये दुनिया चमन होती, तो वीराने कहाँ जाते, दो हंसों का जोड़ा बिछड़ गया रे, दूर कोई गाए धुन ये सुनाए, मेरे मेहबूब तुझे मेरी मुहब्बत की कसम-जैसे गीत जब तक बजते रहेंगे, शकील याद आते रहेंगे। उन्हें गजल लिखने का काफी शौक था। हिन्दी में भी उनके छः काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं। १९७० में उनका निधन हो गया।

तुम गगन के चन्द्रमा हो पं. भरत व्यास

पंडित भरत व्यास फिल्मों में निर्देशन के इरादे से गए थे मगर गीतकार बना दिए गए। रंगीला राजस्थान नाटक के निर्देशन एवं प्रस्तुति के दौरान उनका संपर्क ताराचंद बड़जात्या से हुआ। उन्होंने फिल्म चंद्रलेखा के गीत लिखने उन्हें मद्रास भिजवा दिया। फिल्म हिट हुई और पंडितजी सुपर-हिट। वैसे सबसे पहले उन्होंने फिल्म 'दुहाई' के लिए गीत रचे थे। 'मन की जीत' तथा 'प्रेम संगीत' के साथ राजस्थानी फिल्मों में भी गीत लिखे। पंडितजी स्वयं गाते भी थे। 'मन की जीत' में गाया उनका यह गाना बेहद लोकप्रिय हुआ था- **छुप-छुप के न देखो भँवरजी हमको नजर लग जाएगी।** रामराज्य, परिणीता, गूँज उठी शहनाई, तूफान और दिया, नवरंग, रानी रूपमती जैसी फिल्मों में उनके गीतों का कमाल सुनने को मिलता है। हिन्दी के कट्टर अनुयायी थे। फिल्मी दुनिया में फैले हुए उर्दू के माहौल से खिन्न थे। शांताराम की फिल्म 'दो आँखें बारह हाथ' में उन्होंने लिखा था-**'ऐ मालिक तेरे बंदे हम।'** यह गीत आगे चलकर पंजाब राज्य की स्कूलों में प्रार्थना गीत बन गया। नवरंग फिल्म तो पंडितजी की कविताई के कारण ही सफल रही थी। जनम-जनम के फेरे फिल्म का उनका यह गीत-जरा सामने तो आओ छलिए-गली-गली में गूँजा था। आ लौट के आजा मेरे मीत (रानी रूपमती) ने तो संगीतकार एस.एन. त्रिपाठी को पहली पंक्ति के संगीतकारों में खड़ा कर दिया था। तुम गगन के चंद्रमा हो-अपने इसी गीत की तर्ज जैसे भरत व्यास हुए हैं।

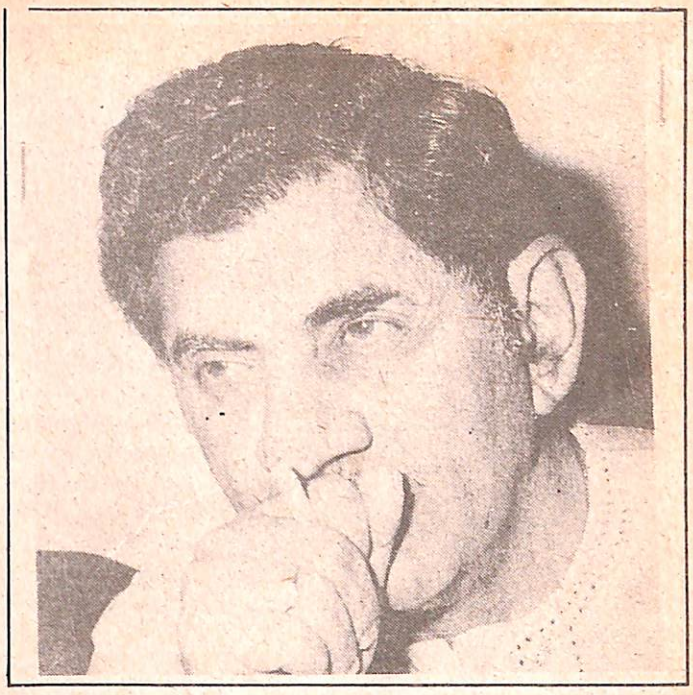

चिंगारी कोई भड़के: आनंद बक्षी

हिंदी फिल्मों के गीतकारों में आनंद बक्षी का नाम एक अजूबे की तरह इतिहास में अंकित रहेगा। उम्र के २७वें मोड़ पर फिल्मी दुनिया में गीतकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए बक्षीजी ने २५ साल की अवधि में २ हजार ५०० फिल्मी गीत लिख डाले थे। उनकी कलम अभी खामोश नहीं हुई है और गीतों की वर्षा अभी चालू है। प्रतिवर्ष बीस फिल्मों के लिए लगभग एक सैकड़ा गीत लिखने वाले इस गीतकार का कहना है कि वे खुद को 'महाकवि' तो क्या 'कवि' भी नहीं मानते तथा सिर्फ गीतकार ही बने रहना चाहते हैं। साहिर लुधियानवी व राम-प्रकाश 'अश्क' को प्रेरणा पुरुष स्वीकार करने वाले बक्षीजी को फिल्म उद्योग में पाँव जमाने के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ा था। भारतीय सेना की नौकरी छोड़कर १९५५ में जब वे पहली बार बंबई पहुँचे तो असफलता और ठोकरों के सिवाय कुछ हाथ नहीं लगा। वापसी विवशता बन गई और सेना की नौकरी आसरा बनी। असफलता अन्दर के गीतकार को तोड़ नहीं पाई और १९५७ में दुबारा उन्होंने खुद को बंबई में पाया। पहली बार सफलता ने उनका हाथ 'मेंहदी लगी मेरे हाथ' में चूमा इसके बाद 'जब-जब फूल खिले' और 'मिलन' में वे खिलकर सफलता के साथ मिल गए। 'आराधना' के गीतों की सफलता ने उन्हें शीर्ष पर स्थापित कर दिया। सफलता ने आनंद बक्षी को यथार्थ की धरती से उठाकर दंभ के आकाश में नहीं पहुँचाया। वे अपनी सीमाएँ, अपनी कमियाँ और अपनी विवशताओं को पहचानते हैं। खुद को कवि होने से नकारते हुए वे कहते हैं कि 'कविता' भावनाओं से उपजती है, लेकिन फिल्मी गीतकार को सिचुएशन के मुताबिक गीत तैयार करना होता है। यदि वह कवि की तरह 'भाव' के आगमन और मंथन की प्रतीक्षा करे तो शायद एक भी गीत नहीं लिख पाएगा। अपने गीतों की शब्दावली पर 'चालू' का लेबल लगाए जाने का जिक्र करते हुए वे कहते हैं कि जिन चरित्रों पर इन गीतों को फिल्माया जाता है वे चरित्र मामूली तबके के होते हैं तथा चालू भाषा ही इस्तेमाल करते हैं।

अपने गीतों की निष्पक्ष विवेचना करते हुए वे कहते हैं कि जो गीत शास्त्रीय संगीत या लोक धुनों पर आधारित हैं वे ही स्थाई रहेंगे बाकी सब भुला दिए जाएँगे। उन्हीं के शब्दों में "यह सब बरसाती मकान है बरसात के आते ही ढह जाएँगे। इनमें पक्के मकान बहुत कम हैं।" पक्के मकानों की श्रेणी में वे अमर प्रेम का गीत, 'चिंगारी कोई भड़के' तथा मिलन का 'सावन का महीना' मानते हैं। उन्हें संगीतकारों की नई पीढ़ी से यही शिकायत है कि उसने शास्त्रीय संगीत और लोक संगीत को पूरी तौर पर बिसार दिया है। एस.डी. बर्मन, मदन मोहन और लक्ष्मी-प्यारे के बाद की नस्ल ने पश्चिमी संगीत को ही महत्व दिया। वे मानते हैं कि पश्चिमी संगीत में बिकने की क्षमता ज्यादा है पर इस क्षमता के साथ स्थायित्व का अभाव है।

आनंद बक्षी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे फिल्मी गीतकार के रूप में ही विकसित हुए। उन्होंने सिर्फ फिल्मी गीत ही लिखे तथा फिल्म उद्योग में सफल गीतकार के रूप में रजत जयंती मना चुके हैं।

ठंडी-ठंडी रेत में खजूर के तले

दुनिया में गरीबों को आराम नहीं मिलता यह गीत सन् १९४० में कमर जलालाबादी ने लिखा था। फिल्म थी जमींदार। निर्माता थे पंचोली स्टुडियो और संगीतकार गुलाम हैदर। इस गीत की भारी लोकप्रियता देखकर प्रभात (पुणे) वालों ने उन्हें बुलावा भेजा। चाँद, राम शास्त्री और गोकुल फिल्म के गीत-संवाद उन्होंने लिखे। इन तीनों फिल्मों ने रजत जयंती मनाई। कमर जलालाबादी को बंबई का न्यौता मिला। एक दिल के टुकड़े हजार हुए (प्यार की जीत), दो पास रहे या दूर रहें (बड़ी बहन) जैसे गीतों ने कमर की देश भर में धूम मचा दी। इसके बाद फिल्मिस्तान से जुड़े और आठ फिल्मों ने एक कतार में सिल्वर जुबली मनाई। शहीद, शबनम, सिंदूर, मुनीमजी, गूँज उठी शहनाई, हरियाली और रास्ता उनके खाते की चमचमाती फिल्में हैं। फिल्म शबनम संगीतकार सचिनदा की पहली हिट फिल्म थी। फिल्म साजन का गीत- ठंडी-ठंडी रेत में खजूर के तले बहुत लोकप्रिय हुआ था। 'हिमालय की गोद में' में कमर ने एक गीत लिखा था- मैं तो एक ख्वाब हूँ-जिसे संगीत निर्देशकों की एसोसिएशन ने पुरस्कृत किया था। मनोज कुमार की फिल्म उपकार का गीत- दीवानों से यह मत पूछो तथा जीवन संग्राम फिल्म की पटकथा-संवाद उन्होंने गुलजार के साथ लिखे थे। चार दशकों से अधिक कमर जलालाबादी का सीधा संबंध फिल्मी दुनिया से रहा और उन्होंने सौ से अधिक फिल्मों के लिए लिखा। उनका विश्वास समय के साथ चलने में रहा है। जब फिल्मों पर हिंसा हावी होती गई तो वे एक-एक कदम पीछे हटते चले गए, क्योंकि गालिब की गजल को किसी अपराधी से तो नहीं गवाया जा सकता!

पाँच हजार गुलाबों की शराब!

नाम हमने सुना तेरा जिस दम
मर चले थे मगर जी उठे हम
बेरुखी से मगर तूने मारा
तू है कैसा मसीहा हमारा।

फिल्म गीतकार इंदीवर ने यह गीत लिखकर सुनील दत्त से पाँच हजार गुलाबों की शराब की शर्त जीती थी। यह शराब सुनील दत्त को महाराजा जयपुर ने भेंट में दी थी। बाद में यह गीत फिल्म दर्रिदा में सुनील दत्त पर फिल्माया गया, जिसकी धुनें कल्याणजी-आनंदजी ने बनाई थी।

इक तारा बोले: वर्मा मलिक

लगे पचासी झटके-गीत जब **वर्मा मलिक** ने लिखा था, तो एक तरह से तमाम श्रोता उनसे नाराज हो गए थे, क्योंकि वह जमाना पचासी झटकों का नहीं था। पंजाबी फिल्मों में गीत लिखकर अपना घर बनाने वाले वर्मा मलिक जब हिन्दी फिल्मों में किस्मत आजमाने आए थे, तो घर के सारे बर्तन बिकने की नौबत आ गई थी। गीत लिखकर जीवन जीना मुश्किल होने लगा, तो उनके दिमाग में विचार आया कि रेडीमेड कपड़ों का धंधा शुरू किया जाए। ऐसे में उनकी मुलाकात मनोज कुमार से हुई, जो पंजाबी गीतों के कारण उन्हें जानते थे। उन्होंने 'इक तारा बोले' गीत अपनी फिल्म उपकार के लिए ले लिया था। किसी कारणवश यह गीत उपकार के बदले 'यादगार' फिल्म में गया। इसके बाद तो इकतारे में सफलता के कई तार जुड़ गए और वर्मा मलिक हिट-गीतकार हो गए। फिल्म पहचान के गीत-'जय बोलो बेईमान की' के लिए आपको फिल्म फेयर पुरस्कार मिला है। सावन भादो, अनहोनी, धर्मा, कसौटी, विक्टोरिया नं. २०३, मैं वो नहीं, नागिन, चोरी मेरा काम, रोटी, कपड़ा और मकान, संतान, कसम खून की, उनकी उल्लेखनीय फिल्में हैं।

झूठ बोले कौआ काटे: विट्ठलभाई पटेल

मध्यप्रदेश के सागरवासी **विट्ठलभाई पटेल** ने राजकपूर की फिल्म 'बॉबी' से फिल्म जगत में धमाके के साथ-झूठ बोले कौआ काटे- प्रवेश किया था। इसके साथ संन्यासी, दो झूठ, पापी पेट का सवाल, क्रोध, फाँसी और सत्यम् शिवम् सुन्दरम् में उनके गीत सुनाई दिए। राजकपूर के सम्पर्क में विट्ठलभाई उस समय आए, जब वे तीसरी कसम फिल्म की शूटिंग के सिलसिले में सागर आए थे। विट्ठलभाई ने यूनिट के कलाकारों का सम्मान समारोह आयोजित किया था। उस कार्यक्रम में उन्होंने झूठ बोले कौआ काटे रचना सुनाई थी, जो राजकपूर को बेहद पसंद आई। इस रचना को पहले जोकर तथा कल आज और कल फिल्म में रखने की कोशिश की गई, लेकिन उपयुक्त सिचुएशन न मिलने से फिर बॉबी में इस्तेमाल किया गया और सुपरहिट साबित हुआ।

शौकिया तौर पर गीत लिखने वाले विट्ठलभाई का स्वतंत्र व्यवसाय है। राजनीति में गहरी दिलचस्पी है। सागर नगरपालिका की अध्यक्षता से अपना राजनीतिक जीवन आरम्भ कर प्रदेश शासन में कई बार मंत्रीपद का दायित्व निभा चुके हैं।

◆◆◆

बंबई से आया मेरा दोस्त: शैली शैलेन्द्र

शैली शैलेन्द्र और कोई नहीं होकर, गीतकार शैलेन्द्र का पुत्र है। शैलेन्द्र ने जीवन को निकट से देखकर भोगा था। इन्होंने सिर्फ देखा है। इसलिए गीतों में वह दर्द नहीं आ पाया। फिल्म 'आपकी खातिर' में 'बंबई से आया मेरा दोस्त' गाना लिखा। लोकप्रिय हुआ, तो शैली का नाम चल पड़ा। राजकपूर की फिल्म मेरा नाम जोकर के एक गीत-जीना यहाँ मरना यहाँ-का मुखड़ा लिखकर शैलेन्द्र चल बसे थे। शैली, जिसका असली नाम हेमंत और घर का नाम बंटू है, ने राज अंकल से गीत पूरा करने की जिद्द की। राज साब बच्चे का दिल ना टूटे, इस अंदाज में प्रोत्साहन देते रहे। दो-तीन दिन की मेहनत के बाद शैली ने लिखा-ये मेरा गीत जीवन संगीत, कल भी कोई दुहराएगा। इस कदर गीत पूरा हुआ। पिता की मौत के बाद शैली को कवि बनने की धुन सवार हुई। इसके पहले तो वह 'सारा आकाश, तुम्हारा कल्लू' और 'बालिका वधू' में अभिनय कर चुका था। 'खेल-खेल में' फिल्म की कहानी लिखी थी। विजय आनंद की फिल्म 'जान हाजिर है' के सभी गीत लिखे। कल, आज और कल फिल्म का यह गीत-'जब हम होंगे साठ साल के और तुम होगी पचपन की' शैली की कल्पनाशीलता का उदाहरण है। आज तो फिल्मों में से गीतकार की जगह छीनकर 'फाइट-मास्टर' ने ले ली है। ऐसे में कोई भी 'शैली' भला कैसे सफल हो सकता है।

एक प्यार का नगमा है.... संतोषानंद

कभी-कभी सफलता दबे पाँव आने के बजाए दरवाजे पर दस्तक देकर आती है। मूलतः हिन्दी के कवि संतोषानंद को फिल्म गीतकार बनने पर ऐसा ही अनुभव हुआ। कम गीत लिखकर ज्यादा नाम और इनाम उन्हें मिले हैं। मनोज कुमार की फिल्म पूरब पश्चिम में उन्होंने पहली बार गीत लिखा था—पुरवा सुहानी आई रे। इसके बाद फिल्म 'शोर' बनी तो उन्होंने चटखारे लेते हुए लिखा—जरा सा उसने छेड़ा तो उसने मचा दिया शोर। इस गीत का बहुत शोर मचा हालाँकि इसी फिल्म में उन्होंने एक गंभीर गीत भी लिखा था—एक प्यार का नगमा है। मनोज कुमार के साथ संतोषानंद की ट्यून ऐसी जमी कि फिल्म 'रोटी कपड़ा और मकान' के लिए उन्होंने दो गीत लिखे और दोनों गीतों को फिल्म फेयर अवार्ड मिले। मैं ना भूलूँगा के लिए उन्हें सर्वोत्तम गीतकार घोषित किया गया, तो दूसरे गीत—और नहीं बस और नहीं, के लिए गायक महेन्द्र कपूर सर्वश्रेष्ठ ठहराए गए। यह अवार्ड लेते समय उन्होंने ठहाका लगाते हुए कहा था कि-भाई अपना रिजल्ट तो सेंट-परसेंट रहा। कवि सम्मेलनों में भी संतोषानंद का आनंद खूब जमता है। उनके पिता भी अपने जमाने के मशहूर शायर थे। फिल्म गीतों के क्षेत्र में सफलता के लिए उनकी मान्यता है कि मौलिकता, सिचुएशन के साथ न्याय और संगीतकार के साथ ट्यून की पटरी एकदम से फिट बैठना चाहिए।

◆◆◆

बसंती हुए सारे सपने: योगेश

ट्रक या लारियों के पीछे न जाने किन अज्ञात कवियों की कविता के मुखड़े लिखे होते हैं, जो बरबस सबका ध्यान खींच लेते हैं। इन मुखड़ों में अपना मुखड़ा जमा कर कोई फिल्म गीतकार बन सकता है, सुनने में यह बात भले ही अटपटी लगे, लेकिन योगेश ने अपनी कविताई का श्रीगणेश ऐसे ही किया है।

ये दिन क्या आए
लगे फूल हँसने
देखो बसंती बसंती
हुए सारे मेरे सपने

बासु चटर्जी की फिल्म 'छोटी सी बात' के लिए योगेश ने यह गीत लिखा था जिसे सलिल चौधरी ने मीठी धुनें दी और मुकेश ने गाया था। इसके भी पहले १९६३ में 'सखी रोबिन' फिल्म के लिए योगेश ने पहला गीत लिखा था। १९६९ में सलिल दा के साथ जोड़ी जमी। 'आनंद' फिल्म ने योगेश की सफलता के द्वार खोल दिए। आनंद का आनंद अधिक दिनों तक नहीं रह पाया क्योंकि बाद की फिल्में—अन्नदाता, अनोखा दान, मेरे भैया, उस पार, मंजिलें और भी हैं—पिटती चली गईं। मजाक, मंजिल, हीरे की चोरी (राहुल देव बर्मन), मीसा (मदन मोहन), बेशरम (कल्याणजी आनंदजी), यास्मिन (बासु मनोहारी), अभिसारिका, आनंद महल (सलिल चौधरी) शोला और शबनम (लक्ष्मीकांत प्यारेलाल) योगेश के गीतों से सँवरी अन्य फिल्में हैं। आज तो हालत यह है कि गीतकार, संगीतकार, गायक सब ही गर्दिश में हैं, ऐसे में योगेश भला क्या कर सकते हैं?

इन्दीवर

कस्मे-वादे प्यार-वफा: इन्दीवर

कर दे मकान खाली, अरे किराएदार कर दे मकान खाली-यह गीत अक्टोबर १९४२ में गीतकार **इन्दीवर** ने लिखा था और अँगरेज हुकूमत ने गिरफ्तार कर एक साल की सजा दे दी थी। आजादी के आंदोलन का इतना जुनून इन्दीवर पर सवार था कि उसने अपने दाएँ हाथ पर **आजाद** शब्द गुदवा लिया था। हालाँकि वे एक जमींदार परिवार में जन्मे थे।

इन्दीवर का पूरा नाम श्यामलाल राय है। यह नाम भी उनके हाथ पर एस.एल.राय नाम से गुदा हुआ है। फिल्मी गीतकारों तथा 'तुकोजीरावों' (तुक मिलाने वाले) की भीड़ में इन्दीवर अकेला नाम है, जिसने चलन से हटकर अपने गीत लिखे हैं। फिल्म **मल्हार** (१९५०) में उन्होंने ही लिखा था-बड़े अरमानों से रखा है बलम तेरी कसम, जो आज भी सदाबहार है। यह गीत लिखकर वे

ब्रजेन्द्र गौड़

साहित्य में लौट गए। यह कसम खाकर कि सामंती मनोवृत्ति के संगीतकारों के साथ काम नहीं करना है। इसके चौदह साल बाद वे लौटे और फिल्म दूल्हा- दुल्हन के लिए लिखा। इन्दीवर यह बात खुले मन से स्वीकार करते हैं कि उनके लिखे गीतों को सही धुनें नहीं मिल पाती हैं। पहले धुन बन जाए, तो अच्छे शब्द आसानी से खोजे जा सकते हैं, लेकिन हमेशा यह सम्भव नहीं होता और इसी वजह से गीतों का स्तर गिरता जा रहा है।फिल्म **अमानुष** के गीत लिखकर उन्हें आत्मसंतोष मिला है। इन्दीवर ने अब तक लगभग सौ फिल्मों में चार सौ के आसपास गाने लिखे हैं। प्रदीप, शैलेन्द्र तथा साहिर उनके मनपसंद गीतकार हैं। फिल्मी गीतों के जरिए सामाजिक चेतना जगाना उन्हें पसन्द है। पूरब-पश्चिम फिल्म का गीत-कोई जब तुम्हारा हृदय तोड़ दे-उन्हें बेहद पसन्द है। आजकल अपने स्तर से नीचे उतरकर भी वे गीत लिख रहे हैं।

लहरों से पूछ लो: ब्रजेन्द्र गौड़

स्वर्गीय **ब्रजेन्द्र गौड़** को फिल्मों में लोग गीतकार की बजाए संवाद लेखक हैसियत से ज्यादा जानते हैं। अमृतलाल नागर और मोतीलाल के निमंत्रण पर वे बंबई की मायानगरी में किस्मत आजमाने आए। पहली बार संवाद लिखे, तो उन्हें लगा फिल्मों के लिए लिखना बड़ी टेढ़ी खीर है। 'सावन' फिल्म के संवादों ने हौले से उन्हें सलाह दी कि गीत क्यों नहीं लिखते। और ब्रजेंद्र गौड़ गीत लिखने लगे। फिल्म पनिहारी का गीत-सोलह सिंगार मैं सजाऊँगी-लिखा। बड़ा लोकप्रिय हुआ। उन दिनों 'पिया' और 'साजन' का जमाना था। रत्नावली, वो दोनों में उन्होंने सात गीत लिखे। अमृतलाल नागर की कथा पर आधारित 'गुँजन' के सभी गीत उन्होंने लिखे, जिसे नलिनी जयवंत ने गाया था-किसका साथ निभाऊँ? एक ओर ब्रजेंद्र गौड़ शुद्ध, साहित्यिक कविताई को अपने गीतों का आधार बना रहे थे, तो दूसरी ओर 'एक दिल के टुकड़े हजार हुए' या 'आना मेरी जान संडे के संडे' जैसे गीत लिखे जा रहे थे। समझौते की खातिर उन्होंने भी लिखा-देखो-देखो गड़बड़ घोटाला, दाल में है कुछ काला। फिल्म 'शमशीर' में यह गीत था। आठ में से सात गीतों को बुरी तरह काटपीट दिया गया था। फिल्म 'काफिला' के ये गीत यदाकदा आज भी रेडियो पर बजते हैं-* वे मेरी तरफ यूँ चले आ रहे हैं। *लहरों से पूछ लो। फिल्म मुकद्दर एवं कस्तूरी में भी ब्रजेंद्र गौड़ के गीत लोकप्रिय हुए थे। निम्मी ने कस्तूरी में यादगार भूमिका निभाई थी।

हर तरफ आग है दामन को बचाएँ कैसे

असली जिंदगी में जसवंत राय को जब उर्दू शायरी का शौक सवार हुआ, तो वे नक्श लायलपुरी बन गए। प्रचार से दूर और काम माँगने में शरमाने वाले नक्श को न हिंदुओं ने आगे बढ़ाया और न मुसलमानों ने प्रोत्साहन दिया। १९५२ में फिल्म 'जग्गू' से नक्श लायलपुरी फिल्म गीतकार बने हैं। उल्फत में जमाने की हर रस्म को ठुकराओ (कॉलगर्ल), कहाँ तक नाम गिनवाएँ सभी ने हमको लूटा है (प्रभात), बदरा छाये रे कारे कारे कजरारे (मान जाइए), कई सदियों से कई जन्मों से (मिलाप), मैं तो हर मोड़ पर दूँगा तुझको सदा (चेतना) जैसे गीतों ने नक्श लायलपुरी को उन श्रोताओं में स्थाई रूप से लोकप्रिय बनाया है, जो हमेशा सर्वोत्तम तलाशते हैं। फिल्म 'दिल की राहें' में मदन मोहन के संगीत से सँवरा उनका यह गीत लता की आवाज में आज भी मन के गहरे कोने को छू जाता है— रस्मे उल्फत को निभाएँ, तो निभाएँ कैसे, हर तरफ आग है दामन को बचाएँ कैसे। नक्श की अन्य उल्लेखनीय फिल्में हैं— पापी, यारी-दोस्ती, बदला और बलिदान, प्यार की सौगंध, कामशास्त्र आदि।

वही चाँदनी, वही आसमाँ

एक जमाना था जब फिल्मों में गीत या संवाद लिखना हो तो लेखक को अपने नाम के पहले पंडित शब्द लगाना अनिवार्य होता था। पंडित फानी इसी क्रम के एक चमकदार तारे हैं। उन्होंने अपने तीस साल के फिल्मी जीवन में पचास से अधिक फिल्मों के गीत/संवाद/कहानी लिखी हैं। स्टंट/सोशल/पौराणिक कथानक में से किसी भी आधार पर फिल्म बन रही हो, फौरन पंडित फानी को याद किया जाता था। वाडिया फिल्म्स की अमर राज फिल्म इन्होंने ही लिखी थी। पौराणिक फिल्मों में भगवान श्रीकृष्ण, गणेश विवाह, महासती मदालसा तथा नल-दमयंती की कहानी पंडित फानी की कलम से निकली है। सामाजिक फिल्मों में माँ-बाप की लाज, आईना, नन्हे-मुन्ने, धर्म पत्नी, अपनी इज्जत, रिश्ता, कीर्ति, घरबार का श्रेय इनके खाते में दर्ज है। कीर्ति फिल्म पर ही बाद में 'शारदा' नामक मशहूर फिल्म बनी थी। पंडित फानी के गीतों को संगीतकार बुलो सी. रानी, के. दत्ता, जमाल सेन जैसे संगीतकारों ने अपनी मीठी धुनों में बाँधकर अमर किया है। फिल्म 'रिश्ता' का यह गीत वही चाँदनी है, वही आसमाँ है, बहारे वही हैं, वही गुलिस्तां है- जब कभी रेडियो पर बजता है तो के. दत्ता की धुन तथा तलत महमूद के स्वर याद आ जाते हैं।

गीत गाता हूँ मैं: देव कोहली

सौ-पचास गीत लिखने से गीतकार महान होता है या उसे सफलता मिलती है, ऐसी बात नहीं है। एक-दो गीतों के बल पर भी आप श्रोताओं की दुनिया फतह कर सकते हैं। देव कोहली का अनुभव रहा है कि वे उन लफ्जों की तलाश में रहते हैं, जो खूबसूरत दिखाई दें और सुनाई दें। उन्होंने बहुत कम गीत लिखे हैं मगर काफी पसंद किए गए। श्रोताओं की प्रशंसाओं को वे अपना प्रमाण-पत्र मानते हैं। मनोज कुमार की फिल्म क्रांति में उन्होंने अठारह अंतरे का लंबा गीत लिखा था। फिल्म लाल पत्थर में 'गीत गाता हूँ मैं' लिखकर वे लाइम लाइट में आए थे। खून-खून फिल्म में उन्होंने लिखा था— माटी के पलते दीपक की जोत तो एक दिन बुझ जानी थी। इसे भी श्रोताओं ने काफी पसंद किया। गायक मुकेश ने फिल्म जीवन रेखा में देव कोहली के इस गीत— न अपना था जो कल गुजरा— को गाकर लोकप्रिय बनाया था। सलाखें, रामभरोसे, पत्थर के लोग, डिम्पल, बादल और बिजली, दम मारो दम जैसी फिल्मों में देव कोहली के गीत हैं।

शुभम्

दिन की शुरुआत शुभम् से कीजिए
शुभम् चंदन, मोगरा दरबार अगरबत्तियाँ
डिस्ट्रीब्यूटर्स **गोपीचंद बद्रीलाल अग्रवाल**
४९७, जवाहर मार्ग, इंदौर * फोन : ३५२०९

कलर फिल्म प्रोसेसिंग/ कलर प्रिंटस्
के लिए शहर के श्रेष्ठ कलर फोटो प्रोसेसिंग केंद्र
कलर-वे-फोटो लेब
११, सिख मोहल्ला, इंदौर-७ फोन--२११५२

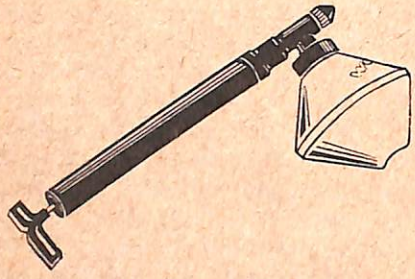

अब टीन का पंप भूल जाइये,

घरों में फिनिट - बेगान आदि छिड़कने या बागवानी में दवाई छिड़कने के लिये लाइये नया-आसान-लगातार-प्रेशर से' चलने वाला....

कंडर स्प्रे

गरिमा

Courser
Marketing (P) Ltd.
1st Floor, Phadnis Complex,
88 M.G. Road, Near
Kothari Market. INDORE (M.P.)

PAPER HOUSE

PAPER & BOARD MERCHANTS

Whole Sellers

★M/s. The Orient Paper & Industries Ltd.

★M/s. The Sirpur Paper Mills Ltd.

★M/s. Shree Vindhya Paper Mills Ltd.

H. O. :
4, NAYAPURA,
INDORE-3.

Tele: 37171-Shop
64856-Resi.

Branch :
347, JAWAHAR MARG,
INDORE-2.

नैनों में दरपन है: माया गोविन्द

फिल्मों में गीत लिखने के लिए जब पुरुष गीतकारों को काफी पापड़ बेलना पड़ते हैं, ऐसे में महिला-गीतकार के लिए सफलता की बात सोचना टेढ़ी खीर है। हिन्दी कवि सम्मेलनों के मंच से सफल कविता-पाठ करने वाली **माया गोविन्द** की कविताएँ लखनऊ के मुशायरे में भारतभूषण तथा आर. चन्द्रा ने सुनी, तो उन्हें अपनी दो फिल्मों के लिए अनुबंधित कर लिया। सबसे पहले 'जलते बदन' फिल्म में गीत लिखे। फिल्म ही पिट गई, फिर भला गीतकार कैसे चमकता। 'आरोप' फिल्म के गाने-नैनों में दरपन है- ने सफलता एवं लोकप्रियता दिलाई। कैद, आफत, अलबेली, हीरा और पत्थर, कशमकश, सावन को आने दो, रजिया सुल्तान उनकी उल्लेखनीय फिल्में हैं। उन्होंने अपने पति के साथ मिलकर एक फिल्म भी बनाई थी और अभिनय भी किया था। मगर सारा मामला 'साँप पिटारे हाथ' होकर रह गया। माया गोविन्द बिंदास किस्म की महिला होने के बावजूद यह शिकायत करती हैं कि किसी स्त्री के लिए फिल्म में गीत लिखना बड़ा कठिन काम है, क्योंकि संगीतकार आधी रात तक महफिल जमाने के बाद धुन बनाने के लिए हारमोनियम उठाता है। शायद यही बात ध्यान में रखकर उन्होंने लिखा था-आली मैं तो हार गई अँखियन के खेल में।

◆◆◆

कौन आया मेरे मन के द्वारे: राजेन्द्र कृष्ण

सुनो-सुनो ए दुनिया वालों, बापू की ये अमर कहानी-यह गीत लिखकर गीतकार **राजेन्द्र कृष्ण** अमर हो गए और इसे गाकर मोहम्मद रफी। ६ जून १९१९ को शिमला में जन्मे राजेन्द्र कृष्ण अपने कवि जीवन में विनम्र, मृदुभाषी और मिलनसार बने रहे। कक्षा आठवीं से ही कविता लिखने का चस्का लग गया। लेकिन नगर पालिका में क्लर्की करना पड़ी। इस दौरान (१९३५-४२) उन्हें अच्छे-अच्छे कवि सम्मेलनों में जाने का मौका मिला। शायरों से जान-पहचान बढ़ी, तो कविता में निखार आया। फिराक गोरखपुरी और अहसान दानिश का वे आभार मानते थे, क्योंकि उनकी शायरी ने प्रभावित किया था। उर्दू शायरी समझने के लिए फैज तथा फिराक को पढ़ना जरूरी मानते थे। हिन्दी कविता की बारीकी जानने के लिए उनका सुझाव था कि पंत तथा निराला को पढ़ना चाहिए।

राजेन्द्र कृष्ण ने बंबई आने से पहले दुनिया भर का साहित्य पढ़ लिया था। दिल्ली और पंजाब के अखबारों में जन्माष्टमी परिशिष्ट छपते, तो कृष्ण के बारे में कविता भिजवाते रहते थे। यही वजह रही है कि उन्होंने **'बृन्दावन का कृष्ण कन्हैया सबकी आँखों का तारा'** अथवा **'बड़ी देर भई नंदलाला तेरी राह तके बृजबाला'** या फिर जन्माष्टमी का सबसे अधिक लोकप्रिय गीत-**गोविन्दा आला रे** फिल्मों में लिखा और नाम कमाया। १९४३-४६ के बीच वे अपनी किस्मत बंबई के स्टूडियो की चौखट पर आजमाते रहे। पहली बार उन्होंने **जंजीर** फिल्म में गीत और **जनता** फिल्म में संवाद लिखे। लेकिन इन फिल्मों से उनकी कोई पहचान नहीं बन सकी। फेमस पिक्चर्स की मोतीलाल-सुरैया अभिनीत 'आज की रात' में गीत-संवाद लिखने से उनकी पहचान बनी। उनकी फिल्म बड़ी बहन ने रजत-जयंती मनाई थी। निर्माता ने खुश होकर एक हजार रुपया महीना वेतन और आस्टिन कार भेंट में दी थी।

बँटवारे की पृष्ठभूमि पर फिल्म लाहौर में लिखा उनका यह गीत अमर हो गया है-**बहारें फिर भी आएँगी, मगर हम-तुम जुदा होंगे।** फिल्मिस्तान की फिल्म समाधि का यह गीत होटलों तथा लाउडस्पीकर पर देश भर में बजता था- गोरे गोरे, ओ बाँके छोरे, कभी मेरी गली आया करो। इसके बाद मद्रास के फिल्म निर्माताओं की पारखी नजर इस हीरे पर पड़ी, वे उन्हें दक्षिण भारत ले गए। वहाँ ए.वी.एम. के लिए उन्होंने अठारह फिल्में लिखीं। दूसरे निर्माताओं की पच्चीस फिल्में पूरी कराई। १९८८ तक वे अपने जीवन की तीन सौ फिल्में पूरी कर चुके थे, जिनमें से दो सौ में सिर्फ गीत तथा शेष में गीत-संवाद लिखते थे। सिर्फ संवाद उन्होंने किसी फिल्म में नहीं लिखे। फिल्मों में लेखकों के अधिकार के लिए संघर्ष किया और उसे 'मुंशी के दर्जे' से मुक्ति दिलाई। एच.एम.वी. ने उन्हें पहले गीतकार होने का सम्मान दिया, जिनके बारह गीतों का एल.पी. रिकॉर्ड पहली बार जारी किया गया।

राजेन्द्र कृष्ण के गीतों में सात्विकता, पारिवारिकता और समाज के प्रति कर्तव्य बोध मिलता है- **तुम्हीं मेरी जिन्दगी हो तुम्हीं मेरी पूजा (खानदान)।** फिल्म मैं चुप रहूँगी के गीत -'तुम्ही हो माता, पिता तुम्ही हो' के लिए उन्हें फिल्म फेअर अवार्ड मिला था। यह संस्कृत के श्लोक 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' का सरल हिन्दी स्वरूप है। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में वे फिल्मों में हिंसा के दौर से दुःखी हो गए थे। उन्हें घुड़दौड़ का बेहद शौक था। एक बार जैकपाट में उन्हें अड़तालीस लाख रुपए छप्पर फाड़कर मिले थे। इतना बड़ा इनाम पाकर भी उनकी जीवन शैली जरा भी प्रभावित नहीं हुई थी। १९८८ में उनका निधन हो गया। तीन सौ फिल्मों के हजारों गीतों में से उनकी पसन्द के दस गीत इस प्रकार हैं- * कौन आया मेरे मन के द्वारे (देख कबीरा रोया) * ये हवा ये रात ये चाँदनी (संगदिल) * वो भूली दास्ताँ लो फिर याद आ गई (संजोग) * उनको ये शिकायत है कि हम कुछ नहीं कहते (अदालत)

* ये जिंदगी उसी की है (अनारकली) * आ जा री धीरे से अँखियन में निंदिया (अलबेला) * तुम्ही मेरे मन्दिर (खानदान) * इतना न मुझसे तू प्यार बढ़ा (छाया) * चल उड़ जा रे पंछी (भाभी) * मैंने नहीं पी होश अभी तक बाकी हैं (इंतकाम)।

इचकदाना बिचकदाना: हसरत जयपुरी

एक कवि सम्मलेन में एक युवक **इकबाल हुसैन 'हसरत'** ने मजदूर की लाश शीर्षक से नज्म पढ़ी, तो श्रोता भावविभोर हो गए। श्रोताओं में पापा पृथ्वीराज कपूर भी थे। उन्होंने हसरत को पृथ्वी थिएटर से जोड़ लिया। आग बनाने के बाद राजकपूर से उनकी भेंट एक रेस्तराँ में हुई। चट से उन्होंने सुनाया-'मैं बाजारों की नटखट रानी।' राज साब खुश हो गए। इस मुखड़े को उन्होंने फिल्म बूट पालिश में 'मैं बहारों की रानी' बोल के साथ रखा। शंकर-जयकिशन से परिचय हुआ। उन्होंने कई धुनों के टुकड़े हसरत को दिए। दूसरे ही दिन वे लिखकर ले आए-'जिया बेकरार है', मैं जिन्दगी में हरदम रोता ही रहा हूँ। हसरत की नौकरी १५० रुपए महीने पर पक्की हो गई। बरसात के गीत रचने के दौर में हसरत के साथी बनकर शैलेंद्र आ मिले। दोनों गीतकारो की जोड़ी

हिन्दी सिनेमा की सुपर-हिट जोड़ी रही है। बरसात से संगम तक यह जोड़ी सूरज की तरह फिल्माकाश में जग-मगाती रही।

हसरत की आरंभिक शिक्षा जयपुर में हुई है। उनके नाना फिदा हुसैन 'फिदा' से उर्दू-फारसी सीखते थे। पैसों की कमी से पढ़ाई छोड़ नौकरी की तलाश में बंबई आ गए। फिल्मों में गीत लिखने की हसरत थी। फिल्मिस्तान वालों ने गीत तो पसंद किए मगर नाम न होने से मना कर दिया। जगतनारायण 'शायर' नाम से एक फिल्म बना रहे थे। संगीतकार थे गुलाम मोहम्मद। एक गाना उन्होंने लिया लेकिन फिल्मों में नहीं दिया। निराश हसरत ने बंबई की बसों में कंडक्टरी कर ली। फुटपाथ पर कप-बशी तथा मिट्टी के बर्तन भी बेचे। बुकिंग क्लर्क बनकर सुपर सिनेमा में टिकट काटे। हसरत का विचार है कि उनके गीतों पर जयकिशन बेहतर धुनें बनाते थे। उनके अधिकांश गीतों पर जयकिशन की धुनें हैं। इन्हें फिल्म सूरज के गीत बहारों फूल बरसाओ पर फिल्म फेअर अवार्ड मिला था। हसरत जयपुरी को शैलेंद्र, जयकिशन, शंकर, मुकेश की मौत ने बुरी तरह तोड़ दिया है। आर.के. कैम्प से भी उनका रिश्ता लगभग टूट चुका है।

प्रमुख गीत: *इचकदाना बिचकदाना (श्री ४२०) *ओ मैंने प्यार किया (जिस देश में गंगा बहती है) *ये मेरा प्रेमपत्र पढ़कर (संगम) *मुझको अपने गले लगा लो (हमराही) *एहसान तेरा होगा मुझ पर (जंगली) *सौ साल पहले मुझे तुमसे प्यार था (जब प्यार किसी से होता है) *ले गई दिल गुड़िया जापान की (लव इन टोकियो)।

हार्दिक शुभकामनाएँ.....

आयुर्वेदिक दवाइयों का विशाल भण्डार

सभी आयुर्वेदिक कंपनियों की सभी दवाइयाँ एक ही स्थान पर मिलने का एकमात्र विश्वसनीय स्थान:

लक्ष्मी मेडिकल हॉल

यशवंत रोड चौराहा, इंदौर

हेडऑफिस–८, मारवाड़ी रोड, भोपाल

प्रतिदिन नि:शुल्क चिकित्सा परामर्श सुविधा का लाभ लीजिये।

शुभकामनाओं सहित

डेल्टा इन्टरनेशनल लिमिटेड

(पेपर डिवीजन)

हेडऑफिस–१६/१, सियागंज स्ट्रीट नं. २,

इंदौर, पिनकोड–४५२००७

मध्यप्रदेश, आसाम एवं विदर्भ में

ओरियन्ट पेपर मिल

के अधिकृत थोक विक्रेता

कितना दुश्वार है गजल कहना

● मनमोहन सरल

आते हैं गैब से ये/
मजामीन खियाल में
गालिब सरीरे-खामा/
नवाये-सरोश है

बहरहाल, चाहे गजल गैब से आती हो या सोजिशे-दिल से लिखी जाती हो या फिर, बकौल उनवान चिश्ती के—

हुस्न माइल ब-करम हो तो/
गजल होती है
इश्क से कौलो करम हो तो/
गजल होती है

जो भी हो साहब! गजल में कुछ है तो ऐसा जो वह पत्थर को भी दीवाना बना देती है। इसीलिए तो पिछले पंद्रह-एक सालों में तमाम उतार-चढ़ावों के बाद भी गजल के आशिक बढ़ते ही जा रहे हैं, गली-गली में गजलगो पैदा हो रहे हैं और मुहल्ले-मुहल्ले में गजल गाने वाले गजल गायकी पर अपना गला साफ कर रहे हैं। यह दीगर बात है कि कितनों ही से 'क्या बने बात जहाँ बात बनाए न बने।' ज्यादा दिन पुरानी बात नहीं है जब हमारे यहाँ 'गजलबूम' आया था, जो हर खासो-अवाम की दीवानगी का इस कदर बायस बना कि 'मनोरंजन बूम' बन गया। जाहिर है, जब शौक को तिजारत का दर्जा मिलने लगे तो उसमें हर किस्म के ऐब आ जाना लाजमी होता है। और यही हुआ है गजल गायकी के दौर में।जो पहले सोजो सुकून की चीज हुआ करती थी, हंगामा बरपा करने का हिस्सा बनने लगी। लेकिन यह सब एक दिन नहीं हो गया। इस हाल का जायजा लेने से भी पहले ज्यादा जरूरी होगा कि गजलगोई और गजल गायकी की शुरूआत पर गौर कर लिया जाए।

यों ज्यादातर लोग गजल लिखने की शैली को फारसी से आया मानते हैं। लेकिन मेरे दोस्त राही मासूम रजा डंके की चोट पर इसे हिंदुस्तानी मानते हैं। उनका तो यह कहना है कि दो मिसरों में बात कहने का फार्म सिवा हिंदुस्तान के कहीं और है ही नहीं। संस्कृत के श्लोकों में देखिए या दोहों में, यह फार्म मौजूद है। उनके अनुसार गजल की शब्दावली का व्यक्तित्व भी हिंदवी या हिंदी या देहलवी है। फारसी, अरबी का शृंगार तो उसके सलोने मुखड़े पर लखनऊ- वालों ने थोपा है। यह जुर्म किया नासिख ने कि गजल की भाषा की अवधी, भोजपुरी और बुंदेली के असर से बचाने के लिए उसमें अरबी-फारसी की मिलावट कर डाली।

गजल के शेर की पायेदारी, नजाकत और दो मिसरों में पूरी बात कह जाने की सिफ्त का जरा बिहारी के दोहों से मिलान करके तो देखिए—**देखन में छोटे लगें घाव करे गंभीर।** विरह में जलती नायिका के बदन का हाल तो देखिए कि अगर उस पर पानी की बूंद गिरे तो छन्न की आवाज होती है। ऐसी ही अतिशयोक्तियों पर कितने ही शायरों ने हजार-हजार वाहवाही लूटी है। गालिब की नजाकत कि

शब को किसी के ख्वाब में/
आया न हो कहीं
दुखते हैं आज/
उस बुते-नाजुक बदन के पाँव

मूल सोच भी रीतिकालीन कवियों में मिल जाएगा।

फिर भी, जो इसे पारसी शैली मानते हैं, उनके नजरिए से भी आज गजल का जो रूप प्रचलित है वह पूरी तौर पर भारतीय है और इसे तेरहवीं शताब्दी के महान सूफी कवि हजरत अमीर खुसरो ने इनायत किया है। उन्होंने फारसी में ब्रजभाषा को मिला कर भी खूबसूरत गजलें लिखीं—

जे हाले मिस्कीं मकुन तगाफुल/
दुराय नैना बनाय बतियाँ
कि ताबे हिजराँ न दारम/
ऐ दिल न काहे लेहो लगाय छतियाँ

कबीर में भी गजल का ठेठ भारतीय फार्म देखने को मिलता है जो सूफियों की महफिले-सभा में गाया जाता था—

हमन है इश्क मस्ताना/
हमन को होशियारी क्या
रहें आजाद यह जग में/
हमन दुनिया से यारी क्या

दक्षिण में गोलकुंडा के शाह मुहम्मद कुली कुतुबशाह ने सोलहवी शताब्दी में बाकायदा उर्दू में गजलें लिखीं। उनके सुखन के मयार पर हालाँकि सोचा जा सकता है लेकिन गजल की तवारीख (इतिहास) में उनका पहले नंबर पर मुकाम तो है। गजल को सही शायरी का दर्जा दिलाया वली ने। उन्होंने उसे फारसी गजल के बराबर ला खड़ा किया व उन्हीं के जरिए यह उत्तर तक आई। उसके बाद तो जैसे गजल का उरूज शुरू हुआ। मीर तकी 'मीर', दर्द, सौदा, मजहर जाने जाना, फिर गालिब, मोमिन, हाली, दाग जैसे शायरों ने इसे संवारा और अदब में दर्जा दिलाया। इसकी वजह से उर्दू जबान पर भी निखार आया और गजल को लोकप्रियता भी मिलने लगी। गजल को गायकों की आवाज भी मिलने लगी।

गजल गायकी की शुरूआत खोजने के लिए वक्त को काफी पीछे लौटाना पड़ेगा। याद कीजिए, सूफी संतों की महफिलें। प्रमाण मिलते हैं कि पहली महफिले-समां सात सौ साल पहले ख्वाजा मुईनुद्दीन हसन चिश्ती अजमेरी रहमतुल्लाह अलैह की खानकाह में हुई थी। शुरू में गायक भी ईरान के और गायकी भी ईरानी तर्ज की होती थी। सूफी संत आध्यात्मिक रंग यानी तसव्वुफ की गजलें गाया करते थे। अंदाज कव्वाली का थोड़ा बाद में अमल में आया। अमीर खुसरो न सिर्फ कवि थे, बल्कि वे संगीतज्ञ भी गजब के थे। उन्होंने ईरानी सुरों और मौसीकी में भारतीय रागों और तालों का मिलान किया। यहीं से कव्वाली शैली की बुनियाद पड़ी, जो आज तक बदस्तूर चली आ रही है।

सूफी दर्शन में हुस्ने-हकीकी का वर्णन था, जिसमें बिछुड़े परमात्मा से मिलने की तड़प थी। पालनेवाले, पैदा करनेवाले से लौ लगाने की बात थी जिसमें पूरा का पूरा फलसफा हुआ करता था। लेकिन जैसे-जैसे गजल को लोकप्रियता का सिंहासन मिलने लगा उसकी आमद महफिले-समां की जगह दरबार की शाही महफिलों में होने लगी, और फलसफा दूर की चीज बन गया। अब गजल इश्के-हकीकी से हटकर इश्के मिजाजी की तरफ

पीनाज मसानी

छाया : फाल.एस. गिरोटा

A COMPLETE HOUSE OF ALL OFFSET MATERIALS.

• SAURABH TRADING CO., • GAURAV GRAFIKS,

6, Corporation Marekt, Manoramaganj, INDORE ☎ 39299

DEALER'S :-

All Material for Offset Printing / Block Making Photo composing / including Lunar P.S. Plates.

Photo Typesetting Paper & Lith Film.

Natraj

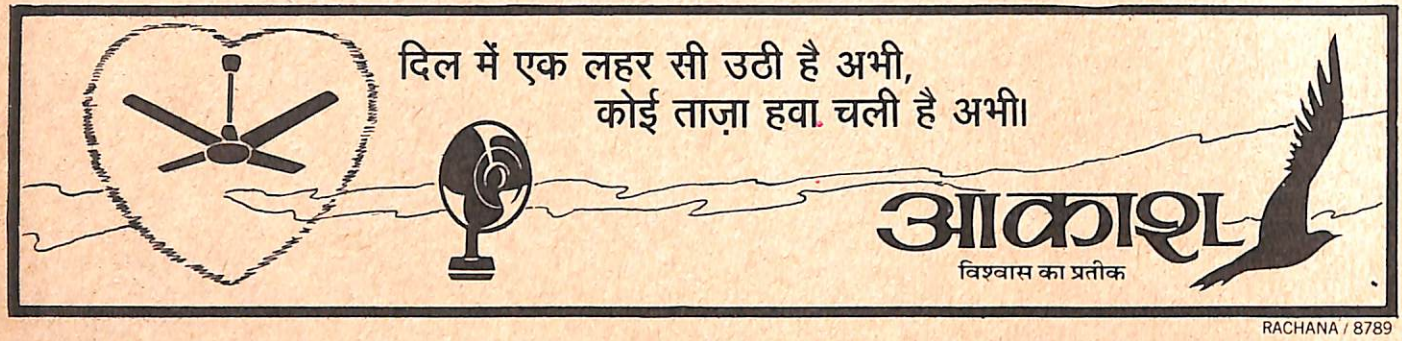

RACHANA / 8789

ALPHA COMPUTER EDUCATION

A. C. E. is not a proverbial case of sheep on the move. It is this, that in a short span A.C.E. has carved a niche for itself. The efforts of computer and management professionals places A.C.E. on the expanding screen of computer market, in this scientific world.

Ofcourse, the infrastructure we have has won for us confidence on education pattern. But what really makes us stand apart is our approach - The approach to impart more and to provide the best education to the students; The approach, not only to impart education but to develop the student into hardcore professional.

The course contents and teaching methodologies shall engross and entertain students and at the same time make them well versed in computer applications. Many of us provide computer education, but how many bothers for the count of good professionals they are providing.

Know computers from the people who know them. Ignoring Computers could become a hinderance later, wether while discussing computers or planning to take up computers as a career.

Our schematic training schedule shall surprise all around you and you will feel confident enough to beat through every hard earned achievement.

ALPHA
COMPUTER
EDUCATION

- H.O.: 108 Kanchan bag, INDORE. PH.: 36060
- Branch : 622 Vankandeswar Colony, Thatipur (Behind Basant Talkies), GWALIOR.

Ad-Libitum

ORIENT
GRAPHICS-N-PACKAGERS
ORIENT
PACK-N-PRINT

Self adhesive Stickers

Offset Printings

Letter Press

2/4 South Tukoganj ,
Kalyan Vishranti Graha
Indore Ph. : 363

Ad-Libitum

बढ़ चली। गजल में गुलो-बुलबुल, शमां- परवाना, आशिक-माशूक, सागरो- मीना ने आत्मा-परमात्मा और तसव्वुफ की जगह ले ली। तवायफों ने इसकी लोकप्रियता का फायदा उठाकर इसे कोठे की जीनत बना दिया, और फिर यहीं से गजल की दो अलग शैलियाँ विकसित हुई। एक सूफियाना अंदाज की गजलें जो महफिले-समां में कव्वाली के तौर पर गाई जाती थी और दूसरी प्रेम, शबाब और शराब की गजलें जो कोठे पर मुजरे के रूप में गाई जाने लगीं। लेकिन दोनों ही जगहों पर आम आदमी की पहुँच नहीं थी। इसलिए आमोफहम के लिए गजल गायकी अभी तक दुर्लभ थी। सूफियों की महफिलों में सिर्फ सूफियों के शामिल होने की इजाजत थी और कोठे पर वही जा सकता था जिसके पास न्योछावर के लिए अशर्फियाँ हों। रईसों-उमरावों-नवाबों के दरबारों में तो इनाम-इकराम की भरमार ही थी, बल्कि उनमें तो इनाम अता फरमाने की होड़ लगी रहती थी। बेचारा अवाम इन सबमें कैसे आमद पाता? वह गजल के रसास्वादन से महरूम ही रह गया था।

कोठों की बात से याद आया कि यह जरूरी नहीं था कि गजल गानेवालियाँ जिस्मफरोश तवायफें ही होती हों। कई कोठे ऐसे भी होते थे जहाँ सिर्फ गजल-ठुमरी सुनने लोग जाया करते थे और यहाँ अपनी हैसियत के मुताबिक नजराना दिया करते थे। सूचना तो यह भी है कि कुछ कोठे मरदाना भी होते थे जैसे लाहौर में बरकत अली का कोठा था। बरकत अली अपने वक्तों के मशहूर गजल गायक थे।

नई रोशनी आने तक गजल गायकी को जन साधारण तक पहुँचने का कोई रास्ता पैदा ही नहीं हुआ था। ग्रामोफोन की ईजाद हुई। रेकॉर्ड बनाने की कंपनी हमारे देश में भी खुलीं। पहले शास्त्रीय संगीत के ही रेकॉर्ड बने, बाद में गजलों का भी दौर शुरू हुआ। इसी के साथ एक बात और हुई। बंबई, कलकत्ता और दिल्ली में रेडियो स्टेशन खोले गए और वहीं से अन्य कार्यक्रमों के साथ-साथ गजलों का प्रसारण भी शुरू हुआ। इस तरह गजल को जन साधारण तक पहुँचने के रास्ते खुलने लगे। उधर सिनेमा भी आया और सिनेमा में ज्यादातर गजलों को ही मौका दिया गया। लेकिन फिर भी गजल को मंच नहीं मिल पाया यानी आज की तरह गजल के कार्यक्रम नहीं होते थे, इसके लिए जन-साधारण को कुछ बरस ओर रुकना पड़ा।

मर्द गजल गायकों में उस्ताद बरकत अली खाँ का नाम पहले आया है। उन्होंने गजल गायकी को शास्त्रीय संगीत का आधार प्रदान किया। गजल गायकी को सुगम संगीत की पहली सीढ़ी माना जाता है, दूसरी तरफ ठुमरी-दादरा को उपशास्त्रीय संगीत कहा जाता है। इस तरह गजल आम श्रोता के लिए ज्यादा सहज और ग्राह्य विधा थी। नतीजतन इसे ज्यादा लोकप्रियता मिलने लगी।अब से साठ बरस पहले एक गायक हुए थे अफजल हुसैन नगीना जिनकी गजल गायकी काफी मशहूर हुई। अफजल हुसैन जयपुरवाले भी हुए हैं जिनके बेटे अहमद हुसैन और मुहम्मद हुसैन आज भी गजल गाते हैं। लखनऊ के मुजद्दिय नियाजी का नाम भी खासा मशहूर रहा है।

जनाना आवाजें तो बहुत रहीं लेकिन जिन्होंने गजल गायकी को सम्मान और पायेदारी बख्शी वे थीं बेगम अख्तर। मुन्नी बेगम का नाम भी चमका था और मल्लिका पुखराज का नाम इस क्रम में बड़े आदर से लिया जाता है। इनकी तरह ही कुछ और आवाजें थीं जो बाद में पाकिस्तान चली गई।

इनमें से कुछ आवाजें सिनेमा के पर्दे के पीछे से भी उभरी जैसे खुर्शीद, मुमताज शांति वगैरह लेकिन गजल गायकी को नया रंग दिया कलकत्ता से शुरू हुई **कुंदनलाल सहगल** की आवाज ने। आज भी सहगल की गाई हुई तमाम गजलें प्रेमियों की जुबान पर है। उन्होंने फिल्मों के अलावा निजी तौर पर भी अनेक गजलें गाई और रेकॉर्ड बनवाए, जो आज तक लोकप्रिय हैं। उनके बाद के दौर में तलत महमूद आए जिनकी आवाज में गजब का सोज था। उन्होंने उर्दू जुबान की नफासत और नजाकत को अपनी रेशमी आवाज में बखूबी उतारा। दूसरी बात यह कि इनकी गायकी सीधी और बेहद सादी थी जो आम श्रोता के दिल में गहरे उतर जाती थी। फिल्मी गजल गायकों के साथ- साथ उन्हें संगीत देनेवालों का जिक्र किया जाना भी जरूरी है। गजल की धुन बनाना भी एक जरूरी हिस्सा है जो दूसरे गीतों की गायकी से कतई जुदा चीज होती है। खेमचंद प्रकाश, आर.सी. बोराल, पंकज मलिक, मदनमोहन, जयदेव, सज्जाद, गुलाम मुहम्मद, एस.डी.बर्मन, नौशाद, खैयाम ही नहीं यह सूची अब तो खासी लंबी हो गई है। अब तो कई मशहूर गजल गायक भी फिल्मों के लिए गजलों की धुन बनाने लगे हैं।

फिर भी जिन नामों की यहाँ बात हुई है, वे बीस-पच्चीस साल पहले गजल गायकी के लिए मशहूर हुए थे। फिल्मी पार्श्व गायकों में से भी लगभग सभी ने गजलें गाई—यानी मोहम्मद रफी, मुकेश, मन्ना डे, आशा भोंसले, लता मंगेशकर, किशोर कुमार लेकिन जिस तरह तलत महमूद ने गजल के सही अंदाज को समझकर, पकड़कर गाया, वैसे ही गीता दत्त और सुधा मल्होत्रा ने समझने की कोशिश की। इस लिहाज से गजल गायकी के सिलसिले में इनका नाम लता या मोहम्मद रफी, या किशोर से कहीं आगे माना जाएगा।

पहले जिक्र आया है 'गजल बूम' का।यह पिछले कुछ सालों का हादसा है। यों इसके कारणों पर जाएँ तो इसकी जिम्मेदारी भी फिल्मी संगीत की है। पश्चिमी धुनों की नकल पर पॉप और शोरभरा कान के परदे फाड़ देनेवाला 'याहू' संगीत जब इस कदर गूँज उठा कि श्रोता को उससे निजात पाने का मन होने लगा,एक मद्धम, सुकूनभरे और मुलायम संगीत की शक्ल में तब आई गजल गायकी जो दरअसल फिल्मों के शोरीले संगीत के प्रोटेस्ट में उभर कर आई। यही वक्त था और यही सबब था गजल गायकी के दोबारा प्रतिष्ठित होने का क्योंकि यह न तो शास्त्रीय संगीत की तरह कठिन और संगीत के चुनिंदा ज्ञानियों के लिए था, और न बेहूदी विलायती धुनों पर आधारित था।

इन्हीं दिनों पाकिस्तान के गजल गायक मेहंदी हसन भारत आए। एक हारमोनियम और तबलेबाज लेकर इस महान गायक ने सारे देश में धूम मचा दी। उच्चारण की शुद्धता, सुरों का ठहराव और सच्ची खरी रागदारी से सजायी-संवारी गजल गायकी में उनका मुकाम

छाया : ओम तिवारी

एक अकेला इस शहर में: भूपेन्द्र

जब भूपेन्द्र गाते नहीं थे, तब अपनी नशीली आँखों के लिए मशहूर थे। और इन आँखों की अनेक लड़कियाँ दीवानी थीं। आठ अप्रैल १९३९ को दिल्ली में जन्मे भूपेन्द्र के पिता संगीतकार थे। घर पर ही संगीत की तालीम मिली। दिल्ली आकाशवाणी और टी.वी. केन्द्र ने उन्हें गायक-संगीतकार बनाया। गिटार तथा वायलिन बजाने का उन्हें अभ्यास है। रेडियो पर संगीतकार मदन मोहन ने गाना सुना, तो प्रभावित हुए और बंबई आने का निमंत्रण दिया। १९६४ में बंबई पहुँचे। फिल्म **हकीकत** में उन्होंने गाया था-हो के मजबूर...। यह गाना लोकप्रिय हुआ। मौसम फिल्म ने आगे बढ़ाया। किनारा फिल्म ने तो स्पेनिश गिटार बजाने वाले हसीन आँखों के जादूगर के रूप में उन्हें मशहूर कर दिया। लगातार काम तो उन्हें नहीं मिल रहा है, लेकिन स्वतंत्र पहचान कायम है। बीती ना बिताए रैना (परिचय), एक अकेला इस शहर में (घरौंदा) तथा दिल ढूँढता है (मौसम) उनकी **यादगार रचनाएँ हैं।** गायिका मिताली को उन्होंने अपना जीवन-मीत बनाया है।

लक्झरी V.D.O. कोच बसों द्वारा प्रति माह के द्वितीय शनिवार को अजंता, एलोरा, शिर्डी एवं प्रति सप्ताह मांडव, धार एवं मई, जून में काश्मीर, शिमला, मसूरी, दक्षिण भारत, गोवा यात्रा

★ त्रिमूर्ति ट्रेवल्स ★

रानी सराय बस स्टैंड, इंदौर, फोन: ३६९६९

रेफ्रिजरेटर्स, टाइपराइटर्स, फर्नीचर, तिजोरियाँ आदि

थोक विक्रेता:–सुगंधी सेल्स एंड सर्विस, ५१ए, जवाहर मार्ग, धार, फोन : २४८१, ग्राम–सुगन्धी

साथ ही:–वेस्टन, डायनोरा, बुश, ऑप्टेल, वीडियोकोन टीवी.,

Weston Dyanora BUSH Optel VIDEOCON

वेस्टन कैसेट्स, पोलर, खेतान पंखे, वीडियोकोन वॉशिंग मशीन

पोलर खेतान वीडिओकोन

हाजिर स्टॉक, वाजिब दाम तथा त्वरित सेवा सहित उपलब्ध।

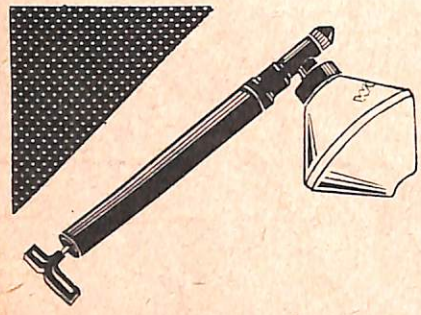

~~मंडरस्प्रे~~ खरीदिए

घरों में फिनिट - बेगान आदि छिड़कने के लिये नया 'आसान - लगातार, प्रेशर से चलने वाला ~~मंडरस्प्रे~~

गरिमा

कोर्सर मार्केटिंग प्रा. लि.
पहली मंजिल फड़नीस कॉम्पलेक्स ८८, एम.जी. रोड़, कोठारी मार्केट के पास इन्दौर म.प्र.

रीवा सुधार न्यास, रीवा

"सबको मिले मकान, अपना लक्ष्य महान"

हिन्दुस्तान सर्कुलेशन में तीसरे नंबर के दैनिक पत्र व मध्यप्रदेश के गौरवपूर्ण गरिमामय अखबार नईदुनिया द्वारा जून ८९ में प्रकाशित किए जा रहे **'सरगम का सफर'** का रीवा सुधार न्यास हार्दिक अभिनन्दन एवं स्वागत करता है।

अशोक खरे
मुख्य कार्यपालन अधिकारी,
रीवा सुधार न्यास, रीवा

ज्ञानेन्द्र सिंह
अध्यक्ष,
रीवा सुधार न्यास, रीवा

AND FEEL THE DIFFERENCE !

- Centrally located.
- Luxurious AC and non-AC rooms, lavishly furnished.
- Telephone/Channel Music/TV/Video
- Indian, Chinese and Continental cuisine.
- Conference facilities ; AC Banquet Hall
- Car parking.

Member : FHRAI, DINERS CARD ; BOB CARD ; CAN CARD.

COME, STAY WITH US

KKK
HOTEL
KANCHAN
12/2, Kanchan Bagh, South Tukoganj,
INDORE-452 001
PHONE : 33394-95-96-97

Ankit

CHECK IN AT HOTEL KANCHAN. YOU'LL MAKE A DISCOVERY !

अलग ही तय कर दिया। उनके कार्यक्रमों की सफलता ने भारत के संगीत प्रेमियों, संगीत रसिकों को ही नहीं, गायकों को भी चौंका दिया। उसी के आसपास पाकिस्तान से ही गुलाम अली आए। उनकी अदायगी में सादगी थी और एक आग थी जो सुननेवाले को बौखला देती थी। वे पंजाबी अंग में गाते हैं। यही वे दिन थे जब गजल गायकी में एक सितारा हमारे यहाँ भी उभरने की तैयारियों में था। छोटे-मोटे कार्यक्रम उसके हो चुके थे। एक जगह बनाने की पेशकश में था। यह नाम था जगजीत सिंह का जो अपनी पत्नी चित्रा के साथ स्टेज पर आ चुका था। लेकिन उसे मेहंदी हसन ने राह दिखला दी थी। भारत में गजल गायकी को फिर से लोकप्रिय बनाने का श्रेय जगजीत सिंह को ही जाता है। उनकी आवाज में खडज है। उसके पास अच्छी शायरी की समझ है। उसने पारंपरिक गजल गायकी से हटकर गाना शुरू किया जो शुरू में मेहंदी हसन की नकल तक लगने लगा लेकिन फिर भी पसंद किया गया। उनके पास गजल गायकी सुगम संगीत के आधार से सरक कर शास्त्रीय संगीत पर आ गई। यह खासा नया चलन था क्योंकि इससे पहले कुंदनलाल सहगल गीत के ज्यादा निकट हो चले थे। **बेगम अख्तर** (अखतरी बाई फैजाबादी) की गायकी में ठुमरी-दादरा का आधार था।

जगजीत सिंह को ऊँचाई पर पहुँचाने में एक दुर्घटना ने भी सहयोग दिया। बेगम अख्तर की मृत्यु हो गई और उनका स्थान भरने के लिए कोई महिला गायिका आगे नहीं आ पाई। शोभा गुर्टू ने जरूर कोशिश की और कोशिशें तो अब भी जारी हैं लेकिन बेगम अख्तर जिस ऊँचाई पर थीं, वहाँ पहुँचना क्या आसान था। इस खाली मुकाम का सीधा लाभ जगजीत को मिला। जिस तरह बेगम अख्तर ने गायकी से लाखों कमाए थे जगजीत भी ऐसा सोचने लगे थे। उन्होंने अपनी गायकी को सँवारा, कारोबारी नजर से उसे साधा; गजलों के चुनाव पर भी पूरा जोर दिया। इस तरह गजल गायकी का व्यवसायीकरण होने लगा जिसमें उन दिनों सबसे बड़ा नाम जगजीत सिंह-चित्रा की जोड़ी का था। बाद में और गायक भी आने लगे। यह आमद तो बढ़ती ही जा रही है। रोज नए नाम घोषित होते हैं क्योंकि सबकी नजर उस पैसे पर है जो इस व्यवसाय में है। अगर दाँव लग गया, सफल हो गए तो वारा-न्यारा। इनमें कितने ही नाम तो ऐसे हैं जिन्हें न गजल की समझ है, और न संगीत की। ऐसे गायकों के हाथों गजल की हत्या भी होने लगी और संगीत का गला भी घोटा जाने लगा। इस होड़ में कुछ गायक तो जगजीत से भी आगे बढ़ गए, भले ही उनके पास अच्छा संगीत और अच्छी तैयारी नहीं थी। लेकिन उनमें सफल कार्यक्रमों के लिए जरूरी तमाम सस्ते लटके थे, गजलों का चुनाव भी हल्का और बाजारू हो गया। ऊँचाई पर प्रतिष्ठित एक सफल गायक को तो गजल और गीत का फर्क ही नहीं मालूम है और उच्चारण यानी तलफ्फुज ऐसा कि मरहूम अमीर खुसरो अपनी कब्र में करवटें बदलने लगें।

बेचारी गजल की यही तो बदनसीबी है कि वह गाई जाती है—तरन्नुम। इस वजह से बदनसीब को चक्की के दो पाटों के बीच पिसना पड़ता है। इस पर एक तरफ गाने वाले का दबाव पड़ता है तो दूसरी तरफ से सुननेवालों का। गानेवाला सफल होने के लिए यानी श्रोता का दिल लूटने के लिए या उसे भरमाने के लिए तमाम लटकों और सस्तेपन का इस्तेमाल करता है, अदब और भावनाओं का खून करनेवाले बाजारू अशआर लिखवाता है। (जी हाँ। बाकायदा फार्मूला देकर ये गजलें लिखवाई जाती हैं और पेशेवर गजलगो भी 'गजल लिखवा लो' की आवाज लगाते हुए बाजार में चक्कर लगाते रहते हैं) और अपने इस स्तरहीन बाजारियत को सुनने वाले की रुचि की आड़ लेकर सुनने वाले पर ही थोप देता है। दोनों ही वजहों से बेचारी गजल गायकी ही मारी जाती है—ठीक खरबूजे और चाकू की कहावत की तरह।

लेकिन तसवीर सिर्फ नाउम्मीदी की नहीं है। इस कुकुरमुत्ता बढ़त में आशा की किरणें भी हैं। मैंने जानबूझ कर न तो बाजारू सस्ते गायकों के नाम गिनाए हैं और न सही रास्ते पर चलने वाले आशावान गायकों के नाम देना चाहूँगा क्योंकि दोनों ही हालात में गलतफहमी होने के खतरे हैं। पर इतना जरूर कहना चाहूँगा कि दूसरे वर्ग में भी संख्या कम नहीं है। जो थोड़े नाम ऊपर आए भी हैं, वे सिर्फ इतिहास के सफर के राही हैं, उनका नाम लेना लाजिमी था। बहरहाल यह फिक्र कतई नहीं है—

बे सदा हो जाएगा/
ये साजे हस्ती एक दिन

**लेखक मनमोहन सरल टाइम्स ऑव इंडिया प्रकाशन समूह की पत्रिका धर्मयुग के सहायक संपादक हैं।*

◆◆◆

पंकज उधास

पंकज उधास की 'नायाब' नामक ग्रामोफोन रिकॉर्ड तथा ऑडियो कैसेट जब जारी हुए थे, तब अमिताभ बच्चन के फिल्मों की कैसेट की बिक्री कम हो गई थी। पंकज का गजल गायकी में आगमन ताजगी लिए हुए था। 'आहट' के बाजार में आते ही नए गजल गायकों में खलबली मच गई थी। गजल के ताने-बानों को उन्होंने नए ढंग से गूँथा है। उनका कहना है कि वे अपने प्रशंसकों के संतोष के लिए गाते हैं। 'औरत पैर की जूती है' इस फिल्म में पंकज ने संगीत दिया है। फिल्म 'नाम' में 'चिट्ठी आई है' गाकर बहुत लोकप्रियता हासिल की थी।

◆◆◆

ए. हरिहरन

विज्ञान में स्नातक और कानून की परीक्षा उत्तीर्ण ए. हरिहरन का जन्म बंबई में हुआ है। अपनी माँ के अलावा संगीत की शिक्षा उन्होंने उस्ताद गुलाम मुस्तफा खाँ साहब से ग्रहण की। सबसे पहले मुजफ्फर अली की फिल्म 'गमन' के लिए गाया। कांतिलाल राठौड़ की फिल्म रामनगरी में उन्हें तीन गाने गाने का मौका मिला। दर्द का रिश्ता, मजदूर, मशाल, सिंदूर, संसार, जमाना और जलजला उनके गीतों से सँवरी उल्लेखनीय फिल्में हैं। अब तक उन्होंने लगभग दो सौ गीत हिन्दी फिल्मों में गाए हैं।

स्वर गंगा के सुरीले पंछी

सुषमा श्रेष्ठ

अपने जमाने के प्रसिद्ध तबला वादक भोलानाथ श्रेष्ठ की बिटिया है सुषमा श्रेष्ठ। नेपाली मूल के इस परिवार की सुषमा का जन्म बंबई में हुआ। उस्ताद ताज अहमदखाँ से संगीत की तालीम लेकर सुषमा ने पहला गीत फिल्म अंदाज (१९७१) में गाया था-है ना बोलो- बोलो... पापा को मम्मी से प्यार है। यह गीत हिट रहा। इसके बाद 'हम किसी से कम नहीं' फिल्म का गीत-क्या हुआ तेरा वादा-भी इतना लोकप्रिय हुआ कि रिकॉर्ड कम्पनी ने गोल्ड डिस्क प्रदान की सुषमा श्रेष्ठ को। पति पत्नी और वो, जानवर और इन्सान, धरम-करम, ललकार सुषमा की श्रेष्ठ फिल्में हैं।

•••

हेमलता

हेमलता को अपनी गलती का जब यह अहसास हुआ कि लताजी को आदर्श तो माना जा सकता है, लेकिन नकल कर उनके सामने टिका नहीं जा सकता, तब तक बहुत देर हो चुकी थी। संगीतकार रोशन ने पहली बार हेमलता की प्रतिभा को पहचान कर फिल्मों में पेश किया। कलकत्ता के परम्परावादी मारवाड़ी परिवार में जन्मी हेमलता के पिताजी पं. जयचंद भट्ट शास्त्रीय गायक होते हुए भी उसे गायिका नहीं बनाना चाहते थे। उनके शिष्य रवीन्द्र जैन से चोरी-छिपे संगीत सीखकर हेमलता जब स्टेज पर उतरी, तब उन्हें पता चला। संगीतकार बनकर रवीन्द्र जैन बंबई आए, तो उन्होंने हेमलता को भी बुला लिया। फिल्म चितचोर, जीने की राह, गीत गाता चल, तपस्या, फकीरा में हेमलता की अलग लयकारी सुनी जा सकती है। स्टेज शो में कुशल होने के कारण हेमलता को आवाज को लटके-झटके देने में महारत हासिल है।

छाया: मधुकांत मौर्य

डबल किंग: अनूप

अनूप जलोटा को संगीत के क्षेत्र में 'डबल किंग' कहा जाता है। भजन और गजल दोनों गायकी में उन्हें बराबरी की महारत हासिल है। हमेशा कुरता और चूड़ीदार पायजामे में रहने वाले अनूप जलोटा ने सिर्फ दो साल में अपनी जगह सबसे ऊपर बना ली। फिल्मी गीतों को भी वे बड़े चाव के साथ गाते हैं। अनूप ने फिल्मों में संगीत भी दिया है और सफलता पाई है। उनकी पूर्व पत्नी सोनाली ने भी उनके साथ तथा सोलों गजलें गाई हैं। शिरडी के साईंबाबा फिल्म में मनोजकुमार के आग्रह पर अनूप ने पार्श्वगायन किया था। बाद में बेरहम, चिंतामणी, सूरदास, एक दूजे के लिए, में भी गाया। विदेशों में अनेक शहरों में स्टेज कार्यक्रम देकर अनूप ने यश और पैसा दोनों कमाया है। वे मंदिरों में भी जाकर भजन गाते हैं। एक प्रकार से उन्होंने भजन विद्या को नया जीवन दिया है।

•••

पुरुषोत्तमदास जलोटा

भजन के क्षेत्र में पुरुषोत्तमदास जलोटा की अपनी पहचान है। आपने सरल शैली से भजनों को प्रस्तुत कर उन्हें आम श्रोताओं में लोकप्रिय बनाया है। वाणी की मिठास से आपके भजनों में रस-माधुरी का स्रोत फूट पड़ता है। अनूप ने आपकी परंपराओं को आगे बढ़ाया है।

दिलराज कौर

सावन आया बादल आए, मेरे पिया नहीं आए-फिल्म 'जान हाजिर है' के इस गीत ने दिलराज कौर की पृथक पहचान बना दी। यह गीत दिलराज की गायन क्षमता का परिचय कुछ इस तरह से देता है, जैसे चार चावल हथेली पर रखकर पूरी बोरी के चावलों का आकलन किया जा रहा हो। दिलराज के उच्चारण साफ हैं और उनके अर्थों के जरिए वह एक वातावरण बनाने में सफल रहती हैं। उत्तरप्रदेश में जन्मी दिलराज कौर संगीत में एम.ए. है। शास्त्रीय तथा सुगम दोनों प्रकार के श्रोताओं को लुभाने में वह माहिर है। गीत-संगीत के संसार में छीना- झपटी के बजाए, उसके हिस्से में जो आता है, उससे वह संतुष्ट है।

प्रीति सागर

राजेश रोशन के संगीत में फिल्म जूली में प्रीति सागर ने 'माई हार्ट इज बीटिंग' जब गाया था, तो लगा था कि किसी नवयौवना के दिल की धड़कन गूँजित हुई है। प्रीति के गीतों के जरिए आवाज का बाँकपन झलकता है। शास्त्रीय तथा पश्चिमी दोनों शैलियों में वह पारंगत है। उसके पिता मोती सागर अपने अभिनेता जीवन में गाते भी थे। फिल्म मंथन, कथा, भवनी भवाई में गाने के लिए उसे कई अवार्ड मिले हैं। उसकी गजलों का प्राइवेट रिकॉर्ड भी बाजार में आया है। जब प्रिंस चार्ल्स भारत आए थे, तो उन्होंने फिल्म 'मंथन' में गाए गीत-'म्हारो गाम काठियावाड़' सुनने की फरमाइश की थी। अपनी पहचान के लिए आवाज में अलगपन बनाए रखने में प्रीति को विश्वास है।

तलत अजीज

हैदराबाद शहर की संस्कृति और गरिमा को लेकर तलत अजीज गजल गायकी के क्षेत्र में आए हैं। उनके माता-पिता ने अपने बेटे की संगीत में दिलचस्पी देखी तो उसे सँवारने में मदद की। जगजीत-चित्रा की जोड़ी ने तलत अजीज का परिचय पहली बार गजल प्रेमियों से कराया। पीनाज मसानी के साथ गाए उनके गीत-गजल के कैसेटों की भारी बिक्री हुई थी। शास्त्रीय संगीत में उनके उस्ताद फैयाज खान हैं। मैहदी हसन तथा गुलाम अली जैसे महान गायकों से प्रोत्साहन पाकर तलत अजीज ने अपना विशिष्ट स्थान बनाया है।

शैरोन प्रभाकर

सोनाली वाजपेयी

सोनाली वाजपेयी को कोई देखे, तो लगे कि अरे यह तो छोटी बच्ची है, लेकिन जब वह सुर लगाकर गाती है, तो उसकी सधी हुई आवाज सुनकर सहसा विश्वास नहीं होता कि यह तेरह साल की लड़की गा रही है। संगीतकार कल्याणजी- आनंदजी से वह संगीत की बाकायदा शिक्षा ले रही है। सोनाली-लता, आशा, नूरजहाँ, गुलाम अली या मेंहदी हसन की गजलों को इतनी खूबी से गाती है कि उन्हें भी सुनकर अचरज होने लगे। वह विदेशों के स्टेज-शो में गा चुकी है। रोहतक में जन्मी सोनाली के माता-पिता शासकीय महाविद्यालय में संगीत के प्राध्यापक हैं। मातृभाषा मराठी के बावजूद उसके उच्चारण शुद्ध हिन्दी के हैं। सुबह दस बजे से रात के ग्यारह बजे तक रियाज करती सोनाली की स्मरण शक्ति कम्प्यूटर की तरह कमाल की है। वह जो सुनती है, सब याद हो जाता है।

वाणी जयराम

ऋषिकेश मुखर्जी की फिल्म गुड्डी में 'बोले रे पपिहरा' गाकर वाणी जयराम ने अपनी आवाज का जादू हिन्दी श्रोताओं पर छोड़ा था। उनकी आवाज सुनकर उन्हें 'दूसरी लता' संबोधित किया जाने लगा था। गुलजार की 'मीरा' फिल्म में पंडित रविशंकर की धुनों पर वाणी ने अपने स्वरों को अमर बनाया है-जो तुम तोड़ो पिया, मेरे तो गिरधर गोपाल और श्याम मने चाकर रखो। वेलोर में जन्मी वाणी ने टी.आर. बालासुब्रमण्यम से कर्नाटक संगीत की शिक्षा ली है। उनका पूरा नाम कलाई वाणी है। जयराम से शादी रचाने के बाद वे वाणी जयराम कहलाई। दक्षिण भारत की गायिका पी. सुशीला के वर्चस्व को वाणी जयराम ही चुनौती दे सकी हैं। वे दक्षिण की चारों भाषाओं में सहजता के साथ गाती हैं। अब तक लगभग तीन हजार गीत वे गा चुकी हैं।

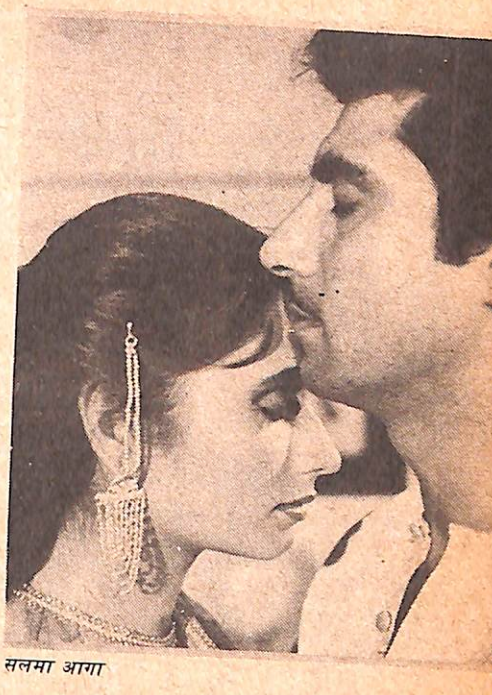

सलमा आगा

सलमा आगा

बी.आर. चोपड़ा की फिल्म 'निकाह' से एक नई निराली आवाज भारतीय दर्शकों के कान में घुलने लगी-दिल के अरमाँ आँसुओं में बह गए। पाकिस्तान से ताजी हवा के झोंके की तरह आई यह गायिका-अभिनेत्री अपने गाने खुद गाने लगी, तो भारतीय गायिकाओं का माथा ठनका। लेकिन सीमित प्रतिभा के कारण सलमा आगा, गायन के क्षेत्र में 'आग' लगाने जैसा कोई काम नहीं कर सकीं, अलबत्ता गॉसिप के मायाजाल में उलझकर रह गई। सलमा का जन्म मार्च १९६१ में कराची में हुआ है। उनकी माँ नसरीन **शाहजहाँ** फिल्म में कुन्दनलाल सहगल के साथ नायिका थी। सलमा की पढ़ाई लंदन में हुई है। संगीत के लिए जिस सतत साधना की जरूरत होती है, सलमा के पास उसकी कमी है, क्योंकि वह 'सनसनी' पसंद करती है।

चन्द्राणी मुखर्जी

पाँच साल की उम्र से गाना सीखकर नौ साल की उम्र में रेडियो पर गाने वाली गायिका का नाम है चन्द्राणी मुखर्जी। बारह साल की उम्र में कलकत्ता के रणजी स्टेडियम में लता-रफी के साथ गाने का उसे मौका मिला। पन्द्रह बरस की जब हुई तो फिल्म 'प्यार' में रफी के साथ पहला गाना गाया। लता की तरह पतली आवाज की धनी चन्द्राणी ने कई भाषाओं में अब तक लगभग दो हजार गीत गाए हैं। देश-विदेश में स्टेज शो देकर सफलता पाई है। मैं आँखें मूँद के सो जाऊँ (कामना), ओ रे सजनवाँ सागर में क्यों आते हैं तूफान (प्यासी नदी), भाभी की अँगुली में हीरे का छल्ला (तपस्या), हैं वादियाँ दिल नशीं (डिम्पल), मेरे मेहबूब शायद आज (कितने पास कितने दूर) तथा पहचान तो थी (गृहप्रवेश) उनके लोकप्रिय गीत हैं। चन्द्राणी की आवाज में विविधता है।

सर्वोत्तम सूती कपड़ों के उत्पादन में अग्रणी

दि बिनोद मिल्स कंपनी लि., उज्जैन

(विमल मिल सहित)

फोन– ३२९१, ३२९२, ३२९३, ३२९४, ३२९५

टेलेक्स– ०७३३–२०५

मुख्यमंत्री
श्री मोतीलाल वोरा

वनमंत्री,
कन्हैयालाल शर्मा

तुलसी सिलावट

ओ. पी. दुबे
अध्यक्ष, वन कर्मचारी संघ

प्रदीप खरे
सचिव

माननीय श्री जी. एस. भाटिया वनसचिव, श्री व्ही. बी. सहारिया वन महानिदेशक, म. प्र. शासन

हम आपके आभारी हैं

वनकर्मियों की लंबित माँगें स्वीकार करने पर हृदय से आभारी हैं। वन कर्मचारी संघ, जिला देवास के समस्त सदस्य एवं पदाधिकारी, विभागीय अधिकारी, पत्रकार बंधुओं, समाचार पत्रों व पत्रकारों के भी सहयोग के लिए आभारी हैं।

श्री व्ही. जी. खण्डारे, संघर्ष समिति अध्यक्ष

विनीत:–आर. के. तिवारी, कुरेशी, आर. बी. सिंह, ए. के. एस. रघुवंशी, बेदी राठौर, के. एल. लोदवाल, व्ही. के. जोशी, जे. के. जैन, सुनवाने, त्रिपाठी, एच. एन. पंड्या, अनूपसिंह, ए. के. डिमरी एवं समस्त तहसील अध्यक्ष।

आभार

मा. मुख्यमंत्री

वन मंत्री

तुलसी सिलावट
संसदीय सचिव

ओ. पी. दुबे
अध्यक्ष

सचिव
प्रदीप खरे

मान. श्री जी. एस. भाटिया, वन सचिव, श्री व्ही. बी. सहारिया, वन महानिदेशक **म. प्र. शासन**

हम आपके आभारी हैं

वनकर्मियों की लंबित माँग स्वीकार करने पर हृदय से आभारी हैं। वन कर्मचारी संघ, जिला देवास के समस्त सदस्य एवं पदाधिकारी, विभागीय अधिकारी, पत्रकार बंधुओं, समाचार पत्रों के हृदय से आभारी है।

श्री व्ही. जी. खण्डारे, संघर्ष समिति अध्यक्ष

विनीत:–आर. के. तिवारी, कुरेशी, आर. बी. सिह, ए. के. एस. रघुवंशी, बेदी राठौर, के. एल. लोदवाल, व्ही. के. जोशी, जे. के. जैन, सुनवाने, त्रिपाठी, एच. एन. पंड्या, अनूपसिंह, ए. के. डिमरी एवं समस्त तह. अध्यक्ष।

बीन से बैंड बाजे तक कल्याणजी-आनंदजी

शशधर मुखर्जी की 'नागिन' (वैजयंतीमाला) के पहले बनी सभी फिल्मों में बीन के स्वर के लिए सपेरे वाली बीन ही बजाई जाती थी। परंतु इस 'नागिन' के लिए संगीतकार हेमंतकुमार के वादक कल्याणजी भाई **'क्ले-वायलिन'** नामक एक विदेशी वाद्य यंत्र लेकर आए जिसका आकार-प्रकार हारमोनियम की तरह था। उससे नब्बे प्रकार की अलग-अलगध्वनियाँ निकलती थीं जिनमें से एक सपेरे की बीन भी थी। इस सफलता के बाद कल्याणजी भाई को 'सम्राट चंद्रगुप्त' में स्वतंत्र संगीतकार बनने का मौका मिला। एक तरह से क्ले वायलिन का प्रवेश आने वाले इलेक्ट्रॉनिक्स यंत्रों का पूर्व संकेत माना जाना चाहिए। 'सम्राट चंद्रगुप्त' और दूसरी फिल्म 'सट्टा बाजार' की धुनें मौलिक हैं लेकिन 'ऑर्केस्ट्राइजेशन' पर शंकर-जयकिशन का प्रभाव स्पष्ट है। कल्याणजी भाई ने सचिन देव बर्मन से लोकगीतों की धुनों का प्रयोग लिया और शंकर-जयकिशन से वाद्य यंत्रों की जमावट और प्रयोग।

कल्याणजी भाई के दो छोटे भाई हैं आनंदजी और बाबला। आनंदजी सहायक से सहयोगी हुए और टीम कहलाई कल्याणजी-आनंदजी। बाबला पर पश्चिमी संगीत का भूत सवार हुआ और आज तक नहीं उतरा। कल्याणजी-आनंदजी सिने जगत में **'स्थाई'** संगीतकार हैं- अर्थात् कई दौर आए गए परंतु उन्होंने अपना स्थान नहीं खोया- जैसे अभिनेताओं में धर्मेन्द्र हैं जिन्हें राजेश खन्ना की आँधी या अमिताभ बच्चन के तूफान ने भी नहीं हिलाया। इस स्थाई के मूल में शास्त्रीय संगीत की पकड़ है।

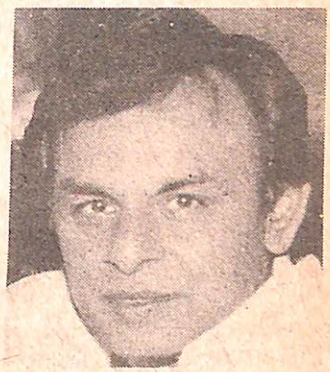

सन् ६४ में **'संगम' के बाद शंकर-जयकिशन की जोड़ी भीतर से टूट गई थी और उनके नामों के बीच का संधि चिह्न विराम या पूर्ण विराम रह गया था।** तब मनोज कुमार चाहते थे कि 'उपकार' का संगीत केवल जयकिशन दें, परंतु जयकिशन के मन में संधि चिह्न के प्रति अभी मोह बाकी था और उन्होंने 'उपकार' अस्वीकार किया तथा कल्याणजी-आनंदजी के नाम का सुझाव दिया। यह अजीब इत्तफाक है कि 'उपकार' ही वह फिल्म है जिसमें कल्याणजी-आनंदजी, शंकर-जयकिशन के प्रभाव से पूर्णतः मुक्त हुए। ढोल-ताशे, मृदंग और बाँसुरी के नितांत भारतीय **'ठाठ'** से उन्होंने 'भारत' के 'उपकार' को सजाया और स्वयं भी सारे विदेशी प्रभावों से स्वतंत्र हुए और इस तरह 'पुरवा सुहानी आई रे!' **कल्याणजी-आनंदजी को अब विश्वास हो गया कि हमारे शास्त्रीय संगीत की धरती धुनों का सोना उगलती है और यहाँ लोक गीतों के हीरों की कमी नहीं है।** उपकार का गीत 'मेरे देश की धरती सोना उगले' फिल्मों का राष्ट्रीय गीत बन गया। इसमें मनोज कुमार का योगदान भी कम नहीं है।

कल्याणजी-आनंदजी ने गायक मुकेश की आवाज में कई अनमोल रचनाएँ दीं और मुकेश की सीमित नैया के दो पतवार रहे अभिनेता राजकपूर और कल्याणजी-आनंदजी। कल्याणजी ने किशोर की आवाज में 'सफर' के अमर गीतों की रचना की। कल्याणजी-आनंदजी का मनोज कुमार के साथ संबंध एकाएक टूट गया और वह भी किसी धुन के कारण नहीं बल्कि मनोज की पत्नी के कारण। फिल्म जगत में 'अहम्' के कारण ऐसी दुर्घटनाएँ होती रहती हैं।

प्रकाश मेहरा गीतकार बनने के लिए बंबई आए थे और सफल निर्माता-निर्देशक बन गए। उन्होंने कल्याणजी-आनंदजी के साथ कई सफल फिल्में बनाई— 'मुकद्दर का सिकंदर' का संगीत कल्याणजी भाई का श्रेष्ठ प्रयास है। मनोज कुमार की तरह बेवजह ही प्रकाश मेहरा ने कल्याणजी-आनंदजी के साथ संबंध तोड़ लिए। दरअसल कल्याणजी-आनंदजी अपने काम से काम रखते हैं और बेवजह निर्माताओं की 'चिलम भरना' उन्हें पसंद नहीं है। इसी तरह फिरोज खान को उन्होंने 'धर्मात्मा' और 'कुर्बानी' में श्रेष्ठ संगीत दिया— 'जाँबाज' का संगीत भी बुरा नहीं था परंतु फिरोज खान ने 'दयावान' में लक्ष्मी-प्यारे को लिया। अतः स्थाई निर्माता-निर्देशक की कमी के बावजूद कल्याणजी-आनंदजी ने अपने 'स्थाई' में कमी नहीं आने दी और आज भी बिना किसी कैम्प के वे केवल अपने बलबूते पर जमे हुए हैं। मनोज, फिरोज और प्रकाश मेहरा की वापसी का उन्हें इंतजार नहीं है, वरन् इस 'त्रिदेव' को उनकी जरूरत है जैसा कि कल्याणजी-आनंदजी के 'त्रिदेव' से ज्ञात होता है।

जगजीत-चित्रा

जगजीत सिंह का जन्म और परवरिश राजस्थान में हुई है। राजस्थान की भूमि को वीरता, संगीत और लोकगीतों का पालना कहा जाता है। पंजाब विश्वविद्यालय से स्नातक होकर जगजीत सिंह ने उस्ताद जमाल खान से संगीत की शिक्षा ली है। वे पहले अकेले गाते थे। चित्रा शोम से हुई मीठी मुलाकात दाम्पत्य जीवन में बदल गई। चित्रा सिंह को अपनी माँ की गोद से संगीत की तालीम मिली। चित्रा की संगीत शिक्षा के बाद में जगजीत सिंह ने पूरा किया है। दुनिया के हर देश में इस दम्पति ने कार्यक्रम दिए हैं और अनेक रेकॉर्ड जारी हुए हैं। वायलिन तथा गिटार की संगत के साथ जब दोनों गाते हैं, तो पूरा माहौल संगीतमय बन जाता है। लंदन के अलबर्ट हॉल में जब दोनों ने गाया था—हम तो हैं परदेश में, देस में निकला होगा चाँद तो प्रवासी भारतीय सुनकर रो पड़े थे।

naa/D/TX-88

मध्यप्रदेश में
सार्थक सिनेमा के पक्ष में
बहुआयामी पहल

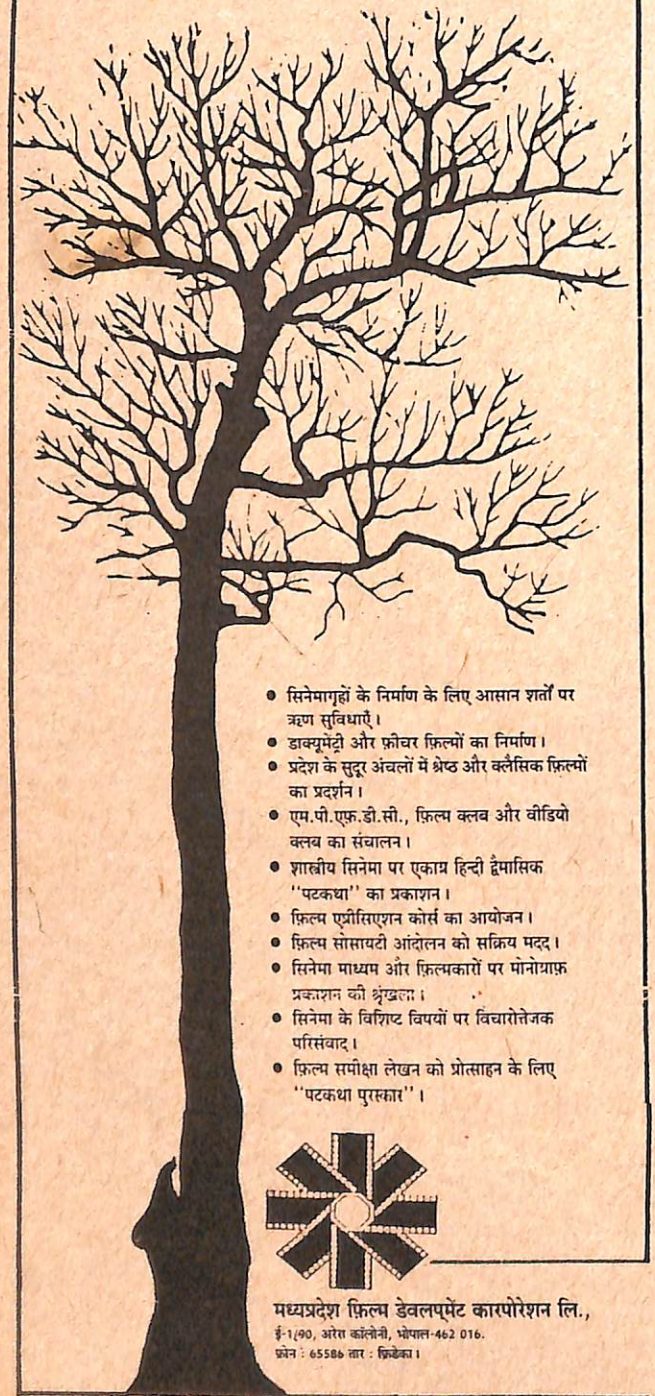

- सिनेमागृहों के निर्माण के लिए आसान शर्तों पर ऋण सुविधाएँ।
- डाक्यूमेंट्री और फ़ीचर फ़िल्मों का निर्माण।
- प्रदेश के सुदूर अंचलों में श्रेष्ठ और क्लैसिक फ़िल्मों का प्रदर्शन।
- एम.पी.एफ़.डी.सी., फ़िल्म क्लब और वीडियो क्लब का संचालन।
- शास्त्रीय सिनेमा पर एकाग्र हिन्दी द्वैमासिक "पटकथा" का प्रकाशन।
- फ़िल्म एप्रीसिएशन कोर्स का आयोजन।
- फ़िल्म सोसायटी आंदोलन को सक्रिय मदद।
- सिनेमा माध्यम और फ़िल्मकारों पर मोनोग्राफ़ प्रकाशन की श्रृंखला।
- सिनेमा के विशिष्ट विषयों पर विचारोत्तेजक परिसंवाद।
- फ़िल्म समीक्षा लेखन को प्रोत्साहन के लिए "पटकथा पुरस्कार"।

मध्यप्रदेश फ़िल्म डेवलपमेंट कारपोरेशन लि.,
ई-1/90, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462 016.
फ़ोन : 65586 तार : फ़िल्डेका।

With Best Compliments from:

MANEESH PAPER MART

5/2, Siyaganj, **INDORE**
Phones: 36118-(Off), 34263-(Res.)
DEALERS

AURANGABAD PAPER MILLS LIMITED
(Kraft Manufacturers from 80 to 240 GSH)

CAPRIHANS INDIA LTD. (Roha)

ELLORA PAPER MILLS LTD. (Tumsar)

SARASVATI PAPER MART
DEALER

STAR PAPER MILLS LIMITED
SAHARANPUR (U.P.)

So much under one roof for

OFFSET PRINTERS

* **Offset Printing Machines**
* **Plate Making Equipments**
* **Process Camera**
* **Lith & Bromide Developers**
* **Astrolone Sheet**
* **Damping Hoses & Sponges**
* **Photo Opaque & Pumice Powder**
* **Coates Printing Inks**
* **Spasa Rubber Rollers**

TECHNOVA PS & MF PLATES
Plate Processing Chemicals

VEER HARINDRA TRADERS

13, Yeshwant Road, **INDORE**, Phone: 67611

SOMAKO

Bridging the gap between you & nature.

Now soon club membership will be open.

FEATURES :

- Swimming pool
- Lake/Sand Beach
- Village Restaurant
- Indoor Games/Tennis/Badminton
- Health Centre/Sauna/Steam Bath/ Jacuzi/Yog
- Gym
- Skating Rink
- Children's park
- Library
- Activities round the year for members
- Cultural Activities, State festivals , Competitions.
- Complimentary stays to members.

SOMAKO FARMS & VILLAGE RESORT

Off. : Yeshwant Niwas Road (Vaya Rani Sati gate) Gaushala , Indore Ph : 5675 , 5676 , 5677

Resort : 13.6 km. on Khandwa road from Indore

Ad-Libitum

With Best Compliments

TATA

EXPORTS LIMITED

LEATHER COMPLEX, **DEWAS-455001**
MADHYA PRADESH, INDIA

OTHER TATA OFFICES AT:

NEW YORK-LONDON-ZUG
HONGKONG

With best compliments from:

STEEL INGOTS LIMITED

Office:
Trivedi Chambers
2, Maharani Road
INDORE-452007 (M.P.)
Phone: 36418, 36419, 21306
Cable: STEELINGOT
TELEX-0735 331 SIPL IN

Works:
A.B. Road
Industrial Area
DEWAS (M.P.)
Phone: 2429
2566

naa/D/TX-88

''सॉफ्ट ड्रिंक बने इतना सस्ता!
कोई सोच भी नहीं सकता

अब.....घर में ही विभिन्न स्वाद के
सॉफ्ट ड्रिंक्स बनायें या सनसनाता सोडा पायें

''मेरी मिक्स'' क्या है ?

''मेरी मिक्स'' एक सामान्य जग साइज़ की मशीन है. इसमें एक छोटा सा गैस सिलेण्डर लगा है. जिससे करीबन 80 बोतल सॉफ्ट ड्रिंक अथवा सोडा बना सकते हैं.

तत्काल ही
गैस फिलिंग की
सुविधा

सिर्फ मशीन ही नहीं 'सॉफ्ट ड्रिंक' कॉन्सन्ट्रेट भी- ''मेरी मिक्स'' के ही मनभावन स्वाद वाले सॉफ्ट ड्रिंक कॉन्सन्ट्रेट बाजार में आसानी से उपलब्ध हैं.

Merri-Mix

- डिज़ाईन सेंटर, लण्डन द्वारा प्रशंसित
- छोटी एवं सुविधाजनक जहाँ चाहें वहाँ ले जायें
- चलाने में एकदम सरल
- बस...बटन दबायें सॉफ्ट ड्रिंक पायें.
- एक वर्ष की गारन्टी

घर-घर प्रदर्शन

''मेरी मिक्स'' का प्रदर्शन घर-घर किया जा रहा है. फिर भी यदि आप विशेष समय/स्थान पर डिमान्स्ट्रेशन करवाना चाहें, तो कृपया फोन नं. 65697 एवं 65699 पर सम्पर्क करें.

Ankit-2485

सेटिसफेक्शन 30, सरदार पटेल मार्ग, एम.वाय.हॉस्पिटल के सामने, इन्दौर-452 001 ▶ फ़ोन : 65697-99

अपनी कल्पनाओं को दीजिये
नया रुप के साथ.

रीको

सिलाई मशीन

- चलाने में आसान व हल्की
- बनावट में मजबूत अत्यधिक कार्य के लिये
- मनचाही सिलाई और कढ़ाई संभव

ISI

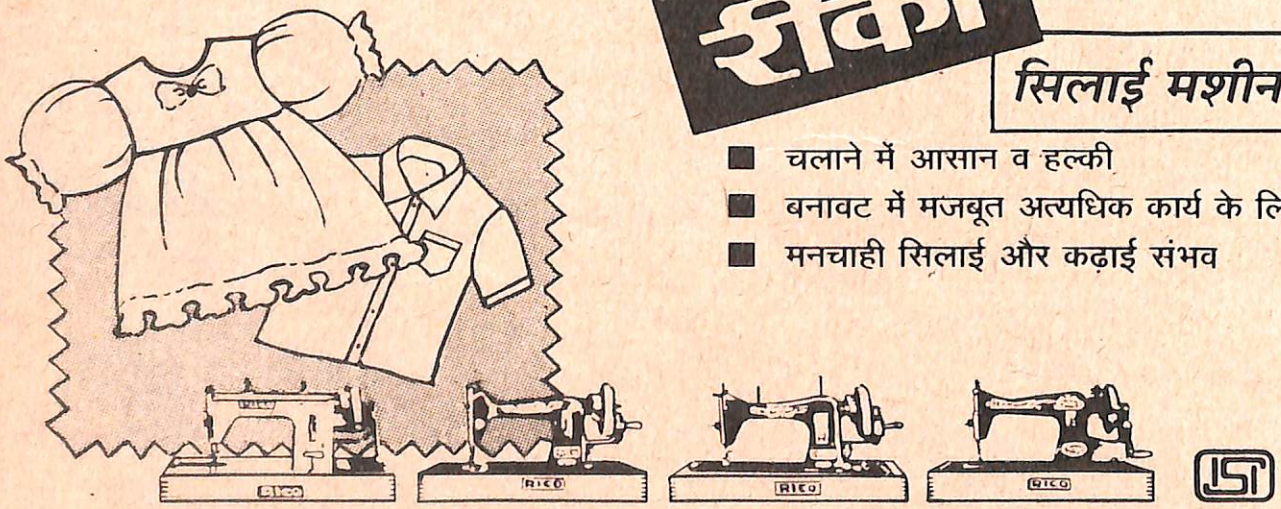

Ankit-2487

इन्दौर सुईगं मशीन कम्पनी 24, राजबाड़ा चौक, इन्दौर - 452 004 फोन ▷ 31760

संगीत निर्देशक माधुलाल दामोदर मास्टर

● हरमंदिरसिंह हमराज

कल्पना कीजिए कि आज से ५८ वर्ष पूर्व जब नई तकनीक के साथ सवाक फिल्मों का आगमन हुआ तो फिल्मों में गीत शामिल करने के तौर-तरीके कैसे रहे होंगे। मनोरंजन के इस माध्यम को तब लोगों ने बड़े ही कौतूहल के साथ निहारा था। सवाक फिल्मों के आगमन के साथ ही उनमें संगीत देने के लिए जिन अनगिनत संगीतकारों ने अपना योगदान किया उनमें एक नाम **माधुलाल दामोदर मास्टर** का है जो सन् १९३१ से ही फिल्मों में संगीत देने के कार्य से जुड़ गए थे। कितनी खुशी की बात है कि ८७ वर्षीय मास्टरजी आज भी हमारे बीच उस दौर के फिल्म संगीत के ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में मौजूद हैं। हिन्दी फिल्म गीतकोश, खंड-१ (१९३१-४०) के संकलन हेतु उनकी संगीतबद्ध की हुई फिल्मों एवं गीतों की जानकारी एकत्र करने के लिए जब पहली बार मैं शिवाजी पार्क, बंबई स्थित उनके 'दत्त निवास' पर पहुँचा तो एहसास हुआ कि वे मुझसे भी ज्यादा रोमांचित हो गए हैं। कुछ क्षणों तक तो वे कुछ भी बोल ही नहीं सके तथा कमरे में उत्तेजित होकर टहलते रहे। उनके मुँह से ये सुनकर मुझे बेहद अफसोस हुआ कि **"...बंबईवासियों ने तो मुझे बिल्कुल ही भुला दिया है, कूड़े के ढेर में फेंक दिया है। आपके आने से मुझे लग रहा है कि किसी ने मुझे फिर से ड्राइंग रूम में सजा कर रखा है..."** कुछ समय बाद जब वे सहज हुए तो मैंने उन्हें अपने आने का मकसद तथा 'गीतकोश' योजना की जानकारी दी। हर्ष मिश्रित रोमांच मुझे तब हुआ जब वे भी एक पुराना रजिस्टर निकालकर ले आए जिसमें उनके द्वारा संगीतबद्ध की हुई फिल्मों के नाम लिखे हुए थे।

बात सन् १९३१ से जब 'आलमआरा' से शुरू हुई तो उन्होंने बताया कि सच्ची बात तो ये है कि वे फिल्मों में कामेडियन बनने आए थे। तब कृष्णाटोन फिल्म कंपनी के मालिक माणिकलाल भोगीलाल पटेल ने उन्हें फिल्म निर्माण के हर भाग का काम सीखने में लगा दिया और अंत में उन्हें फिल्मों में संगीत देने का काम सौंपा। सवाक फिल्मों के प्रथम वर्ष १९३१ में जारी होने वाली दो फिल्मों- घर की लक्ष्मी एवं हरिश्चंद्र में उन्होंने संगीत देने के कार्य में सहायता की थी। उनके संगीत से सजी पहली फिल्म 'नवचेतन' थी, जो ७ दिनों में बन कर तैयार हो गई थी। ८ गीतों वाली यह फिल्म १९३२ में आई थी। सन् १९३२ में ही जारी १५ गीतों वाली 'खुदा दोस्त' उनकी दूसरी फिल्म थी। सन् १९३३ में जारी 'लंका दहन' में गौरी शंकरलाल 'अख्तर' लिखित सभी १३ गीतों की धुनें मास्टरजी ने बनाई थीं, जिसमें हनुमान की भूमिका में मारूतिराव पहलवान ने कई गीत गाए थे। ४ भागों में निर्मित सर्वाधिक लम्बी भारतीय फिल्म 'हातिमताई' में संगीत देने का श्रेय मास्टरजी को ही है जो कि १९३३ में आई थी। चारों भागों में क्रमशः २१, ९, ८ एवं ११ गीत थे जो जी.आर. सेठी 'शाद' ने लिखे थे। चारों भागों में नायक की भूमिका मारूतिराव पहलवान ने अदा की थी। मास्टरजी ने सन् १९४२-४३ तक सक्रिय रूप से फिल्मों में संगीत देने का कार्य किया था। वैसे उनके संगीत से सजी अंतिम फिल्म 'जंगल का जवाहर' थी जो सन् १९५२ में आई थी। २१ वर्षों के फिल्मी जीवन में उन्होंने लगभग ३४ हिन्दी फिल्मों में संगीत दिया। उनके संगीत से सजी शेष हिन्दी फिल्मों के नाम इस प्रकार हैं- मत्स्य गंध (१९३४), रणचंडी ('३४), सोने की चिड़िया ('३४), वसंत-सेना ('३४), बाल हत्या ('३५), फैशनेबिल इंडिया ('३५), लहरी जवान ('३५), जिगारो ('३५), बाज बहादुर ('३६), दुखियारी ('३७), पंजाब लान्सर्स ('३७), लाल बुझक्कड़ ('३८), रंगीला मजदूर ('३८), जंगल किंग ('३९), कहाँ है मंजिल मेरी ('३९), पंजाब मेल ('३९), डायमंड क्वीन ('४०), हिन्द का लाल ('४०), जय स्वदेश ('४०), विजय कुमार ('४०), बंबई-वाली ('४१), मुस्लिम का लाल ('४१), ताज महल ('४१), जंगल प्रिंसेस ('४२), मेरी दुनिया ('४२), राय साहब ('४२), आगे कदम ('४३), शतरंज ('४६), परिवर्तन ('४९), जंगल का जवाहर ('५२)। सन् १९३७ में जारी 'पंजाब लान्सर्स' में उन्होंने एक फकीर तथा सन् १९५० में जारी गुजराती फिल्म 'लग्न मंडप' में खलनायक का अभिनय किया था। फिल्म 'सोने की चिड़िया' ('३४) में साउंड रिकॉर्डिंग का एक दृश्य भी था, जो उन्हीं पर फिल्माया गया था। मास्टरजी के अनुसार सन् १९३८ में जारी 'लाल बुझक्कड़' मात्र ३ दिनों में बन कर तैयार हो गई थी।

सवाक फिल्मों के आगमन के समय उनमें संगीत देने के माहौल के बारे में मास्टरजी बताते हैं कि तब पौराणिक फिल्मों का निर्माण ज्यादा होता था। संगीतकार की हालत ताश के गुलाम जैसी हुआ करती थी। वाद्ययंत्रों में सिर्फ तबला, हारमोनियम और सारंगी का प्रयोग होता था। गीत गाने वाले नाटकों के अभिनेता हुआ करते थे जो फिल्मों में आ गए थे तथा अभिनय के साथ गीत गाना उनकी मजबूरी होती थी, क्योंकि पार्श्व गायन पद्धति का विकास बाद में (सन् १९३६ से) हुआ। फिल्मों को बनाने वाले निर्माता ज्यादातर गुजराती सेठ हुआ करते थे। गीतों की भाषा उर्दू हुआ करती थीं। ऐसे हालात में गीतों की खिचड़ी पकती थी। जिनमें **दिलरुबा, दिलरुबा, दिलरुबा,** शब्द आने पर सब लोग खुश होते थे। निर्माता उन्हें कहते कि पश्चिमी संगीत सुनकर उस पर गीतों की धुनें बनाओ तो मास्टरजी समझ नहीं पाते थे कि सप्त सुरों में पश्चिमी संगीत को मिलाकर खिचड़ी कैसे पकाई जाए, लेकिन काफी समय तक मास्टरजी ने वैसी धुनें भी बनाई। नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि फिल्म के निर्माता उन्हें निर्देश देने लगे कि 'मेरे मौला बुला लो...' (भजन) की धुन पर कव्वाली की रचना करें। तब मास्टरजी ने फिल्म लाइन छोड़ देने में ही भलाई समझी और फिल्म इंडस्ट्री का सारा अनुभव उन्होंने पुतलों के रूप में पेश करना शुरू किया। अत्यन्त भावुक होकर मास्टरजी ने अपने इन खट्टे- मीठे अनुभवों का वर्णन हिन्दी फिल्म गीतकोश, खंड-१ (१९३१-४०) के विमोचन समारोह के दौरान बंबई के 'बिड़ला क्रीड़ा केंद्र' में बड़े ही रोचक ढंग से किया था। इस तरह पिछले लगभग ३५-४० वर्षों से वे 'पपेट्री शो' के कार्य में लगे हुए हैं तथा आज भी इस विधा से जुड़े हैं। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पपेट्री के निर्देशक के रूप में कार्य करते हुए उन्होंने पपेट्री में विश्व में ख्याति हासिल की है।

८७ वर्ष के आयु-में आजकल वे अपनी पत्नी के साथ शिवाजी पार्क, बंबई में शांतिपूर्ण जीवन यापन कर रहे हैं।

naa/D/TX-88

For the man
who recognises value.

The Business Class
COLLECTION

Rich polyester blended suitings.

S. Kumars®

Niranjan, 99, Marine Drive, Bombay 400 002

Incentive

हवाओं पर लिखना चाहता हूँ, स्वरलहरियों के नाम

-रणजीत बारोट

●रिंकी भट्टाचार्य

रणजीत बारोट के संगीत का सफर मात्र नौ वर्ष की उम्र में ही तब शुरू हो गया जबकि अधिकतर लड़के प्राथमिक स्कूल से माध्यमिक विद्यालयों में जाने की तैयारी कर रहे होते हैं। लेकिन जॉज संगीत के प्रख्यात भारतीय कम्पोजर, लुई बैंक्स के दल में उनकी एक प्रमुख ड्रमर के रूप में उपस्थिति क्या इस बात का अहसास नहीं दिलाती कि वे पाँच वर्ष की आयु में विलक्षण प्रतिभा-संपन्न महान संगीतकार मोजार्ट की ही बिरादरी के एक सदस्य हैं। लेकिन 'परफार्मिंग आर्ट्स' के संरक्षण एवं इनके प्रति समर्पित परिवार से आने वाले रणजीत के लिए यह कोई अस्वाभाविक या विलक्षण बात नहीं है। वे भारत में कथक की साम्राज्ञी सितारा देवी के पुत्र हैं। यह बात भी बिल्कुल सहज और स्वाभाविक है कि अभी तक संगीत ही उनका ध्येय, प्यार व सभी कुछ है। एक ड्रमर की हैसियत से प्रारंभ में संगीत लिखने वाले रणजीत आज जॉज संगीत के कम्पोज करने वाले सबसे कम आयु के लेकिन सर्वाधिक लोकप्रिय लेखक हैं। इसके अलावा उन्होंने 'राख' फिल्म में भी अपनी संगीत क्षमता का परिचय दिया है।

इस साक्षात्कार में उन्होंने अपने काम के बारे में सहज एवं स्पष्ट तरीके से अपने विचार व्यक्त किए हैं।

सबसे पहले मुझे यह बताएँ कि कैसे और किसने आपकी संगीत प्रतिभा को खोजा? क्या इसका पता स्वयं आपको ही हुआ अथवा किसी और ने आपके इस सामर्थ्य को पहचाना?

मैं सोचता हूँ कि इसकी जानकारी स्वयं मुझे ही हुई। जब मैं छोटा लड़का था तब हमारा परिवार इंग्लैंड से भारत लौट आया था। उस समय मेरी लगभग नौ वर्ष की आयु थी। मैं बहुत अधिक बीटल्स सुना करता था। हमारे पास कुछ अफ्रीकी ड्रम भी थे। और मुझे याद है कि मैं इन्हें बिना किसी समझ के बजाया करता था। जब कभी मैं ऐसा करता तो मुझे एक अनूठा अहसास मिलता। लेकिन संगीत अथवा ड्रम मेरे जीवन का मुख्य ध्येय बनाने की घटना एकाएक स्कूल समारोह के दौरान हुई। स्टेज पर एक ड्रम रखा हुआ था, मैं वहाँ पहुँचा और इसे बड़ी सहजता से बजाने लगा। यह सब इतना सहज व स्वाभाविक था कि आप इसे मेरा पहला सार्वजनिक कार्यक्रम भी कह सकते हैं। इसके बाद मुझे ऐसी आंतरिक प्रेरणा हुई कि मुझे इसे ही अपने जीवन का सबसे पहला व अंतिम उद्देश्य बनाना पड़ा।

आपका यह अनुभव कितना अधिक गहरा था?

अरे, यह तो बढ़ता ही चला गया और मैं इस बात की भी प्रतीक्षा न कर सका कि यह सब करने से पहले अपनी स्कूली पढ़ाई भी पूरी कर लूँ। कॉलेज तो मैंने कभी देखा ही नहीं। मैंने अपनी शिक्षा छोड़ दी और यही करने लगा था। तभी कुछ स्थानीय समूहों को पता लगा कि मैं ड्रम बजाता हूँ। इस तरह मुझे एक ग्रुप 'द पीपल' में ड्रम बजाने के लिए बुलाया गया।

अपनी शिक्षा को अधूरी छोड़ने पर आपको कोई दुःख तो नहीं है?

नहीं, मुझे नहीं है। वास्तव में मेरी माँ को निराशा हुई थी। उन्होंने मेरे सामने एक विकल्प रखा कि यदि मैं ड्रम ही बजाना चाहूँ, तो मुझे अपने प्रदर्शन से ही अपना खर्चा चलाना होगा। इस कारण मुझे एक पेशेवर संगीतकार बनना पड़ा।

इसके बाद क्या आपने स्वयं को किसी विशेष ग्रुप से जोड़े रखा?

मैं दो ग्रुप के साथ नियमित रहकर ड्रम बजाता रहा। इनमें से एक 'द पीपल' एवं दूसरा 'द वॉटर-फ्रंट' कहलाता था। हमने होटलों एवं रेस्तराओं में बजाने की बजाए सभागारों एवं संगीत कक्षों में ही संगीत बजाया। हमने अपने संगीत कुछ जॉज एवं कुछ रॉक एंड रोल बजाए। यह सब १९७९ तक चलता रहा। इसके बाद मेरे जीवन में एक महत्वपूर्ण मोड़ आया। मुझे जॉज इंडिया द्वारा लुई बैंक्स के योरपीयन दौरे हेतु सदस्यों में ड्रम बजाने के लिए चुन लिया गया। १९८० में मेरी यह उपलब्धि एक सुंदर सपने जैसी थी। जिन महान जॉज कलाकारों की मैंने अब तक मात्र तस्वीरें ही देखी थीं, उनके साथ एक ही मंच पर ड्रम बजाना एवं उन्हें साधारण मनुष्यों की भाँति देखना-सुनना एक दुर्लभ अनुभव था। वे मेरे लिए इससे पहले देवताओं सरीखे लोग थे। इस कारण से मेरी यह यात्रा अविस्मरणीय रही क्योंकि इसी दौरान मैंने जॉज संगीत के महानतम कलाकारों को देखा एवं उनसे मिला।

समकालीन पाश्चात्य संगीत में भारत के शीर्ष कलाकारों में से एक लुई बैंक्स के बारे में आपका क्या कहना है?

मैंने पिछले आठ वर्षों का समय उनके ही साथ बिताया है एवं अभी भी हूँ। एक जॉज पियानोवादक के रूप में वे श्रेष्ठतम कलाकारों में से एक हैं। लेकिन एक कम्पोज़र के रूप में उनके लिए ऐसी बात नहीं कह सकता।

अब जबकि आप स्वयं भी कम्पोजिंग करने लगे हैं, क्या आप अब भी सोचते हैं कि ड्रम वादन ही आपका सबसे अधिक प्रिय क्षेत्र है?

अब यह कुछ कम हो गया है। एक बार आश्चर्यजनक रूप से मैंने पाया कि यदि मैं दुःखी अवस्था में ड्रम बजाऊँ तो मेरी भावनाओं को केवल एक दूसरा ड्रमर ही समझ सकेगा। मेरे कहने का अर्थ है कि यह इस वाद्य की एक सीमा रेखा है। अतः एक संगीतकार को पियानो एवं की-बोर्ड बजाना भी आना चाहिए। इसके अभाव में कोई भी संगीत नहीं कम्पोज कर सकेगा। उसे की-बोर्ड पर लिखा भी जाना चाहिए। अतः अब मैं पियानो भी बजाता हूँ और अपने गाने स्वयं लिख सकता हूँ।

फिल्म अथवा टी.वी. के लिए की गई कम्पोजिंग से क्या आप खुश हैं?

एक कम्पोजर के रूप में **'राख'** मेरे लिए एक असाधारण सफलता है। मैंने अपने कम्पोजीशन 'इंद्रधनुष' जैसी रचनाएँ करना अधिक पसंद किया है। मुझे पता नहीं कि आगे कितनी सफलता या असफलता मिलेगी। मैंने अपने गानों का एक डिमॉन्स्ट्रेशन टेप भी तैयार करवाया है और मैं इसे अगले महीने योरपीय कम्पनियों के पास इस इरादे से भेजूँगा कि शायद वहाँ किसी से समझौता हो सके। मैं आशा रखता हूँ पॉलीग्राम (मूल एवं पूर्व नाम पॉलीडोर) जैसी किसी कंपनी से ही अनुबंध हो जाए।

क्या बड़ी-बड़ी योरपीय कंपनियों में एक भारतीय कम्पोजर को अवसर देते समय कोई प्रजातीय भेदभाव नहीं बरता जाता?

नहीं, नहीं... कलाकार से इस प्रकार की प्रजाति, रंग-भेद अथवा वर्ग का कोई भेदभाव नहीं

शब्बीर कुमार

मोहम्मद रफी की परम्परा को आगे ले जाने वालों में शब्बीर कुमार शायद सबसे आगे चल रहे हैं। रफी की तरह उनकी आवाज में भराव है। वे उसे ऊँचा भी उठा सकते हैं। कमजोरी सिर्फ इतनी है कि उनका बाकायदा शास्त्रीय संगीत में प्रशिक्षण नहीं हुआ है। शेख शब्बीर की आठ संतानों में से वे एक हैं। बड़ौदा में जन्म लिया, मगर जैसे-तैसे हायर सेकेण्डरी परीक्षा पास की। काम की तलाश में मजदूरी तक की है। बड़ौदा के म्यूजिक-सर्कल में गाने लगे। रफी के गीतों को गाकर उन्हें भी संतोष मिलता और श्रोता भी पसंद करते। संगीतकार उषा खन्ना ने तजुर्बा फिल्म में मौका दिया। फिल्म 'कुली' से सफलता मिली। बेताब, प्रेम तपस्या, मर्द उनकी उल्लेखनीय फिल्में हैं।

अलका याज्ञिक

अमिताभ बच्चन की फिल्म लावारिस में 'मेरे अँगने में तुम्हारा क्या काम है' गीत गाकर अलका याज्ञिक का नाम श्रोताओं के सामने आया था। हल्के-फुल्के मेलोडियस तथा साफ्ट गाने अलका को विशेष रूप से पसन्द हैं। सबसे पहले संगीतकार राजेश रोशन ने उनसे फिल्म 'सन्नाटा' में गवाया था। कलकत्ता में जन्मी अलका गुजराती परिवार से है। गृहविज्ञान में स्नातक होकर अपनी माताजी से ही उन्होंने संगीत सीखा। वह चार भाषाएँ जानती हैं। आगे बढ़ने के लिए संघर्ष में विश्वास रखती है। यह आरोप उसे पसन्द नहीं है कि मंगेशकर बहनें नई गायिकाओं को आगे नहीं बढ़ने देती। लताजी नई गायिकाओं में सबसे ज्यादा अलका को ही पसन्द करती हैं।

ESCORTS

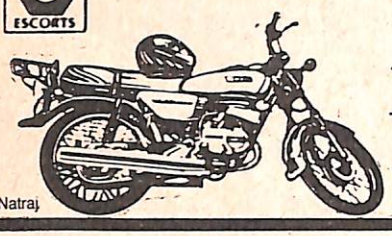

राजदूत यामाहा RX100

विस्तृत जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

अधिकृत विक्रेता :

पॉपुलर मोटर साइकल हाऊस आगर रोड, उज्जैन ☎ 3243

सभी रंगों में हाजर स्टॉक में उपलब्ध।

Natraj

स्वर्ण पदक विजेता

खरीदिये — दवे का दिल्य (गरम) मसाला

वापरिये — दवे का दिल्य (गरम) मसाला

लज्जतदार — दवे का दिल्य (गरम) मसाला

सभी किराना दुकानों पर सिर्फ **पैकिंग** में ही मिलता है.

दवे गृह उद्योग, बक्षीबाग, इन्दौर. फोन : ३८६०२

Vigilance

झूमती चली हवा याद आ गया .....

आकाश

विश्वास का प्रतीक

RACHANA / 8889

USE

GRASIM STAPLE FIBRE

AND

GRASILENE HIGH PERFORMANCE FIBRE MOST IDEAL COMPLEMENTARY FIBRES

THEIR BLENDED FABRICS ARE MUCH MORE COMFORTABLE, HYGIENIC AND ECONOMICAL

OUR RECENTLY INTRODUCED SPECIALITY FIBRES GRASIRIB, GRASINEP AND GRASIBOW ENRICH FABRIC PROPERTIES AND IMPART NOVEL EFFECTS

GRASIM INDUSTRIES LIMITED

(Staple Fibre Division)

P.O. Birlagram, NAGDA (M.P.)

Telegram: GRASIM * Telephone: 38 & 88

* TELEX: 0733 233 GNGD IN

होता। व्यावसायिक लोगों में इस किस्म की बात हो सकती है, लेकिन इस बात का आप पता लगा सकते हैं एवं इसके अनपेक्षित प्रभाव से बच सकते हैं।

आज संगीत के क्षेत्र में भी परिवर्तन हो रहे हैं। ड्रमिंग के क्षेत्रों में भी पुरुषों का स्थान महिलाओं ने ले लिया है। मेरे विचार से यह एक शुभ लक्षण है।

आपकी इन उपलब्धियों से आपकी माँ अब कितनी प्रसन्न हैं?

वे बहुत खुश हैं एवं सदैव की तरह काफी सहयोगी भी। पहले कुछ वर्षों में मुझे आर्थिक तकलीफ रही तब भी उन्होंने मेरी सहायता की। अब से लगभग दो वर्ष पहले से मैं आर्थिक रूप से भी बेहतर हूँ इसके अलावा मैं अब मात्र ड्रमर से एक कम्पोजर भी बन गया हूँ। लेकिन माँ ने सभी अवसरों एवं प्रत्येक समय पर मेरी सहायता की।

आपकी नजर में अनुशासन कितना महत्वपूर्ण है? अधिकतर कलाकार तो इन मामलों को पर्याप्त गंभीरता से नहीं लेते एवं कभी-कभी तो सनकी या झक्की व्यक्तियों जैसा व्यवहार करते हैं। ऐसा क्यों?

अनुशासन ही सब कुछ है। आपको अपने काम, अपने समय एवं अपने समूचे जीवन के प्रति गंभीर होना ही पड़ेगा। मुझे पता है कि जब बहुत सारा पैसा आता है, तो लोग आराम ही करने लग जाते हैं। पैसा सारा अनुशासन समाप्त कर देता है। लेकिन यह एक खतरनाक स्थिति हो सकती है अत: ऐसे समय में भी हमें अनुशासित ही रहना चाहिए। हमें यह बात समझनी चाहिए।

आपको काफी अधिक सफलता बहुत जल्दी ही मिल गई है। फिर भी आपका अंतिम उद्देश्य (या सपना) क्या है?

मेरा अंतिम सपना बड़ा साधारण है। मैं तो केवल निरंतर गीत लिखते रहना एवं सर्वोत्तम संगीतकारों के साथ संगत करते रहना चाहता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि मेरी रचनात्मक ऊर्जा कभी समाप्त न हो। मेरे क्षेत्र अर्थात् पाश्चात्य संगीत का भारत में बहुत कम कार्य क्षेत्र है, अत: मेरी हार्दिक इच्छा है कि मेरा संगीत सारी दुनिया के असीमित क्षेत्र में फैल जाए। बस यह मेरी एकमात्र इच्छा है।

◆◆◆

घर-घर की कहानी

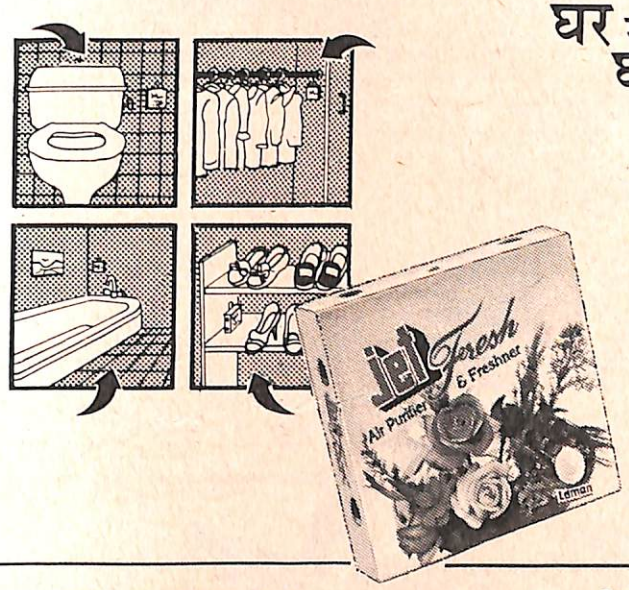

घर में पले कीड़े, यह किसे पसन्द,
घर में हो दुर्गन्ध, किसे यह सहन?

जेट फ्रेश
एयर प्युरिफायर
एवं फ्रेशनर

Ankit-2484

प्रत्येक घर में साधारणत: बाथरूम, टॉयलेट, किचन, कपड़े-किताबों की अलमारी, शू-रेक आदि स्थान जहां सूर्य का सीधा प्रकाश नहीं पड़ता है- छोटे-मोटे कीड़े, बीमारियों के घातक कीटाणु स्थाई रूप से बस जाते हैं.

Rose Lemon Lavender

इनके फलस्वरूप घर में बीमारी, कीमती सामान का नुकसान तथा भरपूर सफ़ाई रखने के बाद भी बाथरूम, टॉयलेट आदि में दुर्गन्ध की परेशानी होना सामान्य बात है.

जेट फ्रेश एयर प्युरिफायर एवं फ्रेशनर ऐसे सभी स्थानों से कीट-कीटाणुओं को नष्ट तो करेगा ही, साथ ही साथ वातावरण को शुद्ध तथा ताज़गी भरी मनमोहक खुशबू से भर देगा.

निर्माता: शार्प टेलकॉम प्रा.लि. jet जनस्वास्थ्य के लिये समर्पित एक नाम 38, पटेल नगर, इन्दौर-452 001 फोन ▷ 60507

naa/D/TX-88

कुरते-पजामें

आकाश

मेहतानी मार्केट, एम. टी. एच. कम्पाउंड
इन्दौर

सरगम का सफर
के प्रकाशन
पर

शुभकामनाएँ

शालें ही शालें

नन्दलाल स्टोर्स

(40 वर्षों से आपकी सेवा में)
राजबाड़ा, इन्दौर
फोन : 33258

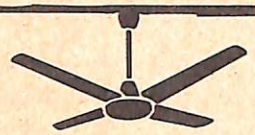

जब चली ठंडी हवा ..... तुम याद आए

आकाश
विश्वास का प्रतीक

RACHANA / 8889

शनिवार दर्पण

एक सम्पूर्ण समाचार साप्ताहिक

"जनता के पक्ष में जनता की आवाज"

हर बुक स्टाल पर उपलब्ध

'सरगम का सफर' के प्रकाशन पर

चल-पली

हाज़मे की गोली

हार्दिक
शुभकामनाएँ

निर्माता:—विस्कोलेब्स, इन्दौर
फोन : ३२७१३

ल्यूमिक्स
किचन मशीन

बाउल मुफ्त
सुपर माडल की
खरीद पर

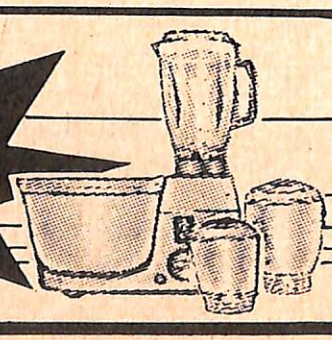

पूजा सेल्स कार्पोरेशन विशाल सेन्टर, हमीदिया रोड, भोपाल. फोन. 77378

स्वर और सुर-सरिता का मधुर-मिलन

● राजू भारतन

आवाज दे कहाँ है : नूरजहाँ

उस दिन षण्मुखानंद हॉल खचाखच भरा था। सिद्धार्थ काक के इम्मॉर्टल मेलॉडीज के कार्यक्रम में सम्मिलित होने हेतु पाकिस्तान से खुद मलिका ए तरन्नुम नूरजहाँ आई थीं। नूरजहाँ ने अनमोल घड़ी का "आवाज दे कहाँ है", गाना शुरू किया और श्रोताओं ने खुशी से हॉल में करतल ध्वनि की। मंच पर इस गाने के संगीत निर्देशक नौशाद उपस्थित थे। नूरजहाँ के साथ खड़े थे दिलीप कुमार। इन दोनों की ओर देखकर प्रेक्षकों को फिल्म जुगनू के 'यहाँ बदला वफा का बेवफाई के सिवा क्या है' इस गाने की याद आ रही थी।

नूरजहाँ, नौशाद और दिलीप कुमार इन तीनों का एक साथ मंच पर रहना किसी को भी योग्य ही लगता किंतु तभी मेरे ध्यान में यह बात आई कि 'अनमोल घड़ी' में नूरजहाँ के साथ 'आवाज दे कहाँ है'—गाने वाले सुरेंद्र मंच पर नही थे। वे श्रोताओं की पहली पंक्ति में बैठे थे। यह गीत नूरजहाँ के साथ एक बार पुनः गाना सुरेंद्र को निश्चित ही अच्छा लगता मगर उन्हें मंच पर स्थान नही था। अनिल विश्वास को भी मंच नसीब नहीं हुआ। बाद में अनिल विश्वास ने ही मुझे बताया था कि आयोजकों ने वरिष्ठ संगीत निर्देशक के रूप में आप भी मंच पर होंगे ऐसा उन्हें कहा था। ऐन वक्त पर यह परिवर्तन हुआ। तलत महमूद के 'ए दिल मुझे ऐसी जगह ले चल' आरजू के गीत के समय अनिल विश्वास मंच पर पहुँचे थे ऑर्केस्ट्रा संचालन हेतु। आयोजकों द्वारा अनिल विश्वास और सुरेंद्र की इस प्रकार उपेक्षा करना कहाँ तक उचित था। केवल उस शाम के संदर्भ में सोचें तो नूरजहाँ, दिलीप कुमार और नौशाद ने श्रोताओं को तृप्त किया किंतु वरीयता के संदर्भ में नौशाद द्वारा की गई यह टिप्पणी कि अनिल विश्वास द्वारा संगीतबद्ध किए गए गाने जब हम गुनगुनाया करते थे तब हमारा बचपन हॉफपेंट में था। इन शब्दों का भावार्थ क्या निकला!

ये मेरा प्रेमपत्र पढ़कर:रफी

इस गाने के पीछे जो इतिहास छुपा है उतना किसी अन्य गाने का होगा ऐसा मुझे याद नही। जयकिशन ने पल्लवी को लिखे पहले प्रेमपत्र की शुरूआत इसी गाने से की थी। वह पत्र गुजराती में था। हसरत जयपुरी ने उसी का हिंदीकरण किया था—ये मेरा प्रेमपत्र पढकर तुम नाराज ना होना। पल्लवी के सौंदर्य से स्पर्धा कर सके ऐसी ही तर्ज इस गीत की होना आवश्यक थी। जयकिशन ने दिलोजान से इसे बंदिश में बाँधा। रफ़ी के लिए भी इस धुन को स्मरणीय बनाना जरूरी था क्योंकि मुकेश के आर. के. शिविर में उन्हें अपनी पहचान स्थापित करने का यह अवसर था। दुर्भाग्य से यही गाना शंकर-जयकिशन को विभक्त करने का माध्यम बना। बिनाका गीतमाला में शंकर के 'दोस्त दोस्त ना रहा' को प्रथम पायदान नहीं मिली। शंकर को बुरा लगा। ये मेरा प्रेमपत्र पहली पायदान पर बैठा था। जयकिशन ने फिल्मफेअर में अपने एक लेख में यह गीत स्वयं कंपोज किया यह लिखा था। संगीतकारों की जोड़ी में श्रेय किसी एक को नहीं दिया जाता यह एक अलिखित नियम सा होता है। श्रोताओं के लिए दोस्त दोस्त ना रहा और ये मेरा प्रेमपत्र, दोनों ही गाने शंकर जयकिशन के थे किंतु शंकर को अपनी तर्ज अधिक सुंदर होने के बाद भी जयकिशन को अधिक मान्यता मिली यह बात कचोट रही थी। १९६४ में 'संगम' प्रदर्शित होने से पहले ही इन दोनों संगीतकारों में दरार पैदा हो चुकी थी। राजेंद्र कुमार ने रफी की आवाज में गाया ये मेरा प्रेमपत्र या राजकूपर के लिए मुकेश ने गाया दोस्त दोस्त ना रहा इनमें से कौनसा गीत अधिक असरदार था। दूसरे शब्दों में शंकर अधिक असरदार था या जयकिशन। इस प्रश्न का कोई जवाब नहीं है, क्योंकि दोनों गानों का असर इन दोनों के कारण ही था। शंकर को जयकिशन से अलग नहीं किया जा सकता था। मुकेश को राजकपूर से अलग रखना भी कठिन था। सच तो यह है कि रफी ने आर. के. के लिए अधिक गाया नहीं किंतु इस गाने की वजह से शंकर-जयकिशन को विभक्त करने में वह अप्रत्यक्ष रूप से कारण बन गया।

> ◆◆◆
>
> कुछ फिल्मी गीत किसी एक विशिष्ट घटना के साथ बूँधे रहते हैं। कुछ का रिश्ता मन की किसी मधुर स्मृति से जुड़ा रहता है। वह गीत फिर भूले से भी नहीं भुलाया जा सकता। रेडियो पर कहीं दूर से उस गाने की अस्पष्ट सी आवाज कानों को छूते ही पिछली स्मृतियाँ जाग जाती हैं। मन भूतकाल में भटक जाता है। तेरह गायकों के तेरह गीत यानी तेरह भूतकाल। इन गायकों के ये गीत भले ही सर्वोत्तम नहीं हों, किंतु मन के किसी कोने में उनका स्थान निश्चित रहता है।
>
> ◆◆◆

आएगा आएगा आएगा: लता

लता मंगेशकर जब भी मंच पर अपना निजी कार्यक्रम पेश करती हैं तब खेमचंद प्रकाश का

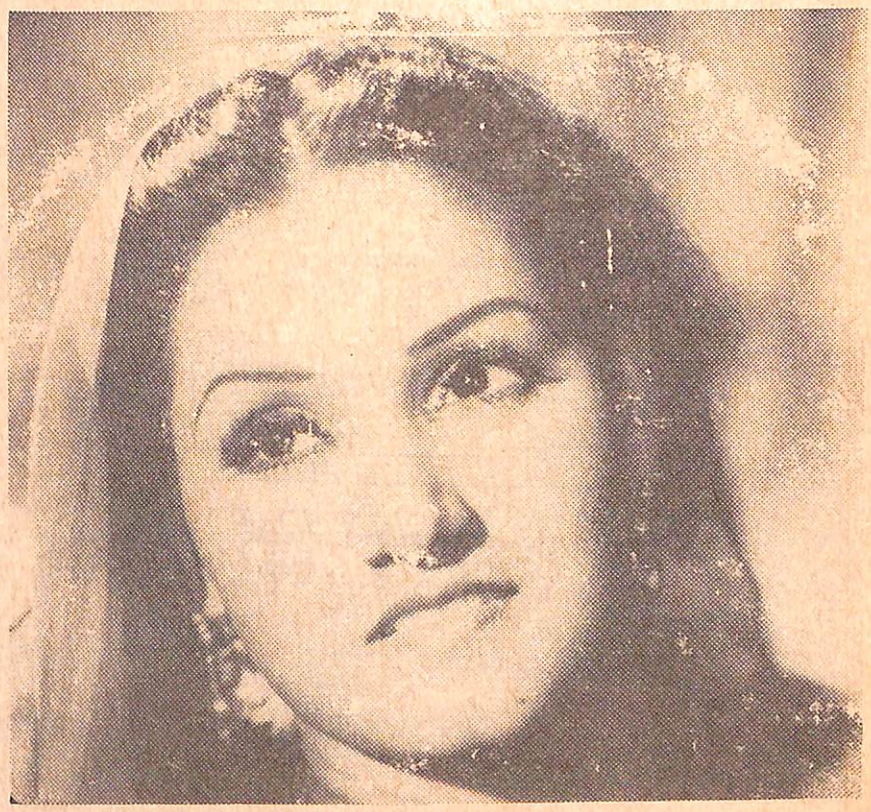

नूरजहाँ

naa/D/TX-88

ठंडी हवाएं लहरा के आएं.....

आकाश

विश्वास का प्रतीक

RACHANA / 8889

Expressions of Feminity

VIMAL® A RELIANCE PRODUCT

Sarees & Dress Material

Rajani

Rajani Bhavan, M.G.Rd.
(Opp. High Court) Indore
▷ Phone: 30260

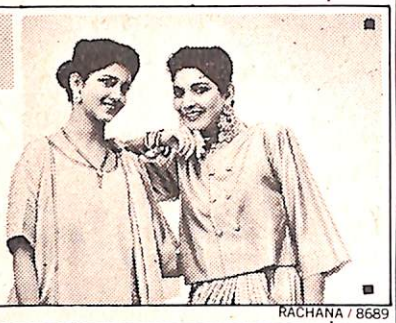

RACHANA / 8689

अंकुर मेडिकल स्टोर्स

रात्रिकालीन सेवाओं के साथ––अंग्रेजी व देशी दवाइयाँ उपलब्ध

शास्त्री मार्केट, इटारसी (म.प्र.)

फोन : ७९७

शादी, पार्टी, तीर्थयात्राओं के लिए नई बसें उपलब्ध हैं:–

बालानी बस सर्विस

इटारसी (म.प्र.), फोन : ३९०

बतरा मेडिकल स्टोर्स

अंग्रेजी व देशी दवाइयों के विश्वसनीय थोक व फुटकर विक्रेता

इटारसी (म.प्र.) फोन: ४५६, ५०९

मधुबाला

'आएगा आएगा आएगा' निश्चित रूप से गाती हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि महल, मधुबाला और आएगा आएगा ने ही लता की मखमली आवाज को मूर्त स्वरूप दिया था। १९४९ में 'महल' आने से पहले ही लता ने अपनी आवाज का जादू श्रोताओं पर किया था। अंदाज में नौशाद और बरसात में शंकर-जयशिकन के साथ गाए गए लता के गीत याद आते ही मेरे कथन का अर्थ आप समझ चुके होंगे। 'उठाए जा उनके सितम', 'तोड़ दिया दिल मेरा', 'कोई मेरे दिल में, 'मेरी लाड़ली री और बरसात में जिया बेकरार है, हवा में उड़ता जाए, ओ ओ ओ मुझे किसी से प्यार हो गया, मेरी आँखों में बस गया कोई रे, बिछड़े हुए परदेशी, अब मेरा कौन सहारा—ये गाने मेरे कथन की पुष्टि करते हैं। नर्गिस और निम्मी के परदे पर गाए इन गीतों से लता को काफी लोकप्रियता मिली किंतु महल में मधुबाला ने लता की आवाज को एक अलग ही नशा दिया। मालन बनकर अशोक कुमार को वगिया में ले जाने वाली अमानवी किंतु अद्वितीय सौंदर्यवान मधुबाला ने लता की आवाज को उतनी ही अलौकिकता प्रदान की थी। फिल्म देखकर लौटने वाले रसिक मधुबाला का अविश्वसनीय सौंदर्य और लता की मन पागल कर देने वाली आवाज सुनने के लिए ही महल देखते थे। चालीस वर्ष पूर्व कानों में समाया हुआ यह गीत आज भी उतना ही ताजा, मधुर और गहराइयों भरा लगता है। बीसवीं सदी की आवाज की साम्राज्ञी के रूप में लता के नाम पर सिक्का जमाने वाला यही गीत है।

कितना हसीं है मौसम: चितलकर

फिल्म आजाद में लता के साथ गाया गया यह द्वंद्व गीत सुनकर अनेक श्रोताओं को तलत की याद आती है। मूलतः यह गीत तलत ही गाने वाले थे। दिलीप कुमार ने चितलकर अर्थात सी. रामचंद्र को इस गाने के लिए तलत के नाम की सिफारिश की थी। अण्णा साहब मान भी गए थे। किंतु रिकॉर्डिंग के दिन तलत महमूद के परिवार में किसी का निधन हो जाने से वे उस दिन यह गीत रिकॉर्ड नहीं कर सकते थे। रिकॉर्डिंग की तिथि आगे बढ़ाना भी असंभव था क्योंकि गाना रिकॉर्ड कर उसे तुरंत शूटिंग के लिए कोइम्बतूर भेजना था। अंततः चितलकर ने स्वयं यह गाना गाया और तलत महमूद की स्टाइल में उसे ढाला। दिलीप कुमार को यह पसंद नहीं था मगर मजबूरी थी। रिकॉर्डिंग के बाद गाने में इतना उठाव आया कि चितलकर खुश हो गए और बाद में बारिश में देव आनंद के लिए 'कहते हैं प्यार किसको' यह गाना गाकर उन्होंने तलत को अपने गले में उतारने की कोशिश की, परंतु इस गीत में कितना हसीं है मौसम जैसी पकड़ नहीं आ पाई।

किसी भी गायक के समान आवाज को मोड़ने की कला चितलकर में थी परंतु उस गायक की बराबरी या उससे अच्छा न गा सकने की अपनी मर्यादित सीमाओं को भी वे कबूल करते थे। दिलीप कुमार के लिए नदिया के पार में 'मोरे राजा हो ले चल नदिया के पार' या सरगम में राजकपूर के लिए 'वो हमसे चुप हैं हम उनसे चुप हैं' उन्होंने गाया परंतु चितलकर की आवाज में अनायास ही 'कितना हसीं है मौसम' यह गीत ही याद आता है।

इना मीना डिका: आशा

हिंदी फिल्मों में रॉक एंड रोल संगीत को परिचित करने का श्रेय अण्णा साहब याने सी. रामचंद्र को दिया जाना चाहिए। 'इना मीना डिका' कहते ही किशोर की आवाज कानों में गूँजने लगती है मगर वैजयंती माला के लिए आशा भोसले का गाया 'इना मीना डिका' मेरी पहली पसंद होगी। रॉक एंड रोल ट्रेंड हिंदी में गाने का सम्मान आशा को ही दिया जाना चाहिए। १९५७ के बारिश का 'मिस्टर जान या बाबा खान या लाला रोशनदान' याद कीजिए। इसके संगीतकार सी. रामचंद्र ही थे। उन्होंने मिस्टर जॉन और इना मीना डिका का कंपोजिग एक साथ ही किया किंतु परदे पर पहले उतरा मिस्टर जॉन या बाबा खान।

सी. रामचंद्र ने इन गानों को किस प्रकार संगीतबद्ध किया इसकी एक कहानी है। वह जमाना ओ.पी. नय्यर का था। वे 'रिदम-किंग' के रूप में उभर रहे थे। सी. रामचंद्र ने टिप्पणी की कि ऐसा संगीत देने की उनकी कोई अभिलाषा नहीं है। उनके आर्केस्ट्रा के एक सहयोगी ने कटाक्ष किया कि आपको यह संगीत नहीं जमेगा, इसलिए ऐसी टिप्पणी कर रहे हैं। यह चुनौती सी. रामचंद्र को रास नहीं आई और उन्होंने इन दोनों गीतों को लय बद्ध किया और आशा से गवाया। आशा ने भी अपनी सुरीली आवाज में इन गानों को परवान चढ़ाया। **आशा** फिल्म से आशा भोसले की दोहरी पहचान बनी। एक ही समय आशा रॉक एंड रोल और शास्त्रीय ढंग के गाने गा सकती है, यह बात आशा फिल्म से सिद्ध हुई। रिकॉर्ड की एक ओर इना मीना डिका और दूसरी ओर 'सो जारे चंदा सो जा' यह गीत है।

सी.रामचंद्र

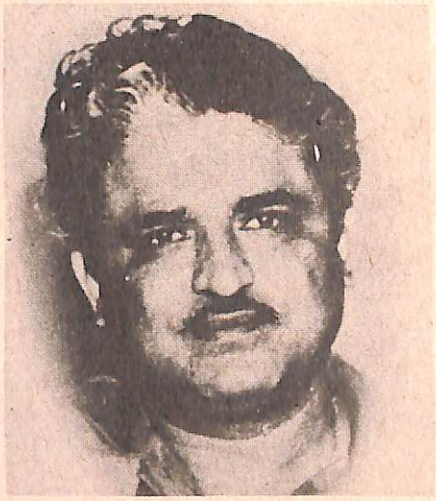

मेरे सपनों की रानी: किशोर

आराधना में राजेश खन्ना के सपनों की रानी थी शर्मिला ठाकुर और राजेश के लिए मेरे सपनों की रानी और रूप तेरा मस्ताना जैसे लोकप्रिय गीत किशोर कुमार ने गाए थे। सुपर स्टार राजेश और शर्मिला की जोड़ी युवा दर्शकों के लिए रोमांस की प्रतिनिधि जोड़ी थी। आराधना में किशोर कुमार ने 'मेरे सपनों की रानी,' रूप तेरा मस्ताना' और 'कोरा कागज था ये मन मेरा' को स्वर दिया। रफी ने लता और आशा के साथ 'बागों में बहार है,' और 'गुनगुना रहे हैं भँवरे' ये गीत गाए। किशोर और रफी की तुलना में किशोर के गाने अधिक प्रचलित हुए क्योंकि किशोर की आवाज में नई ताजगी थी और ये गीत नई लहर पैदा करने वाले थे। किंतु रफी ने भी अपनी सुरीली आवाज में अपने हिस्से के गीत सुंदरतापूर्वक गाए थे। आराधना के साथ ही दो रास्ते भी रीलिज हुई थी। रफी ने राजेश खन्ना के लिए 'ये रेशमी जुल्फें' और लता के साथ 'छुप गए सारे नजारे' गाया था। इसके बावजूद राजेश खन्ना की पहचान किशोर के 'खिजाँ के फूल पे आती कभी बहार नहीं' ये गाते समय हुई। दो रास्ते और उसके बाद लक्ष्मी-प्यारे ने अपने गीत रफी और किशोर में बाँट कर प्रचारित किए। आराधना के बाद दादा बर्मन रफी को भूल गए। आगे चलकर आर. डी. ने भी दादा की परम्परा को आगे बढ़ाया किशोर के साथ। प्रश्न अपनी जगह कायम रहा कि आराधना के पूर्व दादा के रिकॉर्डिंग रूम से बाहर रहे किशोर को बाद में दादा ने ही अपना स्थाई गायक बनाकर रफी को बाहर क्यों रखा? 'गाइड' का ही उदाहरण लें। रफी ने 'क्या से क्या हो गया' 'दिन ढल जाए हाय' और 'तेरे मेरे सपने' जैसे याददाश्त गीत अपने सुर में ढाले थे। उस समय दादा ने किशोर को सिर्फ 'गाता रहे मेरा दिल' दिया था। तीन देवियाँ में दादा ने किशोर से 'ख्वाब हो तुम या कोई हकीकत'

किशोर कुमार

आपके बच्चों के कॉलेज जीवन के सफर को कीजिए ज़्यादा यशस्वी

उन्हें उनकी पढ़ाई में ध्यान लगाने दीजिए.

उनके शौक को बढ़ावा दीजिए.

व्यक्तित्व को विकसित होने दीजिए. खेलने कूदने दीजिए.

लेकिन सच पूछें तो इन सबके लिए उन्हें थोड़ा समय अधिक चाहिए, उनमें ज़्यादा उत्साह होना चाहिए.

इसीलिए आप उन्हें एक लूना ले दीजिए. ताकि वे अपने कॉलेज और क्लासों में झटपट पहुंच सकें.

और सुरक्षापूर्वक भी.

सचमुच उनकी सफ़लता के लिए लूना एक उत्कृष्ट भेंट हीं तो है.

फिर उन्हें लंबी-लंबी कतारों में खड़े होकर बस का इंतज़ार करने की जरूरत नहीं होती और सायकिल से जाने पर होने वाली थकान से भी बच जाएंगे.

इतना ही नहीं, लूना लेने के लिए आपको एक साथ सारी रक़म चुकाने की ज़रूरत भी नहीं. कुछ निश्चित शर्तें पूरी करने के बाद इसे आप अपने विक्रेता से आसान किश्तों में भी प्राप्त कर सकते हैं.

अधिक जानकारी के लिए अपने नजदीक के कायनेटिक विक्रेता से संपर्क कीजिए.

आज ही.

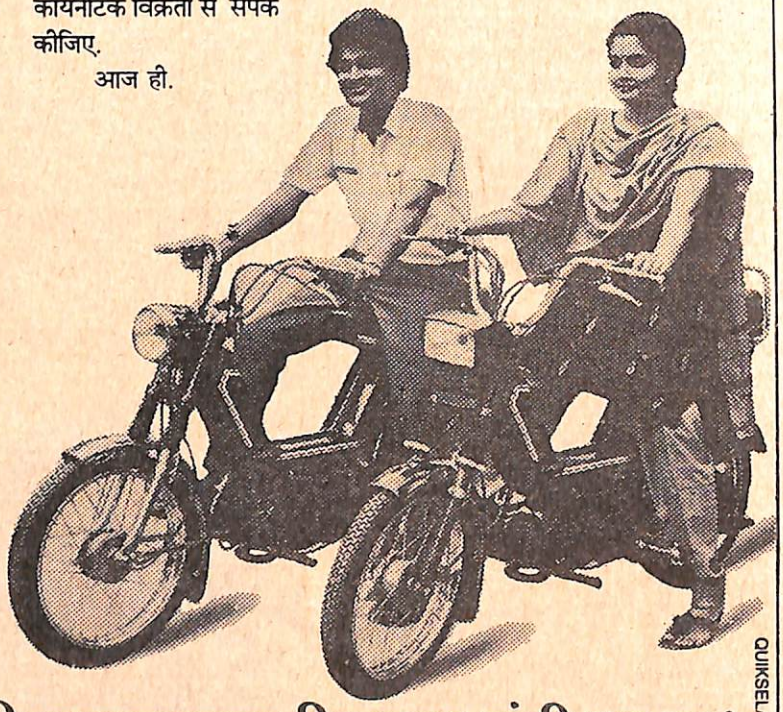

QUIKSEL/88126

लूना. बच्चों की सफलतापर बिल्कुल संही इनाम!

कायनेटिक इंजीनिअरिंग लिमिटेड.

मेहता ऑटोमोबाइल्स, ४०,ओल्ड पलासिया, इन्दौर फोन : ३०५५०

लता के साथ दिया है तेरी आँखों में किसका अफसाना और आशा के साथ 'अरे यार मेरी तुम भी हो गजब'—ये गीत गवाए। साथ ही रफी से उन्होंने 'ऐसे तो ना देखो' और कहीं बेख्याल होकर गवाया था। 'ज्वेलथीफ' में भी सचिन दादा ने किशोर से 'ये दिल न होता बेचारा और लता के साथ 'आसमाँ के नीचे हम आज अपने पीछे' ये गीत गवाकर अपना प्रेम उसके प्रति जताया था। इसी तरह रफी ने भी लता के साथ 'दिल पुकारे आरे आरे' गाकर अपनी उपस्थिति दर्ज की थी। आराधना में भी रफी था किंतु किशोर कुमार ही अधिक स्मरणीय रहा। इसका मुख्य कारण था किशोर की आवाज राजेश के लिए एकदम सही बैठी थी। कुछ वर्ष पूर्व देव आनंद के गले में किशोर उतरे थे। दो पीढ़ी के फासले को अपनी आवाज के बल पर मिटाने वाला था किशोर कुमार। यही उसकी खूबी थी।

'जिंदगी देने वाले सुन' : तलत

एक बार अनिल विश्वास के घर गाने सुनते समय किशोर कुमार ने तलत के बारे में कहा था—मुझे गाना छोड़ देना चाहिए। जब तक यह आवाज दुनिया में है, तब तक गाने के लिए मुँह खोलने की हिम्मत मुझ में कहाँ होगी। गजल सम्राट तलत मुहमूद अब्दुल रशीद कारदार के दिल ए नादान (१९५३) में काम करने वाले थे। ट्रेजेडी किंग दिलीप कुमार के गले की पहचान बन रहे तलत को स्वयं गायन के साथ अभिनेता के रूप में सुनहरे परदे पर आने की चाह थी। कारदार भी यह जोखिम उठाने को राजी थे। दास्तान और जादू इन फिल्मों के समय कानूनी विवाद के बाद नौशाद का कारदार के लिए संगीत देना असंभव था। नौशाद और तलत की पटरी भी खास नहीं बैठ पाई थी। बाबुल की रिकॉर्डिंग के समय तलत के हाथ में सिगरेट देखकर नौशाद का दिल तलत से उठ गया था। कारदार ने 'दिल ए नादान' के लिए नौशाद के सहायक गुलाम मोहम्मद को बुलाया। तलत के लिए नायिका के चुनाव हेतु एक स्पर्धा आयोजित की गई और कई सुंदरियों के बीच से पीस कंवल को चुना गया था। यह सारी मेहनत व्यर्थ गई क्योंकि 'जिंदगी देने वाले सुन' की तूफानी लोकप्रियता के बाद भी दर्शकों ने दिल ए नादान को पसंद नहीं किया। तलत की मुलायम और कंपन युक्त आवाज सिर्फ जिंदगी देने वाले तक ही सीमित नहीं थी। इसी फिल्म में 'जो खुशी से चोट खाए वो जिगर कहाँ से लाऊँ', 'ये रात सुहानी रात नहीं' और 'मुहब्बत की धुन बेकरारों से पूछो' इन गीतों में भी तलत की मखमली आवाज मौजूद थी इसके बाद भी दिलो दिमाग में एक विचार कौंध जाता था कि इस आवाज के लिए परदे पर यदि दिलीप कुमार जैसा अभिनय सम्राट आता तो कितना अच्छा होता। इस फिल्म के बाद तलत की भूमिका वाली और फिल्में भी आई। मगर वे सब फ्लॉप रहीं। दर्शकों ने तलत को कभी हीरो के रूप में स्वीकार ही नहीं किया। हीरो बनने की चाह में तलत ने अपनी गायकी को दुर्लक्षित किया। उन्हें इसके लिए काफी भुगतना भी पड़ा। ओ.पी. नय्यर के चटपटे संगीत का जमाना आ चुका था और तलत की धीमी मधुर आवाज उसमें खो चुकी थी। संगीत निर्देशक स्वयं चलकर तलत के पास आते थे, इसलिए उन्हें काम की तलाश का अनुभव नहीं था। किंतु इन्स्टंट संगीत के प्रचलन से तलत समय के साथ खो गए। 'जिंदगी देने वाले सुन' तब भी सुना जाता था और आज भी सुना जा रहा है। इस गाने ने तलत के गजल सम्राट की जगह रिक्त कर दी, मगर तलत की आवाज का दर्जा वैसा ही बना रहा।

तलत महमूद

मेरा नाम चिन चिन चू : गीता

रॉक एंड रोल को सी. रामचंद्र ने एंट्री दी किंतु ओ. पी. नैयर ने हावड़ा ब्रिज (१९५८) में मेरा नाम चिन चिन चू कंपोज कर हम भी कुछ कम नहीं यह सिद्ध किया। इस गीत से आशा और गीता की आवाज का फर्क स्पष्ट होता है। इसी फिल्म में 'मेरा नाम चिन चिन चू' के साथ आशा का 'आइए मेहरबान, बैठिए जानेजाँ' भी था मगर जो असर गीता में था वह आशा नहीं बना सकी। फिल्म में आशा के पाँच गाने थे और गीता का सिर्फ एक। किंतु यही एक गीत उन सब पर भारी पड़ा था। आशा के मोहजाल में बँधे ओ. पी. नैयर ने बाद में गीता से नहीं गवाया। आशा ने भी ओ.पी. के साथ पूर्ण समर्पणभाव से गाया किंतु गीता ने मिस्टर एंड मिसेस ५५ में ओ. पी. के लिए ठंडी हवा काली घटा आ ही गई झूमके और मेरा नाम चिन चिन चू इन दो विपरीत छोर के गानों में जो कौशल्य दिखाया वह अन्यों के लिए संभव नही था।

गीता दत्त

मन्ना डे

आ जा सनम : मन्नाडे

रोमांटिक गानों के लिए आवश्यक स्पंदन मन्नाडे के गले में नहीं है, यह कहने वालों के लिए 'प्यार हुआ इकरार हुआ' यह श्री ४२० का गीत करारा जवाब है। राजकपूर के लिए मन्नाडे ने कुछ ही गीत गाए हैं। श्री ४२० (१९५५) में इसकी शुरूआत हुई। शंकर ने दिल का हाल सुने दिलवाला और लता के साथ प्यार हुआ इकरार हुआ है ये गीत मन्नाडे से गवाए। चोरी-चोरी में तो राजकपूर के लिए मन्नाडे को लाया गया। प्रेम में आकंठ डूबा हुआ राज, मन्नाडे की आवाज में जब ये रात भीगी-भीगी अथवा जहाँ मैं जाती हूँ, इन गीतों को गाता है तो साक्षात रोमांस के दर्शन होते हैं। दिल मचल उठता है—'आ जा सनम मधुर चाँदनी में हम' सुनकर। इसीलिए तो शंकर-जयकिशन को चोरी-चोरी में पहला फिल्म फेअर अवार्ड मिला था। राजकपूर यदि शंकर-जयकिशन को किंचित भी आभास होने देते कि उनका झुकाव मन्नाडे की ओर है, तो राज के लिए मन्नाडे सदैव के लिए अपनी आवाज दे देते, क्योंकि मुकेश उस समय हीरो न बन पाने के गम को शराब में डुबो रहे थे। राज ने मुकेश का साथ दिया और मुकेश हमेशा के लिए राज के गले में कैद हो गए। शंकर-जयकिशन ने राज की तरह शम्मी कपूर के लिए भी मन्नाडे का प्रयोग किया। उजाला में 'सूरज जरा आ पास आ' 'अब कहाँ जाएँ हम और लता के साथ' झूमता मौसम मस्त महीना और चम चम लो सुनो चम चम ये सब गीत शंकर-जयकिशन ने शम्मीकपूर के लिए मन्नाडे से गवाए थे। मुकेश भी थे। सिर्फ एक गाने के लिए 'दुनिया वालों से दूर' के लिए। अंततः शंकर-जयकिशन ने एक कपूर के लिए मुकेश और दूसरे के लिए रफी को चुना। मन्नाडे के पल्ले शास्त्रीय संगीत और बाद में मेहमूद के गाने पड़े।

बोले रे पपीहरा : वाणी जयराम

मियाँ की मल्हार में बँधा यह गीत वसंत देसाई ने वाणी जयराम से गवाया और रातों रात वाणी लोकप्रियता के शिखर पर चढ़ी। उभरती गायिकाओं में उसका नाम अग्र क्रम पर लिया जाने लगा। इस गीत ने उसे सुर सिंगार के पुरस्कार में लता का प्रतिस्पर्धी बनाया और लता के दस्तक के

हार्दिक शुभकामनाएँ

हर्षवर्धन सुपरफॉस्फेट

हर्षवर्धन से हर्ष की वृद्धि
सबके लिए आई समृद्धि

निर्माता :

हर्षवर्धन केमिकल्स एण्ड मिनरल्स लि.
मेघनगर, जि. झाबुआ (म.प्र.)

मधुवन केमिकल्स एण्ड फर्टिलाइजर्स लि.
डबोक, जि. उदयपुर (राज.)

Vigilance

हेड ऑफिस : शिरीश चेम्बर्स (दूसरा माला), 25/1, यशवन्त निवास रोड़, इन्दौर (म.प्र.) फोन 38035

वाणी जयराम

'बैयाँ ना धरो' की तुलना में प्रथम पुरस्कार भी दिलाया। बोले रे पपीहरा की ताजगी आज भी मन को लुभाती है। वाणी की आवाज में कुछ था जरूर। इसके बाद वाणी और वसंत देसाई 'जय राधेकृष्ण" में एक साथ आए मगर इस फिल्म के मारवा में बंदिश किए 'एक तो मैं एक मुरली बैरन' ने सामान्य श्रोताओं के कानों को प्रभावित नहीं किया। यह गीत कुछ खास श्रोताओं तक ही पहुँच पाया। और गुड्डी में जया के लिए गाने वाली वाणी का अभाव भी इस पर था।वाणी ने हिंदी फिल्मों को छोड़कर मद्रास की राह पकड़ी। परंतु वहाँ दक्खन की लता, पी. सुशीला उसकी प्रतिद्वंद्वी थी। मंगेशकर बहनों को अपनी क्षमता दिखाने की उनकी जिद समाप्त नहीं हुई थी। पंडित रविशंकर ने गुलजार की 'मीरा' के लिए वाणी को लिया। खमाज राग में गाया 'मेरे तो गिरिधर गोपाल' और यमन का जो तुम तोड़ो पिया, देस का मैं सावरे के रंग राची, सिंधु भैरव का श्याम मने चाकर राखो जी और तोड़ी का एरी मैं तो प्रेम दीवानी ये गीत सुनने के बाद वाणी की आवाज की गहराई और विशेषता मालूम होती है। लंदन में ब्रेक फॉस्ट की टेबल पर रविशंकर ने कंपोज किया 'मेरे तो गिरिधर गोपाल' भारत में हेमा मालिनी के गले नहीं उतर पाया। मीरा को दर्शकों ने स्वीकार नहीं किया और वाणी का परिश्रम व्यर्थ गया। वाणी अब भी बंबई में मौके की तलाश में आशावान है।

आप जैसा कोई: नाजिया हसन

लगातार चौदह सप्ताह तक बिनाका की पहली पायदान पर इस गीत ने बजकर अपना साम्राज्य कायम किया था। नाजिया 'बात बन जाए गर्ल' के नाम से परिचित हो गई थी। नाजिया जब पहली बार भारत आई तब उसे उसके गाने ने क्या कहर ढाया है इसकी कल्पना नहीं थी। बंबई में ताजमहल होटल की छठी मंजिल के कमरे में अपने परिवार के साथ वह ठहरी थी। होटल की बालकनी से नीचे झाँककर वह अनायास चिल्ला पड़ी थी। नीचे सड़क पर बैंड पर बज रहा था आप जैसा कोई, नाजिया खुशी से झूम उठी। तब उसे बताया गया कि उसके इस गाने ने भारत में कितनी धूम मचा रखी है। बिनाका गीतमाला में आशा फिल्म के लता के शीशा हो या दिल हो, इस गीत को पीछे छोड़कर

बात बन जाए ने अपना अड्डा जमाया था। आज वह बात बन जाए गर्ल कहाँ खो गई? मेरी नजरों के सामने बैंड पर बजने वाले आप जैसा कोई को सुनते ही झूम उठने वाली छोटी सी नाजिया आती है।

है अपना दिल तो आवारा: हेमंतकुमार

देवआनंद के लिए सचिन दादा बर्मन ने किशोर और रफी को सिद्ध किया और हेमंतकुमार को भूल गए। किंतु इस एक गाने से हेमंतकुमार ने सिद्ध किया कि देव आनंद के गले में वे भी किशोर और रफी के समान एकदम सहज उतर सकते हैं। सचिन दादा के हेमंतकुमार से किशोर कुमार तक की यात्रा में रफी एक जंक्शन थे। १९५२ में 'जाल' में सचिन दादा ने देवआनंद के लिए हेमंतकुमार से 'ये रात ये चाँदनी फिर कहाँ' और किशोर से 'दे भी चुके हम दिल नजराना दिल का' गवाया था। हाउस नंबर ४४ में हेमंत से 'चुप है धरती चुप है चाँद-सितारे' और 'तेरी दुनिया में जीने से' ये गीत किशोर से ऊँचे सुर में अधिक प्रभावी ढंग से गवाए थे। 'मुनीमजी' में किशोर का देवआनंद के लिए गाया गया 'जीवन के सफर में राही' ये गीत बाजी जीत गया था। हेमंत का 'ओ शिवजी ब्याहने चले' याददाश्त में नहीं रहा। गीता दत्त के साथ का हेमंत का 'दिल की उमंगें हैं जवाँ' लोकप्रिय हुआ था किंतु उसके बाद दादा ने देव आनंद के लिए हेमंत कुमार का उपयोग नहीं किया। सोलवाँ साल फिल्म आई और 'है अपना दिल' की लोकप्रियता से दादा को सोचने पर मजबूर होना पड़ा कि हेमंत के बारे में उनके पूर्वाग्रह गलत थे। देव आनंद के गले से खरे रूप में उतरने के लिए हेमंत की आवाज अभी भी ताजा थी। बात एक रात की का 'ना तुम हमें जानो' और मंजिल का 'याद आ गई वो नशीली

नईदुनिया के यशस्वी ४२ वर्ष पूर्ण कर

४३ वें वर्ष में पदार्पण पर.....

हमारी

हार्दिक शुभकामनाएँ!

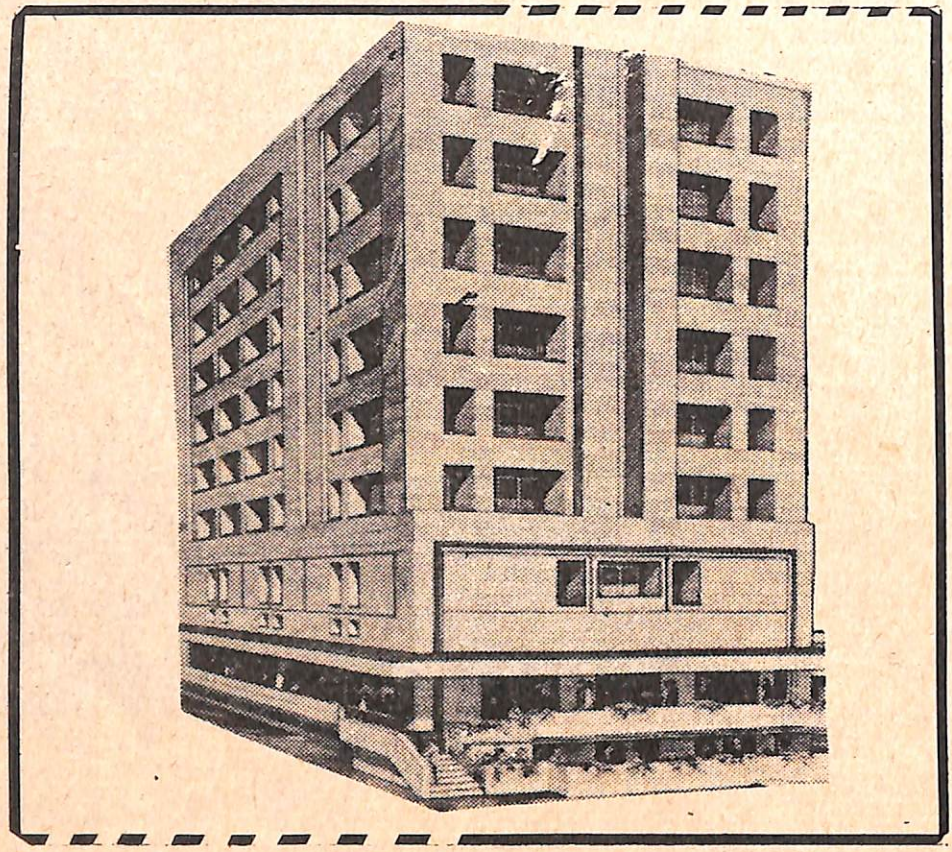

रणजीत कन्स्ट्रक्शन कं. प्रा. लि.

इमली बाजार, इन्दौर

फोनः ३१८३९

देव आनंद

निगाहें' ने हेमंत की आवाज पर पक्की मुहर लगा दी। इसके बाद भी सचिन दादा ने 'है अपना दिल तो आवारा' की तर्ज पर ज्वेलथीफ में 'ये दिल ना होता बेचारा' कंपोज किया तो इसके लिए उन्हें किशोर ही पसंद आए। सोलवाँ साल यदि आराधना के समान हिट होती तो संभव है दादा हेमंतकुमार को पुनः याद करते, परंतु वह नहीं हो सका और दादा हेमंतकुमार को भूल गए फिर भी 'है अपना दिल तो आवारा' आज भी जुबान पर चढ़ता है।

मुकेश

ये मेरा दीवानापन है: मुकेश

यहूदी फिल्म में गाने की बंदिश के लिए शंकर ने डमी शब्दों में 'ये मेरा दीवानापन है' का प्रयोग किया और आगे चलकर यही पंक्ति गाने की स्थाई पहचान बन गई। शंकर अपने शब्दों पर खुश थे और तर्ज मुकेश के गले के लिए खासतौर पर बनाई थी। यहूदी के हीरो दिलीपकुमार ने यह गीत तलत ने गाना चाहिए यह आग्रह किया था। शंकर को झटका लगा परंतु अंततः दिलीप ने समझौता किया और मुकेश की आवाज कबूल की और आज 'ये मेरा दीवानापन' के लिए तलत की आवाज का विचार करना भी हमें कल्पना से कोसों दूर लगता है। सुजाता का 'जलते हैं जिसके लिए' ये गीत रफी की आवाज में सुनना मन को विचलित करने वाला होगा। सच तो यह था कि दादा बर्मन को यह गीत रफी के ही गले में उतारना था। दिलीप कुमार को मधुमती में 'सुहाना सफर' टूटे हुए ख्वाबों ने और 'दिल तड़प तड़प के' वास्ते तलत की आवाज चाहिए थी। सलिल चौधरी को भी आपत्ति नहीं थी किंतु उस वक्त मुकेश के पास काम नहीं था। अतः तलत ने ही दिलीप को मुकेश की आवाज उधार लेने का आग्रह किया। उस समय ऐसा आपसी सहयोग था, प्रतिस्पर्धा नहीं थी। 'दाग' और 'शिकस्त' के गीत दिलीप के आग्रह की वजह से ही हमें तलत की सुमधुर आवाज में सुनना नसीब हुए। अन्यथा शंकर-जयकिशन के मन में वे गीत मुकेश से गवाना था। अब 'ए मेरे दिल कहीं और चल' 'कोई नहीं मेरा इस दुनिया में' 'हम दर्द के मारों को' को और सपनों की सुहानी दुनिया को 'तूफान में गिरी है जब जब फूल खिले, इन गीतों को मुकेश की आवाज की कल्पना करना भी असंभव है। उस वक्त हर गायक की अपनी खासियत थी और उनके गाए गीतों पर उनके आवाज की मुहर लग जाया करती थी। वह गाना उनकी स्थायी पहचान बन जाया करता था इसीलिए आज हम ये मेरा दीवानापन है के लिए सिर्फ मुकेश की आवाज को ही याद कर सकते हैं। *चंदेरी (मराठी) पत्रिका में राजू भारतन के आलेख का रूपांतरण।*

येसुदास

संभवतः येसुदास भारत के एकमात्र ऐसे गायक हैं, जिनके दो व्यक्तित्व हैं। एक रूप उनका फिल्मी गायक का है। आनंद महल फिल्म से उनका हिन्दी में आगमन हुआ। जब दीप जले आना-फिल्म चितचोर के इस गीत से उनकी पहचान बनी। सावन को आने दो फिल्म की सफलता में येसुदास का महत्वपूर्ण योगदान है। मन्नाडे की आवाज से मिलती-जुलती आपकी आवाज थोड़ी पतली है। येसुदास का दूसरा रूप कर्नाटक संगीत के शास्त्रीय गायक का है। जब वे मंच पर अवतरित होते हैं, तो कोई भी श्रोता उनसे फिल्मी गीत की फरमाइश की हिम्मत नहीं कर सकता। वे चेम्बाई वैद्यनाथ भगवतार के शिष्य हैं और वैद्यनाथ की कर्नाटक संगीत में वही हैसियत है, जो बड़े गुलाम अली खाँ की हिन्दुस्तानी संगीत में है।

जेट पम्प कोई भी खरीदें पानी देने की क्षमता का चार्ट अवश्य देखें सिर्फ लक्ष्मी जेट पम्प में ही है अधिकतम पानी देने की क्षमता

H.P.	K.W.	Approximate Discharge in imperial Gallons per hour at various Suction head						
		40'	50'	60'	70'	80'	90'	100'
0.5	0.37	460	350	290	240	205	–	–
1.0	0.75	600	580	480	430	410	370	330

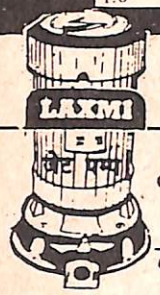

BANCO मोनो ब्लाक पंप

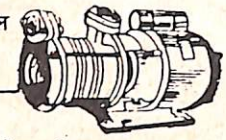

बैंको इंटरप्राइसेस
● हेड आफिस भोपाल - राजदूत होटल बिल्डिंग, 7 हमीदिया रोड फोन 77014, 72414 (Off)
● इंदौर आफिस –
४१, वेअरहाउस रोड विश्वकर्मा चेम्बर इन्दौर फोन-६८८१४

ATUL PUBLICITY

नईदुनिया के ४२ यशस्वी वर्ष पूर्ण कर ४३वें वर्ष में प्रवेश पर
हार्दिक शुभकामनाएँ !

सतना सुपर
बी.जे.एम.
खजुराहो

सी
मे
न्ट

चेतक सुपर
बी.जे.एम.
चेतक

निर्माता:–– बिड़ला विकास सीमेंट वर्क्स, सतना सीमेंट वर्क्स, सतना, बिड़ला सीमेंट वर्क्स, चित्तौड़ सीमेंट वर्क्स, चित्तौड़गढ़

बिड़ला जूट एण्ड इण्डस्ट्रीज लि. के उपक्रम

क्षेत्रीय कार्यालय: १५३, जावरा कंपाउंड, इन्दौर, फोन ६९९९२

Vigilance

।। शुभम भवतु यात्रायाम ।।

मध्यप्रदेश राज्य परिवहन निगम द्वारा सड़क यातायात की सुविधाओं में और अधिक विस्तार...

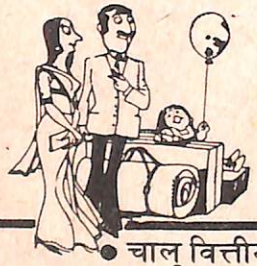

प्रदेश में एवं पड़ौसी राज्यों में निगम द्वारा ३००० वाहनें १६०० मार्गों पर प्रतिदिन संचालित की जा रही हैं। निगम की वाहनें प्रतिवर्ष २५ करोड़ किलोमीटर की दूरी तय करती हैं। लगभग १६ करोड़ यात्री प्रतिवर्ष निगम की वाहनों में यात्रा करते हैं।

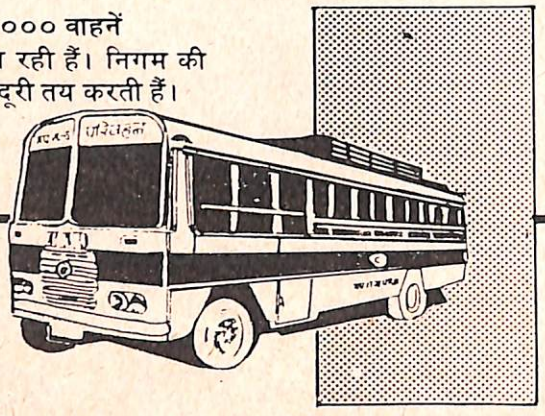

- चालू वित्तीय वर्ष में रुपये १४ करोड की लागत से ६०० नई वाहनें निगम के बेड़े में सम्मिलित की जावेंगी।
- कर्मशालाओं का आधुनिकीकरण।
- प्रदेश के विभिन्न अंचलों में और अधिक सुलभ परिवहन सेवा की दृष्टि से नये डिपो की स्थापना।
- नई और अधिक आरामदेह बसों का संचालन।
- साधारण बसों में भी "हाई बेकरेस्ट" सीटों का प्रावधान।

● विजय कुमार पाटनी
अध्यक्ष

● राजेन्द्र मिश्रा
उपाध्यक्ष

मध्यप्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम
हमारा लक्ष्य : सुविधा, स्वच्छता तथा समय की पाबन्दी

फिल्म को सुपरहिट कौन बनाता है

क्या किसी फिल्म का गीत-संगीत किसी फिल्म को सुपरहिट बना सकता है? आपका जवाब हाँ में भी हो सकता है और ना में भी। वास्तव में इस सवाल पर दो तरह से सोचने वाले लोग हैं। एक तरफ वे लोग हैं जो कि गीत-संगीत को ही फिल्म की जान मानते हैं। यहाँ तक कि वे अच्छी धुनों को ही सफल फिल्मों की गारंटी मानते हैं। दूसरी तरफ कुछ लोग ऐसे भी हैं जो यह मानते हैं कि सिर्फ गीत-संगीत ही फिल्म की कामयाबी या नाकामयाबी का निर्धारक नहीं होता। उनका कहना यह है कि वास्तव में जब बॉक्स ऑफिस पर कोई फिल्म सफल हो जाती है तभी उसके गीत-संगीत को प्रसिद्धि मिलती है। इसलिए फिल्म की प्रसिद्धि पहले है, गीत संगीत उसके बाद।

पहले वाले तर्क के पक्षधर अपने तर्क के पक्ष में ऐसी कई फिल्मों के नाम गिनाते हैं जो कि सिर्फ अपनी मीठी धुनों के कारण ही सुपरहिट हुई। **पाकीजा, हीरो, निकाह, उमराव जान, एक दूजे के लिए, कयामत से कयामत तक** जैसी कई फिल्मों के नाम उनकी जुबान पर रहते हैं, लेकिन ऐसा नहीं कि पहले तर्क वालों के पास ही सुपरहिट फिल्मों के उदाहरण हैं। दूसरे तर्क के हिमायती भी ऐसी कई फिल्मों के नाम गिना देते हैं जो कि न केवल बॉक्स ऑफिस पर हिट हुई बल्कि सुपरहिट भी हुई, लेकिन उनमें गीत- संगीत का पक्ष खास सशक्त नहीं था। **प्रतिघात, आज की आवाज, मेरी आवाज सुनो, अर्द्धसत्य, शोले** आदि कई उदाहरण वे अपनी दलील के पक्ष में देते हैं। फिर भी इस बात से शायद ही कोई इंकार करे कि संगीत और नृत्य हमारे सिनेमा का आवश्यक तत्व है और इसके बिना किसी फिल्म की कल्पना अधूरी लगती है। वास्तव में खास सवाल यह है कि फिल्म में गीत-संगीत को पेश कैसे किया जाता है? उसे जगह भरने के हिसाब से ठूँसा जाता है या फिर फिल्म की कहानी को ध्यान में रखकर उसे बड़े मधुर अंदाज से उसमें पिरोया जाता है। ऐसी फिल्मों के बहूतेरे उदाहरण हैं, जिनमें कि गीत-संगीत को बेहद खूबसूरत ढंग से पेश किया गया। **'गाइड'** में रोजी का चरित्र याद कीजिए। क्या ऐसा नहीं लगता कि वह गाने नाचने के लिए बनाया गया हो या फिर **दोस्ती** में रफी के गीतों को याद कीजिए। **उमराव जान** की धुनें जहाँ कानों को बेहद मीठी लगती हैं, वहीं फिल्म के मुजरे आँखों को भी भाते हैं। वी. शांताराम की **'झनक-झनक पायल बाजे'** में भारतीय शास्त्रीय संगीत और नृत्य की कल्पनाशीलता के साथ उम्दा प्रस्तुति कभी भी भुलाई नहीं जा सकती।

जंगली के साथ शम्मीकपूर ने भड़कीले और कलाबाजीपूर्ण नृत्य की परंपरा डाली। आज की फिल्मों में भी इसी अंदाज का, लेकिन थोड़ा इससे अलग नृत्य देखने को मिलता है। **डान** में अमिताभ बच्चन ने गीत संगीत के साथ कदमताल करते हुए अपने खास अंदाज से परिचित कराया तो **डिस्को डांसर** में मिथुन के पैरों का वह तालमेल और लय दर्शकों के दिलो-दिमाग पर छा गई।

इन सब उदाहरणों से एक बात एकदम खुलासा हो जाती है कि अकेला संगीत निर्देशक ही फिल्म को अच्छा संगीत नहीं दे सकता। बल्कि डांस डाइरेक्टर, अभिनेता, गायक और फिल्म के निर्देशक के सम्मिलित प्रयासों से ही किसी फिल्म को अच्छा संगीत मिल पाना संभव है। वास्तव में फिल्म संगीत अपने आप में एक विशेष प्रकार की कला का नाम है। यदि आप शास्त्रीय संगीत के अच्छे जानकार हैं तो इसका मतलब यह नहीं कि आप फिल्म को अच्छा संगीत दे सकते हैं या फिर आप अच्छी धुनें बना लेते हैं, तब भी इस बात की गारंटी नहीं कि आप सफल ही होंगे। धुन के साथ-साथ आपको वाद्य वृंदकरण (ऑर्केस्ट्रेशन) का भी कौशल होना चाहिए। यह ऑर्केस्ट्रा ही एक लिहाज से फिल्मी संगीत को गैर फिल्मी संगीत से अलग करता है। शंकर-जयकिशन और आर.डी. बर्मन जैसे लोगों को ऑर्केस्ट्रा को हिंदी सिनेमा में इस हद तक लाने का श्रेय जाता है। लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल और राजेश रोशन जैसे लोग भी ऑर्केस्ट्रा के उस्तादों में गिने जाते हैं।

इस सिलसिले में बहुत कुछ फिल्म के निर्देशक पर निर्भर करता है। गुरुदत्त की फिल्मों में अलग-अलग संगीतकारों एस. डी. बर्मन, ओ.पी. नय्यर, हेमन्त कुमार, रवि आदि ने संगीत दिया, लेकिन गीत- संगीत की दृष्टि से सभी फिल्में एक से बढ़कर एक सिद्ध हुई। इसके मूल में कही न कहीं गुरुदत्त के निर्देशन का कमाल ही था। राजकपूर को संगीत की बहुत अच्छी समझ थी। शायद इसी कारण शंकर- जयकिशन की जोड़ी राजकपूर की फिल्मों में इतना कर्णप्रिय संगीत दे सकी।

लेकिन फिल्म में सिर्फ अच्छा गाना और उस गाने का संगीत ही सब कुछ नहीं होता और भी दूसरी चीजें हैं, जिनमें महारथ हासिल किए बिना कोई भी सफल संगीतकार का दावा नहीं भर सकता। फिल्म में पार्श्व संगीत का अच्छा होना भी बहुत जरूरी है। आजकल बहुत से फिल्म निर्देशक कुछ घंटों के अंदर ही पूरी फिल्म का पार्श्व संगीत देकर छुट्टी पाने में रहते हैं। वहीं दूसरी तरफ आज भी ऐसे कई फिल्म निर्माता हैं जो कि फिल्म के पार्श्व संगीत पर भी पर्याप्त ध्यान देते हैं और जब

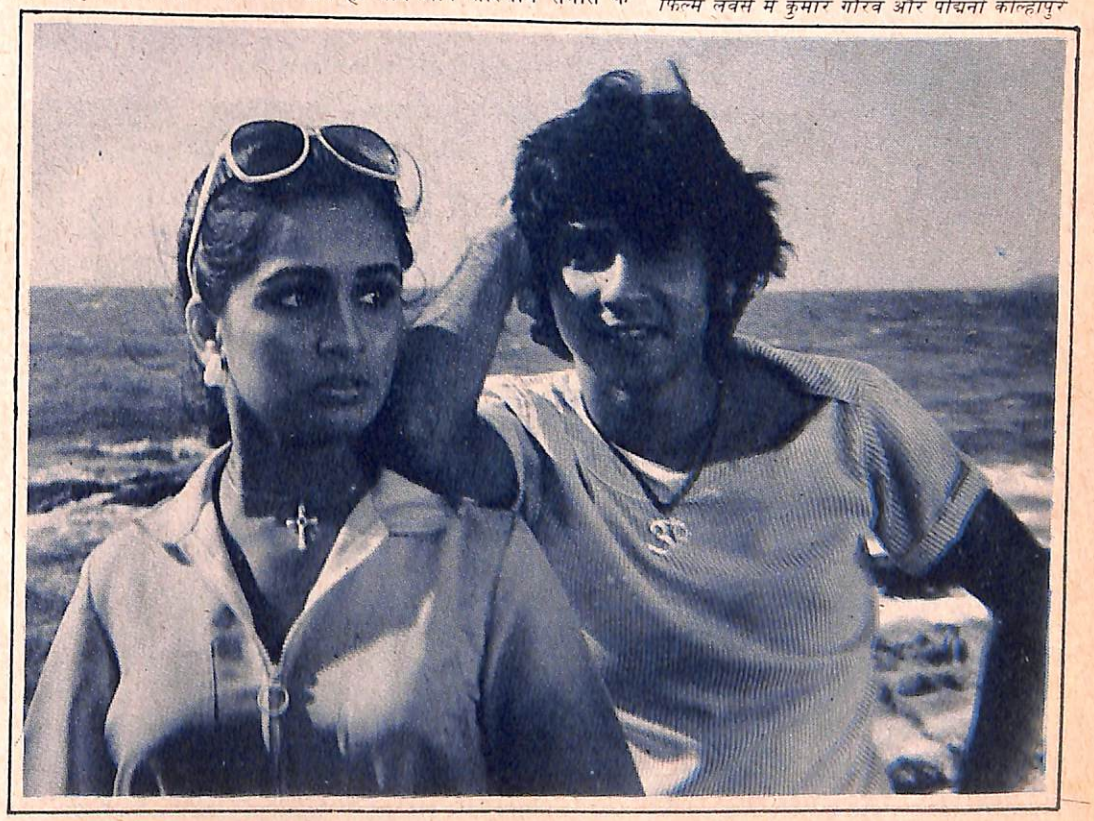

फिल्म लवर्स में कुमार गौरव और पद्मिनी कोल्हापुरे

naa/D/TX-88

हार्दिक अभिनन्दन !

फोन : ४०

पिपरिया में गत ४० वर्षों से दर्शकों की सेवा में

श्याम सवाक चित्रशाला

राधेश्याम जायसवाल, डॉ. घनश्याम जायसवाल, कमलकुमार जायसवाल, अजयकुमार जायसवाल

जिले के किसानों की प्रगति के लिए निरन्तर सेवारत

जिला सहकारी केंद्रीय बैंक मर्यादित, होशंगाबाद (म.प्र.)

के. एम. अग्रवाल
प्रबंधक

विजयकुमार पाण्डे
उपाध्यक्ष
एवं समस्त संचालकगण

श्यामलाल वाल्मीक
अध्यक्ष

आरामदेह निवास की शाही व्यवस्था ☎ २५९३

होटल पायल शुद्ध शाकाहारी भोजन

जोशी भोजनालय, बस स्टेंड, **धार**

स्वादिष्ट पोहा, समोसा, मिठाइयां, कोल्ड ड्रिंक्स

केफे बॉबी, बस स्टेंड, **धार**

Manufacturers of Refined Oils of all types
&
Cattle feed ingredients.

माइक्रो रिफाइंड तेल

Kabra Agro Industries Ltd.

Works : **PIPARIA-461 775 (M.P.)**

Gram: KABRAGRO * Phone: 227, 226, 223

Administrative Office :
314, Neelam, Worli Sea Face Road,
BOMBAY-400018

Gram: KABRAGRO * Phone: 4948294

तक संतुष्ट नहीं हो जाते तब तक रिकॉर्डिंग का काम चलता रहता है।

जहाँ तक पार्श्व गायन का सवाल है बिना इसकी चर्चा के फिल्म संगीत की बात अधूरी है। हकीकत में किसी प्रशिक्षण भर से कोई व्यक्ति अच्छा गायक नहीं बन सकता। इस सिलसिले में आवाज की गुणवत्ता (क्वालिटी) बहुत महत्व रखती है। यह कहना गलत न होगा कि आवाज का जादू ईश्वर प्रदत्त होता है। **युवा संगीतकार अन्नू मलिक** का यह कहना काफी हद तक सही प्रतीत होता है कि आज के संगीत निर्देशक विकलांगता की स्थिति में है। उनके अनुसार लम्बे समय तक पाँच महान गायक हिन्दी सिनेमा के पास रहे हैं। लता मंगेशकर, आशा भोसले, मोहम्मद रफी, मुकेश और किशोर कुमार। इस दौर में संगीत निर्देशकों की कामयाबी का एक राज यह था कि ऐसी आवाजें उनके पास थीं। रफी, मुकेश और किशोर कुमार इस दुनिया से जा चुके हैं और लताजी अब कम गाने गाती हैं। ऐसे में दूसरे दर्जे के श्रेष्ठ गायकों से काम चलाना पड़ता है। इसका नतीजा हमारे सामने है। संगीतकार लक्ष्मीकांत का कहना है कि नए गायकों के साथ एक-दो परेशानी और हैं या तो वे रफी, मुकेश और किशोर की नकल करते लगते हैं और या फिर उनके उच्चारणों में दोष है।

लेकिन सिर्फ फिल्म संगीत और गायकी ही विशेष विधा नहीं है, बल्कि फिल्मों के गीत लिखना भी विशेष कला है। एक कविता में कवि को अपनी भावनाओं को स्वच्छंदता से व्यक्त करने की आजादी होती है, लेकिन फिल्म के लिए गीत लिखते समय संगीत निर्देशक द्वारा तैयार धुन होती है। गीतकार के सामने दोहरी जिम्मेदारी होती है, एक तो वह धुन के हिसाब से शब्दों का चयन करे और साथ ही शब्दों के उस दृश्य के अनुरूप भावनाओं को भी लाए। यह कार्य आसान नहीं कहा जा सकता। वे ही गीत लम्बे समय तक यादों में रहते हैं जिनको न केवल संगीतकार ने धुन अच्छी दी हो बल्कि गीतकार ने शब्दों का सुंदर संयोजन भी किया हो। ■

ऐ चाँद छिप न जाना

संगीतकार कमल दास गुप्ता ने मीठे शब्दों को कागज पर उतारने वाला एक गीतकार दिया था। उनका नाम था पंडित मधुर। १९४० का समय था। न्यू थिएटर्स के पी.सी.बरुआ ने पंडित मधुर से अपनी फिल्मों- जवाब, रानी, बावला तथा हॉस्पिटल के लिए गीत लिखवाए थे। बाद में वे बंबई आ गए और संन्यासी (नौशाद), हुमायूँ (गुलाम हैदर), अभिमान (अनिल विश्वास), ललकार (सी. रामचंद्र), प्रभु की महिमा (हेमंत कुमार) के लिए गीत लिखे। इसके बाद उन्हें धार्मिक फिल्में मिलने लगीं जिनमें संपूर्ण रामायण, महाभारत तथा हरिशचंद्र तारामती उल्लेखनीय हैं। गीत के अलावा वे संवाद एवं पटकथा भी साधिकार लिखते थे। ये दुनिया तूफान मेल तथा ऐ चाँद छिप न जाना जैसे गीतों की मधुरता के कारण वे हमेशा याद किए जाएँगे। १९८८ में उनका निधन हो गया।

आवाज की जादूगरी: अमीन सयानी, व्रज और मधुर भूषण

आवाज की दुनिया के जादूगर

रेडियो पर फिल्म संगीत सुनते-सुनते बीच-बीच में कई चाहे-अनचाहे विज्ञापन भी सुनने पड़ते हैं। कई बार ये श्रोता को खिजाते हैं, तो अपने खूबसूरत अंदाज की वजह से कई बार लुभाते भी हैं। विशेषकर बच्चे गीतों की अपेक्षा विज्ञापन ज्यादा पसंद करते हैं। शायद उसकी वजह है इनकी संक्षिप्तता और आवाज एवं संगीत का अनोखा अंदाज जो सहज उनकी जबान पर चढ़ जाता है। इसलिए रेडियो के साथ-साथ वे भी गुनगुनाने लगते हैं— 'तंदुरुस्ती की रक्षा करता है...' या 'सोना-सोना नया...' आदि, आदि।

विज्ञापन की दुनिया में इन विज्ञापन गीत और संदेशों को 'जिंगल' और 'स्पॉट' के नाम से जाना जाता है। सुनने में हमें यह भले ही चंद सेकंड या मिनट के लगें लेकिन इन्हें तैयार करने में काफी लोगों का श्रम, पैसा और समय लगता है। जैसे फिल्मों में पार्श्वगायन के लता, रफी, किशोर, आशा, मुकेश आदि स्टार कहलाते हैं, वैसे ही विज्ञापन की दुनिया के ये पार्श्व स्टार हैं जो अपनी आवाज की जादूगरी के बल पर लाखों का वारा न्यारा करवाते हैं।

आवाज की इस दुनिया में हरीश भिमाणी का नाम इन दिनों तेजी से उभरा है। खासकर टी.वी. सीरियल महाभारत ने उन्हें बुलंदी पर बैठा दिया है। महाभारत के 'समय' की आवाज हरीश भिमाणी की ही है। पूरा भिमाणी परिवार इस प्रचार माध्यम से जुड़ा है। किसी समय ऐसे ही चर्चे अमीन सयानी के थे। बिनाका (अब सिबाका) गीतमाला की लोकप्रियता के पीछे अमीन सयानी की आवाज और उनकी प्रस्तुति का अंदाज ही प्रमुख तत्व रहा। जिस तरह आज महाभारत या रामायण सीरियल देखने के लिए लोग टी.वी. पर टूट पड़ते हैं, कमोबेश उसी तरह हर बुधवार की शाम बिनाका गीतमाला के नाम होती थी। यह बात उन दिनों की है, जब दूरदर्शन के पाँव भारत की धरती पर नहीं पड़े थे और ट्रांजिस्टरों का चलन आम नहीं था। रेडियो कुछ संपन्न लोगों के घर की शोभा समझे जाते थे। तब लोग बिनाका गीतमाला सुनने के लिए पंचायत, नगर पालिकाओं के सार्वजनिक श्रवण केंद्रों पर घंटे भर पहले से ही जमा होने लगते थे। विद्यार्थी अपने रेडियो वाले मित्र के घर की तलाश सुबह से शुरू कर देते थे। पश्चिम निमाड़ के जिला मुख्यालय खरगौन के बगीचे में तो किसी टॉकीज के हाऊसफुल की तरह बगीचा फुल का दृश्य नजर आता था। बिनाका के गीतों की पायदान को लेकर शर्तें लगती थीं कि इस बार फलाँ गीत फलाँ पायदान पर आएगा। लेकिन आज वही गीतमाला दूरदर्शन के आगे घुटने टेक चुकी है। बुधवार, चूँकि टी.वी. पर चित्रहार आता है इसलिए बिनाका वालों को अपना कार्यक्रम सोमवार पेश करना पड़ रहा है। फर्ज कीजिए, अगर सोमवार भी टी.वी. पर कोई लोकप्रिय कार्यक्रम आने लगे तो फिर क्या होगा?

बिनाका की लोकप्रियता किस हद तक थी, इसका एक दिलचस्प किस्सा और है। उन दिनों

हार्दिक शुभकामनाएँ

सोया उद्योग लिमिटेड

उच्चकोटि के सोयाबीन, सरसों, सूरजमुखी एवं मूँगफली रिफाइण्ड तेल एवं डी.ओ.सी. के निर्माता।

प्रशासकीय ऑफिसः–
४३, जावरा कंपाउंड,
इन्दौर
फोन :
६८८९०,
६८८९१,
६८८८१

फैक्टरीः––
अकोदिया रोड,
शुजालपुर
फोन :
१२८,
१३०, १४५,
१४६, १२६

हार्दिक शुभकामनाएँ

AKAI BUSH
Hi-Fi Systems PRO-A1
240 WATTS

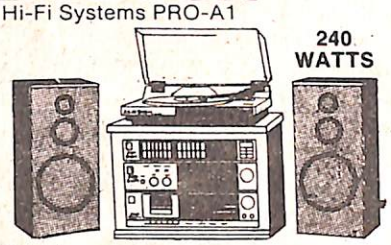

Limited Stock Available

Elsons

38, M.T.H.Compound, INDORE 452 007

Swift-8968

२४ घंटे में पानी ही पानी

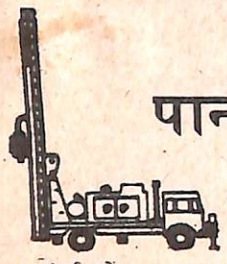

४ से ६ इंच अत्याधुनिक मशीन द्वारा

संपर्क करें––

(१) रॉक ड्रिल इंजीनियर्स
१५, चौबे मार्ग, आदर्श कुटीर,
शुजालपुर मंडी
फोन : ४ व १६६

(२) आगरा-बाम्बे रोड, पचोर

सहयोगी प्रतिष्ठान––

बापूलाल गुलाबचंद
स्वप्निल अभिकरण, शुजालपुर मंडी

मदमाती खुशबू की तरंग
तन मन महकें माजा के संग

माजा

अगरबत्ती

निर्माता
शशि इन्डस्ट्रीज़,
भावनगर
वितरक :
अनन्त उपयोगी वस्तु भंडार,
सियागंज, इन्दौर

हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ !

ठेकेदार संघ

लोक निर्माण विभाग,
शुजालपुर

गुलशन-गुलशन : तबस्सुम

विनोद शर्मा

शीलकुमार

राजकपूर की फिल्म संगम रीलिज हुई थी। इसके एक गीत 'ये मेरा प्रेम पत्र पढ़कर' की धुन जयकिशन ने बनाई थी और 'दोस्त-दोस्त ना रहा' की शंकर ने। जब किसी तरह तिकड़म से 'प्रेम पत्र पढ़कर' गीत अंतिम पायदान पर पहुँच गया और 'दोस्त-दोस्त ना रहा' पीछे रह गया तो इस बात को लेकर शंकर व जयकिशन की जोड़ी में मनमुटाव हो गया था।

रेडियो सीलोन की लोकप्रियता का राज भी कुछ हद तक बिनाका गीतमाला और उस पर प्रसारित होने वाले फिल्मों के प्रायोजित रेडियो कार्यक्रमों को जाता है। प्रारंभ में आकाशवाणी पर विज्ञापन सेवा (विविध भारती) नहीं थी जबकि रेडियो सीलोन १९५१ से इसे चला रहा था। रेडियो सीलोन की सफलता से प्रेरित होकर ही १ नवंबर १९६७ से विविध भारती पर भी विज्ञापन सेवा शुरू करनी पड़ी।

इस विज्ञापन सेवा की वजह से ही आवाज की दुनिया के कई जादूगर प्रायोजित कार्यक्रमों के जरिए श्रोताओं का मन बहला रहे हैं। जिनमें कुछ उल्लेखनीय हैं। इंस्पेक्टर ईगल के विनोद शर्मा, फूल खिले हैं गुलशन-गुलशन की तबस्सुम, शील कुमार, हसन रिजवी, बृज और मधुर भूषण। आज के प्रसिद्ध फ़िल्म अभिनेता और नेता सुनील दत्त भी किसी समय रेडियो सीलोन पर उद्घोषक थे।

लेकिन आवाज की इस दुनिया में अमीन सयानी जितनी ख्याति अब तक कोई अन्य नहीं अर्जित कर सका। उनका बहनों और भाइयों कहने का अंदाज ही कुछ और है। उन्हें आवाज की दुनिया का बेताज बादशाह कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। अमीन सयानी का संबंध ९ वर्ष की उम्र से ही रेडियो से जुड़ गया था। उस समय वे ऑल इंडिया रेडियो पर बच्चों के कार्यक्रमों में भाग लिया करते थे। उन्हें आगे बढ़ाने का श्रेय है बड़े भाई हमीद सयानी को। हमीद साहब बोर्नवीटा क्वीज कॉन्टेस्ट से प्रसिद्धि पा चुके हैं। आज अमीन सयानी सा. के पास इतना काम होता है कि वे सुबह १० बजे से रात १० बजे तक रिकॉर्डिंग में लगे रहते हैं। प्रति सप्ताह उनके पास दो से ढाई हजार पत्र आते हैं। जिस कार्यक्रम में पुरस्कार की घोषणा होती है उसमें ५० हजार तक पत्र प्राप्त होते हैं। एक हफ्ते मराठा दरबार अगरबत्ती के एक इनामी कार्यक्रम के लिए उनके पास डेढ़ लाख पत्र आए थे। इन पत्रों को पढ़ने के लिए ही आठ व्यक्तियों को लगाना पड़ा। अमीन सयानी ने कई फिल्मी कार्यक्रमों का संचालन भी बखूबी किया है। वे 'भूत बंगला' नामक एक फिल्म में परदे पर भी दिखाई दिए थे।

अमीन सा. की तरह **तबस्सुम** भी बचपन से रेडियो से जुड़ी हैं। जब वे ३ वर्ष की थीं तब ही बेबी तबस्सुम के रूप में बच्चों के कार्यक्रमों में भाग लेना शुरू कर दिया था। उसके बाद फिल्में में भी आईं। लेकिन जो सफलता उन्होंने आवाज की दुनिया में पाई, वह दृश्य की दुनिया में नहीं जुटा सकीं। अमीन सयानी के साथ उनका कार्यक्रम महकती बातें खूब लोकप्रिय हुआ। तबस्सुम की अमीन भाई भी खूब तारीफ करते हैं। उनके अनुसार कई मर्तबा तबस्सुमजी बिना स्क्रिप्ट देखे ही प्रोग्राम रिकॉर्ड करा देती हैं। तबस्सुम इसके अलावा एक शायरा व लेखिका भी हैं। उनकी ९ किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'पंखुड़ी गुलाब की' नामक काव्य संग्रह काफी लोकप्रिय हुआ है। अपने बेटे को फिल्मों में लाने के लिए उन्होंने एक फिल्म भी बनाई थी, मगर पिट गई।

आवाज की दुनिया की एक अन्य हस्ती हैं **विनोद शर्मा**। उनके कार्यक्रमों में 'इंस्पेक्टर ईगल' तथा 'कोहिनूर गीत गुँजार' ने खूब ख्याति अर्जित की। विनोद शर्मा १९४८ से आवाज की दुनिया में आवाज लगा रहे हैं। वे पहले ऑल इंडिया रेडियो में स्टाफ आर्टिस्ट थे। १९५८ में रेडियो की नौकरी छोड़ दी। १९६८ तक व्यावसायिक कार्यक्रमों के क्षेत्र में संघर्ष करते रहे। आज एक स्थापित नाम हैं।

शर्माजी फिल्मी गीतों के पीछे व्यवसायियों की भीड़ से परेशान हैं। उनके अनुसार फिल्म जगत की भाँति कमर्शियल ब्रॉडकास्टिंग भी भेड़ चाल बनकर रह गया है। किसी एक प्रकार का जिंगल या स्पॉट लोकप्रिय हुआ नहीं कि लोग उसी की तर्ज पर अपना भी बनवाने की माँग करते हैं।

बैंक ऑफ बड़ौदा की संगीत पहेली और मफतलाल की अमृतवाणी के जरिए श्रोता **बृज** की आवाज से भी अच्छी तरह परिचित हैं। श्रीनगर में जन्मे बृज भी बचपन से रेडियो से जुड़े हैं। संगीत और फिल्म में अभिनय का शौक उन्हें बंबई खींच लाया। बिरहन फिल्म में वे मधुबाला के हीरो रह चुके हैं। उन्होंने पठान, मिलाप और जरूरत नामक फिल्मों में संगीत दिया है। लगभग ३०० से अधिक फिल्मों व वृत्तचित्रों में उनकी आवाज का इस्तेमाल हुआ है। बृज का विवाह मधुबाला की छोटी बहन चंचल से हुआ है। बृज अपने इस पेशे में भी कुछ उसूलों पर चलते हैं। किसी वस्तु का प्रचार करने से पहले वे उसकी गुणवत्ता को परखने का प्रयास करते हैं। फिल्मों के प्रचार में वे विशेष ध्यान देते हैं। चाहे जैसी फिल्मों के प्रचार के लिए अपनी आवाज़ नहीं देते। उनकी पत्नी मधुर भूषण नाम से इस कार्य में उनकी हम संगिनी हैं।

रेडियो पर भारी भरकम रौबीली आवाज सुनते ही **हसन रिजवी** की याद आती है। उत्तरप्रदेश के गाजीपुर में जन्मे रिजवी १९४९ से बंबई में हैं। १९५३ में अमीन सयानी के संपर्क में आए और तब से इस क्षेत्र में बढ़ते ही जा रहे हैं। उनका पहला स्पॉट महबूब प्रा. की 'पैसा ही पैसा' फिल्म के लिए रिकॉर्ड हुआ था। उसके बाद केदार शर्मा ने भी उन्हें काफी प्रोत्साहित किया।

शील कुमारजी को लोग बी.के.. अंत्याक्षरी नामक प्रोग्राम से जानते हैं। उनका अपना स्टूडियो है। वे लखनऊ के हैं। १९४९ में ऑल इंडिया रेडियो से जुड़े और १९५५ में बंबई आए। शील कुमारजी ने वी. शांताराम की फिल्म 'दो आँखें बारह हाथ' में भूमिका भी की है। १९६९ तक रेडियो सीलोन से जुड़े रहे। १९७० में अपना स्वतंत्र स्टूडियो खोला। बी.के. अंत्याक्षरी के माध्यम से उन्होंने फिल्म दुनिया को कई अच्छे गायक दिए। शैलेन्द्रसिंह ने सबसे पहले उनके इस कार्यक्रम में ही गीत गाया था। गुड्डी फेम वाणी जयराम को आगे लाने का श्रेय भी आपको है। इनके अलावा प्रताप शर्मा (फिल्म 'फिर भी' के नायक) की आवाज भी कई कार्यक्रमों में सुनाई देती है।

मीठी आवाज के मालिक मास्टर निसार

भारत की पहली बोलती 'आलमआरा' के अभिनेता **मास्टर निसार** मीठी आवाज के गायक भी थे। उन्होंने बोलती फिल्मों की शुरूआत में अपनी रसीली आवाज में गाकर दर्शक-श्रोताओं को मोहित किया था। शीरी-फरहाद फिल्म में सत्रह गाने थे, जिनमें से अधिकांश उन्होंने गाए थे। इस फिल्म का रिकॉर्डिंग बेहतर हुआ था, इसलिए गानों की क्वालिटी आलमआरा की तुलना में अच्छी थी। अभिनेत्री कज्जन के साथ मास्टर निसार की जोड़ी बहुत लोकप्रिय हुई थी। वह जमाना रोमांटिक कहानियों का था। शकुंतला, लैला-मजनू, इंद्रसभा जैसी गीत-संगीत प्रधान फिल्मों में गाकर तथा अभिनय कर मास्टर निसार ने अपनी विशेष जगह बना ली थी। कलकत्ता से बंबई आकर भी उन्होंने अपनी धाक जमाई। सरदार अख्तर के साथ अनेक भूमिकाएँ निभाई।

मास्टर निसार के अंतिम दिन बहुत बुरे गुजरे। फिल्म कलाकारों के कल्याण-कोष से उन्हें पचास रुपए महीना गुजारा भत्ता मिलता था। फाकाकशी में गुमनामी की मौत उन्हें १३ जुलाई १९८२ को छीन ले गई।

'सरगम का सफर' के प्रकाशन पर शुभ कामनाएँ.....

प्रकाश पिक्चर्स (फिल्म वितरक)

अमरावती, जगदलपुर

* **राकेश सॉ मिल**
इतवारा बाजार, पिपरिया, फोन : २५५

* **जायसवाल सॉ मिल, हथवाँस, पिपरिया**, फोन : २५४

* **महेश टिम्बर्स, पिपरिया**
लकड़ी के थोक एवं फुटकर विक्रेता

Phone: 2777, 2222, 2532, 2488
A GOOD NAME IN THE CEMENT WORLD

M/s. Jai Bajrang Cement (P) Ltd.

JBC BRAND (ISI) Mark Cement
Means Quality and Strength

Factory:
Vill. Pandaripani
Geedam Road,
P.O. **Jagdalpur**, Bastar (M.P.)

Regtd. Office:
Urala Industrial
Area, **Raipur.**

ग्राम : बोमिल दूरभाष : २६९८, २७९८

दी बस्तर आयल मिल्स एण्ड इण्डस्ट्रीज लि.
कुरन्दी रोड, जगदलपुर बस्तर (म.प्र.)
(सालवेंट एक्सट्रेक्शन प्लांट)
उच्चकोटि के साल तेल, राइसब्रान तेल
एवं खल्ली के निर्माता एवं निर्यातक।
वर्ष १९८७ में देश में सर्वाधिक उत्पादन
करने पर पुरस्कृत इकाई

उत्तमता की पहचान--
रुद्र सीमेंट
रुद्र सीमेंट, जगदलपुर,
बस्तर (म.प्र.)
पृथ्वी अग्रवाल
प्रबन्ध संचालक

रुद्र सीमेन्ट
उत्तम सीमेंट

पाताल से भी पानी
इंगर सोलरेंड की कांबीनेशन मशीन द्वारा
सिर्फ ६ घंटे में पानी ही पानी ४ से ८ इंच तक
एक हजार फीट की गहराई तक बोरवेल।

संपर्क करें-- **विजय रॉक ड्रिलर्स, पचोर**
फोन : ४१

सहयोगी प्रतिष्ठान-- फर्म भेरूलाल ब्रजमोहनदास एण्ड संस,
विजय बोरवेल, विजय मोटर्स ट्रांसपोर्ट कंपनी,
शुजालपुर मंडी, फोन : ६, ९, १६१

शाम ढले, खिड़की तले तुम सीटी बजाना छोड़ दो

इसाक मुजावर

प्ले बैक! पार्श्व गायन! अर्थात जो कलाकार स्वयं गा नहीं सकता उसे किसी और की आवाज उधार देना।

लेकिन जिस समय यह प्ले बैक की प्रथा शुरू हुई थी, उस समय लगता है यह परिभाषा इतनी सीमित नहीं थी। वह जमाना आज की तरह न गाने वाले अभिनेताओं का जमाना न था। के.एल. सहगल, सुरेंद्र, के.सी.डे., पहाड़ी सान्याल, असित बरन जैसे गाने वाले अभिनेताओं का बोलबाला था और कुछ एक अशोक कुमार, मोतीलाल जैसे अभिनेता भी थे, जो गायक तो न थे फिर भी परदे पर अपने गीत अपने ही सुर में गाने की कोशिश किया करते थे और गाने की इस कोशिश को लेकर किसी को कोई शिकायत भी नहीं होती थी। गायक अभिनेताओं के गीतों के साथ-साथ इन न गानेवालों के गाए गीत भी उन दिनों काफी लोकप्रिय रहे थे।

अशोक कुमार के गाए वे गीत - न जाने किधर आज मेरी नाव चली रे, चल चल रे नौजवान, धीरे-धीरे आ रे बादल, डोल रही है नैया मेरी कितने लोकप्रिय रहे थे। सहगल गायक अभिनेता थे, लेकिन अशोक कुमार के इन गीतों की लोकप्रियता ने सहगल के गीतों की लोकप्रियता की बराबरी की थी। आज की परिभाषा में ये गीत उस समय के 'बिनाका सरताज' गीत थे।

इस बात को देखते हुए यह हरगिज नहीं लगता कि जो गा नहीं सकते, उनके लिए उधार की आवाज का इंतजाम करने भर के लिए प्ले बैक प्रथा का आरंभ हुआ होगा। तो फिर...?

प्ले बैक के प्रवर्तनकार थे निर्माता निर्देशक नितिन बोस। न्यू थिएटर्स की बंगला फिल्म 'भाग्य चक्र' के साथ-साथ उन्होंने इस नई प्रथा का सूत्रपात किया। न्यू थिएटर्स की हिंदी फिल्में 'धूप छाँव' के साथ यह प्रथा हिंदी में भी आ गई। गाने वाले कलाकारों को कैमरे के सामने खुलकर व्यवहार करने में आसानी हो, अभिनय पर वे एकाग्र हो सकें- इसी उद्देश्य से नितिन बोस ने इस नई प्रथा की शुरूआत की।

इससे पहले कई बार होता यह था कि कलाकार कैमरे के सामने गाते समय खुलकर अभिनय नहीं कर पाता। माइक की पोजिशन का ध्यान रखने में चलने फिरने की, अभिनय की सीमाएँ बंध जाती। यही नहीं साथ के साजिंदों को भी गाने वाले कलाकार के आस-पास पीछे कहीं बैठ जाना पड़ता था, इन साजिंदों को आउट ऑव कैमरा रखकर गीत का फिल्मांकन करने वाले छायाकार की हालत और भी खस्ता हो जाया करती थी और इतनी कोशिशों के बावजूद कभी- कभी साजिंदों को आउट ऑफ कैमरा रखने में बेचारा कई बार बुरी तरह असफल रह जाता। प्रभात की पहली मराठी सवाक फिल्म 'अयोध्येचा राजा' में एक दृश्य है- तारामती (दुर्गा खोटे) नाव में बैठी शोक गीत गा रही है। नाव में उसके पीछे बैठे हुए साजिंदें भी बरबस दिखाई दे रहे हैं, क्योंकि कैमरा उन्हें लाख कोशिशों के बावजूद नहीं टाल पाता।

और अपने समय की हिट फिल्म 'प्रेसीडेंट' (न्यू थिएटर्स)। 'एक बंगला बने न्यारा' गाते समय जिन कठिनाइयों का सामना सहगल करते हैं, वे किसी से छिपी नहीं होंगी। एक तरफ एक परदे पर बनाया गया बंगले का चित्र ठीक वैसा जैसा नाटक में पृष्ठभूमि के परदे पर बनाया जाता है। बार-बार उस चित्र की तरफ इशारा कर करके 'एक बंगला बने न्यारा' गाते समय माइक की पोजिशन का भी ख्याल रखते हुए सहगल जिस अजीब हालत से गुजरते हैं उसे भुलाना मुश्किल है।

कलाकार एकाग्र एवं निश्चिंत होकर गा सके और कैमरे के सामने अपना सारा ध्यान अभिनय पर केंद्रित कर सके, इसी उद्देश्य से नितिन बोस ने प्ले बैक पद्धति का आरंभ किया। सहगल, सुरेंद्र, अशोक कुमार, पहाड़ी सान्याल तब अपने-अपने गीत पहले रिकॉर्ड करवा कर शूटिंग के समय उन बोलों के अनुसार महज होंठ हिलाने लगे। फिर इसी से होंठ हिलाने वाले अभिनेताओं के लिए उधार सुरों का प्रबंध करवाने की कल्पना का उद्गम हुआ।

और आज तो यही प्ले बैक का प्रमुख उद्देश्य बनकर रह गया है। धीरे-धीरे गाने वाले अभिनेता परदे के पीछे छिपते चले गए। इस दौर के अंत के साथ ही साथ नए 'संगीत अभिनेताओं' के नए दौर की शुरूआत हुई। इसका सारा श्रेय भी इसी प्ले बैक पद्धति को देना पड़ा।

आखिर यह 'संगीत अभिनेता' क्या बला है? आज हम पुरानी फिल्में जब दुबारा देखते हैं, तब यह बराबर महसूस होता रहता है कि सहगल, सुरेंद्र, अशोक कुमार, पहाड़ी सान्याल, के.सी. डे गाने वाले अभिनेता भले ही रहे हों, उनमें 'संगीत' की कमी खटकती रहती थी।

कैमरे के सामने खुला अभिनय कर पाना प्ले बैक पद्धति का प्रमुख उद्देश्य था। इसे जितना आज के न गाने वाले और उधार आवाज लेने वाले अभिनेता समझ रहे हैं उतना कल के गाने वाले कलाकारों ने नहीं समझा था। उन पुरानी फिल्मों की तुलना में जब हम 'जंगली' जैसे शम्मी कपूराना स्टाइल की फिल्मों को रखते हैं तभी इस बात का पता चलता है। सहगल आदि गाने वाले कल के अभिनेताओं के अभिनय में जिस ताल-लय-रिद्म की कमी हम बराबर महसूस करते रहते थे वही शम्मी के अभिनय में कूट-कूट कर भरे हैं। इसलिए मैं उन्हें सही मानो में संगीत अभिनेता कहता हूँ।

कल संगीत अभिनेता की परिभाषा थी गाने वाला अभिनेता। आज यह परिभाषा बदल गई है। जो खुद भले ही न गाता हो पर दूसरे की आवाज के ताल-लय को जो अपने अभिनय में सही-सही पकड़ पाता है वही आज का संगीत अभिनेता कहलाएगा।

और इन सब संगीत अभिनेताओं के प्रतिनिधि हैं शम्मी कपूर, लेकिन इस दौर को आरंभ करने का श्रेय किसी और को ही देना पड़ता है। महमूद की फिल्म 'कुँवारा बाप' में सज रही गली तेरी अम्मा, सुनहरी गोटे में, गीत पर नाचने वाले बूढ़े मुमताज अली को देखा होगा। लेकिन गायक अभिनेताओं के उस जमाने में वे हिंदी फिल्म व्यवसाय के एकमात्र नर्तक अभिनेता थे। उनका नृत्य बॉम्बे टॉकीज की हर फिल्म का विशेष आकर्षण रहा करता। बॉम्बे टॉकीज की फिल्म 'झूला' में उनका नृत्य 'मैं तो दिल्ली दुल्हन लाया रे बाबूजी' अभी तक याद किया जाता है। अपने बचपन में शम्मी कपूर द्वारा कोल्हापुर के एक गणेशोत्सव में इसी गीत पर प्रस्तुत किया हुआ नृत्य भी मुझे याद है। (स्व. पृथ्वीराज कपूर उन दिनों कोल्हापुर में थे)।

इसलिए मेरे खयाल में यह मानना पड़ेगा कि शम्मी कपूराना संगीत-अभिनय के इस दौर का आरंभ मुमताज अली के नृत्यों से ही हुआ था।

मुमताज अली के बाद संगीत अभिनय के क्षेत्र में दूसरा नाम आता है मा. भगवान का। उन्होंने नए हँसते-गाते- नाचते अभिनेताओं के व्यक्तित्व का विकास किया। उनकी हर हरकत में एक रिद्म था। इसी के बल पर नाडिया-जान कावस के जमाने में उन्होंने फिल्मों को एक नई सूरत दी। उनका साथ दिया संगीतकार सी. रामचंद्र ने। उन्होंने फिल्म संगीत का नया रिद्म, नया ताल दिया। यही ताल मा. भगवान की फिल्मों का स्थाई भाव बना। **'नजर मिली, हम भी मिले, तुम भी मिले, किसी की जान जल गई, हमारी दाल गल गई'** के रिद्म

शम्मीकपूर

पर किए गए मा. भगवान के नृत्य ने अपने विशेष दर्शक वर्ग का निर्माण किया था।

शुरू-शुरू में मा. भगवान का यह तालबद्ध नृत्य केवल स्टंट फिल्मों तक ही सीमित था, लेकिन धीरे-धीरे गंभीर प्रवृत्ति में मा. भगवान ही बदलाव लाए। १९५१ में बनी उनकी फिल्म 'अलबेला' से पहले सामाजिक फिल्मों के नायक को अपनी ही

बेलटेक टी
अब! मध्य प्रदेश

कितनी बेहतरीन क्वालिटी! कलर व ब्लैक

बेलटेक! टी वी की दुनिया में एक ज़ानदार
नयी मिसाल. एक से एक शानदार मॉडलों
दामों पर. देर न कीजिये.... आज ही बेलटे

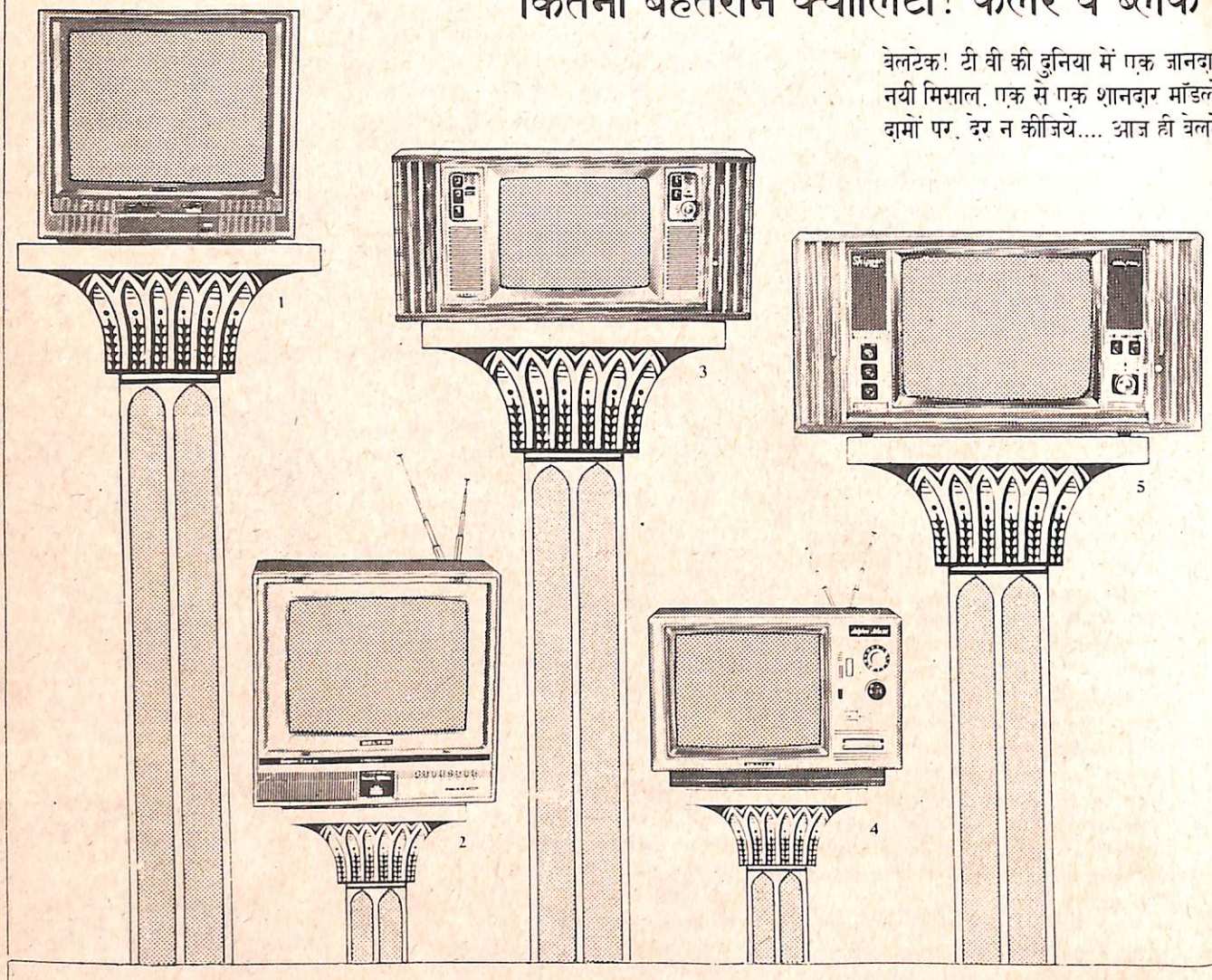

बेलटे

शार्प फ़ोकस टी वी

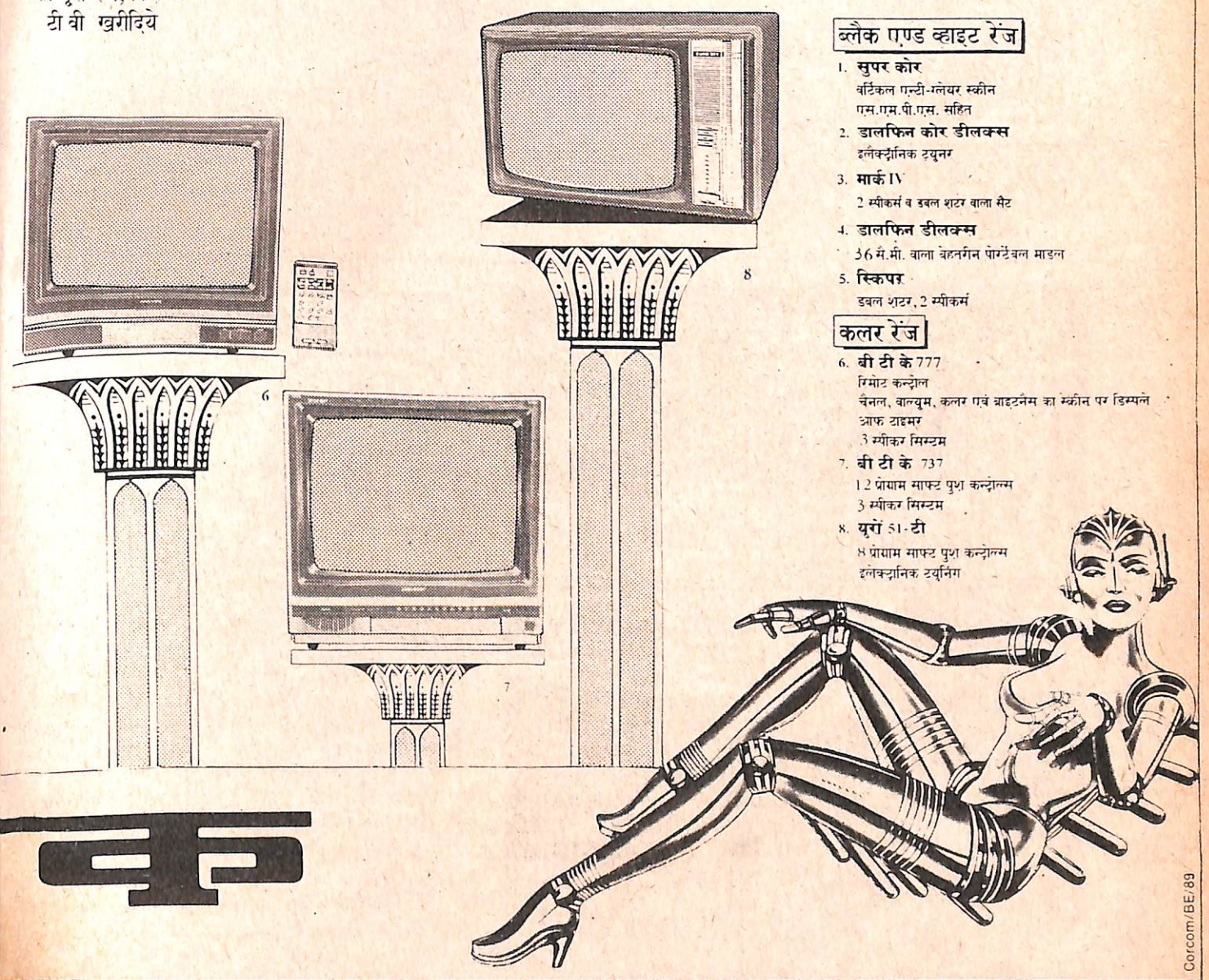

BELTEK
वी
में सेल्स टेक्स फ़्री!
एण्ड व्हाइट टी वी की शानदार रेंज.
नाम. क्वालिटी की एक
की पूरी रेंज, किफायती
टी वी खरीदिये
ब्लैक एण्ड व्हाइट रेंज
1. सुपर कोर
वर्टिकल एन्टी-ग्लेयर स्कीन
एस.एम.पी.एस. सहित
2. डालफिन कोर डीलक्स
इलैक्ट्रानिक ट्यूनर
3. मार्क IV
2 स्पीकर्स व डबल शटर वाला सैट
4. डालफिन डीलक्स
36 सें.मी. वाला बेहतरीन पोर्टेबल माडल
5. स्किपर
डबल शटर, 2 स्पीकर्स
कलर रेंज
6. बी टी के 777
रिमोट कन्ट्रोल
चैनल, वाल्यूम, कलर एवं ब्राइटनैस का स्कीन पर डिस्पले
आफ टाइमर
3 स्पीकर सिस्टम
7. बी टी के 737
12 प्रोग्राम साफ्ट पुश कन्ट्रोल्स
3 स्पीकर सिस्टम
8. यूरो 51-टी
8 प्रोग्राम साफ्ट पुश कन्ट्रोल्स
इलेक्ट्रानिक ट्यूनिंग
6
7
8
Corcom/BE/89

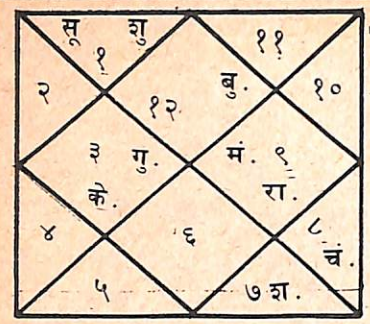

प्रदेश के प्रथम कम्प्यूटर ज्योतिष केन्द्र द्वारा जन्म कुण्डली द्वारा भविष्य जानिए!

एस्ट्रो कम्प्यूटर्स

४०३, चेतक सेन्टर, होटल श्रीमाया के पास, चौथी मंजिल, **इन्दौर-१**, फोन : ३३३३७

जन्म कुण्डली रु. १०/-, वर्षफल २५ रु.,
संपूर्ण जन्म पत्रिका रु. १००/-
नीचे लिखित जानकारी भिजवाना अनिवार्य है:–

(१) नाम (२) जन्म का समय AM/PM (३) जन्म की तारीख (४) जन्म का स्थान।

विशेषः––

* हमारे यहाँ सभी कार्य विद्वान ज्योतिषियों के मार्गदर्शन में ही किया जाता है।
* अधिक जानकारी के लिए रूबरू संपर्क करें।
* वर-वधू जन्म कुण्डली का भी मिलान किया जाता है।

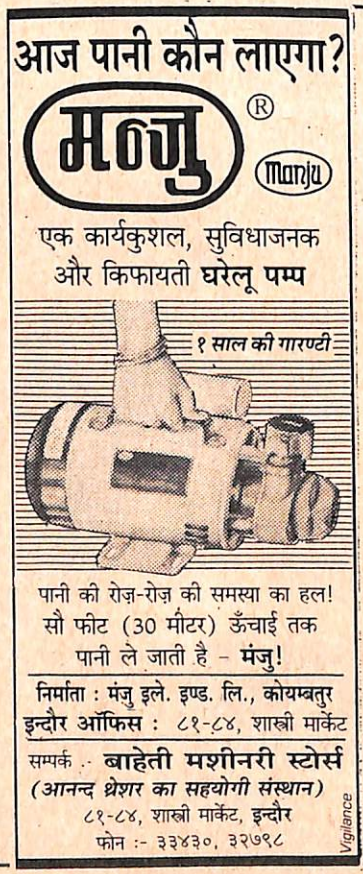

Vigilance

धुन में नाचते हुए कभी नहीं देखा गया था, लेकिन मा. भगवान ने इस असंभव को संभव बना दिया और 'अलबेला' के साथ अपने गाने नाचने वाले नायक को वे ससम्मान सामाजिक फिल्मों में ले आए और आज तो हर नायक गाने की धुन पर नाचता हुआ ही नजर आता है।

सी. रामचंद्र के संगीत का अनोखा रिदम भी इस युगांतर की एक प्रेरणा बन गया। फिल्मिस्तान की 'सरगम' (१९५०) में उनके संगीत से सजे हुए गीतों- मैं हूँ एक खलासी, मेरा नाम है भीम पलासी, यार वैवैं यार, मैं हूँ अल्लादीन, मेरे पास चिरागे-दीन, मोबासा का रिदम याद कीजिए और याद कीजिए उस रिदम पर नाचने वाले राज कपूर को। स्टंट फिल्मों में काम करने वाले मा. भगवान की अभिनय शैली का प्रभाव सामाजिक फिल्मों में काम करने वाले राज कपूर पर भी जबरदस्त रहा था। 'अलबेला' के साथ मा. भगवान जब स्टंट से सामाजिक के स्तर पर आए तब कहते हैं राज साहब ने उनसे कहा था, "दादा, आप स्टंट को छोड़ सोशल में ना आइए, वर्ना मेरी छुट्टी हो जाएगी।"

राज कपूर ने संगीत अभिनेताओं की इस परंपरा को आगे बढ़ाया।

अशोक कुमार प्रोडक्शंस की फिल्म 'रागिनी' (१९५८) में रफी का एक गीत था 'मन मोरा बावरा' परदे पर वह किशोर कुमार ने गाया था। गलतफहमी यह फैल गई थी कि चूँकि शास्त्रीय संगीत पर आधारित धुनें पेश करना किशोर के बस के बाहर की बात है, इसलिए उन्हें रफी की आवाज उधार लेनी ही पड़ी। बात यह नहीं थी। रागिनी की तैयारी जब शुरू हुई, उस समय नायक की भूमिका भारत भूषण अदा करने वाले थे और उनकी इमेज को ध्यान में रखते हुए संगीतकार ओ.पी. नय्यर ने यह गीत रफी की आवाज में गवा लिया था।

'अभिनय के संगीत' के और एक नए आयाम को महसूस किया स्व. गुरुदत्त ने। वे मौलिक रूप से नर्तक थे-उदयशंकर के शागिर्द। शुरू-शुरू में प्रभात की चाँद और लाखारानी का नृत्य निर्देशन भी उन्होंने किया। आगे चलकर वे फिल्म निर्देशक एवं अभिनेता बने। नृत्यकला ने उन्हें अभिनय में रिदम को पहचानने, प्रयुक्त करने की सीख दी थी, लेकिन उनकी संवेदना इस रिदम ताल तक ही रुकी नहीं।

इसके बाद आए युगांतरकारी शम्मी कपूर जिनकी 'या ऽऽ हू' के साथ एक भूचाल सा आ गया। राज कपूरी अध्याय के साथ-साथ शंकर-जयकिशन का बोलबाला तो हो ही गया था, पर हेमंतकुमार, अनिल विश्वास, हंसराज बहल, चित्रगुप्त, एस.एन. त्रिपाठी, मदन मोहन की लोकप्रियता पर इसका कोई खास असर नहीं हो पाया था, क्योंकि राज कपूर, किशोर की इमेज एक अलग तरह के हल्के-फुल्के नायक, हास्य अभिनेता की बनी थी और भारत भूषण, प्रदीप कुमार, श्याम, महिपाल, प्रेमनाथ, अजीत जैसे गंभीर अभिनेताओं ने अभी गीत की धुन पर नाचना जरूरी नहीं समझा था, लेकिन शम्मी कपूर ने इसे जरूरी बना दिया।

शम्मी कपूर के जमाने से पहले का वह तलत का मदिर, मधुर दौर बेचैन नजर बेताब जिगर, शामे गम की कसम, सब कुछ लुटा के होश में आए तो क्या हुआ, जाएँ तो जाएँ कहाँ, ऐ मेरी जिंदगी तुझे ढूँढूँ कहाँ जैसे गीतों में गूँजने वाली आवाज की वह रेशमी भावुकता जो हमें आज भी अपने साथ एक अनोखे दर्द की मस्त में बहा ले जाती है, शम्मी कपूर जमाने के साथ अंधेरे के बहाव में कहीं बहकर खो गई।

शम्मीकपूरी फिल्मों के साथ एक बदलाव आया। अभिनेता की अभिनय शैली का ख्याल रखकर पार्श्व गायक गाने लग गए। तलत और हेमंत कुमार इसी वजह से पीछे रह गए। मुकेश की आवाज राज कपूर के साथ मेल खाती जरूर पर और कलाकारों का साथ देने में वह असमर्थ रहते थे। रफी और मन्ना डे की हरकतदार आवाजों में बहुरूपियापन मौजूद था।

सही मानो में शम्मी कपूर की परंपरा को चलाया जितेन्द्र ने। औरों की तरह उन्होंने महज शम्मी का अंधानुकरण नहीं किया। बस, उस शैली के एक सूत्र को पकड़ कर अपनी 'जंपिंग जैक' की अलग इमेज का निर्माण किया।

दिलीप कुमार पर शम्मी का कोई प्रभाव नहीं है। तब भी उदास मुद्रा में विरह गीत गाते फिरने वाले ट्रैजेडी किंग भी 'नैन लड़ जई है' और 'साला मैं तो साब बन गया' के रिदम पर नाचते हुए नजर आने लगे।

इसलिए मुझे लगता है सहगल-सुरेंद्र अमर 'गायक अभिनेता' थे तो आज के न गाने वाले अभिनेता 'संगीत अभिनेता' हैं। पार्श्व गायक के उधार सुर पर अपना ताल देने में आज के हीरो की परीक्षा है। संगीत की सफलता, असफलता भी एक हद तक गायक की अपेक्षा अभिनेता पर निर्भर करने लगी है।

With Best Compliments

from:

KORON BUSINESS SYSTEMS LIMITED
Pithampur

Manufacturers of:

KORES-SHARP 1101
A-3 size Heavy Duty Copier Machine

KORES-SHARP 1101-R
Reduction Copier with A-3 to B-4 & A-3 to A-4

(In technical collaboration with

M/s. SHARP CORPORATION, Japan.)

KORES-720
Automatic Plain Paper Copier (Fullscape)

LEADING

Soyabean Processors

Mayur Oils and Foods Ltd.

Regd. Office and Works: **KALAPIPAL**

Gram: Mansingka Phone No. 51 and 65

Head Office:
MIG-5,M.P./M.L.A. Qtrs.
Bhopal-3.
Phone No. 61364/68344
Telex-0735-300 Myil-IN
Gram: Mansingka

Admn. Office:
48, Saket Nagar,
Indore-1.
Phone No.4363/23005
Gram: Mansingka

महेन्द्र ट्रेडिंग कम्पनी

ग्रेन मर्चेन्ट एंड कमीशन एजेन्ट

इटारसी (म.प्र.) फोन: ३०२, ६९२

"नावेल्टी आइस्क्रीम"

उच्चतम होमोजनाइट आइस्क्रीम निर्माता

★ नावेल्टी भोफन फूड कं., **इटारसी** (म.प्र.), फोन: ७७१

टिम्बर मर्चेन्ट एसोसिएशन

इटारसी (म.प्र.)

फोन : २८८, ३४१

'सरगम का सफर' के प्रकाशन पर

हमारी

शुभकामनाएँ !

★ शक्ति ट्रेडर्स ★

आबकारी ठेकेदार, इटारसी (म.प्र.)

इस जैसा
कोई और टी वी
ढूँढ लाइए... तो जाने !

CETRON·IX
C·O·L·O·R T·V

30 खूबियों वाला एकमात्र टी वी.

यह 33 फंक्शन वाला
रिमोट कंट्रोल UC निशान वाले
किसी भी वी सी आर को
चला सकता है.

दंग कर देनेवाली आधुनिक टेक्नोलॉजी. और मन को लुभानेवाला रूप-रंग. स्थिर तस्वीर, साफ़ आवाज़. कलर टी वी की दुनिया में एक बिल्कुल अनोखा अंदाज़. सेट्रॉन IX !
नई खूबियों के साथ. जैसे ऑटोमेटिक फ़ाइन-ट्यूनिंग, ऑफ टाइमर...और भी कई. जिन्हें देखिये टी वी स्क्रीन पर.
इस बेमिसाल कलर टी वी के साथ उत्तम कारीगरी का है एक ऐसा भरोसा जो भारत में रंगीन टी वी की पहल करने वाले वेस्टन ही आप तक ला सकते हैं.

Weston सेवा केन्द्र HITACHI जापान के लिए

Weston®
The electronics people

CH-D W2589 HIN

naa/D/TX-88

द्वारका टायर्स

स्टेशन रोड, **इटारसी** (म.प्र.) फोन : २४६, ६६४

अधिकृत विक्रेता :

डनलप टायर एवं एवरेस्ट बिल्डिंग मटेरियल व एक्साइड बैटरीज

नीलम मिष्ठान केन्द्र

स्वादिष्ट मिठाइयों के एकमात्र विक्रेता

इटारसी (म.प्र.) फोन : ५०३, ५८८

श्री सरतार्जसिंह

फारेस्ट कांट्रेक्टर

इटारसी (म.प्र.) फोन: ५२३

बी. एम. एजेंसी

२७, न्यू मार्केट, **इटारसी** (म.प्र.) फोन : ७३४

अधिकृत विक्रेता:— **फूड स्पेशलिटीज लि., बितानिया इण्ड. लि.**

नेमीचंद मुकेशचंद जैन

किराना मर्चेन्ट

इटारसी (म.प्र.)

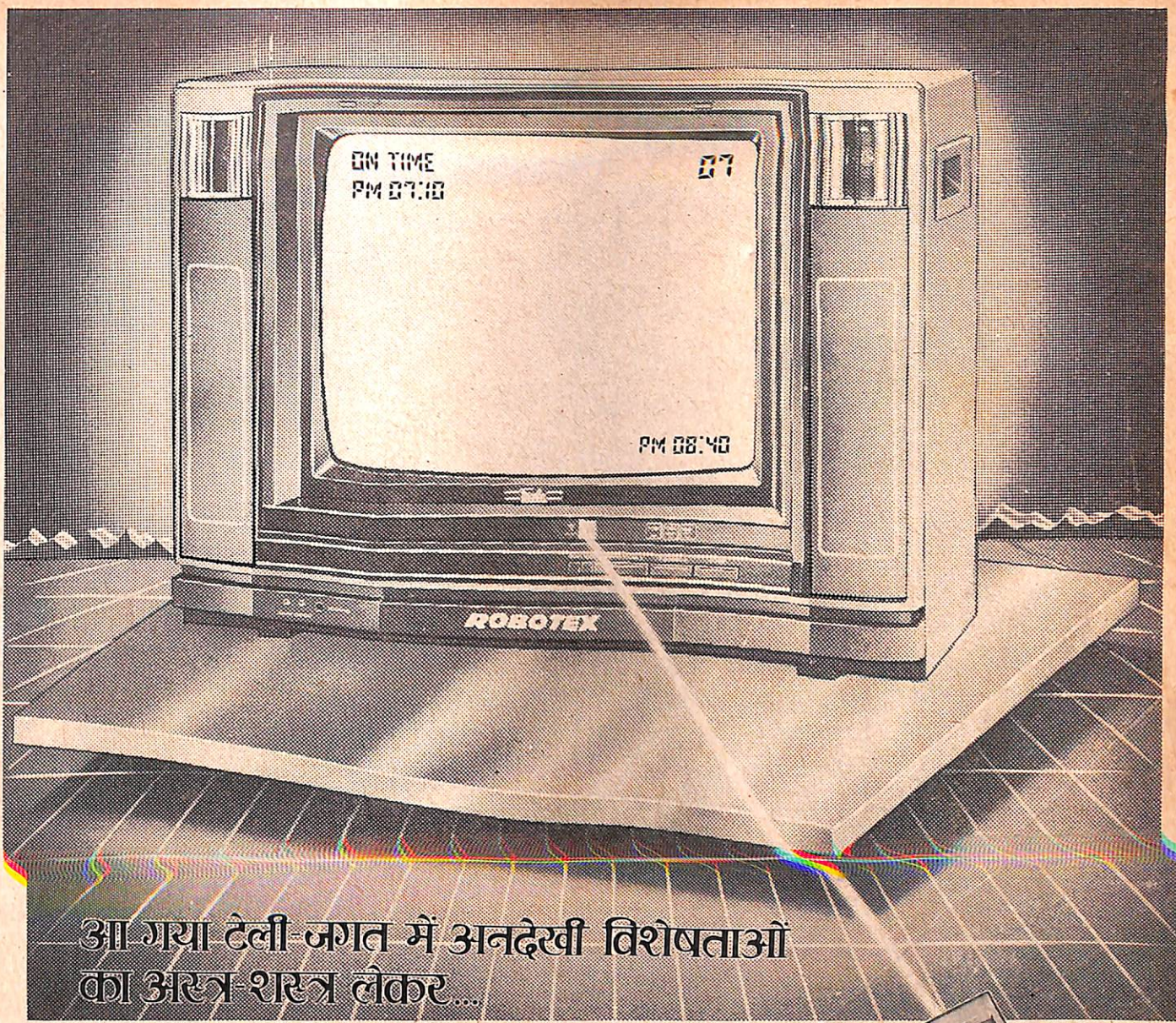

आ गया टेली-जगत में अनदेखी विशेषताओं का अस्त्र-शस्त्र लेकर...

टेली-तकनीक की नयी सीमाओं को लांघता, आ पहुँचा है रोबोटेक्स – एक ऐसा कलर टीवी जो उन्नत विशिष्टताओं के शस्त्रागार की ताकत पर टेली-जगत में अपना विजय-पताका फहरा रहा है।

रोबोटेक्स... तकनीकी जादूगरी और नये रूप-ओ-अंदाज़ का बेजोड़ समन्वय जिसे आप,एक 28 बटन वाले रिमोट कंट्रोल यंत्र के ज़रिये, दूर बैठे, उंगली मात्र के स्पर्श से जागृत कर सकते हैं.

- अपने आप चालू व बंद होने की सुविधा ताकि आप अपने पसंदीदा कार्यक्रम देखना न भूलें.
- स्क्रीन पर सुबह-शाम का वक्त दर्शाने वाला विशेष डिजिटल घड़ी.
- स्क्रीन पर 6 रंगों में 11 टीवी कार्यों का डिसप्ले – जैसे ट्यूनिंग की बारीकी, चालू व बंद होने का समय, तथा आवाज़, चमक, रंग-संतुलन व कॉन्ट्रास्ट लैवल आदि.
- स्लीप-टाइमर सुविधा, जिस से, अगर आप चाहें तो टीवी खुद-ब-खुद 90, 80, 70, 60, 50, 40, 30, 20, या 10 मिनट के बाद बंद हो सकता है।
- अती-आधुनिक, 28 निर्देशों वाला रिमोट-नियंत्रण यंत्र जिस से टीवी आपके इशारों पर चले.
- दो-तर्फ़ा डबल स्पीकर.
- पैनल-लॉक, जिसके प्रयोग से आप पूर्व-व्यवस्थित कंट्रोल्स को अनचाहे छेड़-छाड़ से सुरक्षित कर सकते हैं.

naa/D/TX-88

रोबोटेक्स
...कुछ ख़ास, कुछ अलग!

Texla®
सही पसंद

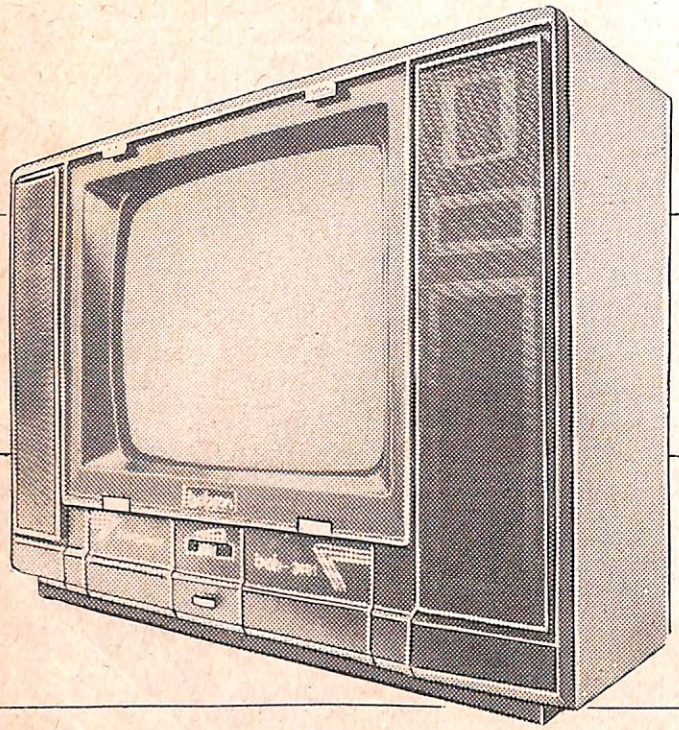

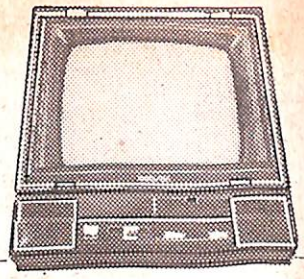

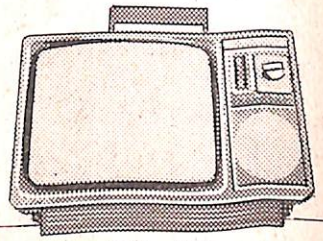

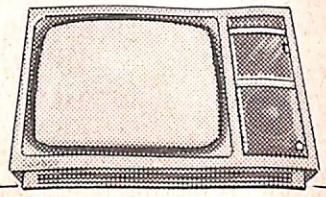

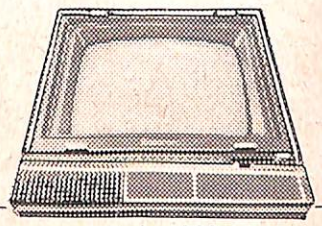

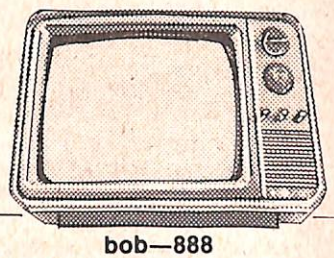

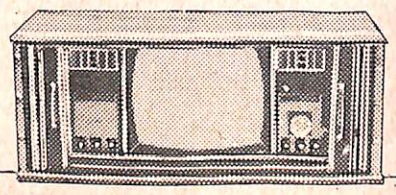

न केवल गज़ब की खूबसूरती
गज़ब के अंदाज भी
बॉबसन
के डबल स्पीकर के साथ
bob—006
bob—007
bob—008
bob—009
bob—888
bob—1001
हाँ, बाबसन ने अपने ब्लैक एंड व्हाइट टेलिविजनों की व्यापक श्रृंखला में एक महान कार्य-कौशल का नमूना और पेश किया है! अपने रूप और आभा में... काम की दक्षता में अद्भुत! यह एक विलक्षण डबल स्पीकर है जो आपको देता है एक खास ही लाभ– अपनी सुपरसोनिक (पराध्वनिक) आवाज का। इसलिए सोचने में वक्त मत गंवाइए, बस, खरीद डालिए!
PORTABLE B/W TELEVISION
bobson®
Have a nice time with BOBSON
बब्बर विज़न इंडिया (प्रा.) लिमिटेड
अधिकृत कार्यालय : B-29 अन्सल चैम्बर्स II,
भीकाजी कामा पैलेस, नई दिल्ली-110 066 फोन : 602980
फैक्टरी : D-253, सेक्टर-10, नौएडा (यू.पी.) फोन : 89-27196
पोर्टेबल टी०वी०36 से०मी० स्क्रीन
alignpoint-89

KASYAP
FANS

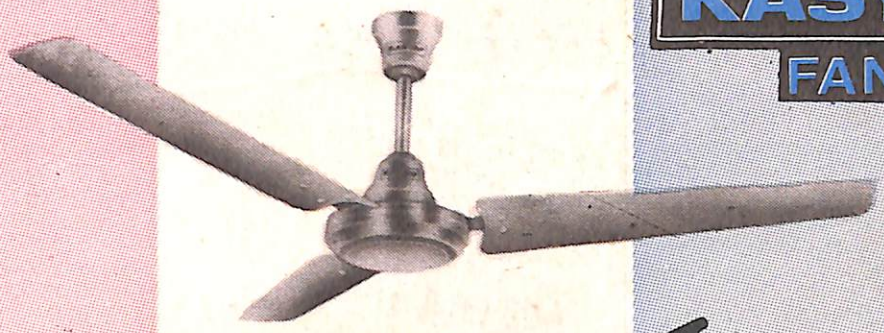

तूफानी पंखा

डबल बॉल बेरिंग

किचन कींग की अब नई देन

आप के घर को हवादार, दफ्तर को सौंदर्यमय और जीवन-शैली को आराम पहुंचाने में और एक कदम आगे.

सिर्फ आप की ही सुविधा के लिए विशेष तौर से निर्मित काश्यप सीलिंग और टेबल पंखे. सुंदर, आकर्षक, टिकाऊ और हलके.

खराबियों से कोसों दूर क्योंकि इसका हर पुर्जा गहरी देखभाल से बना है तभी तो कम बिजली में भी ये भरपूर हवा देते हैं.

हवा ही हवा, तूफानी हवा!

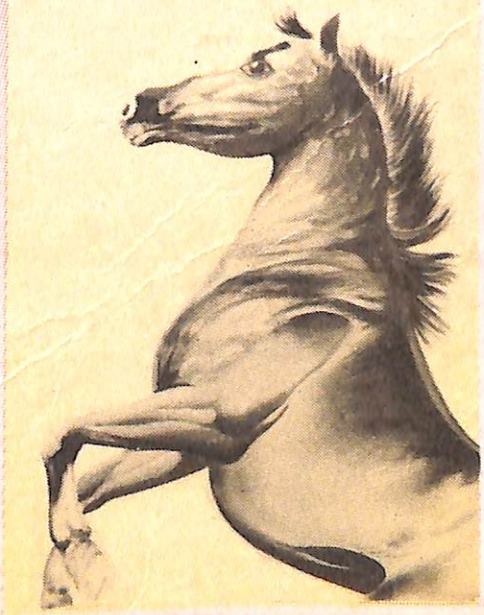

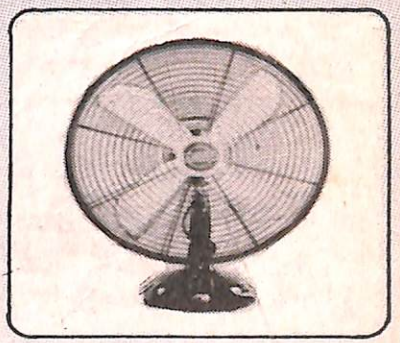

काश्यप

काश्यप इंडस्ट्रीज प्रा.लि.

वीसाजी मेन्शन, एम.जी. रोड, रतलाम – ४५७ ००१, इंडिया

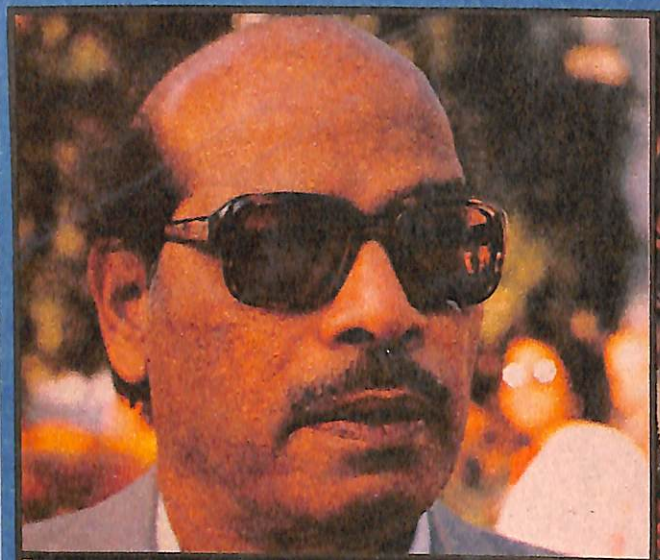

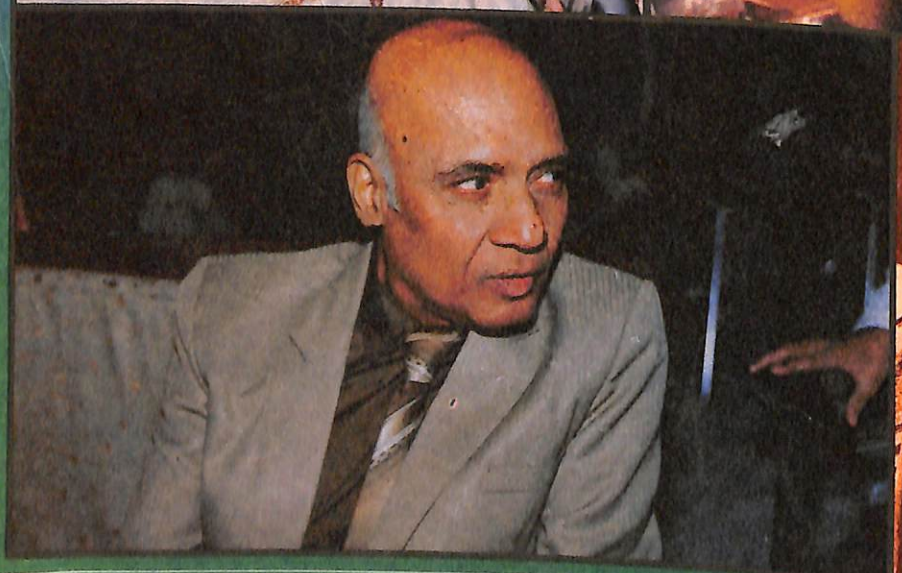

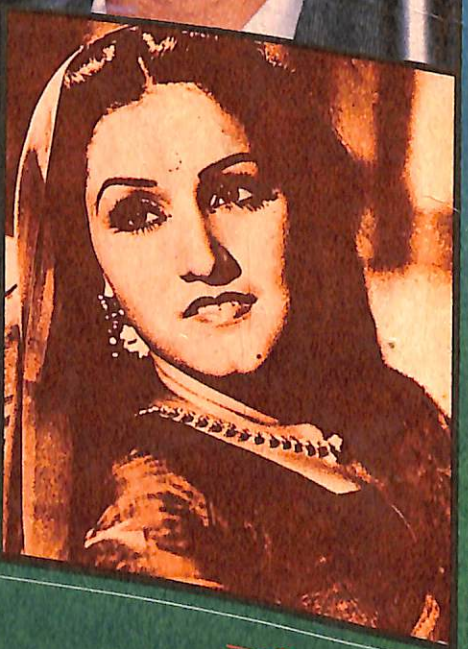

प्रबंध संपादक बसंतीलाल सेठिया द्वारा नईदुनिया के लिए
नईदुनिया प्रेस, बाबू लाभचंद छजलानी मार्ग, इंदौर-४५२००९ में
मुद्रित और प्रकाशित
संपादकीय सलाहकार : राहुल बारपुते

नईदुनिया

सरगम का सफर

जून : १९८९ • मूल्य : सोलह रुपए